श्रीचैतन्यदेव

[हिन्दी-संस्करण]

मूल-लेखक
महामहोपदेशक
श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद

प्रकाशक
गौड़ीय मिशन (रजिस्टर्ड)
बागबाजार, कलकत्ता-३

४) चार रुपये

: प्राप्तिस्थान :

श्रीगौड़ीय मठ,
बागबाजार, कलकत्ता-३

◆

श्रीगौड़ीय मठ,
४५, हनुमान रोड, नई दिल्ली ।

◆

श्रीगौड़ीय मठ,
ग्वालियर टैंक रोड, बम्बई-२६

◆

श्रीरूप-गौड़ीय मठ,
इलाहबाद–६

◆

श्रीसनातन-गौड़ीय मठ,
८।१७, बडा गभीरसिंह, बनारस

◆

श्रीगौडीय मठ,
गणेशगज, लखनऊ ।

◆

श्रीगौड़ीय मठ,
मीठापुर, पटना ।

◆

श्रीगौड़ीय मठ,
रमना रोड, गया ।

◆

श्रीपुरुषोत्तम मठ,
चटक पर्वत, गौडवाटशाही, पुरी ।

श्रीकृष्णचैतन्य मठ
पुराना शहर, वृन्दावन ।

◆

श्रीव्यास-गौड़ीय मठ
थानेश्वर, कुरुक्षेत्र (पूर्वपजाब)

◆

प्रथम संस्करण

◆

श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी
पादकी तिरोभाव-तिथि तथा
श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रा
१६ वामन, श्रीचैतन्याब्द
४६७ तदनुसार १३ जुलाई,
१९५३

◆

Printed by K C Bose at the Binani Printers Ltd,
38, Strand Road, Calcutta-1

राष्ट्रपतिका आनन्द-प्रकाश

श्रीश्रीचैतन्यदेवका भुवनमंगल-चरित एवं उनकी शिक्षासे परिपूर्ण ग्रन्थ "श्रीचैतन्यदेव" गौड़ीय-मिशनने राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित किया है जानकर राष्ट्रपति डॉक्टर श्रीराजेन्द्रप्रसादने आनन्द प्रकाश किया है और उनकी ओरसे यह शुभेच्छा प्राप्त हुई है :—

"The President was glad to know that the Gaudiya Mission has brought out an exhaustive book in Hindi embodying the life and teachings of Sri Chaitanya Mahaprabhu * * * I have been directed to convey to you the President's best wishes for the Gaudiya Mission"

Rashtrapati Bhavan,
New Delhi
September 8, 1953

(Sd) **R. L. Handa**
Press Attache to the President

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत

निवेदन

जड प्रगति और प्रभु व-कामनाके अनिवार्य फल-स्वरूप विश्वसघर्ष तथा नाना प्रकारके जगज्जजाल उपस्थित हो रहे है। जड-कामकी प्रगतिसे विश्वशान्ति तो दूरकी ब‌ात है, कभी व्यक्तिगत शान्ति भी नही मिल सकती। शान्तिके नामपर आज चारो ओर अशान्तिका साम्राज्य फैलता जा रहा है। भ्रातृत्वके नामपर आज विद्वेषकी ज्वाला भडक रही है।

वह दिन भी कुछ ऐसा ही था। श्रीगौराब्दके अनुसार ४६७ वर्ष पूर्वकी बात है,—हत्या, लूटमार और तरह-तरहके अत्याचारकी वीभत्स-घटनाओकी स्याहीसे हमारे इतिहासके पन्ने लिखे जा रहे थे, चारो ओर कपट, षडयन्त्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्म-विद्वेष और अराजकताने भीषण रौद्ररूप धारण कर लिया था, देशसे शुद्ध-भक्तिक‌ा बिल्कुल लोप हो गया था,—तब एक अद्वितीय-पुरुषका आविर्भाव हुआ। सूर्यके उदय होते ही जैसे अँधेरा हट जाता है, वैसे ही उस अतिमर्त्य-पुरुषके आविर्भावसे अशान्तिका अन्धकार लुप्त होकर शान्तिका आलोक दिखाई देने लगा। धर्म और भक्तोपर जब-जब विपत्ति पडी है, अतिमर्त्य-पुरुष तब-तब धरतीपर अवतरित हुए है,—नित्यसिद्ध नए-नए रूपमें। उस दिन उस अतिमर्त्य-पुरुषका आविर्भाव हुआ नित्य पूजनीय कृष्णावतार श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीचैतन्यदेव'के रूपमे। ये स्वय भगवान् है अर्थात् अवतारी स्वय अवतरित होकर आए सस‌ारको अपना प्रेम वितरण करनेके लिए; क्योंकि यह कार्य किसी प्रतिनिधिसे नही हो सकता था। श्रीचैतन्यदेवने अपनी प्रेममयी अमृत-वाणीसे भूले हुए मनुष्योको सच्चा मार्ग दिखाया, ससारको सच्ची शान्तिका पता दिया।

आज लोग उनकी वाणीको भूल गए है, आज लोग उनके बताए हुए रास्तेको खो बैठे है। तभी यह अशान्ति, तभी यह विद्वेष और

तभी यह सघर्ष देश, समाज और व्यक्तिके जीवनमे प्रवेश करता जा रहा है। आज बहुतसे लोग श्रीचैतन्यदेवकी दुहाई देकर प्रेमके नामपर कामकी उपासना कर रहे है, इस प्रकार वे लोग अपनेको धोखा देनेके साथ-साथ जगत्को भी धोखा दे रहे है।

श्रीचैतन्यदेव अहैतुकी कृपाका विस्तार करके बगदेशमे अवतरित हुए। बगालका आदिम साहित्य उन्हीके श्रीचरणोकी अर्चना करके प्रकाशित हुआ है, परन्तु दु खका विषय है कि अब भी बहुतसे शिक्षित व्यक्ति श्रीचैतन्यदेवके चरित और शिक्षाके सबधमे अनेको कल्पित, भ्रान्त तथा विकृत मतका पोषण करते है, कोई-कोई तो इसके सबधमे पूर्णरूपसे अज्ञ या उदासीन है। बगालके कई प्रसिद्ध साहित्यिकोने कुछ अप्रामाणिक कल्पित पोथियोके प्रमाण एव कल्पनाका आश्रय लेकर श्रीचैतन्यदेवको जिस रूपमे चित्रित करनेकी चेष्टा की है, उससे तो ऐतिहासिक सत्य भी विलुप्त हो गया है। श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित भक्ति-सिद्धान्तके सबधमे बात चलते ही तरल-कथा-साहित्यके पाठक-सम्प्रदायमे सिर-दर्द होने लगता है। इससे सहज ही एक ओर जैसे ऐतिहासिक सत्यका अपलाप होता है, दूसरी ओर उनकी यथार्थ शिक्षा और सिद्धान्तके विषयमे भी सम्पूर्ण उदासीनता हमारी प्रगतिके नामपर अधोगति कर रही है अर्थात् हमे अचैतन्य-राज्यमे ही प्रवेश करा रही है।

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा एक ही साथ सरल भी है और गभीर भी। सरल इसलिए कि निरक्षर मनुष्यके समझनेके लिए किसी प्रकारका कोई उलझन नही और गभीर इसलिए कि तर्क-विचार एव शास्त्र-ज्ञानमे पारगत परम पडितोके मननकी प्रचुर सामग्री है। गृहस्थ एव वैरागी, युवक एव वृद्ध, स्त्री एव पुरुष बिना किसी जाति-वर्ण-धर्मके भेदके सभी लोग श्रीचैतन्यदेवके आचरण और शिक्षासे सर्वश्रेष्ठ मगलका वरण कर सकते है। कोई भी व्यक्ति निरपेक्ष और सरल होनेपर श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित धर्मको नित्य सार्वजनीन चित्-समन्वय-विधानकारी परमधर्मके रूपमे प्राप्त कर सकता है। 'उपनिषद्' और

'ब्रह्मसूत्र'मे जिस गभीर तत्वका आविष्कार हुआ है, श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामे उसका परिपूर्ण सार भाग पाया जाता है। अठारह पुराण, बीस धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, षड्दर्शन और तन्त्रशास्त्रमे जो सब कल्याणकारी उपदेश है, वे सभी तात्विक रूपमे श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामे दिखाई पडते है। विदेशी धर्मशिक्षामे और स्वदेशी प्रचलित धर्मसमूहमे जो कुछ सद्वस्तु है तथा स्वदेशी-विदेशी किसी भी शास्त्रमे जो नही पाया जाता है, वह भी श्रीचैतन्य-देवकी परिपूर्ण शिक्षामे पाया जाता है।

साधारणत तीन श्रेणीके व्यक्ति श्रीचैतन्य-चरितकी आलोचनामे प्रवृत्त होते है। प्रथम श्रेणीके लोग ऐतिहासिक और साहित्यिक कौतूहलको चरितार्थ करनेके लिए, द्वितीय श्रेणीके लोग श्रीचैतन्य-चरित्रको अपने चिन्तन और भाव-धाराके साँचेमे ढालकर निर्माण करनेके लिए या प्रतिकूल समालोचनाके लिए एव तृतीय श्रेणीके लोग आत्म-कल्याण और आनुषङ्गिक रूपसे पर-कल्याणके लिए श्रीचैतन्य-चरित्रकी आलोचना किया करते है। हमलोगोने भगवान् श्रीचैतन्यदेव की कथा जिन सब महापुरुषोके पादपद्मभे बैठकर श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, उनके आदर्शने हमे यह शिक्षा दी है कि अचैतन्य चिन्ता-स्रोत और आचार-प्रचारमे लगे रहकर श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी आलोचना नही की जा सकती। उनके आदर्शने हम लोगोको यह भी सिखाया है कि श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी आलोचना करके वास्तवमे लाभ उठाना हो या श्रीचैतन्यदेवको समझना हो तो श्रीगौर-चरण-कमलको अपना प्राणधन समझना होगा तथा श्रीचैतन्यके भक्तोका नित्य सग करना होगा , तभी सिद्धान्त-सागरकी तरगको जाना जा सकेगा। इस पुस्तकमे श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा और सिद्धान्तका उनकी प्रत्येक लीला और चरितके द्वारा यथासाध्य साधारण जनताके उपयोगी बनाकर वर्णन किया गया है। तर्क और विश्वव्यापी सघर्षके युगमे वास्तविक पराशान्तिके पिपासु व्यक्तिगण श्रीचैतन्यदेवके विमल प्रेम-

धर्मकी आलोचना करके कृतार्थ हो, यही हमारा नम्र-निवेदन है। श्रीचैतन्यदेवके शिक्षा-सूत्रमे ग्रथित होनेपर यथार्थ विश्वप्रेमका विस्तार होगा, सघर्ष और द्वन्द्वकी अमानिशाका अत हो जायगा एव यथार्थ जन-मगलका आविर्भाव होगा।

सर्वप्रथम ४४९ श्रीगौराब्द (ईस्वी सन् १९३६)मे बगलामे यह पुस्तक लिखी गई। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके 'श्रीचैतन्यभागवत', श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपादके 'श्रीचैतन्यचरितामृत', श्रीमुरारि गुप्तके 'सस्कृत करचा', श्रीलोचनदास ठाकुरके 'श्रीचैतन्यमगल', श्रीकवि-कर्णपूरके 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक', श्रीसनातनपादकी 'श्रीबृहद्वैष्णव-तोषणी', 'श्रीवृहद्भागवतामृत' तथा 'श्रीदिग्दर्शिनी टीका', श्रीरूप और श्रीरघुनाथकी 'स्तवमाला' एव 'स्तवावल', श्रीजीवपादके 'श्रीषट्सन्दर्भ', 'श्रीक्रमसन्दर्भ' तथा 'सर्वसवादिनी' आदि महापुरुषोके द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रन्थ-समूह और उनके सिद्धान्त ही इस पुस्तककी रचनाके मूल उपकरण है। बगलामे इस ग्रथके पाँच सस्करण हो चुके है। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा होनेके कारण अनेक सज्जनोके अत्यन्त आग्रहसे इस ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। हिन्दीमे इसके प्रकाशन कार्यमे जिन सज्जनोने निस्वार्थभावसे हमे पूर्ण-सहयोग प्रदान किया, उनमे श्रीमान् हनुमानप्रसाद पोद्दारजी, सपादक—'कल्याण' (गीता प्रेस, गोरखपुर), तथा श्रीसनातन-गौडीय मठ, काशीके अध्यक्ष श्रीहरिजनकिकर भक्ति-विबुध विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसके लिए हम इन सज्जनोके अत्यन्त आभारी है एव इनको अपना आन्तरिक धन्यवाद देते है।

पुस्तकमे कोई त्रुटि-विच्युति दिखाई पडे तो पारमार्थिक पाठकगण निज-गुणोसे क्षमा करेगे तथा सशोधन कर ग्रन्थका सार ग्रहण करके बाधित करेंगे।

श्रीश्रीगोविन्दजीका श्रीमंदिर
जयपुर (राजस्थान)
श्रीगौरजयन्ती, श्रीगौराब्द ४६७

श्रीश्रीगुरुवैष्णव-कृपाबिन्दुप्रार्थी
श्रीसुन्दरानन्ददास विद्याविनोद

सूचीपत्र

परिशिष्ट

चित्र-सूची

सांकेतिक-चिह्न-परिचय

अ०	अन्त्यलीला , अन्त्यखड , अक , अध्याय
अ० प्र० भा०	(श्रीचैतन्यचरितामृतका) अमृतप्रवाहभाष्य
अनु०	अनुच्छेद
आ०	आदिलीला , आदिखड
कृ० वि०	श्रीकृष्णविजय
कृ० स०	श्रीकृष्णसन्दर्भ
कै० ली०	कैशोर-लीला
गी०	श्रीमद्भगवद्गीता
गौ० गौ० ग्र० स०	गौडीय-गौरव-ग्रन्थगुटिका-सस्करण
गौ० भा०	(श्रीचैतन्यभागवतका) गौडीयभाष्य
चै० च०	श्रीचैतन्यचरितामृत
चै० च० ना०	श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटकम्
चै० भा०	श्रीचैतन्यभागवत
चै० म०	श्रीचैतन्यमगल
चै० च० महाकाव्य	श्रीचतन्यचरित-महाकाव्यम्
त० स०	श्रीश्रीतत्वसन्दर्भ.
द०	दक्षिण-विभाग
प०	परिच्छेद , श्रीपद्यावली
पा० टी०	पादटीका
पू०	पूर्व-विभाग
ब्र० सू०	श्रीब्रह्मसूत्रम्
भ० र०	श्रीश्रीभक्तिरत्नाकर
भ० र० सि०	श्रीश्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
भ० स०	श्रीश्रीभक्तिसन्दर्भः
भग० स०	श्रीश्रीभगवत्-सन्दर्भ
भा०	श्रीमद्भागवतम्
म०	मध्यलीला ; मध्यखड
वि० मा० ना०	श्रीश्रीविदग्धमाधव-नाटकम्
स०	सम्पादक
ह० भ० वि०	श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः

तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधि-जीर्ण-पङ्क-
संमग्न-मोक्षण-विचक्षण-पादुकेभ्यः ।
कृष्णेति वर्णयुगल-श्रवणेन येषां
आनन्दथुर्भवति नर्तित-रोमवृन्दः ॥

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत

मगलाचरण

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च ॥

जयति जयति देवः कृष्णचैतन्यचन्द्रो
जयति जयति कीर्तिस्तस्य नित्या- पवित्रा।
जयति जयति भृत्यस्तस्य विश्वेशमूर्ते-
र्जयति जयति नृत्यं तस्य सर्वप्रियाणाम् ॥

आदुर्जनगणशरणं, स जयति चैतन्यविग्रहः कृष्णः ॥

महाप्रभुका उपकार सभी देशमे, सभी पात्रमे तथा सभी कालमे सर्वश्रेष्ठ उपकार है। यह उपकार किसी देश-विशेषका उपकार और अन्य देशका अपकार नही ; यह उपकार समग्र विश्व-ब्रह्मांडका उपकार है। अतएव सकीर्ण, साम्प्रदायिक, नश्वर उपकारका प्रस्ताव महाप्रभु एवं महाप्रभुके भक्तगण कभी नही करते। महाप्रभुका उपकार किसी दिन किसीका मन्द नही करता। तभी महाप्रभुकी दया 'अमन्दोदया दया' है, तभी महाप्रभु महावदान्य है और तभी महाप्रभुके भक्तगण महा-महावदान्य है। ये सब कहानी नही, काव्य-साहित्यकी कल्पना नही, —सबसे बड़ी सत्य भरी बाते है।

—श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद
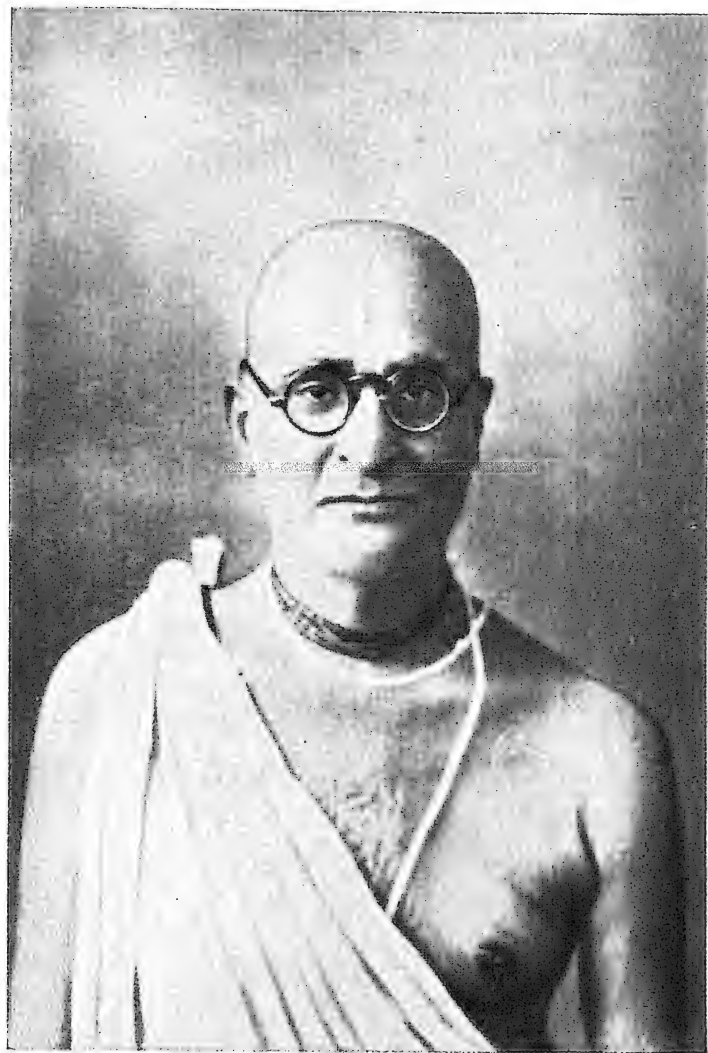
गौड़ीयवैष्णवाचार्यवर्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद। आपने ही सर्व प्रथम देश-विदेशोंमें श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार किया। (आविर्भाव : संवत् १९३०—तिरोभाव सं० १९९३)

श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौर-जन्मस्थानपर श्रीमंदिर

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत

पहला परिच्छेद

समसामयिक राजनैतिक अवस्था

श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव सन् १४८६ ई० में हुआ। उस समय पठानोके लोदीवशका प्रताप प्रबल हो रहा था। १४५० ई० में बह्लोल लोदीने दिल्लीके सिंहासन पर आरूढ होकर भारतवर्षमे प्रथम पठान राजवशकी प्रतिष्ठा की थी। १४८९ ई० में बह्लोलके बाद उनके पुत्र सिकन्दर लोदी सिहासनारूढ हुए। सिकन्दरके राजत्व-कालमें ही श्रीचैतन्यदेवने नवद्वीपमें अपनी बाल्यलीला, अध्यापनलीला तथा अन्तमें काटवामें सन्यासलीला प्रकट करते हुए पुरी गमन किया था। सिकन्दरशाहने १५१७ ई० पर्यन्त अट्ठाईस वर्ष राज्य किया। उसके बाद सिकन्दरके पुत्र इब्राहिम लोदी गद्दीपर बैठे। इसके पहले ही श्रीमथुराके समस्त रम्य देवमन्दिर विधर्मी राजाओकी धर्मोन्मत्तताके ताण्डव-नृत्यसे विध्वस्त (?) हो चुके थे। उस समय श्रीचैतन्यदेव कभी पुरीमें रहते और कभी दक्षिण देश, बगाल और श्रीव्रजमडलके नाना स्थानोमें परिव्राजकके रूपमें नाम-प्रेमका प्रचार करते रहे। श्रीचैतन्यदेवके पुरी

अवस्थानके अन्तिम समयमें पानीपतकी पहली लडाई हुई (२१ अप्रेल, १५२६ ई०)। मुगल-साम्राज्यके सस्थापक बाबरने दिल्लीके सिहासनपर अधिकार करनेके लिये जिस समरानलको प्रज्वलित किया था, उसकी शिखा भारतके समस्त राजनैतिक गगनमें परिव्याप्त हो गयी थी।

श्रीचैतन्यदेवके समय बगालके सुलतान थे—क्रमश जलालुद्दीन फतेहशाह (ई० १४८२-८६), फिरोजशाह (१४८६-८९), नासीरुद्दीन महमूदशाह (१४८९-९०), मुजफ्फरशाह (१४९०-९३), अलाउद्दीन हुसेनशाह (१४९३-१५१९), नसरतशाह (१५१९-३२), अलाउद्दीन फिरोजशाह (१५३२), गियासुद्दीन महमूद शाह (१५३२-३८) और तत्पश्चात् हुमायूँ सुलतान हुए।

उस समय उडीसामें सूर्यवशी राजा राज्य करते थे। १४६९ ई० से लेकर १४९७ ई० तक श्रीपुरुषोत्तमदेव* उडीसाके राजसिंहासनपर अधिष्ठित थे। उसके बाद श्रीप्रतापरुद्रदेवने १४९७ ई० से १५४० ई० तक उडीसामें शासन किया। इसी समय बगालमें सुलतान हुसेन शाहका प्रताप प्रबल हो रहा था। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्रायः ग्यारह वर्ष बाद श्रीप्रतापरुद्र उडीसाके राजसिंहासनपर आरूढ हुए तथा श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके प्रायः छ वर्ष बाद तक राजसिंहासनपर आसीन रहे। उस समय इग्लैडके राजा थे सप्तम हेनरी (१४८५-१५०९ ई०) और अष्टम हेनरी (१५०९-१५४७ ई०)।

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहलेसे ही बगदेश अराजकताकी रंगभूमिमें परिणत हो गया था। ईसाकी १५ वी शताब्दीके प्रारम्भमें (१४१४ ई०) इलियस शाहके वशधरोको भगाकर राजा गणेशने बगदेशके सिंहासनपर अधिकार किया। राजा गणेशके पुत्र यदुने पितृसिंहासनपर बैठनेके बाद इस्लाम-धर्म ग्रहण किया और वह जलालुद्दीन

* इन्ही श्रीपुरुषोत्तमदेवने ही साक्षीगोपाल-श्रीविग्रहको विद्यानगर (विजयनगर) से कटक लाकर स्थापित किया था। चै० च० म० पचम प० ११९-१३३ सख्या।

महमूदशाहके नामसे विख्यात हुआ। तब राज्यके उमरावोने यदुके पुत्र अहमदशाहकी हत्या करके इलियसशाहके एक वशधरको बगके राजसिहासनपर बैठाया। इसके पश्चात् अर्थात् ईसाकी १५वी शताब्दीके अन्तिम दिनो बगदेशमें हब्शी क्रीतदासोका बोलबाला रहा। सुलतान रुकनुद्दीन बर्बकशाह अफ्रिकासे हब्शी खोजा लोगोको लाये। श्री-चैतन्यके आविर्भावके पूर्व पर्यन्त अर्थात् १४८६ ई० पर्यन्त इलियसशाहके वशधर नानाप्रकारके विद्रोह और नरहत्याके ताण्डव-नृत्यके बीच पुन. बगदेशमें राज्य करते रहे। मुसलमान शासनकर्त्ताओने अवरोध-रक्षाके लिए हब्शी नपुसक क्रीतदासोको नियुक्त किया था। ये क्रीतदास लोग समय-समयपर तो राजाके अत्यन्त विश्वासपात्र बन जाते और फिर विश्वासघाती और स्वामी-हन्ता होते। उस समय बगदेशमें कपट, षड-यत्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्मविद्वेष और अराजकताने जो भीषण रौद्ररूप धारण किया था, उसका वर्णन नही किया जा सकता। अराजकतासे विचलित होकर बगदेशकी हिन्दू-जनता और मुसलमान अमीरोने अन्तमें अलाउद्दीन हुसेनशाहको बादशाह निर्वाचित किया। श्रीचैतन्यदेवके साथ उक्त हुसेनशाहका साक्षात्कार हुआ था।

बादशाह हुसेनशाहने तत्कालीन यशोहर (Jessore) के अन्तर्गत फतेहाबादके निवासी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणके कुलमें आविर्भूत श्रीसना-तनको अपने प्रधानमत्रीका पद देकर उनको 'साकरमल्लिक'* (साकर—गभीरार्थ वाक्यके रचयिता; मल्लिक—ज्ञानवृद्ध अथवा कूटनैतिक-श्रेष्ठ, चतुरशिरोमणि) तथा उनके छोटे भाई श्रीरूपको 'दबीरखास'† (दबीर—मुशी, Secretary, खास—निजस्व, प्रधान, विशिष्ट, Private, या Principal, Special; अथवा दबीर—लेखक, Writer, खास—Excellent) की उपाधिसे विभूषित किया। श्रीसनातनके बहनोई श्रीकान्त हाजीपुरमें‡ (पटनाके सामने गगाके दूसरे पार) रहकर

* चै० च० म० १।१८४, † चै०भा०आ० १।१७१ और चै०च० म० १।१७५, २०७; ‡ चै० च० म० २०।३८।

अवस्थानके अन्तिम समयमें पानीपतकी पहली लडाई हुई (२१ अप्रेल, १५२६ ई०)। मुगल-साम्राज्यके सस्थापक बाबरने दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार करनेके लिये जिस समरानलको प्रज्वलित किया था, उसकी शिखा भारतके समस्त राजनैतिक गगनमें परिव्याप्त हो गयी थी।

श्रीचैतन्यदेवके समय बगालके सुलतान थे—क्रमश जलालुद्दीन फतेहशाह (ई० १४८२-८६), फिरोजशाह (१४८६-८६), नासीरुद्दीन महमूदशाह (१४८६-६०), मुजफ्फरशाह (१४६०-६३), अलाउद्दीन हुसेनशाह (१४६३-१५१६), नसरतशाह (१५१६-३२), अलाउद्दीन फिरोजशाह (१५३२), गियासुद्दीन महमूद शाह (१५३२-३८) और तत्पश्चात् हुमायूँ सुलतान हुए।

उस समय उडीसामें सूर्यवशी राजा राज्य करते थे। १४६६ ई० से लेकर १४६७ ई० तक श्रीपुरुषोत्तमदेव* उडीसाके राजसिंहासनपर अधिष्ठित थे। उसके बाद श्रीप्रतापरुद्रदेवने १४६७ ई० से १५४० ई० तक उडीसामें शासन किया। इसी समय बगालमें सुलतान हुसेन शाहका प्रताप प्रबल हो रहा था। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्राय: ग्यारह वर्ष बाद श्रीप्रतापरुद्र उडीसाके राजसिंहासनपर आरूढ हुए तथा श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके प्राय- छ· वर्ष बाद तक राजसिंहासनपर आसीन रहे। उस समय इग्लैंडके राजा थे सप्तम हेनरी (१४८५-१५०६ ई०) और अष्टम हेनरी (१५०६-१५४७ ई०)।

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहलेसे ही बगदेश अराजकताकी रगभूमिमें परिणत हो गया था। ईसाकी १५ वी शताब्दीके प्रारम्भमें (१४१४ ई०) इलियस शाहके वशधरोको भगाकर राजा गणेशने बगदेशके सिंहासनपर अधिकार किया। राजा गणेशके पुत्र यदुने पितृ-सिंहासनपर बैठनेके बाद इस्लाम-धर्म ग्रहण किया और वह जलालुद्दीन

---

* इन्ही श्रीपुरुषोत्तमदेवने ही साक्षीगोपाल-श्रीविग्रहको विद्यानगर (विजयनगर) से कटक लाकर स्थापित किया था। चै० च० म० पचम प० ११६-१३३ सख्या।

महमूदशाहके नामसे विख्यात हुआ । तब राज्यके उमरावोने यदुके पुत्र अहमदशाहकी हत्या करके इलियसशाहके एक वशधरको बगके राजसिहासनपर बैठाया । इसके पश्चात् अर्थात् ईसाकी १५वी शताब्दीके अन्तिम दिनो बगदेशमें हब्शी क्रीतदासोका बोलबाला रहा । सुलतान रुकनुद्दीन बर्बकशाह अफ्रिकासे हब्शी खोजा लोगोको लाये । श्री-चैतन्यके आविर्भावके पूर्व पर्यन्त अर्थात् १४८६ ई० पर्यन्त इलियसशाहके वशधर नानाप्रकारके विद्रोह और नरहत्याके ताण्डव-नृत्यके बीच पुन बगदेशमें राज्य करते रहे । मुसलमान शासनकर्त्ताओने अवरोध-रक्षाके लिए हब्शी नपुसक क्रीतदासोको नियुक्त किया था । ये क्रीतदास लोग समय-समयपर तो राजाके अत्यन्त विश्वासपात्र बन जाते और फिर विश्वासघाती और स्वामी-हन्ता होते । उस समय बगदेशमें कपट, षड-यत्र, व्यभिचार, नरहत्या, राजहत्या, धर्मविद्वेष और अराजकताने जो भीषण रौद्ररूप धारण किया था, उसका वर्णन नही किया जा सकता । अराजकतासे विचलित होकर बगदेशकी हिन्दू-जनता और मुसलमान अमीरोने अन्तमें अलाउद्दीन हुसेनशाहको बादशाह निर्वाचित किया । श्रीचैतन्यदेवके साथ उक्त हुसेनशाहका साक्षात्कार हुआ था ।

बादशाह हुसेनशाहने तत्कालीन यशोहर (Jessore) के अन्तर्गत फतेहाबादके निवासी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मणके कुलमें आविर्भूत श्रीसना-तनको अपने प्रधानमत्रीका पद देकर उनको 'साकरमल्लिक'* (साकर—गभीरार्थ वाक्यके रचयिता, मल्लिक—ज्ञानवृद्ध अथवा कूटनैतिक-श्रेष्ठ, चतुरशिरोमणि) तथा उनके छोटे भाई श्रीरूपको 'दबीरखास'† (दबीर—मुशी, Secretary, खास—निजस्व, प्रधान, विशिष्ट, Private, या Principal, Special ; अथवा दबीर—लेखक, Writer, खास—Excellent) की उपाधिसे विभूषित किया । श्रीसनातनके बहनोई श्रीकान्त हाजीपुरमें‡ (पटनाके सामने गगाके दूसरे पार) रहकर

* चै० च० म० १।१८४ , † चै०भा०आ० १।१७१ और चै०च० म० १।१७५, २०७ , ‡ चै० च० म० २०।३८ ।

सोनपुरके हरिहरक्षेत्रके मेलेमें बादशाहके लिये घोडा खरीदनेके कार्यमें नियुक्त थे। श्रीसनातन और श्रीरूपके छोटे भाई श्रीवल्लभ (श्रीचैतन्यदेवका प्रदत्त नाम श्रीअनुपम—श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादके पितृदेव) गौडकी टकसालके अध्यक्ष थे।

बादशाह हुसेनशाहकी उडीसा और कामरूपकी चढाईमें किये गये अमानुषिक अत्याचारोको देखकर दबीरखास और साकरमल्लिकको विशेष मनोव्यथा हुई। हुसेनशाहने उडीसापर आक्रमण करके वहाँके देवमन्दिरोको नष्ट कर दिया था।* कहा जाता है कि इस हुसेनशाहके शिक्षक (?) मौलाना सिराजुद्दीन या चाँदकाजी उस समय नवद्वीपके शासनकर्ता नियुक्त हुए थे।† उन्होने पहले श्रीनिमाइके‡ द्वारा प्रवर्तित सकीर्तनके विरुद्ध आचरण किया और श्रीश्रीवास पडितके घरके समीपवर्ती एक नागरिकके कीर्तनके खोल (मृदग)को फोड दिया। काजीने यह आदेश प्रचारित किया कि उनके इलाकेमें रहते हुए यदि कोई हरिकीर्तन करेगा तो उसको दड दिया जायगा और जातिभ्रष्ट कर दिया जायगा। § उस समय 'प्रतापरुद्र'के राज्य उडीसासे बगदेश अथवा बगदेशसे उडीसा आना-जाना विपत्ति-जनक था। 'पिछल्दा'¶ ग्रामतक मुसलमान शासकका अधिकार था। एक राज्यकी प्रजा

---

* चै० भा० अ० ४।६७।

† "To Baira belongs the little town of Mayapur (near the Burdwan boundary) where I am told the tomb exists of one Maulana Sirajuddin who is said to have been the teacher of Husain Shah, King of Bengal" (*Hunter's Statistical Account of Bengal, Vol 1, p 367*)

‡ बाल्यलीलाके समयके श्रीचैतन्यदेवके तीन नाम है—

(१) श्रीनिमाइ पण्डित, (२) श्रीविश्वम्भर, तथा (३) श्रीगौराङ्ग।

§ चै० च० आ० १७।१७८।

¶ पिछल्दा—वर्तमान पश्चिमी बगालके तमलुक शहरके दक्षिण १४ मील दूर नरघाट है। यहाँ 'कसावती' नदीका शेषाश 'हल्दी' के नामसे

अथवा एक राज्यके लोग दूसरे राज्यमे प्रवेश न कर सकें, इसके लिये स्थान-स्थानपर शूल गाडकर रक्खे गये थे।

हुसेनखाने सुबुद्धि रायकी सहायतासे गौडका सिंहासन प्राप्तकर शाहकी उपाधि धारण की। हुसेन पहले सुबुद्धि रायके अधीन कर्मचारी थे और किसी कारणसे उनके द्वारा दडित हुए थे। गौडका सिहासन प्राप्त करनेके बाद बेगमकी प्रेरणासे उन्होने सुबुद्धि रायको जातिभ्रष्ट कर दिया।* पश्चात् वे सुबुद्धि राय श्रीचैतन्यदेवकी कृपासे धन्यातिधन्य हुए थे।

श्रीचैतन्यदेवके पुरी रहते समय तथा उनके अन्तर्धानके प्राय १५ वर्ष पूर्व १५१९ ई० में हुसेनशाह काल-कवलित हुए।†

श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बहमनी राज्यकी अत्यन्त दुर्दशा हो गयी थी। बीजापुर और विजयनगरके बीच झगडा चल रहा था। ऐतिहासिक लोग कहते है कि इस युगके विवरणमें प्राप्त होता है— केवल हत्या, लूटमार और अत्याचारका बीभत्स इतिहास !

मेवाडका राजपूत राज्य, जो हिन्दुओके शौर्य, वीर्य, कुलीनता और स्वाधीनताके उदयाचलके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है, वहाँ भी

पूर्वकी ओर बहता है। उसे पार करके दो मील दक्षिण 'पिछल्दा' नामक छोटा-सा गाँव है। पहले रूपनारायण और कसावतीका मुहाना गगाकी 'शतमुखी' नामक विस्तृत सागरकी ओर जानेवाली जलराशिके साथ एकत्र मिले होनेके कारण पूर्वकी ओर स्थित छत्रभोगसे नावमें पार होकर मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत तात्कालिक मुसलमानी सीमासे पिछ-ल्दामें आना होता था। वर्तमान में ४०० वर्षों में नदियोके मुखोपर लोगोके बस जाने तथा वहाँ खेती होनेके कारण वह मुहाना उस गाँवसे लगभग ८-१० मील दूर हो गया है। अब तमलुक शहरसे मोटरके द्वारा हल्दीके पार १६ मील जानेपर ही उक्त गाँव आ जाता है। उस स्थानकी प्राचीन श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी श्रीमूर्ति अब भी पासके कासिम-पुर गाँवमें पूजित होती है।

* चै० च० म० २५।१८०-८६ । † राखालदास वद्योपाध्यायका 'बागलार इतिहास', द्वितीय भाग, २६४-६५ पृ०।

अशान्तिका घोर अन्धकार छाया हुआ था। १४३३ से १४६८ ई० तक अर्थात् श्रीचैतन्यके आविर्भावके प्राय २० वर्ष पहले मेवाडके प्रसिद्ध महाराणा कुम्भ मुसलमान सुलतानोको युद्धमें बारबार पराजित करके अन्तमें अपने ही पुत्रके हाथो मारे गये थे। महाराणा कुम्भके पौत्र 'समरशतविजयी' राणा सग्रामसिह (१५०८-१५२७) भारतवर्षको अहिन्दुओकी अधीनता-फॉसीसे मुक्त करके हिन्दू-राज्यकी प्रतिष्ठाका स्वप्न देख रहे थे। पानीपतकी पहली लडाईमें जब बाबरने इब्राहिम लोदीको हराया, तब राणाके मनमें आया कि इन नवागत मुगलोके विरुद्ध समस्त प्रधान राजपूत-शक्तियोको सम्मिलित करके अपने स्वप्नको सार्थक करें, परन्तु १५२७ ई० में फतेहपुर सीकरीके समीप खनुआके युद्धमें उन्हें ज्ञात हो गया कि पार्थिव स्वाधीनताका स्वप्न चपलाके समान चचल है। इन दिनो श्रीचैतन्यदेव परिव्राजक-लीलाका अभिनय करते हुए नीलाचल, दाक्षिणात्य और कभी बगाल, तो कभी वृन्दावनमें पराशान्तिके मूलस्रोत श्रीकृष्ण-नामके प्रेमकी बाढ प्रवाहित कर रहे थे।

दूसरा परिच्छेद

बंगालकी अर्थनैतिक अवस्था

बहुतोकी यह धारणा है कि अर्थके द्वारा ही सब कुछ होता है, सुख, शान्ति, धर्म सबका मूल अर्थ ही है। परन्तु श्रीचैतन्यदेवके आवि-र्भावके पूर्व, पश्चात् और समसामयिक बगालकी अर्थनैतिक अवस्था इस धारणाका समर्थन नही कर सकती। श्रीचैतन्यदेवके उदयके पूर्व बगालके अधिकाश लोगोकी अवस्था सम्पन्न थी ।

अफ्रिकाका परिव्राजक इबन् बतूता जो मुहम्मद तुगलकके शासन-काल (१३२५ ई०) में यहाँ आया था, बगालमें वस्तुओंके तात्कालिक मूल्यकी एक सूची छोड गया है। उस समय आजकलके मापके अनुसार दो आने मन धान, एक रुपये सात आने मन घी, एक रुपये सात आने मन चीनी, साढे ग्यारह आने मन तिलका तेल, दो रुपयेमें पन्द्रह गज बढिया कपडा, तथा तीन रुपयेमें एक दूध देनेवाली गाय मिलती थी। महाप्रभुके आविर्भाव के बहुत दिनो बाद नवाब शायेस्ता खाँके युगमें भी एक रुपयेका आठ मन चावल बिकता था, इसका उल्लेख हम आज भी किवदन्तीके रूपमें किया करते है। इसी प्रकार अथवा इसकी अपेक्षा अधिकतर सुलभ युग श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व तथा तत्कालीन युगमें स्वप्नवत् नही था, तथापि उस समयकी आर्थिक उन्नतावस्था नानाप्रकारकी विपत्तियोसे भरी हुई थी।

लक्ष्मीके वरपुत्र लोग दम्भ और प्रतियोगितावशत पुतलियोका विवाह, पालतू कुत्ते और बिल्लियोके विवाह, लडके-लडकियोंके विवाह तथा मनसा (सर्पोकी अधिष्ठात्री देवीकी) पूजा आदिमें प्रचुर धन व्यय कर डालते थे।* उनका रुपया-पैसा व्यावहारिकता और लौकि-कतामें ही लगता था। लक्ष्मीकी शुभ दृष्टिमें निवास करके भी वे लोग सर्वदा भय, अशान्ति और उद्वेगके बीच रहते थे।

उन दिनो कुछ लोग मिट्टी (ज़मीन) के भीतर अपनी धनराशि गाड कर रखते थे। तथापि एक ओर राजा और दूसरी ओर चोर-

* रमा-दृष्टिपाते सर्वलोक सुखे बसे। व्यर्थ काल याय मात्र व्यवहार रसे॥
दभ करि विषहरि पूजे कोन जन। पुत्तलि करये केहो दिया बहु धन॥
धन नष्ट करे पुत्र कन्यार विभाय। एइ मत जगतेर व्यर्थ काल याय॥
—चै० भा० आ० २।६२, ६५-६६

[रमाके दृष्टिपातसे सब लोग सुखसे बसते थे। केवल व्यवहार-रसमें व्यर्थ समय बीतता था। कोई दभसे विषहरिको पूजता था, कोई पुतलियो के बनानेमें बहुत धन लगाता था, तो कोई पुत्र-कन्याके विवाहमें धन नष्ट करता था, इस प्रकार जगत्का समय व्यर्थ जाता था।]

डाकूकी तीक्ष्ण दृष्टिसे त्राण पाना एक प्रकारसे असभव था। अर्थकी तो बात ही क्या, उस समय पतिव्रताके सतीत्वकी रक्षा तथा प्रतिष्ठित पुरुषके लिये अपनी मान-प्रतिष्ठाके साथ निरापद वास करना भी कठिन हो गया था। स्वेच्छाचारी राजाकी यथेच्छाचारिताकी बलिवेदीपर इस प्रकारके सारे धन, रत्न, स्त्री, सम्मानको किसी भी समय बलि देनेके लिये सबको प्रस्तुत रहना पडता था। इतिहासकी अनेको घटनाएँ इस विषयमें प्रत्यक्ष साक्षी देनेके लिये प्रस्तुत है ।

तीसरा परिच्छेद्

तत्कालीन विद्या और साहित्यचर्चाकी अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व और लीलाकालमें विद्या और साहित्य-चर्चाका विशेष आदर था। उस समय बगदेश, विशेषतः नवद्वीप विद्या और साहित्य-साधनाका प्रधान पीठस्थान हो गया था। नवद्वीपमें घर-घर पण्डित तथा पढनेवाले छात्र वास करते थे। बालक भी विद्वान् पडितोके साथ शास्त्रार्थ किया करते थे। 'घट-पट'के विचारको लेकर कालयापन करना ही महागौरवका कार्य समझा जाता था। नवद्वीपमें न्यायशास्त्र पढनेके लिये नाना देशोके लोग आते थे। नवद्वीपके विश्वविद्यालयमें पाठ समाप्त किये बिना कोई सर्वश्रेष्ठ विद्वान्के रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त नही कर पाता था। नवद्वीपमें श्रीगगादास पण्डितके समान प्रवीण वैयाकरण, श्रीगदाधर पण्डित और श्रीमुरारि गुप्तके समान नैयायिक और कवि, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समान वेदान्ती तथा उनसे पहले लक्ष्मणसेनकी सभाके आभूषण श्रीजयदेवजीके समान सर्वश्रेष्ठ महाकवि आविर्भूत हो गये थे। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने इसी समयके नवद्वीपका चित्र खीचते हुए इस प्रकार लिखा है,—

त्रिविध-वयसे एकजाति लक्ष-लक्ष।
सरस्वती-प्रसादे सबेइ महादक्ष ।।
सबे महा-अध्यापक करि' गर्व धरे।
बालकेओ भट्टाचार्य-सने कक्षा करे।।
नाना-देश हैते लोक नवद्वीपे याय।
नवद्वीपे पड़िले से 'विद्यारस' पाय ।।
अतएव पड़ुयार नाहि समुच्चय ।
लक्ष-कोटि अध्यापक,—नाहिक निश्चय ।।
शास्त्र पड़ाइया सबे एइ कर्म करे ।
श्रोतार सहित यम-पाशे डूबि' मरे ।।

—चै० भा० आ० २।५८-६१, ६८

[प्रत्येक जातिके लाखो बालक-युवा-वृद्ध सरस्वतीकी कृपासे सभी महान् दक्ष (विद्वान्) है, सभी अपनेको महा अध्यापक मानकर गर्व करते है। बालक भी बडे बडे भट्टाचार्योंसे टक्कर लेते है। नाना देशोसे लोग नवद्वीपमें आते है और नवद्वीपमे पढकर विद्याका रस प्राप्त करते है। अतएव विद्यार्थियोका पार नही है, अगणित अध्यापक है, उनकी सख्या का भी निश्चय नही है। शास्त्र पढाकर सब यह कर्म करते है और श्रोताओको साथ लेकर यमके फन्देमें डूब मरते है ।]

श्रीचैतन्यके समसामयिक लेखक श्रीकविकर्णपूरने भी उस समयके सामाजिक इतिहासका इस प्रकार वर्णन किया है,—

अभ्यासाद्य उपाधि-जात्यनुमिति-व्याप्त्यादि-शब्दावले-
र्जन्मारभ्य सुदूर-दूरभगवद्वार्त्ताप्रसङ्गा अमी ।
ये यत्राधिक-कल्पनाकुशलिनस्ते तत्र विद्वत्तमाः
स्वीयं कल्पनमेव शास्त्रमिति ये जानन्त्यहो तार्किकाः ।।

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक २रा अ० ४थी सख्या

[तार्किक लोग अभ्यासवश जन्मकालसे ही केवल 'जाति', 'अनुमिति', 'उपाधि', 'व्याप्ति' प्रभति शब्दोको अलापते रहते है। भगवत्कथा-

प्रसग तो उनसे बहुत दूर भाग गया है। जो जितना ही अधिक कल्पना-निपुण है, वह उतना ही श्रेष्ठ पण्डित समझा जाता है। ये लोग अपनी-अपनी कल्पनाको ही शास्त्र मानते है।]

उस समयके साहित्य-भण्डारका द्वार खोलनेपर योगीपाल-भोगीपाल-महीपालके गीत, मनसादेवीके गान, शीतलामगल, मगलचण्डी-विषहरीकी पाञ्चाली, शिवके छडे, डाकपुरुष और खनाके वचन आदि ग्राम्य और लौकिक साहित्य-सम्भार ही अधिकतर दृष्टिपथमे आयगा। रामायण और महाभारतके साहित्यको भी नानाप्रकारकी कल्पना, तत्वविरोध तथा रसाभास दोषकी तूलिका सयोगसे मूल रामायण और महाभारतके वर्णनसे पृथक् करके लौकिक साहित्यके समान ही आमोद-प्रमोदके लिये उपयोगी बना लिया गया था। जिस समय सुसाहित्यका इस प्रकारका दुर्भिक्ष पडा हुआ था, उस समय नव-वसन्तके प्रफुल्ल प्रभातके पूर्व कोयलकी अस्पष्ट काकलीके समान मधुर कोमलकान्त पदावलीकी झकारमें श्रीजयदेव, श्रीगुणराजखा प्रभृति अतिमर्त्य साहित्यिक लोग श्रीगौरचन्द्रका स्वागतगान करनेके लिये बगदेशके साहित्य-गमचपर अवतीर्ण हुए थे। कुलीनग्रामके निवासी श्रीमालाधर बसुने १४७३-७४ ई० में अर्थात् श्रीचैतन्यके आविर्भावसे प्राय तेरह वर्ष पूर्व श्रीमद्भागवतके दशम और एकादश स्कन्धका बगला पद्यानुवाद 'श्री-कृष्णविजय' नामक ग्रन्थ प्रारम्भकर, १४८०-८१ ई० में अर्थात् श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावसे प्राय ६ वर्ष पूर्व समाप्त किया था।* तथा वे गौडाधिपतिके द्वारा 'गुणराज खा'की उपाधिसे विभूषित किये

---

* तेरश' पचानइ शके ग्रन्थ आरम्भण।
चतुर्दश दुइ शके हैल समापन।।
—श्री कृ० वि० १००वा गीत, २२१ पद्य (गौ० गौ० ग्र० स०)

[तेरह सौ पचानवे शकमें ग्रन्थका आरम्भ हुआ और चौदह सौ दो शकमें समाप्त हुआ।]

गये थे।* प्रसिद्ध गौडेश्वर हुसेनशाहके गौडाधिपति होनेके पूर्व ही 'श्रीकृष्णविजय' ग्रन्थकी रचना समाप्त हो गयी थी। अतएव उक्त ग्रन्थकी भणितामें व्यवहृत गौडेश्वर द्वारा प्रदत्त यह 'गुणराज खा'की उपाधि किसी अन्य पूर्ववर्ती गौडेश्वरके द्वारा दी हुई होगी। कोई-कोई कहते हैं कि उस समय गौडके सिहासनपर शम्सुद्दीन यूसुफशाह (१४७४-८२) विराजित थे। उन्होने श्रीमालाधर वसुको गुणराज खाकी उपाधि प्रदान की थी।† और किसीके मतसे वे गौडेश्वर सुलतान रुकनुद्दीन बरबक्शाह हैं (१४५६-१४७४)‡

श्रीचैतन्यदेव जब गौडसे रामकेलि गये थे, तब उनके ऐश्वर्य-प्रभावसे मुग्ध होकर हुसेनशाहने उन्हें साक्षात् भगवान्‌के रूपमें स्वीकार किया था।

चौथा परिच्छेद

सामाजिक अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व तथा उनके समसामयिक युगमें समाजके मेरुदण्ड वर्णाश्रमकी अवस्थाको नाना प्रकारसे लकवा मार गया था। श्रीकविकर्णपूर, ठाकुर श्रीवृन्दावनदास और श्रीकविराज

---

* गुण नाहि, अधम मुञि, नाहि कोन ज्ञान।
गौडेश्वर दिला नाम—'गुणराज खान'॥
—श्रीकृ० वि० १०० वा गीत, २२२ पद्य।

[मुझमें कोई गुण नही, मै अधम हूँ, कोई ज्ञान नही, पर गौडेश्वरने गुणराजखान नाम रख दिया।]

† डॉ० मुहम्मद शहीदुल्लाह, ‡ डॉ० सुकुमार सेन प्रणीत 'बगला-साहित्यका इतिहास', २य स०, पृ० १०७।

गोस्वामीचरणने उस समयका जो सामाजिक चित्र अकित किया है, उससे ज्ञात होता है कि समाजके भीतर उस समय कलियुगका 'भविष्य आचार' प्रविष्ट हो गया था। समाजके ब्राह्मण लोग सूत्रमात्र चिह्न धारण करके केवल दान लेनेके कार्यमें व्यस्त थे, क्षत्रिय लोगोने प्रजाकी रक्षामें असमर्थ होकर केवल 'राजा' की उपाधिमात्रको सबल बना रखा था, वैश्यलोग बौद्ध या नास्तिक हो गये थे और शूद्रलोग ब्रह्मवृत्तिके विरुद्ध खडे हो गये थे।

चारो वर्णोके समान चारो आश्रमोकी अवस्था भी शोचनीय हो गयी थी। विवाहमें असमर्थ होकर ही लोग अपने 'ब्रह्मचारी' होनेका अभिमान करते थे, गृहस्थ लोग दूसरे आश्रमियोके प्रति यथोचित कर्त्तव्यपालनसे विमुख होकर नानाप्रकारके अधर्मोसे युक्त हो स्त्री-पुत्रादिके भरण-पोषणमें व्यस्त थे। 'वानप्रस्थ' शब्द केवल नाममात्र के लिए ही रह गया था, 'पञ्चाशोर्द्ध्व वन व्रजेत्' अर्थात् पचास वर्षके बाद वनगमन करे, यह बात केवल पोथीमें पडी रह गयी थी, सन्यासीका अभिमान करके कुछ लोग सन्यासके पवित्र वेषका अपव्यवहार करते थे, उसे जीविकोपार्जनका साधन बना डाला था, केवल आपसमें विद्या-कुलका अहकार, विषयसुखोके भोगोमें प्रतिद्वन्द्विता, मद्य-मासके द्वारा अवैदिक देवताओकी पूजादिका आडम्बर दिखानेमें लोग आत्म-गौरवका अनुभव करते थे। हरिनदी ग्रामके 'दुर्जन ब्राह्मण',* 'पाषण्डि-प्रधान' (सबसे बढकर पाखण्डी लोग) गोपाल चापाल†, 'आरिन्दा ब्राह्मण' गोपाल चक्रवर्ती‡, ब्रह्मबन्धु रामचन्द्र खान§ प्रमुख तत्कालीन कतिपय समाज नेताओका चरित्र चित्रण करते हुए ठाकुर श्रीवृन्दावन और श्रीकविराज गोस्वामिचरणने तत्कालीन बहिर्मुख वर्णाश्रम और समाजकी अवस्थापर प्रकाश डाला है। श्रीश्रीवास पण्डित नवद्वीपमें अपने घर रहते

---

* चै० भा० आ० १६।२६७ ; † चै० च० आ० १७।३७ ;

‡ पत्र और राज्यकर लानेवाले कासीद (प्यादे)को 'आरिन्दा'-कहते हैं, चै० च० अ० ३।१८८, § चै० च० अ० ३।१०१।

हुए उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तन करते थे, यह बात उस समयके तथाकथित हिन्दूसमाज तकके लोगोको असहनीय हो गयी थी,—

'केन वा कृष्णेर नृत्य, केन वा कीर्तन?
कारे वा वैष्णव बलि, कि वा संकीर्तन?
किछु नाहि जाने लोक धन-पुत्र-आशे।
सकल पाषण्डी मेलि' वैष्णवेरे हासे।।
चारि भाई श्रीवास मिलिया निज-घरे।
निशा हैले हरिनाम गाय उच्चैःस्वरे।।
शुनिया पाषण्डी बले,—"हइल प्रमाद।
ए ब्राह्मण करिबेक ग्रामेर उत्साद।।
महा-तीव्र नरपति यवन इहार।
ए आख्यान शुनिले प्रमाद नदीयार।।"
केह बले,—"ए ब्राह्मणे एइ ग्राम हैते।
घर भांगि' घुचाइया फेलाइमू स्रोते।।
ए बामुने घुचाइले ग्रामेर मङ्गल।
अन्यथा यवने ग्राम करिबे कवल।।"

—चै० भा० आ० २।१०९-११५।

[श्रीकृष्णका क्यो तो नृत्य होता है, क्यो कीर्तन ही होता है? वैष्णव किसे कहते है और सकीर्तन ही किसे कहते है? लोग धन-पुत्रकी आशामें रत हुए कुछ भी नही जानते। सब पाखण्डी मिलकर वैष्णवोकी हँसी उडाते है। श्रीवास चार भाई मिलकर रात होनेके बाद अपने घरमें उच्चस्वरसे हरिनामका गान करते है। उसे सुनकर पाखडी कहते है 'प्रमाद हो गया, यह ब्राह्मण इस ग्रामको उजाड कर रहेगा। महान् तीव्र मुसलमान राजा जब इस बातको सुनेगा तो नदीयाके लिये आफत आ जायगी।' कोई कहता, 'इस ब्राह्मणको इसका घर उजाडकर ग्रामसे निकालकर जलके प्रवाहमें बहा दूँगा। इस ब्राह्मणके न रहनेसे ही गावका मगल है, नही तो, यवन इस गावको खा जायगा।']

उस समयका हिन्दूसमाज उच्चकीर्तनका विरोधी था। हरिकीर्तन करनेवाले पारमार्थिक वैष्णवलोग सदा कर्मानुष्ठानमें लगे रहनेवाले स्मार्तसमाजके उपहास और निर्यातनके पात्र हो गये थे—

सर्वदिके विष्णुभक्ति-शून्य सर्वजन।
उद्देशो ना जाने केह केमन कीर्तन॥
कोथाओ नाहिक विष्णुभक्तिर प्रकाश।
वैष्णवेरे सबेइ करये परिहास॥
आपना-आपनि सब साधुगण मेलि'।
गायेन श्रीकृष्णनाम दिया करतालि॥
ताहातेओ दुष्टगण महा-क्रोध करे'।
पाषण्डी पाषण्डी मेलि' बल्गियाइ मरे॥

—चै० भा० आ० १६।२५२–२५५

[सभी ओर विष्णुभक्तिसे शून्य सब लोग थे। कोई उद्देश्य नही जानते कि कैसा कीर्तन होता है। कही भी विष्णुभक्तिका प्रकाश नही था। सभी लोग वैष्णवोका परिहास करते थे। साधु लोग अपने-अपने ही मिलकर ताली बजा-बजाकर श्रीकृष्णनामका गान करते थे। इसीमें दुष्ट लोग अत्यन्त क्रोध करते और वे पाखडी मिलकर बकवाद करते मरते।]

समाज, उस समय उच्चस्वरसे हरिकीर्तन करनेवाले विश्वबन्धुओको विश्ववैरी समझकर उनके प्रति नाना प्रकारके कटु वाक्योका प्रयोग करता था। कोई-कोई सामाजिक पुरुष भक्तोके इस उच्चस्वरसे कीर्तनके लिये यहाँतक आशका करते कि इसके फलस्वरूप देशमें दुर्भिक्षका प्रकोप हो जायगा!—

"ए बामुनगुला राज्य करिबेक नाश!
इहा सबा' हैते ह'बे दुर्भिक्ष-प्रकाश॥
ए बामुनगुला सब मागिया खाइते।
भावुक-कीर्तन करि' नाना छल पाते'॥

गोसाञिर शयन बरिषा चारि मास।
इहाते कि युयाय डाकिते बड़ डाक ?
निद्रा-भंग हइले क्रुद्ध हइबे गोसाञि ।
दुर्भिक्ष करिबे देशे,–इथ द्विधा नाइ ।।
केह बले,–"यदि धान्य किछु मूल्य चड़े ।
तबे ए-गुलारे धरि' किलाइमु घाड़े ।।"

—चै० भा० आ० १६।२५६–२६०

[ये ब्राह्मण राज्यका नाश कर देंगे। इन सबके कारण दुर्भिक्ष प्रकट हो जायगा। ये ब्राह्मण माँगकर खानेके लिये भावुकतापूर्ण कीर्तन करके भाँतिभाँतिका छल रचते हैं। चार महीने वर्षाभर भगवान् सोते हैं। इस समय उन्हें जोरसे चिल्लाकर पुकारना उचित है? नीद टूटनेसे भगवान् क्रुद्ध हो जायगे और देशमें दुर्भिक्ष कर देंगे। इसमें कुछ भी द्विधा नही है। कोई कहता है यदि जरा-सा भी धानका भाव बढ जायगा तो मै इन लोगोको पकडकर इनकी गर्दनपर मुक्का मारूँगा।]

बहिर्मुख समाजके लिये हरिकीर्तन सब समय करनेकी चीज नही गिनी जाती थी। किसी विशेष अवसरपर व्यावहारिक गतानुगतिक प्रथाके अनुसार कही कही अन्यान्य काम्यकर्मोके अनुष्ठानके समान ही प्राणहीन कीर्तन किया जाता था,—

केह बले,—"एकादशी-निशि-जागरणे ।
करिबे गोविन्द-नाम करि' उच्चारणे ।।
प्रतिदिन उच्चारण करिया कि काज ?"
एइरूपे बले यत मध्यस्थ-समाज ।।

—चै० भा० आ० १६।२६१–६२

[कोई कहता एकादशीकी रात्रिको जागरणके समय गोविन्द नामका उच्चारण किया जाना चाहिये। प्रतिदिन उच्चारण करनेसे क्या काम है? मध्यस्थ समाजके लोग इस प्रकार कहते है।]

हिन्दूसमाजके लोग विशुद्ध भक्तके उच्चस्वरके कीर्तन और नृत्यको अशास्त्रीय बतलानेमें भी नही हिचकते थे। ज्ञानयोगका त्याग करके उद्धतके(?) समान हरिकीर्तन करनेमें होनेवाले नृत्य और अकृत्रिम भावोदयको वे लोग ढोग समझते थे,—

शुनिलेइ कीर्तन, करये परिहास।
केह बले,—"सब पेट पुषिवार आश।।"
केह बले,—"ज्ञान-योग एड़िया विचार।
उद्धतेर प्राय नृत्य,—ए कोन् व्यभार ?"
केह बले,—"कत वा पड़िलूँ भागवत।
नाचिब, कॉंदिब,—हेन ना देखिलुँ पथ।।
श्रीवास-पण्डित चारि भाइर लागिया।
निद्रा नाहि याइ, भाइ! भोजन करिया।।
धीरे-धीरे 'कृष्ण' बलिले कि पुण्य नहे ?
नाचिले, गाहिले, डाक छाड़िले कि हये ?"

—चै० भा० आ० ११।५३–५७

[कीर्तन सुनते ही वे दिल्लगी करते है। कोई कहता है,—'उदरपूर्तिकी आशासे यह सब करते है।' कोई कहता है,—'ज्ञानयोगका विचार छोड-कर इस प्रकार उद्दण्ड-सा नाचना भी कोई व्यवहार है? कोई कहता,—'कितनी भागवत पढ डाली, परन्तु नाचेंगे, रोयेंगे, यह मार्ग तो कही नही देखा। श्रीवास पण्डित सहित चार भाइयोंके चलते तो भाई, भोजन करके नीद भी नही ले पाता हूँ। क्या धीरे-धीरे "कृष्ण"-का नाम लेनेसे पुण्य नही होता है? नाचने, गाने और चिल्लानेसे क्या होता है?]

नदीयाके लोग कई बार उच्चस्वरसे सकीर्तन करनेके विरुद्ध प्रति-वाद करते हुए कहते थे,—

"आमि—'ब्रह्म', आमातेइ बैसे निरंजन।
दास-प्रभु-भेद वा करये कि कारण ?"

ससारी-सकल बले,—"मागिया खाइते।
डाकिया बलये 'हरि' लोक जानाइते।।"
"ए-गुलार घर-द्वार फेलाइ भाँगिया।"
एइ युक्ति करे सब-नदीया मिलिया।।

—चै० भा० आ० १६।११–१३

[मै 'ब्रह्म' हूँ—निरञ्जनका निवास मुझमे ही है। यह सेवक-स्वामीका भेद किस कारणसे करते है। ससारी लोग कहते है—माँग-कर खानेके लिये, लोगोको जनानेके लिये चिल्लाकर 'हरि' नाम पुकारते है। इन लोगोके घर-द्वार तोडकर फेंक देने चाहिये। नदीयाके सब लोग मिलकर इस प्रकार युक्ति सोचा करते है।]

समाज उस समय धन-पुत्र-विद्यारसमे और नाना प्रकारके जड विलासमे उन्मत्त था। पारमार्थिक वैष्णवको देखते ही समाजके लोग नाना प्रकारसे उपहासात्मक नारे लगाते थे, तथा अधिकाश लोग समझते थे कि,—'दुनियाके लोगोके समान यति, तपस्वी भी दो दिनके बाद मर जायँगे, अतएव विषयभोग करके जाना ही बुद्धिमानी है ! ससारमें जो पालकी और घोडागाडीपर चढ सकते है, जिनके आगे पीछे दस-बीस आदमी चलते है, वे ही महान् पुण्यवान् और धार्मिक है ! जिस धर्मके आचरणसे अपना दारिद्र्य-दु ख और देशका दुर्भिक्ष दूर नही होता, देश और समाजके लिये सुख-सुविधा नही होती, उसकी धर्ममें गणना ही नही होती। उच्चकीर्तनके द्वारा भगवान्‌की शान्ति भग होती है, अतएव वे क्रुद्ध होकर ससारमें दुर्भिक्ष और नानाप्रकारकी असुविधाएँ भेज देते है।' श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्य भागवतमें इन बातोको इस रूपमे कहा है —

"जगत् प्रमत्त—धन-पुत्र-विद्या-रसे।
वैष्णव देखिले मात्र सबे उपहासे'।।
आर्या-तर्जा पढे सबे वैष्णव देखिया।
"यति, सती, तपस्वीओ याइबे मरिया।।

ता'रे बलि—'सुकृति', ये दोला-घोड़ा चड़े।
दश-बिश जन या'र आगे-पाछे रड़े।।
एत ये, गोसाञि, भावे करह क्रन्दन।
तबु त' दारिद्र्य-दुःख ना हय खण्डन।।
घन-घन 'हरि हरि' बलि' छाड डाक।
क्रुद्ध हय गोसाञि, सुनिले बड़ डाक।।"

—चै० भा० आ० ७।१७—२१

श्रीचैतन्यके आविर्भावके पश्चात् भी नवद्वीपके तथाकथित हिन्दू, अहिन्दू काजीके पास निमाइके उच्च-सकीर्तनके विरुद्ध अभियोग करनेके लिये गये थे। "निमाइ गया से लौटकर नये ढगसे कीर्तनका प्रचार करके हिन्दूधर्मको नष्ट कर रहे हैं, नागरिकोको पागल बना रहे हैं। हरिकीर्तनके द्वारा रातको नीदमें बाधा डाल रहे हे और नाना प्रकारसे शान्ति भग कर रहे है"—इत्यादि बातें काजीसे कहकर निमाइको नवद्वीपसे बहिष्कृत करनेकी युक्ति उन्होने उपस्थित की थी,—

* * *

हेनकाले पाषण्डी हिन्दू पाँच-सात आइल।।
आसि' कहे—"हिन्दुर धर्म भांगिल निमाञि।
ये-कीर्तन प्रवर्ताइल, कभु शुनि नाइ।।
मंगलचण्डी, विषहरि' करि' जागरण।
ता'ते नृत्य, गीत, वाद्य—योग्य आचरण।।
पूर्वे भाल छिल एइ निमाइ पण्डित।
गया हैते आसिया चालाय विपरीत।।
उच्च करि' गाय गीत, देय करतालि।
मृदङ्ग-करताल-शब्दे कर्णे लागे तालि।।
ना जानि, कि खाञा मत्त हञा नाचे, गाय।
हासे, कान्दे, पड़े, उठे, गड़ागड़ि याय।।
नगरिया पागल कैल सदा संकीर्तन।

रात्रे निद्रा नाहि याइ, करि जागरण ।।
'निमाञि' नाम छाडि' एवे बोलाय 'गौरहरि'।
हिन्दुर धर्म नष्ट कैल पाषण्डी संचारि' ।।
कृष्णेर कीर्तन करे' नीच बाड़-बाड़।
एइ पापे नवद्वीप हइबे उजाड़ ।।
हिन्दुशास्त्रे 'ईश्वर'-नाम—महामन्त्र जानि।
सर्वलोक शुनिले मन्त्रेर वीर्य हय हानि ।।
ग्रामेर ठाकुर तुमि, सब तोमार जन।
निमाइ बोलाइया ता'रे करह वर्जन ।।"

—चै० च० आ० १७।२०३–२१३

[उस समय पाँच-सात हिन्दू पाखडियोने काजीके पास आकर कहा,—"निमाइने हिन्दूधर्म तोड दिया। ऐसे कीर्तनका प्रचार किया, जो कभी नही सुना था। मगलचण्डी, विषहरि आदिकी पूजाके उपलक्ष्यमें रात्रि-जागरण होते है, उनमें नाचना, गाना, बजाना—ये सब उचित आचरण है। पहले यह निमाइ पडित अच्छा था। गयासे लौटनेके बाद विपरीत बाते चलाने लगा। चिल्लाकर गीत गाता है, हाथोसे ताली बजाता है, मृदग और करतालकी ध्वनिसे कानोमें ताले लग जाते है। पता नही क्या खाता है, मत्त होकर नाचता, गाता, हँसता, रोता, गिरता, उठता और लोटपोट होता है। हर समयके सकीर्तनने नागरिकोको पागल कर दिया है। रात्रिको नीद नही आती। जागरण करना पडता है। 'निमाइ' नामको छोडकर अब अपनेको 'गौरहरि' कहलाने लगा है। पाखड फैलाकर यह हिन्दू-धर्मका नाश कर रहा है। नीच जातिके लोगोको लेकर कृष्ण कीर्त्तन करनेसे उनका (नीच जातिका) घमड बढता जा रहा है। इस पापसे नवद्वीप उजड जायगा। हिन्दूशास्त्रमें 'ईश्वर'-नाम महामन्त्र माना गया है, सब लोगोके सुननेसे मन्त्रकी शक्तिको नुकसान पहुचता है। आप गावके मालिक है। हम सब आपके सेवक है। निमाइको बुलाकर उसे यहासे निकलवा दीजिये।]

पाँचवाँ परिच्छेद्

धार्मिक जगत्की अवस्था

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले पारमार्थिक धर्म-जगत्की अवस्था नानाप्रकारके काल्पनिक धर्म तथा कपटजालके आवरणोसे आवृत हो चुकी थी। व्यवहारने ही परमार्थके स्थानपर अधिकार जमा लिया था। उस समय भारतके अन्यान्य स्थानोमे जो कुछ पारमार्थिक धर्म-चर्चा होती थी, वह भी प्रबल असत्-धर्मके मतवादोके साथ सघर्ष करके क्षत-विक्षत होकर अपनी शुद्धताकी रक्षामे असमर्थ और क्षीणजीवी हो चुकी थी। दक्षिण भारतमे श्रीयामुनाचार्य और श्रीरामानुजाचार्यने जिस धर्मका प्रचार किया था, बादमे वह धर्म जब रामानन्दी शाखामे प्रवाहित होने लगा, तब उस धर्ममें अज्ञातरूपसे 'मायावाद' प्रवेश कर गया। यहाॅ तक कि आगे चलकर श्रीरामानुज-सम्प्रदायके आचार-विचारमें भी स्मार्त-आचारोका न्यूनाधिक आदर तथा पारमार्थिक लोगोके प्रति जातिबुद्धि आदिका विचार दिखायी देने लगा। श्रीरामानुजके पूर्ववर्ती आचार्य 'शुद्धाद्वैतवाद'के प्रचारक देवतनु श्रीविष्णुस्वामीने जिस धर्मतत्वका प्रचार किया था, वह भी लिगायत्-सम्प्रदायके साथ सघर्षके फल-स्वरूप कुछ-कुछ विद्धाद्वैतवादके द्वारा आक्रान्त हो गया। आचार्य श्री-विष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैतवादके प्रचारका विजयस्तम्भस्वरूप 'सर्वज्ञ-सूक्त' नामक वेदान्तभाष्य भी कालक्रमसे केवलाद्वैतवादके भाष्यग्रन्थके रूपमें पर्यवसित हो गया था। यहाॅ तक कि शुद्ध भक्तिके एकमात्र सरक्षक श्रीश्रीधरस्वामिपादको 'मायावादी' कहकर प्रचार करनेकी भी यथेष्ट चेष्टा की गयी। श्रीमन्मध्वाचार्यने जिस 'द्वैतवाद'का प्रचार किया था, उसने भी 'तत्ववादी'-शाखामें कुछ और ही रूप धारण कर लिया।

कवि श्रीकर्णपूरने अपने 'श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय' नाटकमे श्रीचैतन्य-देवके आविर्भावके पूर्वकी धार्मिक जगत्की अवस्थाका वर्णन विस्तार-

पूर्वक करके उस समय पारमार्थिक धर्मके स्थानमें किस प्रकार ढोंग और कपटवैराग्यने धर्मकी नाटकीय पोशाक पहन रक्खी थी, उसे प्रदर्शित किया है,—

जिह्वाग्रेण ललाट-चन्द्रज-सुधास्यन्दाध्वरोधे मह-
द्दाक्ष्यं व्यञ्जयतो निमील्य नयने बद्ध्वासन ध्यायतः।
अस्योपात्तनदीतटस्य किमय भङ्ग समाधेरभूत्
पानीयाहरण-प्रवृत्ततरुणी-शङ्खस्वनाकर्णनैः ।।
तदिदमुदरभरणाय केवल नाट्यमेतस्य ।

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, २रा अक, ६ठी सख्या ।

[यह पुरुष नदी-किनारे योगासनपर बैठे आँखें मूँदकर ध्यान कर रहे थे और आज्ञाचक्रमें स्थित चन्द्रजात सुधाक्षरणके मार्गको जिह्वाग्रके द्वारा रोकनेमें अपनी महान् दक्षता दिखला रहे थे, अकस्मात् जल भरनेके लिये आयी हुई किसी तरुणीके शखवलयकी झनकार सुनकर क्या उनकी समाधि भग हो गयी !

अतएव इस पुरुषका इस प्रकारकी योगक्रियाका प्रदर्शन केवल उदरपोषणके लिये अभिनयमात्र है ।]

उन दिनो पुण्यकामी लोगोकी तीर्थयात्राके प्रति आदरदृष्टि थी। परन्तु वह बहुधा श्रीहरिकथामें रुचि उत्पन्न करने और साधुसग-प्राप्ति के लिये न होकर देशभ्रमणरूपी काम-कौतूहलको चरितार्थ करनेके लिये ही होती थी। किसने कितनी बार कन्याकुमारीसे हिमालयतक भ्रमण किया है, कौन कितनी बार बद्रीनारायण गया है, किसने कितने तीर्थोमें स्नान-दान किया है, इन्ही बातोको लेकर पुण्यकामी लोग व्यर्थ गर्व करते थे।

गंगा-द्वार-गया-प्रयाग-मथुरा-वाराणसी-पुष्कर-
श्रीरंगोत्तरकोशला-बदरिका-सेतु-प्रभासादिकाम् ।
अब्देनैव परिक्रमैस्त्रिचतुरैस्तीर्थावली पर्यट-
न्नब्दानां कति वा शतानि गमितान्यस्मादृशानेतु कः ।।

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, २रा अक, ७वी सख्या

[हमने गगा, हरिद्वार, गया, प्रयाग, मथुरा, काशी, पुष्कर, श्रीरगम्, अयोध्या, बदरिका, सेतुबन्ध और प्रभासादि तीर्थोमे प्रतिवर्ष तीन-तीन चार-चार पर्यटन करते हुए अबतक कितनी ही शताब्दिया बिता डाली, हमारे जैसे महापुरुषको कौन पहिचान सकता है ?]

ईसाकी चौदहवी शताब्दीमे श्रीरामानन्दने अपने धर्मका प्रचार किया।* उन्होने श्रीश्रीसीतारामकी उपासनाका प्रचार तथा 'जमायत्' अथवा 'रामायत्' सम्प्रदायकी सृष्टि की। उनका मत, श्रीरामानुज-सम्प्रदायके मतसे कुछ स्वतन्त्र हो गया था। वैष्णव-सिद्धान्तके अनुसार वे भगवत्प्रसाद और भगवान्के सेवकोमें छूआछूत या जात-पाँतका विचार तो नही करते थे, परन्तु उनके प्रचारमें अन्तमे भगवान्में लीन हो जानेका न्यूनाधिक विचार ही देखनेमे आता है।† वस्तुत शुद्ध वैष्णवधर्ममें भगवान्में लीन होने अर्थात् उनकी नित्य सेवासे वचित होनेकी कोई बात विन्दुमात्र भी स्थान नही पाती।

श्रीरामानन्दके बारह प्रधान शिष्योमें कबीर भी एक है, जो किसी मुसलमान जुलाहेके पुत्र थे। उन्होने भी अन्तमें निर्विशेष मतकी ही स्थापना की।‡ तत्कालीन राजनैतिक अवस्थाको देखकर उन्होने हिन्दू

---

* नाभादासकृत हिन्दी 'भक्तमाल'के टीकाकार 'वार्तिक प्रकाश'के रचयिता कहते है कि, श्रीरामानन्दका आविर्भाव १३०० ई० में माघ कृष्ण-सप्तमीको प्रयागमें हुआ था। उनके मतसे श्रीरामानन्द १४८ वर्ष जीवित रहे। फर्कुहर साहबके मतसे रामानन्दने १४२५ या १४३० ई० के लगभग अपना धर्म प्रचार किया।

† बहुतेरे श्रीरामानन्दको विशिष्टाद्वैतवादी न बतलाकर प्रच्छन्न अद्वैत-वादी कहनेके ही पक्षपाती है। फर्कुहर साहब प्रभृति पाश्चात्य पण्डितोका भी यही मत है।

‡ आधुनिक रामानन्दीगण दो कबीर बतलाते है। उनके मतमे निर्वि-शेषवादी कबीर कबीरपथके प्रवर्तक है। और पूर्ववर्ती मूल कबीर या रामकबीर ही श्रीरामानन्दके शिष्य है।

और मुसलमानोमें सद्भाव स्थापित करनेके लिये 'हिन्दू-मुसलमानका एक ही ईश्वर' है इस मतका प्रचार किया।

कुछ लोग कहते है कि कबीरके मतवादके आधार पर ही नानकने १५ वी शताब्दीमें सिख-सम्प्रदाय स्थापित किया।* उन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनोके धर्म-मतोमें से कुछ-कुछ नैतिक उपदेशोका सग्रह करके दोनोको मिलाकर एक राजनैतिक धर्मकी सृष्टि की थी। उन दिनो भारतके राजनैतिक सघर्ष और विद्वेषके समय नानकके आविर्भावकी आवश्यकता थी। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके कुछ समय पूर्व ही नानकका अभ्युदय हुआ था।

रामानन्द और कबीरने प्रधानत उत्तर भारतमें तथा नानकने पजाबमें अपने धर्ममतका प्रचार किया। जिस समय सनातनधर्मका क्षेत्र भारतवर्ष राजनैतिक समराग्निसे धूमायित हो रहा था, उस समय हिन्दू और मुसलमानकी विद्वेषभावनाको सामयिक भावसे शमन करनेके लौकिक उद्देश्यसे तदनुकूल धर्ममत-वादोका प्रचार हुआ था, यह ठीक है, परन्तु रामानन्द, कबीर अथवा नानकके प्रारम्भमे उदार प्रतीत होने-वाले धर्मके जादू-मन्त्रके प्रभावसे भी हिन्दू-मुसलमानोमे प्रीति-स्थापनकी चेष्टा स्थायी न हो सकी। सिख-सम्प्रदायके पचम गुरु अर्जुनदेवके प्राणदडके बाद अपने प्रच्छन्न राजनैतिक धर्मको उन लोगोने अधिक समय गुप्त रखना पसन्द नही किया। अर्जुनदेवके पुत्र हरगोविन्दने सिख लोगो को नियमानुसार युद्धविद्याकी शिक्षा दी। नवम गुरु तेगबहादुरने अपने धर्मके लिये अपना सिर कटाया। उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिहकी शिक्षासे सिख लोग एक दुर्धर्ष सामरिक जातिके रूपमे परिणत हो गये। १७०८ ई० में सिखोके अन्तिम गुरु गुरुगोविन्दसिह आततायीके हाथ मारे गये।

जिस समय भारतके अन्यान्य स्थान राजनैतिक धूम्रसे आच्छा-दित हो गये थे, उस समय बगदेशमें भी उसका प्रभाव फैला था। उस

---

* 'सिख' शब्दका अर्थ है 'शिष्य'। लाहौरके निकट तालबन्दी ग्राममें (वर्तमानमें 'ननकाना'में) नानकने जन्म ग्रहण किया था।

समयकी धार्मिक अवस्थाका चित्रण ठाकुर श्रीवृन्दावनने अपनी लेखनीसे इस प्रकार किया है,—

धर्म-कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने ।
मगलचण्डीर गीते करे जागरणे ।।
येवा भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र सब ।
ताँहाराओ ना जाने सब ग्रन्थ-अनुभव ।।
शास्त्र पड़ाइया सबे एइ कर्म करे' ।
श्रोतार सहिते यमपाशे डूबि' मरे ।।
ना बाखाने 'युगधर्म' कृष्णेर कीर्तन ।
दोष बिना गुण का'रो ना करे' कथन ।।
येवा सब—विरक्त-तपस्वि-अभिमानी ।
ताँ'-सबार मुखेह नाहिक हरिध्वनि ।।
अतिबड़ सुकृति से स्नानेर समय ।
'गोविन्द', 'पुण्डरीकाक्ष'-नाम उच्चारय ।।
गीता-भागवत ये-ये जनेते पडाय ।
भक्तिर व्याख्यान नाहि ताहार जिह्वाय ।।
बलिलेओ केह नाहि लय कृष्ण-नाम ।
निरवधि विद्याकुल करेन व्याख्यान ।।
सकल ससार मत्त व्यवहार-रसे ।
कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति कारो नाहि वासे ।।
वाशुली पूजये केह नाना उपहारे ।
मद्य-मांस दिया केह यक्ष पूजा करे' ।।
निरवधि नृत्य-गीत-वाद्य-कोलाहल ।
ना शुने कृष्णेर नाम परम-मंगल ।।

—चै० भा० आ० २।६४, ६७-७२,७५,८६-८८

[सब लोग इतना ही धर्मकर्म जानते है कि मगलचडीके गीतमें जागरण कर लेते हैं। जो सब भट्टाचार्य, चक्रवर्ती, मिश्र है, वे भी सब ग्रन्थका मर्म नही समझते। शास्त्र पढाकर सब वही कर्म करते है, जिसमें श्रोताके साथ यमपाशमें फँसकर डूब मरते हैं। 'युगधर्म' कृष्णके कीर्तनका व्याख्यान कोई नही करते। दोष छोडकर किसीका गुणवर्णन कभी करते ही नही। जो लोग विरक्त और तपस्वीपनके अभिमानी हैं, उन सबके मुखसे भी हरिध्वनि नही होती। वे बहुत बडे पुण्यात्मा माने जाते हैं जो स्नानके समय 'गोविन्द' 'पुण्डरीकाक्ष' नाम उच्चारण कर लेते हैं। जो जो, लोगोको गीता भागवत पढाते हैं, उनकी जीभसे भी भक्तिका व्याख्यान नही होता। कहनेपर भी कोई कृष्ण-नाम नही लेते। निरन्तर विद्याकुलका व्याख्यान करते है। समस्त ससार व्यवहाररसमें मत्त है। कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति किसीको नही रुचती। कोई नाना उपहारोके द्वारा वाशुलीकी पूजा करते है, तो कोई मद्य-मासके द्वारा यक्षकी पूजा करते हैं। निरन्तर नृत्य-गीत-वाद्यका कोलाहल होता है, परन्तु परम मगलस्वरूप कृष्णका नाम वे नही सुनते।]

श्रीमन्नित्यानन्दप्रभु और श्रीचैतन्यके पार्षदवृन्दके श्रीमुखसे सुनकर,* श्रीनित्यानन्दके शिष्य श्रीवृन्दावनदास ठाकुर एव श्रीगौर-पार्षद श्रीशिवानन्दसेनके श्रीमुखसे सुनकर और श्रीचैतन्यदेवके साक्षात्रूपमें

---

*अन्तर्यामी नित्यानन्द बलिला कौतुके ।
चैतन्य-चरित्र किछु लिखिते पुस्तके ।।
—चै० भा० आ० १।८०,१७।१४४

[अन्तर्यामी नित्यानन्दने पुस्तकमें कुछ चैतन्यचरित्र लिखनेके लिए कौतुकसे कहा।]

अन्तर्यामिरूपे बलराम भगवान् ।
आज्ञा कैला चैतन्येर गाइते आख्यान ।।
—चै० भा० म० २।३४२

[अन्तर्यामी रूपसे भगवान् बलरामने चैतन्यका आख्यान गानेके लिये आज्ञा दी।]

दर्शन कर तथा उनकी वाणीको सुनकर 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' नाटककी रचना करनेवाले श्रीकविकर्णपूर गोस्वामीने तत्कालीन भारत तथा बगालके इस प्रामाणिक इतिहासका वर्णन निरपेक्ष-भावसे किया है। परन्तु ये सारी निरपेक्ष सच्ची बातें तत्कालीन एक सम्प्रदायविशेषके ऊपर कालिमाका टीका लगाती है, यह सोचकर उनके आधुनिक वशधरगण नाना प्रकारसे अपने कपोल-कल्पित मत और युक्तिके द्वारा असली इतिहासको बदल देना चाहते हैं। वे नि स्वार्थ और मात्सर्यहीन वैष्णव ऐतिहासिकोके निरपेक्ष-मत-वर्णनके प्रति लौकिक श्रद्धाको शिथिल

वेदगुह्य चैतन्य-चरित्र केवा जाने ?
ताइ लिखि, याहा शुनियाछि भक्त-स्थाने ।।
—चै० भा० आ० १।८४

[वेदगुह्य चैतन्यचरित्रको कौन जानता है, भक्तस्थानसे जो सुना है, वही लिखता हूँ ।]

अद्वैतेर श्रीमुखेर ए-सकल कथा ।
इहाते सन्देह किछु ना कर' सर्वथा ।।
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए-सकल कथा ।
सत्य, सत्य, सत्य, इथे नाहिक अन्यथा ।।
—चै० भा० म० १०।१६५, अ० ९।८१

[ये सब बातें अद्वैतके श्रीमुखकी है, इनमें कुछ भी सन्देह सर्वथा मत करो। ये सब अद्वैतके श्रीमुखकी बातें है—सत्य है, सत्य है, सत्य है, इसमें अन्यथा नही है ।]

नित्यानन्दप्रभु-मुखे वैष्णवेर तथ्य ।
किछु-किछु शुनिलाम सबार माहात्म्य ।।
—चै० भा० म० २०।१५६

[नित्यानन्द-प्रभुके मुखसे वैष्णवका तथ्य तथा सबका माहात्म्य कुछ-कुछ सुना ।]

येरूप कृष्णेर प्रियपात्र विद्यानिधि ।
गदाधर-श्रीमुखेर कथा किछु लिखि ।।
—चै० भा० अ० १०।८४

[विद्यानिधि कृष्णके कितने प्रियपात्र है, इस सम्बन्धमें गदाधरके श्रीमुखसे सुनी हुई कुछ बातें लिखता हूँ ।]

करनेके लिये नानाप्रकारकी चेष्टा करते है। वे कहते है कि,—"बगालियो की कृष्णभक्ति स्वाभाविक है। बगाली ब्राह्मण पण्डितोमें विष्णुका नाम उच्चारण करके आचमन करना, विष्णुपूजा करना, विष्णुका ध्यान, शालग्राम और तुलसीकी सेवा, गीता-भागवतकी व्याख्या आदि सदाचार सदासे ही प्रचलित हैं। इनका कभी भी व्याघात नही हुआ।"

पचदेवोपासक अथवा कर्मजड स्मार्त्तगणके इस गतानुगतिक सदाचार, विष्णुपूजा, विष्णुध्यान आदिको शुद्धभक्ति-सिद्धान्तके विषयमे न जाननेवाली साधारण जनता 'भक्ति' मान सकती है, परन्तु सुप्राचीन अलवारगण, श्रीरामानुजाचार्य आदि आचार्यगण, स्वय भगवान् श्री-चैतन्यदेव, श्रीसनातन, श्रीरूप आदि गोस्वामीगण—इनमें किसीने इस प्रकारके आचारको 'शुद्धभक्ति' नही बतलाया। केवल जो "अनिर्वच-नीय 'प्रेमभक्ति' सदासे दुर्लभ ही है,"—ऐसा विचार करके ही पचोपा-सक कर्मजड अथवा मायावादियोकी भक्तिके अभिनयको भागवत लोगोने 'छल भक्ति', 'विद्धा भक्ति', 'प्रच्छन्न नास्तिकता', 'कपटता' आदि बतला कर उसका निरसन किया हो, ऐसी बात नही है, बल्कि उनकी इस प्रकारकी भक्ति (?) में चरम प्राप्य अथवा उपेयरूपमे निर्विशेष-मुक्ति लक्षित होनेके कारण उनकी भक्तिके इस अभिनयको उन्होने 'अभक्ति' ही बतलाया है।

ता'र मध्ये मोक्षवांछा कैतव-प्रधान।
याहा हैते कृष्णभक्ति हय अन्तर्धान।

—चै० च० आ० १।९२

[उनमें मोक्षकी इच्छा छलप्रधान है, जिससे कृष्ण-भक्ति अन्तर्धान हो जाती है।]

कर्मजड (कर्मको ही सब कुछ समझनेवाले), कर्मासक्त लोगोके सन्ध्यावन्दनादि, शालग्राम-पूजा, तुलसीमे जल छोडना, गीता-भागवत-पाठ, 'गोविन्द'-'पुण्डरीकाक्ष'-नामोच्चारण, 'तारक-ब्रह्म'-नामका जप, नवधा-भक्ति-याजनका अभिनय, परिक्रमा, स्तुतिपाठ, विष्णुतीर्थ-भ्रमणादि

सभी कार्य मुक्तिकी इच्छा, अथवा निर्विशेष गतिकी प्राप्तिकी इच्छाके आधारपर, अथवा दूसरे देवताको स्वतन्त्र ईश्वर मानकर अनुष्ठित होते हैं। गौडीय-वैष्णवाचार्य कहते हैं,—

भक्तिर स्वरूप, आर 'विषय', 'आश्रय'।
मायावादी अनित्य बलिया सब कय ।।
धिक् ता'र कृष्ण-सेवा श्रवण-कीर्त्तन।
कृष्ण-अगे वज्र हाने ताहार स्तवन ।।

[भक्तिके स्वरूप और "विषय" तथा "आश्रय"को मायावादी लोग सब अनित्य बतलाते हैं। उनकी कृष्णसेवा तथा श्रवण-कीर्तनको धिक्कार है। उनके स्तवनसे तो श्रीकृष्णके अगपर वज्रप्रहार होता है।]

श्रीमद्भागवतमें कहा है,—

मौन-व्रत-श्रुत-तपोऽध्ययन स्वधर्म-
व्याख्या-रहोजप-समाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः पर पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्त्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ।।

—भा० ७।९।४६

[हे महापुरुष, मुक्तिके साधन मौन, व्रत, शास्त्रज्ञान, तपस्या, वेदपाठ, स्वधर्मपालन, शास्त्रव्याख्या, निर्जननिवास, जप और समाधि —ये दस प्रकारके उपाय अजितेन्द्रियगणकी जीवनयात्राके सहायक हो सकते है, परन्तु दम्भका फल अनिश्चित होनेके कारण वे दाम्भिकोकी जीवनयात्राके भी सहायक होगे या नही, इसमें सन्देह है।]

'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु'ने निर्विशेषवादी, हैतुक और मीमासक अर्थात् कर्मजड स्मार्त्तगणको भक्तिबहिर्मुख बतलाया है, एव जिस प्रकार चोरोसे अपनी महान् निधिकी रक्षा करनी पडती है, उसी प्रकार इनसे भी कृष्ण-भक्तिरूपी महानिधिको छिपाकर उसकी रक्षा करनेका उपदेश दिया है।*

---

* फल्गुवैराग्यनिर्दग्धा शुष्कज्ञानाश्च हैतुका ।
मीमासका विशेषेण भक्त्यास्वाद-बहिर्मुखा ।।

"बगालियोकी कृष्ण-भक्ति स्वाभाविक है, अतएव बगदेशमे किसी समय 'कृष्ण-नाम-भक्तिशून्य सब ससार'—ऐसी अवस्था नही रही ।" इस प्रकार जिनकी युक्ति है, वे भावप्रवणताको ही भक्तिके रूपमें कल्पना करते है ।

भगवद्भक्ति बगाली, हिन्दुस्तानी, उत्कलवासी अथवा भारत-वासी, अग्रेज, जर्मन आदि किसी जातिविशेषकी स्वाभाविक सम्पत्ति नही है । भक्ति—श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी वृत्तिविशेष है । भक्ति—'भगवत्प्रेमविलासरूपा' है । इस कारण उस ह्लादिनीके दूत महा-भागवतकी कृपा और सगके बिना अन्य किसी भी उपायसे भक्तिका उदय नही होता। पराभक्तिमे स्वसुखकी वासना न रहनेपर भी सुख सर्वदा वर्तमान रहता है। यह सुख केवल प्रियपात्रके सुखानुभवसे उत्पन्न होता है । भक्ति भगवत्प्रेमकी 'विलासरूपा' होनेके कारण सिद्ध-गण भी श्रवण-कीर्तनादि साधनरूपा भक्तिके अनुशीलनका त्याग नही करते, या कर नही सकते ।

'भावप्रवणता बगालियोके लिये स्वाभाविक है,' 'रजोभाव पाश्चात्य-देशवासियोके लिये स्वाभाविक है,'—यह कहा जा सकता है, परन्तु 'भक्ति' किसी जाति वा वशविशेषका स्वाभाविक धर्म है, यह नही कहा जा सकता ।

इत्येष भक्तिरसिकैश्चौरादिव महानिधि ।
जरन्मीमासकाद्रक्ष्य कृष्णभक्तिरस सदा ।।
—श्रीभक्तिरसामृतसिधु, दक्षिण विभाग,
पचम लहरी १२९-१३०

[फल्गुवैराग्यमें जिनका चित्त दग्ध हो गया है, जो शुष्क-ज्ञानी है, जिनकी केवल तर्कमें निष्ठा है, जो कर्ममीमासक तथा जो द्वैतमात्रको मिथ्या कहनेवाले ज्ञानमीमासक है, वे विशेष रूपसे भक्तिके आस्वादनसे पराङमुख है । अतएव भक्तिरसिक पुरुषोको इन लोगोसे, विशेषत जरन्-मीमासकोसे कृष्णभक्तिरसकी रक्षा वैसे ही करनी चाहिए, जैसे महाजन लोग चोरसे महारत्नको छिपाकर रक्षा करते है ।]

'बगालियोकी कृष्णभक्ति स्वाभाविक है'—यदि यह ऐतिहासिक सत्य है तो आज क्यो उस स्वभावका व्यतिक्रम होता है ? आज कृष्ण-भक्तिके बदले भक्तिके उच्छेद (?) की चेष्टा, तथा भक्ति-सदाचारके बदले यथेच्छाचारिता क्या सर्वत्र नही दिखलायी दे रही है ?

और यदि 'बगालियोकी कृष्णभक्ति स्वाभाविक है', इस कारण श्रीचैतन्यदेव बगालियोके देश नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए तो गीताका 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'—यह श्लोक निरर्थक हो जाता है। उस समय प्रत्येक बगाली या अधिकाश बगाली ही स्वभावत कृष्णभक्त थे, अथवा भक्तिमें विशेष रुचि रखते थे, ब्राह्मण पण्डितलोग भी नित्य विष्णुपूजादि करते थे, इसलिये श्रीचैतन्यदेव केवल उन लोगोके साथ लीला-विलास करने आये थे। इसीलिये उनको पाखण्डी विद्यार्थियोके अत्याचारके कारण नवद्वीपसे सन्यास लेकर बगदेशका त्यागकर अन्यत्र विचरण और अवस्थान करना पडा था। और बगाली हिन्दुओने काजीसे शिकायत करके निमाइको नदीयासे बहिष्कृत करनेकी चेष्टा की थी। इसीलिये उनके सकीर्तनके मृदगको विधर्मियोके द्वारा फुडवाया था। श्रीश्रीवास आदि पण्डितके घर-द्वारको गगामें बहा देनेकी चेष्टा हुई थी और इसीलिये श्रीअद्वैताचार्य, श्रीश्रीवास पण्डित प्रभृति आचार्योंने यह आक्षेप किया था कि उनको मनकी बात कहने अथवा कृष्णभक्ति सबधी कथा-कीर्त्तन करनेके लिये एक भी आदमी नही मिला।

व्यवसायी कथावाचक, पाठक जो भागवत-पाठका अभिनय करते है, जो विष्णुमन्त्र देनें या भक्तिकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करते है, उसको भी श्रीमद्भागवतने 'भक्ति' नही बतलाया है। वह भक्तिके चरणोमें अपराध है। 'शालग्राम-शिलासे बादाम फोडकर खानेके लिये' शालग्रामकी पूजाका अभिनय करना, अर्थ, प्रतिष्ठा अथवा पार्थिव शान्तिकी प्राप्तिकी आशासे भागवतपाठ या भक्तिकी व्याख्याका अभि-नय करना—भक्तिकी व्याख्या नही है।

श्रीचैतन्यदेवके समय भी देवानन्द पण्डित नवद्वीपमें भागवतकी व्याख्या करते थे और वे परमज्ञानी, तपस्वी, आजन्म उदासीन और भागवतके महा-अध्यापकके नामसे विख्यात थे , तथापि श्रीमन्महाप्रभुने देवानन्दकी भागवत-व्याख्याके अभिनयके प्रति अतिशय क्रोध प्रकट किया था , क्योकि देवानन्द मोक्षाभिलाषी थे और शिष्योके द्वारा किये हुए वैष्णवापराध (श्रीवास पण्डितके प्रति अपराध) के गौण-समर्थक थे ।

रामदास विश्वास परम रामभक्त, सर्वशास्त्रमें प्रवीण और महाप्रभुके पार्षद पट्टनायकोकी गोष्ठीके 'काव्यप्रकाश'के अध्यापक थे। वैष्णवोकी सेवाके प्रति भी उनकी विशेष चेष्टा थी, तथापि रामदासके अन्त करणमें मुक्तिकी इच्छा रहनेके कारण महाप्रभुने रामदासकी 'विद्धा भक्ति'को किसी प्रकार भी 'भक्ति' नही कहा। बगदेशीय विप्र कविने श्रीचैतन्यदेवको भगवानके रूपमे स्वीकार किया था, तथा श्रीमन्महाप्रभु और श्रीजगन्नाथदेवकी प्रशसा (?) करके ही उन्होने अपने नाटकका 'नान्दी' श्लोक लिखा था। परन्तु श्रीस्वरूप-दामोदरगोस्वामीप्रभुने उसे 'भक्ति'के नामसे स्वीकार नही किया।

कोई-कोई कहते है कि, "श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके पहले भी महामान्य श्रीश्रीधरस्वामिपादकी टीकाके अनुसार नवद्वीपके बहुतेरे पण्डित श्रीमद्‌भागवतकी व्याख्या करते थे तथा श्रीजयदेवके 'गीत-गोविन्द'की पदावलीका भी गान करते थे। अनेक पाठशालाओमें 'गीत-गोविन्द'का पठन-पाठन होता था।"

सस्कृत-पाठशालामें अथवा साधारण शिक्षालयोमें या जनसभाओमें 'श्रीगीतगोविन्द' जैसे अप्राकृत भजन-ग्रन्थका, पठन-पाठन 'भक्ति'-पदवाच्य होना तो दूर रहा, वह तो भक्तिके चरणोमें अमार्जनीय अपराध है , क्योकि पाठशालाओमें ये सब ग्रन्थ प्राकृत काव्य-शिक्षा प्रदान करने, तथा साधारण सभा-समितिमें प्राकृत काव्यरसके आस्वादनके लिये ही पठित या कीर्तित होते है। कोई अजितेन्द्रिय व्यक्ति, विशेषत निर्विशेषवादी श्रीगीतगोविन्दके पाठका अधिकारी नही है। केवल अनु-

स्वार-विसर्गका पाण्डित्य होनेसे ही 'श्रीगीतगोविन्द' या श्रीमद्भागवतकी 'रासपचाध्यायी'के अप्राकृत रसका आस्वादन नही किया जा सकता। इस प्रकारके पाठका अभिनय भक्ति तो है ही नही, भक्तिके स्थानमे अमार्जनीय अपराध है। कर्मजड स्मार्त्त लोग श्राद्धसभामें 'रासपचाध्यायी'का पाठ (?) करते है, यह कितनी अभक्ति है, उसे देह-गेहमे आसक्त शोकाच्छन्न शूद्र-प्रकृतिवाले अत्यन्त अपराधी कर्मजड लोग नही समझ सकेगे। इसीलिये शुद्ध भगवद्भक्त लोग इस प्रकारके कार्यको अभक्तिकी पराकाष्ठा मानते है। हाट-बाजारमें 'राई-कानूका गान', स्त्री-पुत्रके भरण-पोषणार्थ अथवा प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी आशामे पुराण-पाठ या कथावाचनका अभिनय प्रभृति जो वेतन-प्राप्त या अर्थकामी पुरोहितोकी वृत्तिके समान बगदेशके पचोपासक-समाज या कर्मजड स्मार्त्त-समाजमे चला आ रहा है तथा जिसका अनुकरण करके लौकिक गोस्वामी (?) लोगोने पुराण-पाठ और कथावाचनका व्यवसाय खोला है—यह सब भक्तिदेवीके चरणोमें अमार्जनीय अपराध है। इन समस्त भक्तिके अभिनयोकी अपेक्षा स्पष्ट नास्तिकता कही अधिक अच्छी है, क्योकि उसके द्वारा लोगोकी अभक्तिको भक्ति माननेका भ्रम तो नही हो सकता। अतएव श्रीठाकुर वृन्दावनने जो उस समयके नवद्वीपके लोगोको भक्ति-बहिर्मुख कहा है वह सर्वतोभावेन समीचीन और सत्य है। भगवद्भक्त-लोग यात्रादल (नाटक-समाज) के 'नारद'को भक्तराज 'श्रीनारद' नही कहते, तथा उसकी 'भक्ति'के अभिनयको भी 'भक्ति' नही कहते। अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी, योगी, तपस्वी, निर्विशेषवादी कर्मजड स्मार्त्त, चोपासक, आउल, बाउल, कर्त्ताभजा आदि अप-सम्प्रदायी व्यक्तियोका भक्तिका अभिनय 'नाट्यसमाजके नारद'की भक्तिके अभिनयके समान ही है, अतएव वह सम्पूर्णतया अभक्ति ही है।

श्रीमन्महाप्रभुके अन्तरग पार्षद और शुद्धभक्तिराज्यके मूल-महाजन श्रीरूपगोस्वामीप्रभुने कर्मी, ज्ञानी और मुमुक्षुओकी भक्तिके साधारण सदाचार-पालनके अभिनयकी तो बात ही क्या, उनके अश्रु

कम्प, पुलकादिके अभिनयको भी 'प्रतिबिम्ब रत्याभास' * कहकर गर्हित बतलाया है। अतएव वह कभी भी भक्ति या रति नहीं है। श्रीरूपगोस्वामीप्रभु कहते हैं कि, "इन सारे अभिनयोंको देखकर अज्ञानी-जन चमत्कृत हो सकते हैं, परन्तु अभिज्ञजन विमोहित नहीं होते।"

---

* * * *

* मुमुक्षुप्रभृतीनाञ्चेद्भवेदेषा रतिर्न हि ।।
विमुक्ताखिलतर्षैर्या मुक्तैरपि विमृग्यते ।
या कृष्णेनातिगोप्याशु भजद्भ्योऽपि न दीयते ।।
सा भुक्तिमुक्तिकामत्वाच्छुद्धां भक्तिमकुर्वताम् ।
हृदये सम्भवत्येषा कथं भागवती रतिः ?
किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिह्नवीक्षया ।
अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभासः प्रकीर्तितः ।।
—भ० र० सि०पू०,३ लहरी, ४१-४४ (गौ०गौ०ग्र०स०)

[अन्तःकरणकी स्निग्धता ही रतिका लक्षण है। मुमुक्षु आदिमें यद्यपि रतिके समान एक अवस्था-विशेष दृष्टिगोचर भी हो, तथापि उसे 'रति'-पदवाच्य नहीं करना होगा। मुक्त-शिरोमणिगण निखिल कामनाओंका त्यागकर जिस रतिकी खोज करते हैं तथा श्रीकृष्ण भी जिसे अति गोप्य रखते हैं और जिसे भजनपरायण लोगोंको भी शीघ्र प्रदान नहीं करते, भुक्ति एवं मुक्तिकी कामनाके हेतु ज्ञानकर्मादिके मिश्रणसे रहित विशुद्ध भक्तिके अनधिकारी कर्मी और ज्ञानियोंके हृदयमें किस प्रकार उस भागवती रतिका उदय सम्भव है? रति निरुपाधि होनेपर ही मुख्य है, उपाधि होनेपर वह रत्याभास है। सामान्यतः पुलकाश्रुरूप उस रतिचिह्नको देखकर अनभिज्ञ व्यक्तिको चमत्कार होता है, परन्तु अभिज्ञ सुबोधगण उसे 'रत्याभास' ही कहते हैं।]

छठा परिच्छेद्

तत्कालीन पृथ्वी

केवल भारतका ही नही, उस समयकी पृथ्वीका इतिहास एक सघर्षमय युगका इतिहास है । उस समय 'Wars of the Roses' का और पाश्चात्य देशोके मध्ययुगका अन्तिमकाल उपस्थित था। नाना प्रकारके आपसी-झगडो तथा वैदेशिक सघर्षोसे पाश्चात्य देशकी प्रत्येक जाति और समाज न्यूनाधिकरूपसे छिन्न-विच्छिन्न हो गया था। १४८५ ई० से ही वर्तमान युगकी सूचना हो गयी थी, इसी कारण पाश्चात्य ऐतिहासिकोने १४८५ ई० से १६०३ ई० को "The Beginning of the Modern Age" (आधुनिक युगका प्रारम्भ) कहा है। १४८५ ई० में सप्तम हेनरी इगलैडके सिहासनपर आरूढ हुए। श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव-काल इसके एक वर्ष बाद ही आता है। इसी समयसे समस्त पाश्चात्य सभ्यजगत्के "Renaissance" अर्थात् 'नूतन जन्मके' प्रारम्भकी सूचना हो रही थी।*

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके ठीक दूसरे ही वर्ष अर्थात् १४८७ ई० में सीधे जलमार्गसे भारतवर्ष पहुँचनेके लिये पाश्चात्य-जातिके मनमें प्रबल स्पृहा उत्पन्न हो उठी थी। १४८८ ई० में 'वर्थोलोमिउ दियाज' नामक एक नाविक 'उत्तमाशा' अन्तरीपमें पहुँचा था। उसी समयसे

---

* While Henry VII was struggling with his difficulties, a series of explorations had suddenly multiplied the area of the world, and opened new horizons * * * Even more important than the discoveries as a sign of the coming of a new era was the Renaissance which first began seriously to affect the life and thought of England in the time of Henry VII —*Ramsay Muir*

भारतवर्षमे आनेके लिये समुद्रका मार्ग खुल गया। धीरे-धीरे और भी नाविकोने भारतवर्षका रास्ता खोजनेकी चेष्टा की और अन्तमे १४९८ ई० मे पोर्तुगीजका एक नाविक 'भास्कोडिगामा' कालिकट बन्दरगाहपर पहुँच गया। उस समय श्रीचैतन्यदेव नवद्वीप-लीलामे बारह वर्षके बालक थे।

कौन जानता है कि, इस जलमार्गके आविष्कारका बहुत कुछ गौण उद्देश्य होते हुए भी नवद्वीप-सुधाकरके नाम-प्रेम-प्रचारके द्वारा प्राच्य और पाश्चात्यके साथ योगसूत्ररचनाका मुख्य उद्देश्य इसमे अन्तर्निहित था या नही? पाश्चात्य देशके वणिक भारतवर्षके प्राकृत (लौकिक) धनरत्नसे लाभान्वित होनेके लिये आये थे। परन्तु उस समय कौन जानता था कि भारतका अद्वितीय अप्राकृत धन परमार्थकी वाणी उनको अधिकतर लाभान्वित करेगी? उस समय कौन जानता था कि भारतके इस जलमार्गके आविष्कृत होनेपर एक दिन श्रीचैतन्यके नाम-हाटके व्राजक विपणिक (चलते-फिरते व्यापारी) के प्रेमका पसरा * साथ लिये विश्वमगलका अभियान (चढाई) पूर्वसे पश्चिमकी ओर होगा।

सप्तम हेनरीके समयमे, अर्थात् श्रीचैतन्यदेवके समसामयिक नवाभ्युदय अथवा नवजागरणके युगमें, इगलैडका आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय विद्याचर्चा और साहित्य-साधनामें नये ढगसे गठित हुआ था। इधर ठीक उसी समय श्रीचैतन्यके आविर्भावसे भी भारतके आक्सफोर्ड अथवा प्रधानतम सारस्वत-तीर्थ नवद्वीपमें पराविद्या, भक्ति-साहित्य, दर्शन, विज्ञान और शिल्प-साधनाके एक नवयुगका द्वारोद्घाटन हुआ था। १५१६ ई० मे पाश्चात्यदेशमें जब 'Utopia' (No-where) नामक ग्रन्थ प्रकाशित होकर आदर्श पार्थिव-समाजका काल्पनिक चित्र प्रचारित कर रहा था, उसी समय तथा उससे पहले ही श्रीचैतन्यदेवने ऐकान्तिक

* छाबडी अथवा अन्य कोई वर्तन जिसमे कोई चीज भरकर सिरपर रखकर बेचनेके लिये ले जाते हैं,—उसे 'पसरा' कहते है।

परमार्थका अनुगमन करनेवाले आदर्श-समाजके वास्तविक चित्रका बगदेशमे प्रचार किया था। १५१७ ई० मे मार्टिन लूथरने† पोपकी यथेच्छाचारिताके विरुद्ध प्रतिवादका झडा उठाकर पाश्चात्य जगत्मे ईसाई धर्ममे एक सुधारयुगका श्रीगणेश किया। इस कालमे उस देशमे मुद्रणयन्त्रका नूतन आविष्कार हुआ था। इन्ही दिनो श्री-चैतन्यदेवने भारतवर्षमे कर्मजड स्मार्तवाद तथा नानाप्रकारके मतवादोके विरुद्ध विप्लवी वाणीका प्रचार किया। उन्होने मार्टिन लूथर अथवा **जगत्के अन्यान्य धर्म-सुधारकोके समान सुधारकका व्रत ग्रहण नही किया था।** किन्तु बगालके ऐतिहासिकगण तथा अन्यान्य] साधारण व्यक्तिगण भी श्रीचैतन्यदेवको 'सुधारक' कहकर अक्षम्य भ्रम उत्पन्न करते है। वस्तुत वे सुधारक नही, वे तो सनातन भागवतधर्मके **पुन-सस्थापक, विकाशक और परिशिष्ट-प्रकाशकका अभिनय करके भी स्वय-विकसित सनातन-धर्मके अधिदेवता है।** श्रीचैतन्यदेवके समयमे, अथवा उनके परवर्ती आचार्य गोस्वामीगणके समयमे, या उसके पश्चात्के युगके श्रीश्रीनिवास आचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द-श्रीरसिकानन्दके समयमें और उनके भी बादके युगके श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और गौडीय वेदान्त-भाष्य-प्रणेता श्रीबलदेव विद्याभूषणके समयमे बगदेशमें मुद्रणयन्त्रका प्रचलन नही हुआ था। भारतमे या तदन्तर्गत बगदेशमे मुद्रणयन्त्रके प्रचलित होनेके बाद वर्तमान युगमे श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाके पुन सस्थापक श्रीमान्

† "Thus a great part of Europe, including England, was full of explosives only waiting for a spark, the spark came from Martin Luther, a friar professor of Wittenberg in Saxony, who in 1517 nailed to the door of the church there a number of *Theses*, challenging the right of the Pope to sell indulgences, or exemptions from penance A fierce controversy arose which was swiftly spread by the new invention of the printing-press —*Ramsay Muir*

: भक्तिविनोदने मुद्रणयन्त्रका भक्तिके प्रचार-कार्यमें विशेषरूपसे
ार किया। 'श्रीचैतन्य-गीता', 'श्रीचैतन्य-शिक्षामृत', 'श्रीभाग-
गीच', 'श्रीकृष्णसंहिता', 'श्रीकल्याणकल्पतरु', 'श्रीसज्जनतोषणी'-
ा प्रभृति ग्रन्थोंका और सामयिकपत्रोंका श्रीमान् ठाकुर भक्ति-
इने मुद्रणयन्त्रकी सहायतासे प्रचार किया। उनके संस्थापित 'श्री-
-यन्त्रालय'से श्रीचैतन्यदेवके और भी बहुतेरे शिक्षाग्रन्थ वंगदेशमें
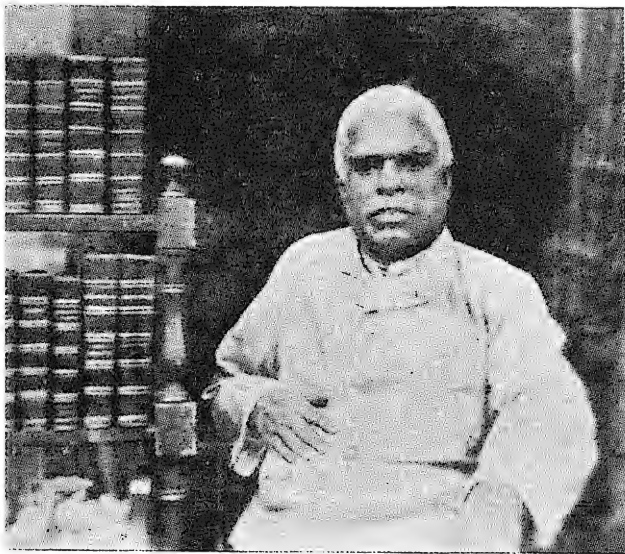
श्रीमत् भक्तिविनोद ठाकुर

रत हुए। श्रीगुणराज खांका 'श्रीकृष्णविजय', 'श्रीसज्जनतोषणी'
:तीय वर्षका अन्तिम अंश, 'श्रीचैतन्योपनिषद्', 'श्रीविष्णुसहस्रनाम',
दीप' (२रा संस्करण), 'श्रीचैतन्यचरितामृत' (प्रथम संस्करण)
दे ग्रन्थ श्रीचैतन्य-यन्त्रालयमें मुद्रित हुए।

१४८५ ई० से पाश्चात्य देशमे नवयुग तथा सभ्य-सुशासन-पद्धति-का प्रारभ, १४८७ ई० में भारतवर्षके लिये समुद्रमार्गका अनुसन्धान, १४९२ ई० में पृथ्वीके पश्चिम गोलार्द्ध (एक नई दुनिया) अमेरिकाका आविष्कार, एव १४९८ ई० मे भारतवर्षके समुद्रमार्गका पूर्णरूपसे निर्णय हुआ तथा इसके साथ ही मुद्रणयन्त्रके आविष्कार और प्रवर्तनसे भूतलमें सर्वत्र धर्मका नवजागरण हुआ, अर्थात् समस्त भूलोकके साथ पारमार्थिक योगसूत्र-सस्थापनका सुयोग प्रदान करके बगालके भाग्याकाशमें जो विश्वको स्निग्ध करनेवाले अतिमर्त्य चन्द्रका उदय हुआ था, वे ही है श्रीचैतन्यदेव ।

सातवाँ परिच्छेद्

नवद्वीप

ईसाकी ग्यारहवी शताब्दीके मध्य-भागमें नवद्वीप सेनवशी राजाओकी राजधानी था। अब भी वहाँ वल्लालसेनके स्मृतिचिह्नके रूपमें 'बल्लालदीघी' नामक एक विस्तृत तालाब, तथा उसके उत्तर ओर 'बल्लालढीबी' नामक बल्लालसेनके विशाल प्रासादका भग्नावशेष देखनेमे आता है । मालदहके प्राचीन 'गौड' नगरसे सेनवशी राजा अपने राजसिहासनको नवद्वीपमें लाये थे, अतएव इस स्थानको 'गौडभूमि' भी कहते है । सेन-राजाओके अध पतनके बाद नवद्वीप मुसलमानराजाओके हाथोमें चला गया। १५ वी शताब्दीमे (१४९८-१५११) बगालके स्वाधीन राजा अलाउद्दीन सैयद हुसेनशाहके अधीन शासनादि कार्योका परिचालन करनेके लिये फौजदार मौलाना सिराजुद्दीन चाँदकाजी इसी नवद्वीपमे ही रहते थे ।
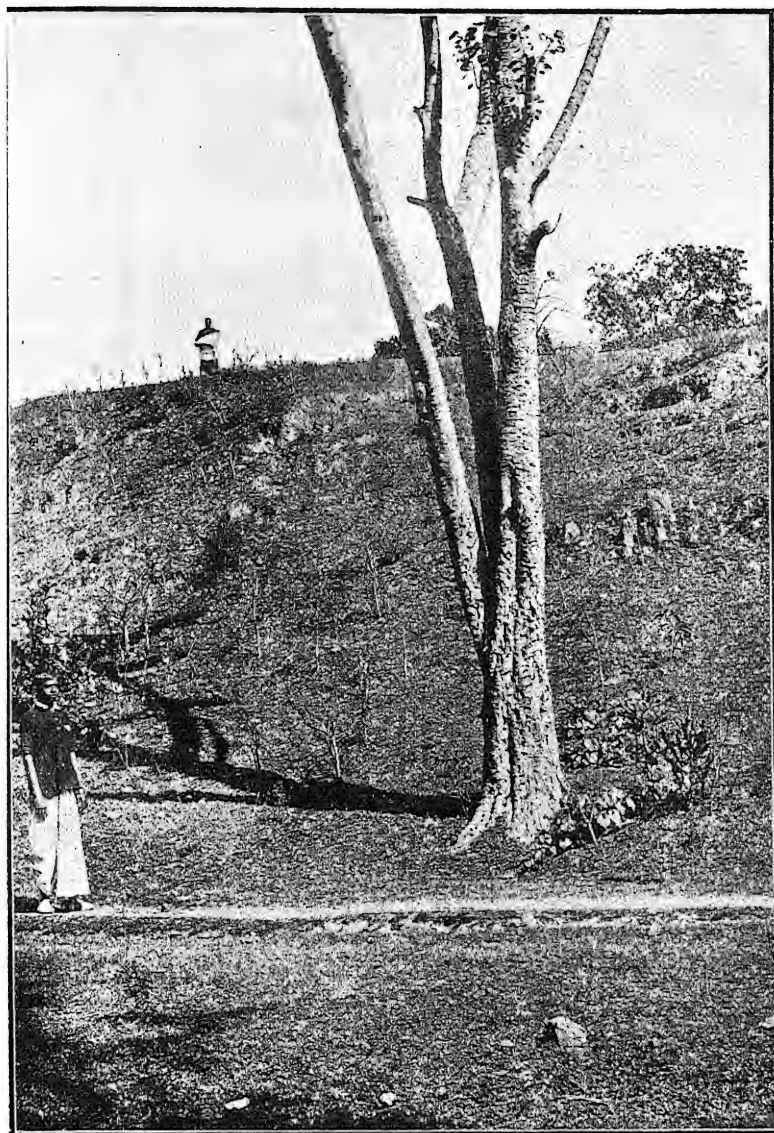
बल्लाल सेनके प्रासादका भग्नस्तूप

प्राचीन नवद्वीपके 'बेलपुकुरिया' नामक गाँवका कुछ अंश वर्तमान 'बामनपुकुर' नामक गाँवमें परिणत हो गया है। इसी बामनपुकुरमें चाँदकाजीकी समाधि और उनके घरका भग्नावशेष पाया जाता है।

मौलाना सिराजुद्दीन चांदकाजीकी समाधि, बामनपूकुर (श्रीमायापुर)

"Nabadwip is a very ancient city and is reported to have been founded in 1063 A.D. by one of the Sen kings of Bengal. In the *'Aini Akbari'* it is noted that in the time of Laksman Sen Nadia was the capital of Bengal."—(*Nadia Gazetteer*). अर्थात् नवद्वीप एक प्राचीन नगर है और कहा जाता है कि १०६३ ई० में किसी सेनवंशी राजाके द्वारा यह नगर बसाया गया था। 'आइन-इ-आकबरी'में लिखा है कि, लक्ष्मण सेनके समय नदीया नगरी बंगदेशकी राजधानी थी।

"Nadıa was founded by Laksman Sen ın 1063" (*Hunter's Statıstıcal Account—p 142*) अर्थात् नदीया (नवद्वीप) लक्ष्मणसेनके द्वारा १०६३ ई० में बसाया गया।

"The earlıest that we know of Nadıa ıs that ın 1203 ıt was the capıtal of Bengal" (*Calcutta Revıew 1846, p 398*) अर्थात् नदीयाके सम्बन्धमे हमे जो सर्वप्रथम विवरण मिलता है उससे जान पडता है कि, यह नगरी १२०३ ई० मे बगदेशकी राजधानी थी,—इस प्रकार बहुतसे प्रमाण प्राचीन नवद्वीपको ही सेनवशी राजाओकी राजधानी कहकर निर्देश करते हैं।

गगाके पूर्वी-तटपर प्राचीन नवद्वीप

प्राचीन-कालसे प्रसिद्ध है कि यह नवद्वीप गगाके पूर्वी किनारेपर अवस्थित है। यथा, ऊर्ध्वाम्नाय-महातन्त्रमें—**"वर्तते ह नवद्वीपे नित्य-धाम्नि महेश्वरि। भागीरथीलटे पूर्वे मायापुरन्तु गोकुलम् ॥"**, **"गौड़देशे पूर्वशैले करिल उदय।"** (चै० च० आ० १।८६), **"नदीया उदयगिरि, पूर्णचन्द्र गौर-हरि, कृपा करि' हइल उदय।"** (चै० च० आ० १३-६८), **"श्रीसुरधुनीर पूर्वतीरे, अन्तर्द्वीपादिक चतुष्टय शोभा करे। जाह्नवीर पश्चिम कूलेते, कोल-द्वीपादिक पच विख्यात जगते ॥"** (ठाकुर श्रीनरहरि)। अर्थात् ऊर्ध्वाम्नाय-महातन्त्रमें लिखा है—"हे महेश्वरि! नित्यधाम नवद्वीपमें **भागीरथीके पूर्वीतटपर मायापुर** गोकुल है ॥" श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १।८६) में वर्णित है—"गौड देशके **पूवशैलमे** उदित हुए।" तथा श्रीचैतन्यचरितामृत (आ०१३।६८) मे भी यह उल्लेख है—"पूर्णचन्द्र श्रीगौर-हरि कृपा करके नदीयाके **उदयगिरिमे** उदित हुए।" ठाकुर श्रीनरहरिने भी लिखा है,—"गगाके **पूर्वी-तटपर** अन्तर्द्वीप आदि चार द्वीप शोभा पाते हैं एव गगाके पश्चिम किनारे कोलद्वीप आदि पॉच द्वीप ससारमें प्रसिद्ध है।" परवर्ती विवरणोसे भी इसी बातका समर्थन होता है।

"It was on the east of the *Bhagirathi* and on the west *of Jalangi*" (*Hunter's Statistical Account, p 142*) अर्थात् नवद्वीप नगर भागीरथीके पूर्वीकिनारे तथा जलागी (खड़िया) के पश्चिममे अवस्थित था ।

यह प्राचीन नवद्वीप नगर इस समय 'नवद्वीप' नामसे परिचित न होकर 'वामनपुकुर', 'बेलपुकुर', 'श्रीमायापुर', 'बल्लालदीघी', 'श्रीनाथ-पुर', 'भारुइडागा', 'टोटा' प्रभृति विभिन्न नामोमे प्रसिद्ध हो रहा है । जिस स्थानमें श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर, श्रीवास-अगन, श्रीअद्वैत-भवन, श्रीमुरारि-गुप्तका स्थान आदि अवस्थित था, वही आजकल 'श्रीधाम-मायापुर'के नामसे विख्यात है । गगाके विभिन्न गर्भोके बदलनेके कारण नवद्वीप-नगरमे श्रीगौरजन्म-भिटा तथा उससे लगे हुए स्थानके सिवा अधिकाश जलमग्न हो गये थे । अतएव वहाँके अधिवासीजनोमे बहुतेरे निकटवर्ती दूसरे स्थानोमे चले जानेको बाध्य हो गये । श्री-कृष्णके लीलाक्षेत्र द्वारका-नगरीमे भी एकमात्र श्रीकृष्ण-गृहके सिवा अन्यान्य स्थानोके समुद्रमग्न होनेकी बात श्रीमद्भागवत (११।३१। २३) में सुनी जाती है ।

विभिन्न समयमे नवद्वीप

महाप्रभुके समयके 'कुलिया'-ग्राममें या 'पहाड़पुर' में ही आधुनिक नवद्वीप शहर बसा हुआ है, तथा उसी स्थानमें वर्तमान 'नवद्वीप-म्युनिसिपलिटी' स्थापित हुई है । ईसाकी **१८वी शताब्दीमें** नवद्वीप नगर कुलियादह या कालीयदहकी वर्त्तमान तलेठीमें अव-स्थित था । ईसाकी **सतरहवीं शताब्दीकी** नदीया-नगरी वर्तमान 'नदीया' 'शकरपुर', 'रुद्रपाडा' प्रभृति स्थानोमें लक्षित होती है । गगाकी गतिका यह परिवर्तन तथा प्राचीन नदीयाकी बस्तीका इस प्रकार स्थान बदलना 'History of Nadia-rivers', (नदीयाकी

नदियोका इतिहास) सूबा बगालका मानचित्र, रेनेलेकृत मानचित्र, तथा ब्लकमैनके मानचित्र आदिके देखनेसे अच्छी तरह समझमें आता है। सतरहवी शताब्दीके पूर्व अर्थात् **सोलहवीं शताब्दी** पर्यन्त श्रीमन्महाप्रभुके समयका नवद्वीप-नगर श्रीमायापुर, बल्लालदीघी, बामनपुकुर, श्रीनाथपुर, भारुइडॉगा, गगानगर, सिमुलिया, रुद्रपाडा, तारणवास, करियाटी, रामजीवनपुर आदि स्थानोमें व्याप्त था। जमीदारी सिरिश्ताके प्राचीन कागज-पत्रादिसे इस विषयमे विशेष-रूपसे जाना जा सकता है।

लडनके 'बृटिश म्यूजियम और एडमिरलटी' भवनमे सरक्षित दो मानचित्र जलागी नदीके उत्तराशमे और भागीरथीके पूर्वाशमे सतरहवी शताब्दी पर्यन्त नवद्वीपकी तत्कालीन अवस्थितिके विषयमें निर्विवाद रूपसे साक्षी प्रदान करते है।

पहला मानचित्र वेन्डेन् ब्रुक (Mattheus Vanden Broucke) कृत है। वह १६५८ ई० से १६६४ ई० तक ओलन्दाज् (Dutch) व्यापारियोका नेता था। ब्रुकके मानचित्रका प्रथम सस्करण आजकल प्राप्य नही है। १७२६ ई० में प्रकाशित वेलेण्टिनकी 'ईस्ट इण्डिया' (Valentyn's 'East India') नामक पुस्तकके पचम खण्डमे भेन्डेन ब्रुकका एक मानचित्र लगा हुआ है। इस मानचित्रका एक फोटोग्राफ बहुत रुपये खर्च करके 'बृटिश म्यूजियम' से गौडीय मिशनने प्राप्त किया है।

१६७५ ई० के 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी'के कर्मचारियोने जलमार्गके निर्देशसहित एक मानचित्र तैयार किया और उसे जन् थर्नटनने पहले-पहल प्रकाशित किया। लडनके नौसेना-विभागके बडे आफिसमें (British Admiralty) 'इगलिश पाइलट' नामक पुस्तकमे यह मानचित्र है। इसके देखनेसे जान पडता है कि, सतरहवी शताब्दीमें भी उत्तर-दक्षिण-वाहिनी गगा और उसके पूर्व ओर नदीया विराजमान है।
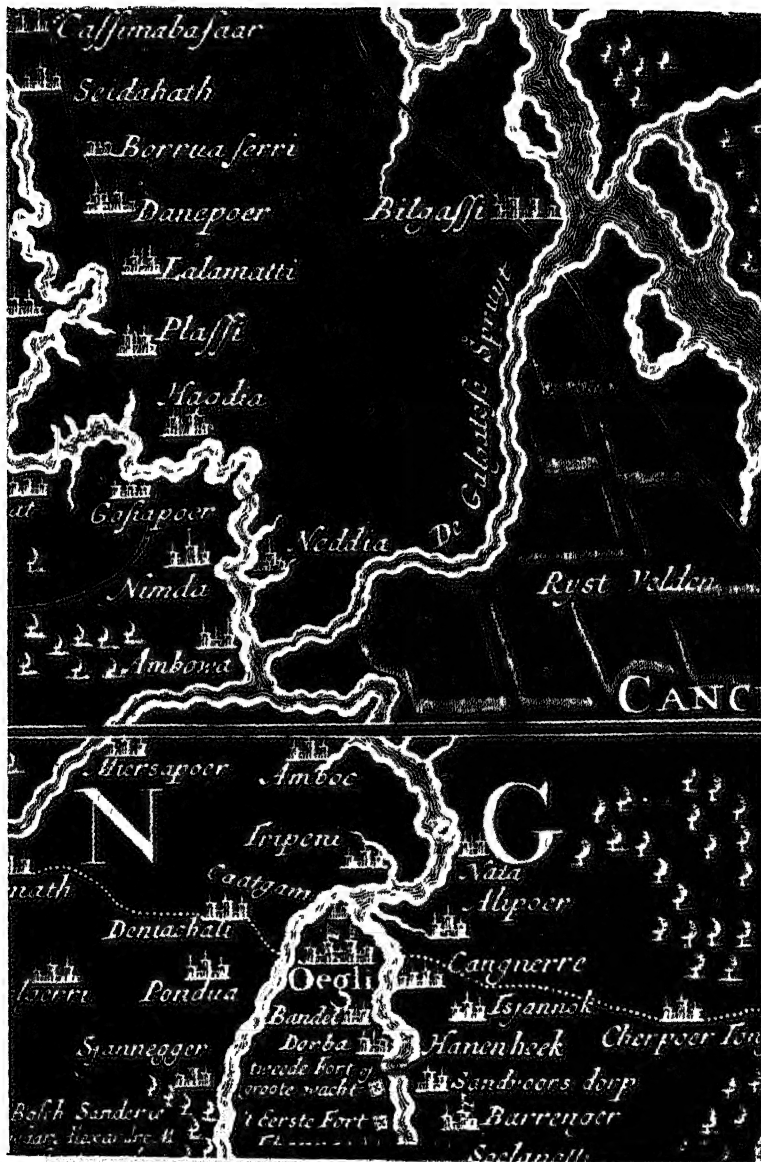
मैथ्यूज वेन्-डेन् ब्रुकके बनाये हुए बगालके सबसे पुराने मानचित्रका कुछ अश

(सन् १६५८–१६६४ ई०)
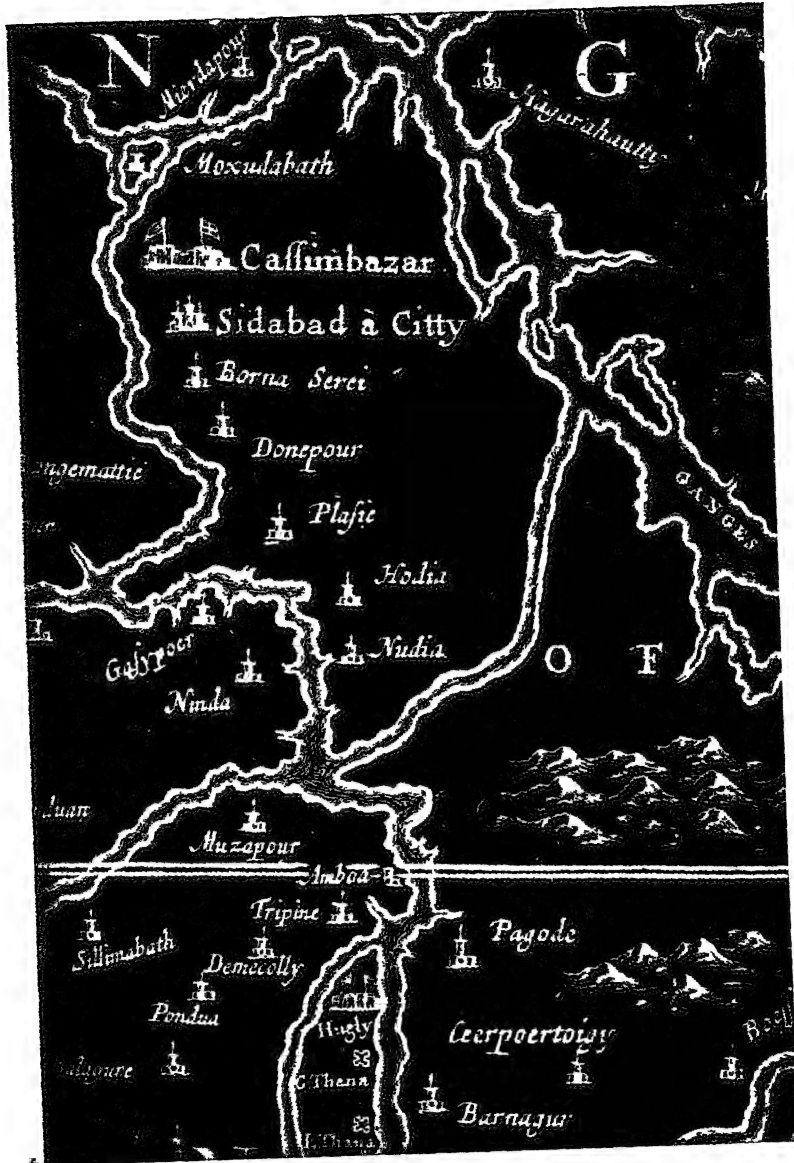
जौन् थौर्णटन् द्वारा प्रकाशित बगालका अति प्राचीन मानचित्र (सन् १६७५ ई०)

नवद्वीप क्या है ?

साधारण लोगोकी धारणा हो सकती है कि, किसी एक विषब नगर या स्थानका नाम ही शायद नवद्वीप है, अथवा 'नवद्वीप'का अर्थ है नवीन द्वीप या उपनिवेश-विशेष , परन्तु वास्तवमे बात ऐसी नही है। नौ द्वीपोको लेकर नवद्वीपकी रचना हुई है। इस नवद्वीपमें बहुतसे उपग्राम (छोटे-छोटे गाव) या टोले बसे हुए है। नौ द्वीपोमें चार द्वीप भागीरथीके पूर्व किनारे, और पॉच भागीरथीके पश्चिम किनारे अवस्थित थे।

पूर्वी किनारेके चार द्वीपोके नाम ये है'—(१) **अन्तर्द्वीप,** (२) **सीमन्तद्वीप,** (३) **गोद्रुमद्वीप** और (४) **मध्यद्वीप** ; पश्चिमके किनारे पॉच द्वीपोके नाम है —(१) **कोलद्वीप,** (२) **ऋतुद्वीप,** (३) **जह्नुद्वीप,** (४) **मोदद्रुमद्वीप** और (५) **रुद्रद्वीप*** । (भक्तिरत्नाकर, द्वादश तरग)

श्रीयुत् घनश्यामदास (द्वितीय नाम श्रीनरहरि चक्रवर्ती)के 'श्री-नवद्वीप-धाम-परिक्रमा'-नामक ग्रन्थमें भी इन समस्त द्वीपोका उल्लेख है, जैसे,—

नदिया पृथक् ग्राम नय । नव-द्वीप नव-द्वीप-वेष्टित ये हय ।।
नव-द्वीपे नव-द्वीप-ग्राम । पृथक् पृथक् किन्तु हय एक ग्राम ।।

[नदीया (नवद्वीप) पृथक गॉव नही है। जो नवद्वीप है, वह नौ द्वीपोको घेरे हुए है। नवद्वीपमे 'नवद्वीप' गॉव भी है, सब पृथक-पृथक है, परन्तु सब मिलकर ही एक ग्राम है।]

नवद्वीपमें इतने ग्राम थे कि, श्रीमायापुर जाते समय श्रीनरोत्तम ठाकुरको लोगोसे पूछकर 'श्रीमायापुर' पहुँचना पडा था। साधारणत 'नवद्वीप' नाम ही उस समय सर्वसाधारणमें प्रचलित और प्रसिद्ध था।

---

* पश्चात् गगाका प्रवाह बदल जानेसे रुद्रद्वीपका स्थान गगा के पूर्वी किनारे पर हो गया ।

नवद्वीप-मध्ये ग्राम-नाम बहु हय ।
लोके जिज्ञासिया मायापुरे प्रवेशय ॥

—भक्तिरत्नाकर, अष्टम तरग

[नवद्वीपमें बहुत सारे भिन्न-भिन्न नामके ग्राम थे। लोगोसे पूछकर मायापुरमें प्रवेश किया था ।]

'मायापुर' नाम

श्रीनिवासाचार्य प्रभुकी परिक्रमाके समय नवद्वीपके बहुतसे गाँव लुप्त हो गये थे, तथा अनेक गाँवोका नाम लुप्त और नानाप्रकारसे विकृत हो गया था। श्रीचैतन्यदेवके आविर्भाव-स्थान श्रीमायापुर-ग्रामका नाम भी साधारण अशिक्षित लोगो द्वारा विकृत और जन-साधारणके लिये अज्ञात हो गया था। 'श्रीभक्तिरत्नाकर'में श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं,—

यैछे कलि वृद्ध, तैछे नामेर व्यत्यय ।
तथापि से-सब नाम अनुभव हय ॥
कथोकाल परे कथो ग्राम लुप्त हैल ।
कथोग्राम-नाम लोके अस्तव्यस्त कैल

—भक्तिरत्नाकर, १२ वाँ तरग

[कलिकी वृद्धिके साथ ही नामोमें भी व्यतिक्रम हो गया, तथापि वे सब नाम समझमें आते है। कितने समयके बाद कितने गाँव लुप्त हो गये और कितने गाँवोके नाम लोगोने उलट-पलट कर दिये।]

११६६ सालके हदबन्दी कागजमें 'श्रीमायापुर' गाँवका उल्लेख प्राप्त होता है ।

बगला सन् १२५२ सालके आश्विन मासकी पहली तारीखको आन्दूलके राजा राजेन्द्रनाथ मित्रके द्वारा प्रकाशित, नवद्वीप और बहुतेरे स्थानोके महामहोपाध्याय पण्डितोके हस्ताक्षर-समन्वित पृष्ठ-युक्त 'कायस्थकौस्तुभ' नामके ग्रथमें ऐसा लिखा है,—

"एइ (सेनवशीय) राजा नव उत्थापित द्वीपे राजधानी करिलेन। गगादेवी 'मायाया' एइ नगर सर्वतीर्थमय सर्वविद्यालय हइयाछिल, एइ जन्य इहार एक नाम—'मायापुर'। 'मायापुरे महेशानि वारमेक शचीसुत' इति उध्र्वाम्नाय तन्त्रे।" —कायस्थकौस्तुभ, ९८ पृष्ठ

[इस सेनवशी राजाने नव उत्थापित द्वीपमे अपनी राजधानी बनाई। गगादेवी, 'मायाया' यह नगर सर्वतीर्थमय तथा सर्वविद्याओका आलय हो गया, इसी कारण इसका नाम 'मायापुर' है। ऊर्ध्वाम्नाय-तन्त्रमे ऐसा उल्लेख है कि—हे महेश्वरि, मायापुरमे एक बार शचीपुत्र होकर प्रकट होऊँगा।]

"लक्ष्मणसेन नवद्वीपे राजा हइलेन।"

—कायस्थकौस्तुभ १२४ पृष्ठ

[लक्ष्मणसेन नवद्वीपके राजा हुए।]

"नवद्वीप गङ्गावेष्टित स्थाने राजधानी ओ नगर निर्माण करिलेन, इहार एक नाम 'मायापुर' शास्त्रे कहियाछेन।"

—कायस्थकौस्तुभ, १२३ पृष्ठ

[गगासे परिवेष्टित स्थान नवद्वीपमें राजधानी बनायी और नगर-का निर्माण किया, इसका एक नाम शास्त्रोमे 'मायापुर' भी है।]

"अवतीर्णो भविष्यामि कलौ निजगणै. सह। शचीगर्भे नवद्वीपे स्वर्धुनी-परिवारिते॥" (अनन्त-सहिता, ५७ अध्याय)

—कायस्थकौस्तुभ, १२४ और १३० पृष्ठ

[कलियुगमें मै अपने परिवारोके साथ गगाजीके तीरपर नवद्वीपमें शचीके गर्भसे अवतीर्ण होऊँगा।]

हटर साहब लिखते है —

"Nadia (Nabadwip), ancient Capital of Nadia District and the residence of Laxman Sen * * Here in the end of the 15th century was born the great reformer Chaitanya" (*Hunter's Imperial Gazetteer, 1880*)

"*Statistical Account of Bengal, Vol I*" नामक पुस्तकके पृ० ३६७ में लिखते हैं कि,— "To Baira belongs the little town of Mayapur (near the Burdwan boundary) where I am told the tomb exists of one Maulana Sirajuddin who is said to have been the teacher of Hussain Sha, King of Bengal (1494-1522) "

[बयराके समीप 'मायापुर' नामक एक छोटा नगर (बर्दवान जिलेकी सीमाके निकट) अवस्थित है। मैंने सुना है कि इस स्थानमें मौलाना सिराजुद्दीनकी कब्र है। ये मौलाना बगालके बादशाह हुसेनशाह (१४९४-१५२२) के शिक्षक कहे जाते हैं।]

सर विलियम हण्टर भी कहते हैं,—

"Nadia, at the time of its foundation was situated right on the banks of Bhagirathi * * It used formerly to run behind the Ballaldighi and the palace; but it has now dwindled in the part into an isolated khal It now runs to the east of the ruins of the palace" (*Statistical Account of Bengal, Vol I, p 142*)

श्रीनवद्वीप-मण्डलका मानचित्र-निदर्शन

"१। **अन्तर्द्वीप**—पद्मकी कर्णिका—गगाके पूर्वी किनारे। इसके बीचमें श्रीमायापुर है, जहाँ श्रीजगन्नाथ मिश्रका घर, महायोगपीठ है।*

२। **सीमन्तद्वीप**—ग्राम नष्ट हो गया है, जिधर पहले गगा बहती थी उसके दक्षिण किनारे सीमली देवी (सीमन्तिनी) की पूजा होती है। रुकुणपुर पर्यन्त इसी द्वीपके अन्तर्गत है। शरडागा (शबरडेंगा) और विश्रामस्थल इसके दक्षिण भागमें है।

* अन्तर्द्वीपका जो अश गगाके पश्चिम भागमें पडता है, वही स्थान 'वृन्दावन' है। वहाँ रासस्थली, धीरसमीर और बहुतसी कुजें हैं।

३। **गोद्रुमद्वीप**—गादिगाछा, सुवर्णविहार, नृसिहक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, अलकनन्दाके किनारे काशीधाम इसके अन्तर्गत है।

४। **मध्यद्वीप**—माजिदा, भालुका, पर्णशिला, हाटडेगा इसके दक्षिण में है ।

५। **कोलद्वीप**—कुलिया-पहाड, समुद्रगढ प्रभृति इसके अन्तर्गत है।

६। **ऋतुद्वीप**—राहुतपुर, विद्यानगर इसके अन्तर्गत है ।

७। **जह्नुद्वीप**—जान्नगर ।

८। **मोदद्रुमद्वीप**—माउगाछि, अर्कटीला (सूर्यक्षेत्र-आक्डाला), महत्पुर (मातापुर), पाण्डव-निवास इसके अन्तर्गत है।

९। **रुद्रद्वीप**—रुद्रपाडा, शकरपुर, पूर्वस्थली, चुपी, कक्षशाली, मेडतला इसके अन्तर्गत है ।

इस ग्रन्थमें जो छोटा-सा मानचित्र दिया गया है, वह सरकारी आज्ञासे मानविज्ञान-सम्मत (सर्वेके अनुसार तैयार किये गये) मान-चित्रसे बनाया गया है। अतएव इसे बिल्कुल ठीक मानना होगा। मानचित्रको छोटे आकारमें प्रयुक्त करनेके कारण केवल मुख्य-मुख्य स्थानोके नाम दिये गये है।" —श्रीठाकुर भक्तिविनोद

श्रीनवद्वीप-धामको कोई-कोई पाँच योजन अथवा सोलह कोस परिधिका बतलाते है। इसी 'श्रीनवद्वीप-मण्डल'के बीचमें श्रीमायापुर है, जहाँ भगवद्गृह (श्रीजगन्नाथ-मिश्रालय) अवस्थित है ।

इसी श्रीमायापुरमें ही श्रीगौर-जन्मस्थली महायोगपीठ नित्य सुशोभित है।

नवद्वीप मध्ये 'मायापुर' नामे स्थान।
यथा जन्मिलेन गौरचन्द्र भगवान् ॥
यैछे बृन्दावने योगपीठ सुमधुर ।
तैछे नवद्वीपे 'योगपीठ मायापुर' ॥

—भक्तिरत्नाकर, १२ वाँ तरग

श्रीगौर-जन्मस्थान श्रीमायापुर श्रीमथुरापुरीसे अभिन्न है, और वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है। स्वय भगवान् श्रीगौरनारायणने महावैकुण्ठमें

जिस जन्मलीलाको प्रकट नही किया, श्रीनवद्वीपमें भक्त-वात्सल्यके वश होकर अर्थात् श्रीजगन्नाथको आनन्द प्रदान करनेके लिये उसी जन्मलीलाको प्रकट करके उनके नित्य पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए तथा महान् औदार्य-लीलाओका आविष्कार किया ।
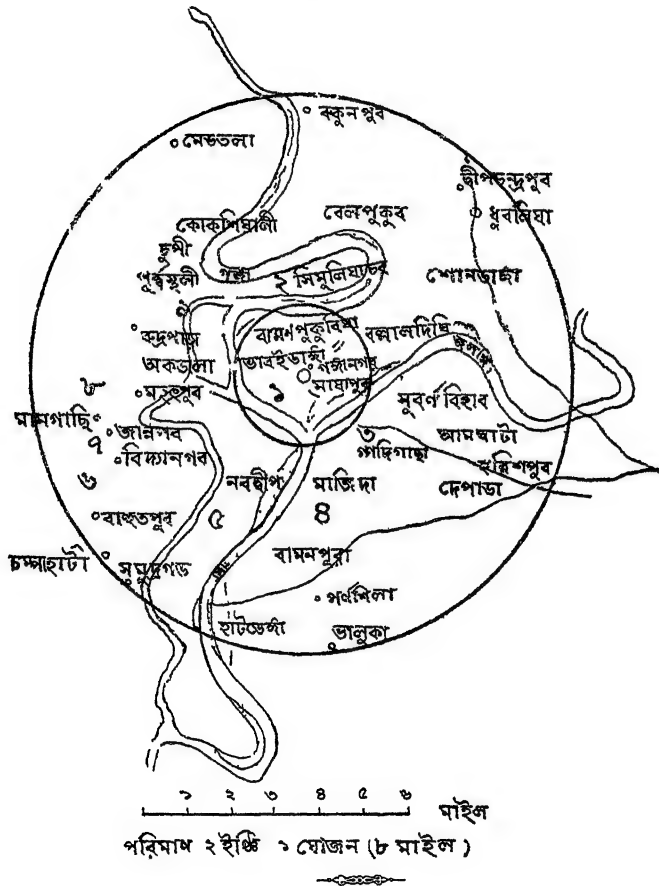
आठवाँ परिच्छेद

आविर्भाव

मधुकर मिश्र नामके एक पश्चिमी वैदिक ब्राह्मण किसी कारण उडिष्याके याजपुरसे श्रीहट्ट (सिलहट)में आकर वहाँ रहने लगे थे। मधुकर मिश्रके मझले पुत्र उपेन्द्र मिश्र थे। वे वैष्णव, पण्डित और अनेक सद्गुणोसे भूषित थे। इन्ही उपेन्द्र मिश्रके सात पुत्र हुए,—कसारि, परमानन्द, जगन्नाथ, सर्वेश्वर, पद्मनाभ, जनार्दन और त्रिलोकनाथ। उपेन्द्र मिश्रके तृतीय पुत्र श्रीजगन्नाथ अध्ययनके लिये श्रीहट्टसे नवद्वीप आये थे और वहाँ उन्होने 'पुरन्दर' उपाधि प्राप्त की। मिश्र पुरन्दरने नवद्वीपमें ही नीलाम्बर चक्रवर्तीकी ज्येष्ठ कन्या श्रीशचीदेवीका पाणिग्रहग कर गगातटपर निवास करनेकी अभिलाषासे नवद्वीपके अन्तर्गत श्रीमायापुरमें निवासस्थान (घर) बनाया।

श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीका पूर्व-निवास था फरीदपुर जिलेके 'मग्-डोबा' ग्राममे। ये गगाके किनारे वास करनेके लिये नवद्वीपमें चले आये थे। काजी-पाडामें उन्होने निवास-स्थान बनाया था, इसलिये काजी साहब प्रवीण चक्रवर्ती महाशयको गाँवके सबधसे चाचा कहकर पुकारते थे।

शचीदेवीकी एक-एक करके आठ कन्याएँ उत्पन्न हुई और सभी मृत्युके मुखमें चली गयी। अन्तमें उनके गर्भमे 'श्रीविश्वरूप' नामकी नवी पुत्र-सन्तान आविर्भूत हुई।

८९२ बगाब्दकी २३वी फाल्गुन * शनिवार नव-वसन्त-पूर्णिमा—श्रीकृष्णकी दोल-यात्राके दिन (होलीके दिन) सन्ध्याके ठीक पूर्व।

---

* **८९२ बंगाब्द,** १४०७ शकाब्द, **१४८६ ई०,** १५४२ सवत्, **२३ फाल्गुन, शनिवार।** उस दिन पूर्णिमा ४० दण्ड १३ पल थी। मतान्तरसे वह प्राय ४२ दण्ड थी। **पूर्वफलगुनी नक्षत्र** ५० दण्ड

पूर्णचन्द्र प्रतिवर्ष ही इस दिन अपनी अमल-धवल-स्निग्ध अंशु-मालाओंसे विश्वको स्नान करानेके लिए गर्वके साथ उदित हुआ करते हैं, परन्तु आज मानो जगत्‌के चन्द्रकी पूर्णता, स्निग्धता, शुभ्रता, उदारता, वदान्यता, कवित्व, साहित्य, छन्द—सब कुछ किसी एक अद्वितीय अतिमर्त्य चन्द्रके सामने तिरस्कृत हो गया। भूलोकके चन्द्रकी पूर्णता गोलोकके चन्द्रकी पूर्णताके सामने पराभूत हो गयी—जान पडता है कि इसी विज्ञापनका प्रचार करनेके लिए सकलक जगच्चन्द्र श्रीगौरचन्द्रके उदयकालमे राहुग्रस्त* हो गया! विश्वमे चारो ओर

---

३७ पल था। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावका समय—सूर्योदयसे २८ दण्ड ४५ पलके बाद था। उस दिन दिनमान प्राय २९ दण्ड था। अतएव **सध्याके पूर्व ५ बजकर ५२ मिनटपर (नवद्वीपका समय)** श्रीगौरहरिका आविर्भाव हुआ। अग्रेजी मतसे 'जुलियन कैलेण्डर'के गणनानुसार १४८६ ई० की १८ वी फरवरी तथा आधुनिक प्रचलित 'ग्रेगेरियन कैलेण्डर'के अनुसार १४८६ ई० की २७ वी फरवरीको श्रीमन्महाप्रभुका आविर्भाव हुआ।

प्रभुके आविर्भावकालमे सिहलग्न और सिहराशि थी। रवि, बुध और राहु (मूल त्रिकोणमें) कुम्भस्थ थे। बृहस्पति अपने घरमें उच्चप्राय मगलके साथ धनुमें थे, शनि उच्चप्राय वृश्चिकमें थे, शुक्र उच्चप्राय मेषमें थे, चन्द्र और केतु (मूल त्रिकोणमें) सिहलग्नमें थे। वह लग्न रविका क्षेत्र, चन्द्रकी होरा, मगलके द्रेक्काण, शुक्रके नवाश, शुक्रके द्वादशाश और बुधके त्रिशाश—इस प्रकार शुभ षडवर्गयुक्त है। नवमपति मगल, दशमपति शुक्र और सप्तमपति शनि उच्चप्राय थे, बृहस्पति स्वस्थ होकर धर्मस्थानगत शुक्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। मगल और बृहस्पतिका पचममें शुभ-योग था, लग्नमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि थी।

* उस दिन खण्ड चन्द्रग्रहण था। ग्रहणके ठीक पूव समय 'उपच्छाया-स्पर्श'से चन्द्रके मलिन होने लगनेपर शास्त्रमें सब प्रकारके पुण्यकर्म या श्रीहरिसकीर्तन करनेका विधान है। यह 'उपच्छाया-ग्रहण' दो-तीन घटे पहले भी हुआ करता है। बगाब्द वर्ष १३५५ के पचागमें १० वी वैशाखको चन्द्रग्रहणके ग्रासके मान ० ०२८ और

'हरि बोल', 'हरि बोल'का कलरव गूज उठा——कर्म-कोलाहल स्तब्ध हो गया——दिग्वधुएँ कृष्ण-कीर्तन-ध्वनिको सुनकर प्रसन्नवदन हो नाच उठी। ऐसे समयमें सिह लग्नमें, सिह राशिमें श्रीशचीगर्भसिन्धुसे श्रीमायापुरके पूर्णचन्द्र उदित हुए——अचैतन्य विश्वमे चैतन्यका सचार हुआ——माया-मरुमे अमृतमन्दाकिनी प्रवाहित हो उठी। अविरल धारामे हरिकीर्तन-सुधा-सजीवनीकी वर्षा होनेके कारण विश्वका हरिकीर्तन-दुर्भिक्ष-दु ख दूर हो गया। शान्तिपुरमे श्रीअद्वैताचार्य और ठाकुर श्रीहरिदास आनन्दमें मत्त हो नाच उठे। सर्वत्र ही भक्तोका आनन्द-

---

केवल ३८ मिनट तक कलकत्तामें प्रकृत ग्रहणकी स्थितिका समय होनेपर भी स्पर्शके प्राय दो घटे पहले उपच्छाया-प्रवेश और मोक्षके प्राय दो घटे बाद उस उपच्छायाका त्याग हुआ था।

किसी अर्वाचीन लेखकने श्रीयुत् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके नामसे आरोपित एक श्लोकके द्वारा यह बात बतायी है कि, उन्होने श्रीमन्महा-प्रभुके आविर्भावके समय सध्याकालमे चन्द्र राहुग्रस्त हो गया था, ऐसा लिखा है। अत श्रीचक्रवर्ती ठाकुर ज्योतिषशास्त्रसे अनभिज्ञ थे ! ! वस्तुत अर्वाचीन लेखकमात्र ज्योतिषशास्त्रसे सपूर्ण अनभिज्ञ है, क्योकि पहले तो श्रीयुत् चक्रवर्ती ठाकुरके नामपर आरोपित श्लोककी प्रामाणिकता कहाँ तक है, यह विचारणीय है। 'वशीलीलामृत' नामक कोई ग्रथ श्रीचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित है, ऐसा विद्वत्समाजमें प्रचलित नही है। दूसरी बात यह है कि, उस श्लोकाशको प्रामाणिक मान भी लें तो भी "पूर्णेन्दौ राहुणा ग्रस्ते"——इस वाक्यमें पहले राहुग्रास और पीछे श्रीगौरचन्द्रका उदय न होकर समकाल ही जान पडता है। इससे भी उपच्छाया-ग्रहण पहले ही हुआ था और उसी उपच्छाया ग्रहणके आरम्भकालसे शास्त्रीय विधिके अनुसार श्रीहरिनाम-सकीर्तन आरम्भ हो गया था।

श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकविकर्णपूर और श्रीकविराज गोस्वामीप्रभुके वर्णनको श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने अर्वाचीन लेखककी अपेक्षा अनेको अधिक बार उपलब्ध करके पाठ किया है। अतएव अर्वाचीन लेखकका श्रीमुरारिगुप्त, श्रीकविकर्णपूर और श्रीकविराज गोस्वामीप्रभुके श्लोक और पदको उद्धृतकर महामहोपाध्याय चक्रवर्तीपादको अज्ञ प्रमाणित करना 'आकाशमें मुक्का मारने'के समान बाल-चापल्य ही है।

नृत्य होने लगा। नरनारीगण विविध विचित्र उपहार लिये मिश्र-भवनमें आ-आकर श्रीनवद्वीपचन्द्रके दर्शन करने लगे। सरस्वती, सावित्री, शची, गौरी, रुद्राणी, अरुन्धती प्रभृति देवागनाएँ नारी-वेशमे, एव सिद्ध-गन्धर्व-चारण और देवगण नरवेशमें प्रच्छन्न-भावसे मिश्र-भवनमें आकर नवद्वीप-चन्द्रकी सवर्धना करने लगे। आचार्यरत्न चन्द्रशेखर तथा पण्डित श्रीश्रीवासने मिश्र-नन्दनका जातकर्म-सस्कार सम्पादन किया। जगन्नाथ मिश्रने आनन्दमग्न हो सबको यथायोग्य व्यदान किया। श्रीअद्वैताचार्यकी पत्नी श्रीसीता-ठाकुरानी श्रीनवद्वीप-चन्द्रको देखनेके लिये श्रीधाम-शान्तिपुरसे श्रीमायापुरमें श्रीशचीके गृहमे आयी। श्रीश्रीवासकी गृहिणी श्रीमालिनी देवी तथा श्रीचन्द्रशेखरकी पत्नीने तुरन्त नाना प्रकारके उपहारोके साथ श्रीशचीके घर जाकर श्रीशचीनन्दनके दर्शन किये।
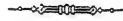
नवाँ परिच्छेद्

निमाइकी बाल्य-लीला

अतिमर्त्य वात्सल्य रस

श्रीशची और श्रीजगन्नाथके हृदयानन्दका वर्द्धन करके श्रीगौरचन्द्र शशिकलाके समान बढने लगे। श्रीगौरचन्द्रके ज्येष्ठ भ्राता श्रीसकर्षणके अवतार श्रीविश्वरूप श्रीगौरहरिको गोदमें लेकर सेवा करने लगे। आत्मीयजनोने स्नेहविवश हो, श्रीगौर-गोपालको 'विष्णुरक्षा', दैवीरक्षा', 'अपराजिता-स्तोत्र', 'नृसिह-मत्रादि'के द्वारा रक्षा करनेके लिये अपनी व्यग्रता प्रकट कर वात्सल्य-प्रेमका परिचय दिया। मुहल्लेके पडोसी

लोग सदा ही बालकको घेरे रहते थे। बालक जब रोता था, तो स्त्रियाँ नाना प्रकारसे उनको चुप करानेकी चेष्टा करती थी , परन्तु उनकी कोई चेष्टा भी सफल नही होती थी। तब केवल मात्र उच्च-स्वरसे हरि-नाम लेनेपर ही बालक चुप होता—

परम संकेत एइ सबे बुझिलेन।
कान्दिलेइ हरिनाम सबेइ लयेन ।।

—चैं० भा० आ० ४।६

[इस परम सकेतको सब समझ गए, अतएव बालकके रोते ही सब हरि-नाम लेने लगते।]

'निष्क्रमण'-सस्कारके उपलक्ष्यमे श्रीशचीदेवीने आत्मीय-स्वजनोसे परिवेष्टित होकर बाजे-गाजेके साथ गगा-स्नान, गगा-पूजा, षष्ठीपूजा और यथाविधि सब देवताओकी पूजा की। प्रेमभक्ति-स्वरूपिणी स्वय श्रीभगवान्‌की स्नेहमयी मातृदेवीकी विविध देवताओकी पूजासे उनके वात्सल्य-प्रेमका ही परिचय मिलता है। मायामुग्ध बद्ध जीव अपनी सन्तानकी पार्थिव मगल-कामनासे ऐहिक फल प्रदान करनेवाले देवताओ की पूजा करते है। वह आसक्ति जब मर्त्य सन्तानके प्रति न होकर अद्वितीय अतिमर्त्य सन्तानके प्रति प्रकाशित होती है तथा उस अतिमर्त्य आसक्तिसे आबद्ध होकर अभीष्ट-वस्तुकी सुखकामनाके लिये भक्त जो क्रियाएँ करता है, वह बाह्य दृष्टिसे बिना विचारे प्राकृत क्रियासे समान लगनेपर भी उसमें निष्ठा और उद्देश्य सम्पूर्ण रूपसे दूसरा ही होता है। श्रीभगवान्‌में आसक्त होकर उनके सुखोल्लासके लिये जो सब क्रियाएँ होती है, वही भक्ति या प्रीति है। वह श्रीभगवान्‌की ही सेवा है, देव-देवी तो उस सेवाके यन्त्र मात्र है।

किसी-किसी दिन चार महीनेके बालक श्रीगौर-गोपाल माता-पिताकी अनुपस्थितिके समय घरकी सारी सामग्रियोको जमीनपर बिखेर देते, फिर जब देखते कि जननी आ रही है, तो तुरन्त बिछौनेपर जाकर सो जाते और सोये-सोये रोने लगते। श्रीशचीमाता हरिध्वनि

करके बालकको रोनेसे चुप कराती, फिर घरकी ऐसी दशा देखकर आश्चर्यमें पड जाती। वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश श्रीजगन्नाथ मिश्र प्रभृति वत्सल-रसिक लोग, चार मासका बालक ऐसा काम कर ही नही सकता, यह समझकर, ऐसा निश्चय करते कि, अवश्य ही किसी दानवने रक्षामन्त्रसे सरक्षित शिशुको कष्ट पहुँचानेमें असमर्थ होकर घरकी सामग्रियोको बिखेरकर अपने क्रोधको चरितार्थ किया है। श्रीशचीदेवी घरमें पुत्रके चरण-चिह्नके समान दो-एक चरण-चिह्न देखती और समझती कि ये चिह्न श्रीशालग्रामजीकी मूर्तिमें अधिष्ठित श्रीबालगोपालके ही पदचिह्न हैं। वत्सल-प्रेमके स्वभाववश ऐसी भ्रान्ति होती।

पण्डितवर श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती और श्रीगौर-प्रीतिपरायण ललनाएँ नामकरण-उत्सवके निर्दिष्ट दिन श्रीशची-भवनमे उपस्थित हुई। श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती ज्योतिषशास्त्रके असाधारण पडित थे। उन्होने गणना करके देखा कि, इस नवीन बालकमें अतिमर्त्य महापुरुषके सारे लक्षण पूर्णरूपसे अवस्थित है। ये समग्र विश्वका अनन्त कालतक भरण-पोषण करेगे, ऐसा जानकर चक्रवर्ती-प्रवरने अपने हृदयसे इस बालकका 'विश्वभर'* नाम प्रकट किया। कोई-कोई कहते है कि, बालकके आविर्भावसे समस्त देश प्रफुल्लित हो गया, सब दुःख दूर हो गये, जगत्-शस्य-क्षेत्रमें भक्तिकादम्बिनी-धारा बरस गयी और उससे हरिकीर्तन-दुर्भिक्ष दूरीभूत हो गया था, इसी कारण पडितोने उनका नाम 'विश्वभर' रखा था। वात्सल्य-रसविवश श्रीअद्वैत-गृहिणी श्रीसीतादेवीने बालककी चिरायु-कामना करके यमके मुखमें तिक्त (तीता) लगनेवाले

* सर्वलोके करिबे एइ धारण-पोषण।
'विश्वम्भर' नाम इहार,—एइ त' कारण॥
—चै० च० आ० १४।१६

[यह सब लोगोका धारण-पोषण करेगा इसी कारणसे इसका 'विश्व-भर' नाम है।]

नीमसे 'निमाइ' नाम रक्खा।* निमाइ ही आगे चलकर 'गौरसुन्दर', 'गौराग', 'गौरहरि', 'महाप्रभु', और सन्यास-लीलाके बाद 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' आदि नामोसे अभिहित हुए।

रुचि-परीक्षा

निमाइके नामकरणके समय प्रचलित प्रथाके अनुसार श्रीजगन्नाथ मिश्रने पुत्रकी रुचि-परीक्षाके लिये उसके समीप पोथी, खील, धान, कौडी, सोना, चाँदी आदि कई वस्तुएँ रक्खी। बालकने सबको छोडकर 'श्रीमद्भागवत'की पोथीको लेकर हृदयसे लगा लिया। इसके द्वारा निमाइने शिशु-कालमें ही जगत्को यह शिक्षा दी कि, पार्थिव द्रव्यजात समस्त अनित्य है, श्रीमद्भागवत ही नित्य वस्तु है। बचपनसे भागवत-कथामें रुचि होनेसे ही जीवगण यथार्थ सम्पत्तिशाली हो सकते है। प्रह्लादने भी शिशुकालमे अपने समवयस्क और सहपाठी बालकोको यही शिक्षा दी थी।

"शेषदेव"

धीरे-धीरे निमाइने घुटनेके बल चलना सीखा। एक दिन घुटनेके बल चलते-चलते उन्होने घरमें एक स्थानपर एक बडे सर्पको देखा और

---

* डाकिनी-शाँखिनी हैते, शका उपजिल चिते,
डरे नाम थुइल 'निमाइ' ॥
—चै० च० आ० १३।११७

[डाकिनी शखिनीसे चित्तमें भय उत्पन्न हो गया, इसी डरसे 'निमाइ' नाम रख दिया।]

इहान अनेक ज्येष्ठ कन्या-पुत्र नाइ।
शेष ये जन्मये, ताँर नाम से 'निमाइ' ॥
—चै० भा० आ० ४-४५

[इनके अनेक ज्येष्ठ कन्या-पुत्र नही है इसलिए अन्तमे जन्म होनेके कारण उनका नाम 'निमाइ' हुआ]

उस कुण्डलीकृत साँपके ऊपर सोकर उन्होने शेषशायी भगवान्‌की लीला प्रकट की, वात्सल्य-प्रेममयी शचीमाता आदि मातृस्थानीया ललनाएँ घबराकर 'गरुड', 'गरुड' पुकारने लगी और बालकके अमगलकी आशकासे भयभीत होकर रोने लगी। यह देखकर सर्परूपी अनन्तदेवने उस स्थानको छोड दिया। घुटनोके बल ही निमाइ अकेले घरसे बाहर चले जाते। लोग बालकके रूप-लावण्यको देखकर मोहित हो, उसको सन्देश (बगला मिठाई), केला आदि देते। निमाइ उन सब उत्तम वस्तुओको लेकर हरिकीर्तन करनेवाली नवद्वीपकी नारियोको पारि-तोषिक-प्रसादके रूपमे बाँट देते थे। कभी-कभी किसी पडोसी गृहस्थके घर जाकर उसको बिना जताये ही दही-दूध अन्नादि भोजन कर लेते। किसीके घरकी सामग्री तोड-फोडकर उस स्थानसे चुपके-चुपके भाग जाते। बालकके मुखचन्द्रके दर्शनमात्रसे सभी अपने दुख और उलाहनेको भूल जाते थे।

दो चोर और निमाइ

एक दिन निमाइके शरीरपर सुन्दर-सुन्दर आभूषण देखकर दो चोरोने उन आभूषणोको चुरानेका विचार किया। निमाइ जिस समय अकेले मार्गमे घूम रहे थे, उसी समय उन दोनो चोरोने निमाइको बडे प्रेमसे अत्यन्त परिचित आत्मीयकी तरह गोदमे उठा लिया और बालकको उसीके घर ले जानेका बहाना बताकर किसी निर्जन स्थानमे ले जानेकी तैयारी करने लगे। निमाइके किस गहनेको कौन चुराएगा यह लेकर दोनो चोर परस्पर अनेक प्रकारकी जल्पना-कल्पना करने लगे। उनमें से एक चोरने निमाइको खानेके लिए सन्देश (बगालकी मिठाई) देकर उनको भुलानेकी चेष्टा की और दूसरेने बालकको समझाकर कहा कि 'बस, यह तो तुम्हारे घर ही आ गये है।' इधर निमाइकी मायासे मुग्ध होकर दोनो चोर अपने-अपने जानेका रास्ता भूल गये और अन्तमें अपना घर समझकर वे श्रीजगन्नाथ मिश्रके

घरपर ही जा पहुँचे। निमाइको कन्धेसे उतारते ही वे अपने पिताकी गोदपर जा चढे , दोनो चोर अपनी भूल समझकर डरसे, कौन किधर भागे—यो भागनेका रास्ता ढूंढने लगे, और मन-ही-मन दोनो चिन्ता करने लगे कि, एक साधारण बालकने किस प्रकार उनको ठग लिया है। बालक निमाइने चोरोके कन्धेपर सवार होकर उनका भी मगलविधान ही किया। दोनो चोरोने श्रीगौरनारायणको कन्धे चढाकर और सन्देश खिलाकर अज्ञातरूपसे भक्तिकी ओर ले जानेवाली सुकृतिका सचय ही किया।

मृत्तिका-भक्षण और दार्शनिक उत्तर

एक दिन श्रीशचीदेवी निमाइको भोजनके लिये 'खील',' सन्देश' प्रदानकर घरके काममें लग गई। बालक खील-मिठाईके बदले कुछ मिट्टी खाने लगा , शचीदेवीने यह देखकर बालकके मुँहसे मिट्टी निकाल ली। शिशु निमाइने माताको दार्शनिक उत्तर देते हुए कहा,—"खील, सन्देश, अन्न आदि पार्थिव वस्तुओमे और मिट्टीमें कोई भेद नही है , क्योकि ये सभी मिट्टीके विकार है। जीवकी देह और जीवका खाद्य—सब मिट्टी ही है।" श्रीशचीदेवीने यह सुनकर कहा,—"ससारकी सब वस्तुएँ मिट्टीके विकार हैं , तथापि मिट्टी और उसके विकारमें अनुकूल-प्रतिकूल द्रव्यका विचार होता है। मिट्टीके विकार अन्नके खानेपर शरीर पुष्ट होता है, परन्तु मिट्टी खानेसे शरीर अस्वस्थ और विनष्ट हो जाता है। मिट्टीके विकार घटमें जल लाया जाता है, परन्तु मिट्टीके 'पिण्ड'में जल लानेसे सारा जल उसके भीतर ही शेष हो जाता है।" माताके इस उत्तरको सुनकर निमाइ आनन्दित हो उठे, तथा इसके द्वारा, शुष्क ज्ञानवादियोके एकदेशी विचारका परित्यागकर 'शुद्धभक्तिके सार्वदेशिक अनुकूल-प्रतिकूल विचारको ही ग्रहण करना चाहिए'—यह उपदेश दिया।

तैर्थिक ब्राह्मण

एक दिन एक गोपालभक्त तीर्थ-पर्यटक ब्राह्मण श्रीमायापुरमें मिश्रके घरमें अतिथि हुए, वैष्णवसेवापरायण श्रीजगन्नाथ मिश्रने ब्राह्मणको रसोई पकानेकी सामग्री प्रदान की। जब ब्राह्मण रसोई पकाकर ध्यान करके श्रीगोपालको भोग लगानेके लिये तैयार हुए, तो बालक निमाइ वहाँ पहुँचकर उनका अन्न खाने लगे। उस अन्नका परित्याग करके अतिथि ब्राह्मणने मिश्रके अनुरोधसे दूसरी बार भोग तैयार किया। ब्राह्मणके ध्यानमें भोग लगाते समय दूसरी बार भी पुन वही घटना घटी। श्रीविश्वरूपके अनुरोधसे तैर्थिक विप्रने तीसरी बार फिर प्रस्तुत किया। इस बार बालकको विशेष सतर्कताके साथ रोक रक्खा गया, बालकने निद्रित होनेका अभिनय किया। इधर रात्रि भी अधिक हो गई थी। श्रीगौरहरिकी इच्छासे निद्रादेवी अतिथि बनकर सबके नेत्रकोणोमे आ विराजी। सब लोग निद्रादेवीके सत्कारमें लग गये और तैर्थिक अतिथिकी बात भूल गये। इसी समय तैर्थिक विप्र पुन ध्यानमें जब गोपालजीको निवेदन करनेके लिये उद्यत हुए, तो निमाइ तीसरी बार हठात् कहीसे आकर पूर्ववत् ब्राह्मणके निवेदित अन्नको खाने लगे। ब्राह्मण दैवसे मारे हुएकी भाँति हाहाकार करने लगे। इतनेमें निमाइने ब्राह्मणके सामने चतुर्भुज और द्विभुज रूप प्रकट करके कहा,—"हे विप्र, तुम मेरे नित्य सेवक हो, मैंने जिस समय व्रजमें नन्ददुलारेके रूपमे लीला प्रकट की थी, तब भी तुम्हारे साथ ऐसी ही घटना घटी थी। इस बार भी तुम्हारी भक्तिसे आकृष्ट होकर मैंने तुमको दर्शन दिये हैं।" तब ब्राह्मण अपने इष्टदेवका दर्शन कर महाप्रेमाविष्ट हो गये तथा अपनेको धन्य मानकर उन्होंने प्रभुका भुक्तावशेष प्रसाद ग्रहण किया। महाप्रभुने उस तैर्थिक विप्रको यह गुप्तलीला सर्वसाधारणके समीप प्रकट करनेसे मना कर दिया।

दसवाँ परिच्छेद

निमाइका विद्यारम्भ और चांचल्य

श्रीजगन्नाथ मिश्रने निमाइका 'विद्यारम्भ', 'कर्णवेध', और 'चूडा-करण-सस्कार' सम्पन्न करवाया। केवल एक बार देखकर ही निमाइ सब अक्षर लिख जाते थे। दो-तीन दिनोमें समस्त सयुक्तवर्ण और वर्णविन्यासको निमाइने हृदयस्थ कर लिया, तथा 'राम', 'कृष्ण', 'मुरारि', मुकुन्द', 'वनमाली' आदि सारे कृष्ण-नामोको वे लिखने लगे। निमाइ जब मधुर स्वरसे 'क', 'ख', 'ग', 'घ' उच्चारण करते थे, तब सबके प्राण मोहित कर देते थे। श्रीगौर-गोपाल कभी आकाशमें उडते हुए पक्षीको और कभी चन्द्रमा और तारासमूहको ला देनेके लिये माता-पितासे हठ करते थे, और इन सारी वस्तुओके न मिलनेपर बहुत रोने लगते थे। उस समय हरिनाम-कीर्तनके सिवा बालकको अन्य किसी उपायसे भी शान्त नही कराया जा सकता था।

श्रीमायापुरमें मिश्रभवनसे प्राय एक कोस दक्षिण-पूर्वकी ओर श्रीजगदीश और श्रीहिरण्य पण्डितका घर था। किसी एकादशीके दिन उनके घर विष्णुका भोग बन रहा था। निमाइने उस नैवेद्यको भोजन करनेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथ मिश्रको हिरण्य-जगदीशके घर उसे लानेके लिये भेजा। हिरण्य-जगदीश मिश्रके मुखसे बालककी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर विशेष आश्चर्ययुक्त होकर बोले,—"आज एकादशी है, और हमारे घर विष्णु-नैवेद्य बन रहा है, इस बातको बालकने कैसे जाना? अवश्य ही इस बालकमें कोई वैष्णवी शक्ति है।" उन्होने ऐसा विचारकर वही नैवेद्य बालकके लिये भेज दिया। शिशुके लिये इतने दूरका समाचार जानना असम्भव है, परन्तु अन्तर्यामी निमाइने भक्तोके सामने आत्मप्रकाश करनेके लिये और एकादशीके दिन एकमात्र भगवान् ही अन्नादि सामग्रियोको भोगरूपसे ग्रहणके

अधिकारी हैं, सबको यह समझानेके लिये ही इस प्रकारके एक कौशलका अवलम्बन किया था।

निमाइकी चचलता क्रमश बढती गयी। वे सखाओके साथ परिहास और कलह तथा मध्याह्न-कालमें गगास्नानके समय जलक्रीडा आदि नानाप्रकारकी चचलता प्रदर्शित करने लगे। निमाइ समवयस्क बालकोको लेकर अडोस-पडोसके घरोमें चोरी करके विविध पदार्थ भक्षण करते और बालकोको मारते थे। सारे बालक श्रीशचीमाताके पास जब शिकायत करते तो वे अप्राकृत वात्सल्य-रससे मुग्ध होकर परमेश्वर-पुत्रका प्राकृत बालकके समान तिरस्कार करती। तब निमाइ क्रोधित होकर घरकी वस्तुओको इधर-उधर विखेर देते, मटकोको फोड डालते। निमाइ कभी-कभी अपने कोमल हाथोसे माताको मार देते, फिर श्रीशचीमाताको मूर्छित देखकर क्रन्दन भी करने लगते। जब पडोसकी स्त्रिया कहती कि नारियल लाकर देनेसे माता स्वस्थ होगी, तो सबको विस्मय-रसमें मग्न करके बालक बाहर जाकर नारियल ला देते। एक ओर नदीयाके पुरुषगण जिस प्रकार जगन्नाथ मिश्रके पास आकर प्रतिदिन ही निमाइके कार्यके लिये नाना प्रकारकी शिकायत करने लगे, उसी प्रकार दूसरी ओर लडकियाँ भी निमाइके नाना प्रकारके चाचल्यकी बातें श्रीशचीमाताको सुना जाती।

कुमारियाँ गगास्नान करके घाटपर बैठकर गगापूजा करती। तब बालक निमाइ कुमारियोके पास आकर कहते,—"तुम लोग गगा और दुर्गाकी पूजा क्यो करती हो? मेरी पूजा करो। जो वर चाहो, मैं दूँगा। गगा और दुर्गा तो मेरी दासी हैं, शिव मेरे सेवक हैं।" इतना कहकर बालकरूपी स्वय भगवान् श्रीगौरहरि अपने-आप ही कुमारियोकी पूजाकी सामग्री चन्दन, पुष्पमाला आदि धारण कर लेते तथा सन्देश, चावल, केला आदि छीनकर खाने लगते और कहते,—"तुम लोगोको वर देता हूँ—तुम लोगोको परम सुन्दर, पण्डित, धनवान, युवक और रसिक पति मिलेंगे, दीर्घायु होगे तथा तुम्हारे

सात सात पुत्र होंगे।" वर सुनकर कुमारियाँ ऊपरसे रोषाभास दिखलाती, पर भीतर-ही-भीतर उनको सन्तोष ही मिलता था। यदि कोई कुमारी निमाइके डरसे देवताका नैवेद्य लेकर भागना चाहती तो चचल निमाइ उसे पुकारकर कहते,—"तुमको बूढा पति मिलेगा और बहुत सी सौतें होगी।" तब कुमारियाँ निमाइको देवाविष्ट पुरुष समझकर सारा नैवेद्य उन्हीको प्रदान कर देती।

श्रीशचीदेवीके पास निमाइके विरुद्ध शिकायत आती, तब वे सबको मीठी-मीठी बातोंके द्वारा सान्त्वना प्रदान करती। एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र निमाइके इस प्रकारके उपद्रवकी बात सुनकर पुत्रको उपयुक्त दण्ड देनेके लिये मध्याह्न कालमें गगाके घाटपर जा पहुँचे। चतुर निमाइ क्रुद्ध पिताके आनेकी बात जानते ही दूसरे रास्तेसे घर भाग गये और साथियोसे कह गये कि यदि मिश्र महाशय आकर उनकी बात पूछें तो वे मिश्रको 'आज निमाइ गगास्नान करने नही आया'—कहकर लौटा दें। गगाके घाटपर निमाइको न देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र घर लौट आये और देखा कि, निमाइ बिना स्नान किये सारे शरीरमें स्याही पोते बैठे हैं। मिश्र वात्सल्य-प्रेमसे मुग्ध होकर बालककी चातुरी नही समझ सके। निमाइको शिकायत करनेवालोकी बात सुनानेपर निमाइ बोले,—"मेरे गगास्नानके लिये न जाने पर भी जब वे मेरे विषयमे झूठी शिकायतें करते हैं तब तो मैं अब सचमुच ही उनके ऊपर उपद्रव करूँगा।" इस प्रकार चतुराई करके निमाइ पुन गगास्नानके लिये चले। इधर श्रीशची और जगन्नाथ मन-ही-मन विचारने लगे कि,—"यह अद्भुत बालक कौन है? क्या यह श्रीनन्ददुलारा ही गुप्तरूपसे हमारे घर आया है!"

ग्यारहवाँ परिच्छेद
श्रीअद्वैत-सभा और श्रीविश्वरूपका संन्यास

शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यका घर था। उन्होने नवद्वीपमें श्री-मायापुरमें श्रीवास पण्डितके घरके उत्तर कुछ दूरपर एक सस्कृत पाठ-शाला खोल रक्खी थी। श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व इस स्थानपर वे भगवान्के आविर्भावके लिये जल-तुलसीके द्वारा श्रीनारायणकी आरा-धना करते और हुकार करके भगवान्को समस्त जगत्की विमुखताकी बात सुनाते। इसी स्थानमे ठाकुर श्रीहरिदास, श्रीश्रीवास पण्डित, श्रीगगादास, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीचन्द्रशेखर, श्रीमुरारिगुप्त आदि वैष्णवगण मिलकर श्रीभगवान्की कथावार्ता करते ।

श्रीविश्वभरके बडे भाई श्रीविश्वरूप बाल्यकालसे ही ससारके प्रति उदासीन थे। वे सर्वशास्त्रोके सुपण्डित और समस्त गुणोसे गुणवान् थे। सारा ससार जागतिक बातोमें मत्त था, सभीके हृदयोमे भगवान् और भगवान्के भक्तोके प्रति न्यूनाधिकरूपमें विमुखताका भाव था, यहाँतक कि जो लोग गीता-भागवतादि पढाते थे, उनमें भी आन्तरिक हरि-भक्तिका अभाव देखकर उन्होने यह विचार किया कि वे अब ससारी लोगोका मुह नही देखेंगे और भीतर-ही-भीतर ससारका परित्याग करनेके लिये निश्चय कर लिया। प्रतिदिन प्रात काल गगा-स्नान करके ही वे 'अद्वैत-सभा'में आते, और शास्त्रोसे हरि-भक्तिके प्रसगोका भक्तिभावसे श्रवण-कीर्तन करते थे। भोजनका समय टलते देखकर श्रीशचीदेवी प्राय ही विश्वरूपको बुलानेके लिये निमाइको अद्वैत-सभामें भेजती। निमाइके अलौकिक रूप-लावण्यको देखकर सभामें स्थित वैष्णव-मडलीका चित्त मुग्ध हो जाता। विश्वरूप घर आकर भगवत्प्रसाद सम्मानपूर्वक ग्रहण करके फिर अद्वैत-सभामें चले जाते। घर जानेपर भी वे किसी प्रकारका गृह-व्यवहार नही करते

थे, जबतक घर रहते, तबतक विष्णु-मन्दिरमे ही रहते। माता-पिता विवाहकी चेष्टा कर रहे है, यह सुनकर विश्वरूपके हृदयमें बहुत दुःख हुआ और कुछ दिनोके बाद सन्यास ग्रहण करके वे '**शकरारण्य**'के नामसे प्रसिद्ध हुए ।

श्रीविश्वरूपके सन्यास लेनेपर श्रीश्रीशची-जगन्नाथ वात्सल्य-रसके स्वभाववश अत्यन्त विरहव्याकुल हो उठे,—तब निमाइ माता-पिताको सान्त्वना देकर बोले,—"भैयाने सन्यास-लीला प्रकट करके उत्तम कार्य ही किया है। इससे मातृ-पितृकुलका उद्धार हो गया। मै आप लोगो की सेवा करूँगा।"

एक दिन निमाइ श्रीविष्णु-नैवेद्यका पान खाकर मूर्छित हो गये। श्रीश्रीशची-जगन्नाथने जब निमाइको स्वस्थ कर दिया, तब निमाइने माता-पिताको एक अपूर्व कथा सुनायी,—"भैया मुझको यहाँसे ले गये और मुझे सन्यास ग्रहण करनेका आदेश दिया। तब मैने कहा,—'मेरे माता-पिता अनाथ है, मै बालक हूँ, मै सन्यास क्या जानूँ? गृहस्थ होकर माता-पिताकी सेवा करनेसे श्रीश्रीलक्ष्मीनारायण सन्तुष्ट होगे।' मेरी बात सुनकर भैयाने मुझे पुनः यहाँ भेज दिया तथा कहा कि 'माता को मेरे कोटि-कोटि नमस्कार कहना'।"

इसके द्वारा श्रीनिमाइने अपनी भावी सन्यास-लीलाकी ओर सकेत किया था।

बारहवाँ परिच्छेद

उपनयन और श्रीगंगादास पण्डितकी पाठशालामें अध्ययन

विश्वरूपके गृहत्याग करनेके बाद निमाइकी चचलता कम हो गयी। अब वे पढनेमें मन लगाने लगे। परन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्र बालककी चाचल्य-निवृत्ति और पढनेमे मनोयोगकी बात सुनकर भी अन्तरसे

प्रफुल्लित नही हो सके, क्योकि उनको यह आशका हो गयी कि—विश्वरूपने शास्त्र पढकर ससारकी अनित्यताको हृदयगम किया था, इसी कारण उन्होने गृह-त्याग किया, कौन जाने, निमाइ भी पढ-लिखकर अपने बडे भाईका ही अनुसरण करे ! अतएव मिश्रने निमाइका पढना बद करा दिया। निमाइ फिर प्रबल वेगसे औद्धत्य और चाचल्य दिखलाने लगे ।

एक दिन निमाइ घरसे बाहर विष्णुके नैवेद्य तैयार करनेके बाद फेंके हुए गदे मिट्टीके पात्रोके ऊपर जा बैठे , श्रीशचीमाताको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होने बालकको प्यार भरे शब्दोमें उस अपवित्र स्थानका त्याग कर नहाने-धोनेके लिये कहा। माताकी बात सुनकर निमाइ बोले,—"मै मूर्ख अच्छे-बुरे, पवित्र-अपवित्रका विचार किस प्रकार करूँगा ? अपवित्र स्थानमें मै कभी भी नही रहता। जहाँ मै अवस्थान करता हूँ, वही सभी पुण्यस्थान, गगा-यमुना आदि सब तीर्थोका अधिष्ठान होता है। श्रीभगवान्से विमुख होकर जीव काल्पनिक शुचि और अशुचिका विचार करता है , और लौकिक या वैदिक मतसे किसी वस्तुमें यदि अशुद्धता भी होती है, तो मेरे स्पर्शसे वह भी परम विशुद्ध हो जाती है। जिस मिट्टीके पात्रमें तुमने विष्णुका नैवेद्य बनाया है, वह विष्णु-सबधसे युक्त वस्तु कभी अशुद्ध नही हो सकती, बल्कि इन सब वस्तुओके प्रभावसे अन्य स्थान और वस्तु भी शुद्ध हो जाती है।" बाल्यभावमें श्रीगौर-गोपाल समस्त तत्वोका सार मुस्कराते हुए बोल गये। तथापि वात्सल्यरससे मुग्ध श्रीशचीदेवी श्रीनिमाइको अपवित्र स्थानसे हटाकर स्नान करके शुद्ध होनेके लिये पुन-पुन अनुरोध करने लगी और यह भी कह दिया कि यह बात जब मिश्रजीके कानोमें पहुँचेगी तो वे बहुत क्रुद्ध होगे।

निमाइने मातासे कहा कि यदि उनको पढने न दिया गया तो वे किसी तरह भी उस स्थानको न छोडेगे। निमाइकी यह बात सुनकर अडोस-पडोसके लोग श्रीशचीदेवीको बुरा-भला कहने लगे।

"साधारणत लडके ही पढना नही चाहते, माता-पिता नानाप्रकारसे बालकका मन पढनेमें लगाया करते है और यहाँ माता-पिता ठीक उल्टी व्यवस्था कर रहे है ! जान पडता है किसी शत्रुकी कुबुद्धिसे श्रीश्रीशची-जगन्नाथको ऐसा मतिभ्रम हो गया है ?" पडोसियोकी इस प्रकारकी उक्ति तथा अपवित्र स्थानको त्याग करनेका अनुरोध करनेपर भी बालक उस स्थानपर बैठा रहा। तब श्रीशचीमाता बालकको पकडकर ले आयी। श्रीजगन्नाथ मिश्र जब वहाँ आये, तब पडोसियोने बालकके पढनेकी व्यवस्था करनेके लिये जोर दिया। मिश्रने सबकी राय मान ली।

शुभ दिन और शुभ लग्नमे श्रीगौरसुन्दरका उपनयन हुआ। श्रीअनन्तदेव यज्ञसूत्ररूपसे श्रीगौरागकी सेवा करके कृतार्थ हो गये। निमाइने वामनरूपमे सबके पास जाकर भिक्षा ग्रहण की। नवद्वीपके श्रेष्ठ अध्यापक श्रीगगादास पण्डितकी पाठशालामे निमाइ पढनेके लिये गये। श्रीगगादास अपने छात्रोमे निमाइको सर्वश्रेष्ठ मेधावी और विचक्षण देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। श्रीगगादासके शिष्योमें श्रीमुरारिगुप्त, कमलाकान्त, कृष्णानन्द प्रभृति जो सब छात्र प्रधान और उम्रमें बडे थे, उनको भी निमाइ भाँति-भाँतिकी 'फक्किकाएँ' (कूट प्रश्न) पूछकर अपदस्थ करनेसे नही चूकते थे। गगाके घाटपर जाकर निमाइ प्रतिदिन ही अन्यान्य छात्रोके साथ तर्क करते थे। सूत्र-व्याख्याके समय स्वय जो स्थापन करते थे, उसका स्वय ही खण्डन और पुन सस्थापन करके छात्रोको विस्मित कर देते थे।

एक दिन निमाइने माताका चरण धारण करके प्रणाम करते हुए कहा,—"मा, मुझे एक दान देना पडेगा। तुम श्रीएकादशीको अन्न मत खाना।" उसी समयसे श्रीशचीमाता नियमित रूपसे श्रीएकादशी-व्रतका पालन करने लगी।

श्रीगगा बहुत दिनोसे यमुनाके भाग्यकी कामना कर रही थी। वाछाकल्पतरु श्रीगौरहरि श्रीगगादेवीकी उस अभिलाषाको पूर्ण करते रहे। श्रीनिमाइ प्रतिदिन गगा-स्नान, विधिपूर्वक श्रीविष्णुपूजा, श्री-

तुलसीमे जल देने और श्रीमहाप्रसादका सम्मान करने, घरमें निर्जन स्थानमे अध्ययन करने तथा सूत्रोकी टिप्पणी आदि करनेमें लगे रहते थे। श्रीजगन्नाथ मिश्र यह सब देखकर हृदयमे बहुत आनन्दित होते थे, तथा वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश अपने पुत्रके कल्याणके लिये श्री-कृष्णसे प्रार्थना करते थे। वे ऐश्वर्यगधहीन वात्सल्यप्रेममे मुग्ध होकर यह नही समझ पाते थे कि स्वय श्रीकृष्ण ही उनके घरमें अवतीर्ण हुए है ।

एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्रने स्वप्नमें देखा कि, श्रीनिमाइ अभिनव सन्यासीका वेष धारणकर श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोके साथ निरन्तर श्रीकृष्णनाममें हास्य, नृत्य और क्रन्दन कर रहे है। कभी तो निमाइ श्रीविष्णुके सिहासनपर चढकर सबके मस्तकपर श्रीचरण रख रहे है, चतुर्मुख, पचमुख सहस्रमुख देवतागण "जय श्रीशचीनन्दन" कहकर चारो ओरसे उनका स्तुतिगान कर रहे है, और कभी श्रीनिमाइ नगर-नगरमें श्रीहरिनाम कीर्तन करते-करते, नृत्य करते घूम रहे है, और कोटि-कोटि लोग श्रीनिमाइके पीछे-पीछे दौडे जा रहे है, तथा कभी अपरूप परिव्राजकके वेषमे श्रीनिमाइ भक्तोके साथ महारगमें नीलाचल गमन कर रहे है ।

यह स्वप्न देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र अत्यन्त चिन्ताकुल हो उठे। श्रीनिमाइ निश्चय ही गृहत्याग करेंगे—यह धारणा उनके हृदयमें बद्धमूल हो गयी। श्रीशचीदेवीने मिश्रको सान्त्वना देते हुए कहा,—"निमाइने जिस प्रकार पढने-लिखनेमें मन लगाया है, उसे देखते हुए वह घर छोडकर कही नही जायगा।" कुछ दिनोके बाद श्रीजगन्नाथ मिश्रका अन्तर्धान हो गया। श्रीदशरथके विजय (देहावसान) पर (भक्त-विरहसे) श्रीरामचन्द्रने जिस प्रकार क्रन्दन किया था, श्री-जगन्नाथ मिश्रका तिरोधान होनेपर भी श्रीनिमाइने उसी प्रकार क्रन्दन किया। निमाइ श्रीशचीमाताको अनेको प्रकारसे सान्त्वना देते हुए समझाने लगे,—"मा, मै तुम्हें ब्रह्मा-महेश्वरके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ वस्तु प्रदान करूँगा, तुम कोई भी चिन्ता मत करना।"

एक दिन निमाइने गगास्नानके लिये जाते समय श्रीशचीदेवीसे गगापूजाके लिये तेल, आँवला, माला, चन्दन प्रभृति सामग्री माँगी। जब श्रीशचीदेवीने निमाइको थोडी देर ठहरनेके लिये कहा तो निमाइ क्रुद्ध होकर घरके सारे पदार्थ, यहाँ तक कि घर-द्वार चूर्ण-विचूर्ण करने लगे , केवल माताके बदनपर हाथ नही उठाया। सारी वस्तुएँ तोड डालनेके बाद निमाइ मिट्टीमें लोटने लगे, श्रीशचीदेवीने गन्ध-माल्यादि सग्रह करके निमाइकी गगा-पूजाके लिये आयोजन कर दिया। श्रीयशोदा देवी जिस प्रकार गोकुलमें श्रीबालकृष्णके समस्त चाचल्यको सहन करती थी, उसी प्रकार नवद्वीपमें श्रीशचीदेवी भी श्रीगौर-गोपाल की सारी चचलता सहने लगी। निमाइ गगास्नान और गगापूजा करके घर लौट आये और भोजनादि कार्य समाप्त किया। तब श्रीशची माताने पुत्रको समझाते हुए कहा,—"तुम पितृविहीन बालक हो, घरकी वस्तुएँ इस प्रकार नष्ट करनेसे तुम्हे क्या लाभ होगा? कल क्या खाओगे?—इसका कोई सहारा हमारे घरमे नही है, क्या ऐसी अवस्था में घरकी वस्तुओको नष्ट करना उचित है?"

निमाइने जननीसे कहा,—"विश्वम्भर श्रीकृष्ण ही सबके पालक है, उनके दासके लिये आहारकी चिन्ता करना अनावश्यक है।" इतना कहकर निमाइ अध्ययनके लिये बाहर चले गये और घर लौटकर जननी के हाथमें दो तोला सोना देकर बोले,—"श्रीकृष्णने यह सहारा भेज दिया है, इसे भँजाकर तुम अपना खर्च चलाओ।" श्रीशचीदेवी देखने लगी कि, जब कभी घरमे अर्थका अभाव होता, तभी निमाइ कहीसे सोना ले आते। श्रीशचीदेवी इससे डर गयी, न जाने पीछे कोई बुरी घटना घटे! दस-पाँच लोगोको दिखलाकर श्रीशचीदेवी उस स्वर्णखण्डको भँजाकर घरके लिये आवश्यक वस्तुएँ जुटा लाती।

श्रीनिमाइ ब्रह्मचारीके वेशमें, कपालमे ऊर्द्ध्व तिलक धारण कर प्रतिदिन श्रीगगादास पण्डितके पास पढने जाते और छात्रोमे बैठकर सूत्रोकी इस प्रकारकी नयी-नयी व्याख्या करते कि, श्रीगगादास पडित

अत्यन्त सन्तुष्ट होकर श्रीनिमाइको छात्रोंमे सर्वप्रधान आसन प्रदान करके मध्यस्थलमें बैठाते। उस समय स्नान, भोजन, भ्रमण आदि सारे ही कार्योंमे निमाइ शास्त्रचर्चाके सिवा और कुछ नही करते थे।

प्रात सन्ध्या समाप्त करके ही श्रीनिमाइ छात्रोके साथ श्रीगगादास पण्डितकी सभामें बैठ जाते और शास्त्रीय विचारको लेकर वाद-विबाद छेड देते। जो सब छात्र निमाइके अनुगत न होकर स्वतन्त्र रूपसे अध्ययन करते, निमाइ उनके पाठमें नाना प्रकारके दोष दिखलाते थे। श्रीमुरारिगुप्त निमाइके अनुगत होकर नही पढते, यह देखकर एक दिन श्रीनिमाइने उनसे कहा,—"मुरारि, तुम वैद्य हो, लता-पत्ता घोटना ही तुम्हें शोभा देता है, व्याकरण अत्यन्त कठिन शास्त्र है, इसमे कफ, पित्त और अजीर्ण रोगकी व्यवस्था नही है, तुम अपने-आप इसे क्या समझोगे! जाओ, जाकर रोगीकी चिकित्सा करो।"

कभी-कभी श्रीमुरारिगुप्त मौन रहते थे, और कभी श्रीनिमाइ-की बातका प्रतिवाद करने लगते थे। परन्तु अन्तमें श्रीनिमाइके साथ तर्कमें हार जाते थे। तब वे मन-ही-मन सोचते कि, 'निमाइ साधारण मनुष्य नही है, निश्चय ही कोई अतिमर्त्य पुरुष जगत्मे आविर्भूत हुए है।' श्रीमुरारिगुप्तने इस प्रकार पराजित होनेपर निमाइके अनुगत होकर अध्ययन करना स्वीकार किया।

सोलह वर्षकी अवस्थाके युवक श्रीनिमाइकी शास्त्रमें अद्भुत पारदर्शिता देखकर सभी मुग्ध हो गये। नवद्वीपवासी श्रीमुकुन्दसजयके चडीमडपमें निमाइ एक विद्या-चतुष्पाठी (पाठशाला) खोलकर पढाना आरम्भ किया। तब 'मडनात्मक व्याख्याका खडन और खडनात्मक व्याख्याका मडन' करना तथा अन्यान्य अध्यापकोमें शास्त्रज्ञानका अभाव प्रमाणित करना एव उनको विचार-युद्धके (शास्त्रार्थके) लिये ललकारना ही निमाइका कार्य हो गया।

तेरहवाँ परिच्छेद्

श्रीनिमाइका प्रथम विवाह

श्रीनवद्वीपमें श्रीवल्लभाचार्य नामके जनकके समान एक वैष्णव ब्राह्मण निवास करते थे। उनकी कन्या श्रीलक्ष्मी भी मूर्तिमती श्रीलक्ष्मी-स्वरूपिणी थी। श्रीवल्लभाचार्य कन्याको उपयुक्त वरके हाथमें समर्पण करनेके लिये चिन्तित थे। एक दिन श्रीलक्ष्मी गगास्नानके लिये गयी, दैवयोगसे गगाके किनारे श्रीलक्ष्मीके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार होनेपर मन-ही-मन दोनोने एक दूसरेको अगीकार कर लिया।

इधर उसी दिन श्रीवनमाली आचार्य नामक नवद्वीपवासी एक घटकने (कन्या तथा पात्र पक्षोमें सबध स्थापित करानेवाला व्यक्ति) मानो दैवप्रेरित होकर ही श्रीशचीदेवीके पास जाकर श्रीवल्लभाचार्यकी कन्याके साथ श्रीनिमाइके विवाहका प्रस्ताव उपस्थित किया। श्री-शचीदेवी बोली,—"मेरा निमाइ पितृहीन बालक है, आशीष दीजिए चिरायु हो, पहले पढना-लिखना सीखे तो पीछे उसके विवाहके विषयकी चिन्ता की जायगी।" श्रीशचीकी बातसे निराश होकर श्रीवनमाली घटक लौट गये। अचानक रास्तेमें श्रीनिमाइके साथ घटकका साक्षात्कार हो गया। घटक महाशय श्रीनिमाइके विवाहका प्रस्ताव लेकर उनकी माताके पास गए, किंतु श्रीशचीदेवी इस प्रस्तावको सुनी-अनसुनी कर दी,—यह बात घटकने श्रीनिमाइसे कहा। निमाइ तब घर लौटकर हँसते-हँसते अपनी मातासे बोले,—"मा, तुमने आचार्यसे अच्छी तरह सम्भाषण क्यो नही किया?" वनमाली घटकके द्वारा प्रस्तावित विवाहमें निमाइ सम्मत है, यह सकेत पाकर श्रीशचीदेवीने उसके दूसरे ही दिन घटक महाशयको पुन बुला भेजा और शीघ्र ही शुभ-विवाह सम्पन्न करानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीवनमाली आचार्यने भी श्रीवल्लभाचार्यसे मिलकर यह सम्बन्ध स्थिर किया।

श्रीवल्लभाचार्य तब घटक महाशयसे बोले कि मैं अत्यन्त गरीब हूँ, पाँच हरितकी मात्र देकर मे श्रीजगन्नाथ मिश्रके पुत्ररत्नके हाथमें अपनी कन्या प्रदान करूँगा, जामाताको अन्य दहेज देनेकी कोई क्षमता मुझमें नही है।

विवाहका शुभ दिन निश्चित हुआ। विवाहके पहले दिन श्री-निमाइकी अधिवास-क्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न हुई। दूसरे दिन शुभ गोधूलि-लग्नमे यात्रा करके श्रीनिमाइ श्रीबल्लभाचार्यके घर उपस्थित हुए तथा विधिपूर्वक श्रीलक्ष्मीदेवीका पाणिग्रहण किया।

दूसरे दिन सन्ध्याकालमें श्रीनिमाइ श्रीलक्ष्मीके सहित डोलीमें चढकर अपने घर लौटे। श्रीशचीमाता महालक्ष्मी पुत्रवधूको वरण करके घरमें लायी। तबसे श्रीशचीदेवी अपने घरमे अनेको अलौकिक दृश्य देखने लगी। कभी घरके बाहर अद्भुत ज्योति, कभी निमाइके बगलमें अग्निशिखाका दर्शन और कभी घरमे सर्वत्र पद्मकी गध प्राप्त करने लगी। 'श्रीनिमाइ और श्रीलक्ष्मीदेवी मनुष्य नही हैं—वैकुण्ठके श्रीलक्ष्मी-नारायण श्रीनवद्वीपमें श्रीलक्ष्मी-गौरनारायणके रूपमें अवतीर्ण है।' श्रीशचीदेवीके हृदयमें इस प्रकारके भाव उदय होने लगे।

चौदहवाँ परिच्छेद्

आत्म-प्रकाशकी भविष्यवाणी

श्रीनिमाइ पडित अध्ययन-रसमें मत्त होकर छात्रोके साथ नवद्वीप में भ्रमण करते। श्रीगगादास पडितके सिवा नवद्वीपमें दूसरा कोई भी पडित श्रीनिमाइकी व्याख्याका तात्पर्य भलीभाँति समझ नही सकते थे। नदीयाके नागरिकगण अपनी-अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार श्रीनिमाइके

नाना रूपमें दर्शन करने लगे। पाषण्ड-प्रकृतिके लोगोने उनको साक्षात् यम, रमणियोने मदन तथा पडितलोगोने बृहस्पतिके रूपमे भावानुकुल देखा। इधर वैष्णवगण विष्णुभक्ति-विहीन जगत्मे कब फिर शुद्ध-भक्तिका प्रकाश होगा, इस आशासे किसी प्रकार प्राण धारण करते थे। विद्याचर्चाके लिये सर्वप्रधान केन्द्र श्रीनवद्वीपमें विद्याकी प्राप्तिके लिये सभी देशोसे लोग आते थे। चटगाँवके रहनेवाले बहुतसे वैष्णव उस समय गगावास और अध्ययनके लिये नवद्वीपमे आकर रहते थे। अपराह्णकालमें सभी भागवतगण श्रीअद्वैतसभामें आकर मिलते थे। श्रीमुकुन्ददत्तके श्रीहरिकीर्तनसे वैष्णवोके हृदयमे आनन्दका श्रोत बह निकलता। श्रीनिमाइ भी इसी हेतु श्रीमुकुन्दके प्रति हृदयसे अत्यन्त प्रीति रखते थे। श्रीमुकुन्दको देखते ही श्रीनिमाइ न्यायकी 'फक्किका' पूछते और उस प्रसगको लेकर दोनोमें प्रेमका द्वन्द्व चलता था। श्री-श्रीवास आदि बडी उम्रके भक्तजनोको भी श्रीनिमाइ फक्किका पूछे बिना नही छोडते थे। श्रीनिमाइके डरसे सभी उनसे दूर-दूर रहनेकी चेष्टा करते थे। इधर भक्त लोग कृष्णकथाके सिवा और कुछ भी सुननेमें रुचि ही नही रखते थे और निमाइ भी न्यायकी फक्किकाके सिवा उनसे कुछ भी नही पूछते थे।

एक दिन श्रीनिमाइ पडित छात्रोके साथ राजपथसे चले जा रहे थे, उसी समय श्रीमुकुन्द भी गगा-स्नानके लिये जा रहे थे। श्रीनिमाइ को देखते ही श्रीमुकुन्दने छिपनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दके उद्देश्यको समझकर उनके साथी श्रीगोविन्दसे इस प्रकार कहा,—"मै समझ रहा हूँ कि मुकुन्द क्यो भाग रहा है। मुकुन्द समझता है कि मेरे साथ भेंट होनेपर बर्हिर्मुख व्यक्तिके साथ बातचीत हो जायगी। मुकुन्दके हृदयका भाव यह है कि वह स्वय वैष्णव-शास्त्र पढता है, और मै व्याकरणकी पजिका, वृत्ति, टीका प्रभृति जागतिक शास्त्र पढता हूँ। अब अधिक दिन नही, शीघ्र ही वह देख पायगा कि मै कितना बडा वैष्णव बनूँगा। मै पृथ्वीमें इतना बडा वैष्णव

बनूँगा कि ब्रह्मा-शिवादि वैष्णवगण मेरे द्वारपर आकर लोटेंगे। जो लोग अब मुझे देखकर भागते हैं, वे ही तब कोटि-कोटि कण्ठोसे मेरा गुण-गान करेंगे।"

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

श्रीनवद्वीपमें श्रीईश्वरपुरीपाद

'भक्तिरसके आदि-सूत्रधार'* और भक्तिरस-कल्पतरुके प्रथम अंकुर † सुप्रसिद्ध वैष्णव-सन्यासी-शिरोमणि श्रीमन् माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी श्रीगौडीय-वैष्णव-सम्प्रदायके पूर्व-गुरु हैं। इन्हींके शिष्य श्रीअद्वैतप्रभु, श्रीईश्वरपुरी, श्रीपरमानन्दपुरी, श्रीब्रह्मानन्दपुरी, श्रीरंग पुरी, श्रीकेशवपुरी, श्रीकृष्णानन्दपुरी, श्रीसुखानन्दपुरी, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीरघुपति उपाध्याय आदि हैं। साक्षात् विष्णुतत्व और भगवान् होकर भी जीवोके शिक्षार्थ श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत-प्रभुने श्रीमन् माधवेन्द्र पुरीपादकी शिष्य-लीला प्रकट की थी।

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके वर्णनके अनुसार श्रीमन् माधवेन्द्रपुरीके साथ बारह वर्षकी उम्रमें श्रीनित्यानन्दप्रभु तीर्थ-पर्यटनके लिये निकले और आठ वर्षोतक भारतके समस्त तीर्थोमें भ्रमण किया।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रिय शिष्य थे—श्रीईश्वरपुरी। वे 'हालि-शहर'के समीपवर्ती 'कुमारहट्ट'में ब्राह्मणवशमे आविर्भूत हुए थे।

श्रीनिमाइ पडित जिस समय नवद्वीपमे अध्ययन और अध्यापनाकी लीला कर रहे थे, उस समय एक दिन छद्मवेशमें श्रीईश्वरपुरी नवद्वीपमें

* चै० भा० आ० ६।१६०, † चै० च० आ० ६।१० तथा अ० ८।३४

आकर अद्वैत-सभामे उपस्थित हुए । श्रीअद्वैताचार्यने श्रीईश्वरपुरीके अपूर्व तेजको देखकर उन्हें वैष्णव-सन्यासी समझा। तब श्रीमुकुन्दने अद्वैत-सभामें एक कृष्णकीर्तन आरम्भ किया। श्रीईश्वरपुरीके अगमें कृष्णप्रेमके अपूर्व अष्ट सात्विक विकारसमूह प्रकट हो उठे। पश्चात् सब लोगोने इस प्रेमिक सन्यासीको 'ईश्वरपुरी'के नामसे जाना।

एक दिन श्रीनिमाइ अध्यापन करके घर लौट रहे थे, उसी समय दैवात् मार्गमें श्रीईश्वरपुरीके साथ निमाइका साक्षात्कार हो गया। श्रीपाद श्रीईश्वरपुरीने निमाइकी अपूर्व कान्तिको देखकर उनका परिचय तथा उनके अध्यापित शास्त्रके विषयमें पूछताछ की। श्रीनिमाइने श्रीईश्वरपुरीको अपने घर भिक्षाके लिये निमन्त्रित किया तथा बहुत ही आदरपूर्वक साथ लेते आये। श्रीशचीमाताने श्रीकृष्णका नैवेद्य तैयार करके श्रीईश्वरपुरीको भिक्षा करायी। श्रीनिमाइके साथ श्रीकृष्ण-प्रसगमे बोलते-बोलते श्रीईश्वरपुरी-पाद प्रेममे विह्वल हो गये। नवद्वीपमे श्रीगोपीनाथ आचार्यके घर श्रीपुरीपादने कई महीने अवस्थान किया था। शिशुकालसे ही परम विरक्त श्रीगदाधर पडितमें प्रेमके लक्षणोको देखकर श्रीईश्वरपुरी श्रीगदाधरके प्रति अत्यन्त ही स्नेहयुक्त हो गये तथा श्रीगदाधरको श्रीपुरीपादने स्व-रचित **'श्रीकृष्णलीलामृत'** पुस्तक पढायी। अध्ययन और अध्यापन समाप्त करके प्रतिदिन-सध्याके समय श्रीनिमाइ श्रीईश्वरपुरीको नमस्कार करनेके लिये श्रीगोपीनाथके घर जाते थे। एक दिन श्रीईश्वरपुरीने श्रीनिमाइ पडितसे **'श्रीकृष्ण-लीलामृत',** पुस्तक रचनामें कही कोई दोष तो नही रह गया है, यह परीक्षा करनेके लिये विशेष अनुरोध किया। श्रीनिमाइ पडित बोले, "जो ग्रन्थ एकान्तिक भगवत्भक्तके द्वारा रचा गया है, उसमें कोई दोष रह नही सकता। जो व्यक्ति उसमे दोष देखता है, उसीका दोष है, वह व्यक्ति ही अपराधी और मूर्ख है। शुद्ध-भक्तका कवित्व किसी प्रकारका ही क्यो न हो, उससे श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होते हैं। श्रीकृष्णको जिससे सन्तोष है, वही सम्पूर्णरूपसे निर्दोष है। भक्तके वाक्यमें

व्याकरणादिजनक किसी प्रकारके दोषको भक्तिवश भावग्राही भगवान् ग्रहण नही करते। ऐसा कौन दु साहसी व्यक्ति होगा, जो श्रीईश्वरपुरी के समान महाभागवतकी भगवत्कथाके वर्णनमे दोष निकालनेमे समर्थ होगा ?"

तथापि श्रीईश्वरपुरी अपने ग्रन्थकी समालोचनाके लिये श्रीनिमाइ पडितको प्रतिदिन ही बारम्बार अनुरोध करने लगे। इस प्रकार श्रीईश्वरपुरी श्रीनिमाइके साथ प्रतिदिन दो-चार घडी नाना प्रकारका विचार करते। एक दिन श्रीईश्वरपुरीके द्वारा रचित एक श्लोकको सुनकर श्रीनिमाइ पडितने कौतुकवश कहा कि, इस श्लोकमें धातु 'आत्मनेपदी' न होकर 'परस्मैपदी' होनेसे ही ठीक होता। पश्चात फिर एक दिन श्रीनिमाइके श्रीईश्वरपुरीके पास जानेपर श्रीपुरीपादने निमाइसे कहा,—"तुम जिस धातुको आत्मनेपदीके रूपमे स्वीकार नही करते हो, उसे मैंने आत्मनेपदीके रूपमे ही साधा है।" प्रभुने भी भृत्यके जय-प्रदर्शन और महिमा-वर्द्धनके लिये उसमें और कोई दोषा-रोपण नही किया। श्रीईश्वरपुरी तीर्थपर्यटन करनेके उद्देश्यसे नवद्वीपसे अन्यत्र चले गये।

सोलहवाँ परिच्छेद्

श्रीनिमाइका नगर-भ्रमण

श्रीनिमाइ शिष्योको साथ लेकर अपने इच्छानुसार नगर-भ्रमण करते थे। एक दिन मार्गमें श्रीमुकुन्दके साथ दैवात् भेंट हो गयी। श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दसे दूर-ही-दूर रहनेका कारण पूछा और साथ ही बतला दिया कि इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना श्रीमुकुन्दका छुटकारा

नही हो सकता। श्रीमुकुन्द समझते थे कि श्रीनिमाइका केवल व्याकरण-शास्त्रमे ही अधिकार है, अतएव श्रीमुकुन्दने श्रीनिमाइसे अलकार-शास्त्रके कूट-प्रश्न कर निरुत्तर करनेका सकल्प किया। परन्तु श्रीनिमाइने श्रीमुकुन्दके समस्त कवित्वको सपूर्णरूपसे अलग-अलग करके उसमें नाना प्रकारके आलकारिक दोष प्रदर्शित किये। श्रीमुकुन्द श्रीनिमाइकी चरणधूलि लेकर सोचने लगे,—

मनुष्येर एमत पाण्डित्य आछे कोथा !
हेन शास्त्र नाहिक, अभ्यास नाहि यथा ।।

—चै० भा० आ० १२।१८

[मनुष्यका इतना पाण्डित्य कहॉ है ! ऐसा शास्त्र नही है, जिसका अभ्यास न हो।]

जो लोग समझते थे कि श्रीनिमाइ केवल मात्र व्याकरण-शास्त्रके पडित है, श्रीमुकुन्दने उनकी उस भ्रान्त धारणाका निराकरण कर दिया।

फिर एक दिन श्रीगदाधर पडितके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार हुआ। श्रीनिमाइने श्रीगदाधरसे मुक्तिका लक्षण पूछा। श्रीगदाधरने न्यायशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार श्रीनिमाइ पडितके सामने मुक्तिके लक्षणका वर्णन किया, श्रीनिमाइने उसमें नाना प्रकारके दोष दिखलाये। "पूर्णरूपसे दु खनाश ही मुक्तिका लक्षण है"—श्रीगदाधरकी इस उक्तिका निमाइने खडन कर दिया।

प्रतिदिन अपराह्णमें गगातटपर बैठकर श्रीनिमाइ छात्रोके सामने शास्त्रकी व्याख्या करते थे। वैष्णव लोग भी श्रीनिमाइकी शास्त्र-व्याख्या सुनकर प्रसन्न होते थे , परन्तु वे मन-ही-मन सोचते थे कि,—श्रीनिमाइके जैसे विद्वान् व्यक्तिमे कृष्णभक्ति होती तो सभी कुछ सफल हो जाता। भागवतगण "निमाइकी कृष्णमें मति हो"—भीतर-ही-"भीतर सर्वदा ऐसी प्रार्थना करते थे । कोई-कोई प्रेमके स्वभाववश—'निमाइको कृष्ण-भक्ति प्राप्त हो"—इस प्रकारका आशीर्वाद भी दे देते थे। प्रेमका ऐसा ही स्वभाव है कि उसमें प्रेमी भक्त अपने

प्रेमास्पदको ऐश्वर्यमय प्रभुके रूपमें न देखकर पाल्यभावमें अनुभव करता है। नही तो जो स्वय कृष्ण होकर भी एक दिन श्रेष्ठ कृष्ण-भक्तके वेशमें जगत्में कृष्णभक्तिका सर्वश्रेष्ठ आदर्श प्रकट करेंगे, उनको भी "कृष्णभक्ति प्राप्त हो"का आशीर्वाद देनेका क्या रहस्य है? श्रीश्रीवासादि भागवतगणको देखते ही श्रीनिमाइ नमस्कार करते थे और भक्तके आशीर्वादके फलसे ही कृष्णभक्ति प्राप्त होती है,—यह सबको बतलाते थे। विधर्मिगण भी एक बार श्रीनिमाइके दर्शन करनेपर उनके प्रति आकृष्ट हुए बिना नही रह सकते थे।

एक बार श्रीनिमाइने वायुव्याधिके बहाने प्रेम-भक्तिके समस्त सात्विक विकारोको प्रकट किया। उस समय प्रेम-स्वभाव बन्धु-बान्धवगण श्रीनिमाइके सिरपर नाना प्रकराके पकाए तैलोका प्रयोग करने लगे। उसी समय श्रीनिमाइ किसी-किसी दिन दर्प और हुकारके साथ अपने स्वरूप और तत्वका प्रकाश कर डालते थे।

श्रीनिमाइ दोपहरमें गगामें शिष्योके साथ जलक्रीडा करके घर लौटते थे, श्रीकृष्णकी पूजा करते, श्रीतुलसीमें जल देते और श्रीतुलसीकी परिक्रमा कर श्रीलक्ष्मीप्रिया देवीका दिया हुआ भोजन करते थे। कुछ समय विश्राम करके पुन अध्यापनके लिये गमन करते तथा नगरमें जाकर नागरिक लोगोके साथ हँस-हँसकर सम्भाषण तथा नाना प्रकारके कौतुक-विलासादि करते थे।

किसी दिन श्रीनिमाइ जुलाहेके घर जाकर वस्त्र माँगते और उन चीजोको बिना मूल्य ले लेते थे। किसी दिन वे गोपके घर जाकर गोपलोगोको दही-दूध लानेके लिये कहते। गोपगण भी निमाइको 'मामा' कहकर बातें करते और नाना प्रकारका विनोद करके बिना मूल्य प्रचुर दूध-दही आदि प्रदान करते थे। श्रीनिमाइ हँसी-हँसीमें उनके सामने निज तत्व प्रकट कर देते थे। किसी दिन गन्धीके घरसे नाना प्रकारके दिव्य गन्ध, किसी दिन मालीके घरसे नाना प्रकारकी पुष्प-माला, किसी दिन तम्बोलीके यहाँसे बिना मूल्य पान आदि लेकर

श्रीनिमाइ उनको कृतार्थ करते थे। सभी श्रीनिमाइके अनुपम रूपको देखकर मुग्ध हो समस्त वस्तु बिना ही मूल्य प्रदान कर सकनेमें अपने-आपको धन्यातिधन्य मानते थे। किसी दिन शखके व्यापारीके घर उपस्थित होनेपर वह व्यापारी श्रीगौरनारायणके हाथमे शख प्रदान कर उन्हें प्रणाम करते और बदलेमे कुछ भी नही चाहते थे।

एक दिन श्रीनिमाइने किसी दैवज्ञ (ज्योतिषी)के यहाँ जाकर अपने पूर्व जन्मकी बात पूछी। ज्योतिषी गोपाल-मन्त्रका जप करके जब गणना करने लगे तो, उन्हे नाना प्रकारके ईश्वरतत्व और अद्‌भुत रूपराशिके दर्शन होने लगे। इन सारे अद्‌भुत अतिमर्त्य रूपोको देखते-देखते वह ज्योतिषी सम्मुखस्थ श्रीगौरागका पुन-पुन ध्यान करने लगे। परन्तु श्रीगौरागकी मायाके प्रभावसे उनको समझ नही सके, वे अत्यन्त विस्मित होकर सोचने लगे कि जान पडता है कि यह कोई महामन्त्रविद् अथवा कोई देवता उनकी परीक्षा करनेके लिये ब्राह्मण-वेशमें उनके पास उपस्थित हुए है।

एक दिन श्रीनिमाइ खोलाबेचा* ब्राह्मण श्रीधरके घर गये। श्रीश्रीधर लोगोकी दृष्टिमें अत्यन्त दरिद्र थे, उनकी धोतीमें सैकडो पैबन्द लगे थे, वे जीर्णशीर्ण पर्णकुटीमें रहते थे, घरमें धातुका बर्तन एक भी नही, साधारण लोहेके बर्तनमें पानी पीते थे, थोड†-केला-मोचा‡ आदि साधारण वस्तुओंको बेचकर जो कुछ पाते थे, उसीके द्वारा अत्यन्त श्रद्धाके साथ भगवान्‌का सामान्य नैवेद्य सग्रह करते थे।

श्रीनिमाइने श्रीधरके पास जाकर पूछा,—"तुम श्रीलक्ष्मीकान्तकी सेवा करते हो, फिर भी तुम ऐसे दरिद्र क्यो हो? दूसरे लोग चण्डी, विषहरी आदि देवताओंकी पूजा करके कितनी सासारिक उन्नति करते

---

*केलेके पेडके ऊपरी भागको बेचनेवाले।

†फूले हुए केलेके पेडके भीतरी नरम डडेको, 'थोड' कहते है, इसकी भाजी बनती है।

‡केलेके फूलको 'मोचा' कहते है, इसकी भी भाजी बनती है।

है ?" उत्तरमें श्रीश्रीधरने कहा,—"राजा सुन्दर महलमे रहकर, बढिया द्रव्योका भोजन करके तथा दूधके फेनके समान शय्यापर सोकर जैसे दिन काटते है, पक्षी वृक्षके ऊपर घोसला बनाकर और नाना स्थानोसे लायी हुई यत्किंचित वस्तुएँ भोजन करके भी उसी प्रकार दिन काट लेते है। सभी अपना-अपना कर्मफल भोग करते है।"* श्री-निमाइने कहा,—"तुम्हारे पास बहुत गुप्त धन है, तुम उसे छिपाये रखते हो, देखता हूँ कबतक छिपाकर रख सकते हो। मै शीघ्र ही लोगोके सामने उसे प्रकट कर दूंगा।" इस प्रकार श्रीनिमाइ श्री-श्रीधरके साथ हँसी-विनोदके बहाने भक्तकी महिमा प्रकट करते और श्रीश्रीधरसे प्रतिदिन बिना मूल्य केलेका थोड, केला और मूली आदि लाया करते थे।

एक दिन आकाशमे पूर्णचन्द्रको देखकर श्रीनिमाइको 'श्रीवृन्दावन-चन्द्रके भावका उद्दीपन हो गया और उसी भावमे अपूर्व मुरलीध्वनि करने लगे। केवल श्रीशचीमाताके सिवा और कोई भी उस मुरली-ध्वनिको नही सुन सका। श्रीशचीदेवीने इस मधुर ध्वनिको सुनकर घरसे बाहर आकर देखा कि श्रीनिमाइ श्रीविष्णु-मन्दिरके द्वारपर बैठा है। श्रीशचीदेवीने वहाँ जाकर फिर उस वंशी-ध्वनिको नही सुन पाया। परन्तु वहाँ देखा कि पुत्रके वक्ष-स्थलपर साक्षात् चन्द्रमण्डल शोभा पा रहा है।

---

* रत्न घरे थाके, राजा दिव्य खाय, परे'।
पक्षिगण थाके, देख, वृक्षेर उपरे॥
काल पुन सबार समान हइ' याय।
सबे निज-कर्म भुञ्जे ईश्वर-इच्छाय॥
—चै० भा० आ० १२।१८९-१९०

[राजाके घरमें रत्न रहते है, वह बढिया खाता पहनता है, देखो पक्षिगण वृक्षके ऊपर रहते हैं। सबका काल समान ही बीतता है। सभी ईश्वरकी इच्छासे अपने कर्मका फल भोग करते है।]

एक दिन श्रीश्रीवास पडित राहमे श्रीनिमाइको देखकर बोले,—"निमाइ, तुम अब भी श्रीकृष्णके भजनमे मन न लगाकर क्यो व्यर्थ दिन काट रहे हो ? रातदिन पढने-पढानेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? लोग कृष्णभक्तिको जाननेके लिये ही पढते-सुनते है , यदि वह कृष्णभक्ति ही प्राप्त न हुई, तो फिर इस प्रकारकी निष्फल विद्यासे क्या लाभ ? अतएव और अधिक समय व्यर्थ नष्ट न करो।" श्रीनिमाइ अपने भक्तके मुखसे यह बात सुनकर बोले,—"पडित, तुम भक्त हो, तुम्हारी कृपासे मुझे निश्चय ही कृष्ण-भजनकी प्राप्ति होगी।"

सतरहवाँ परिच्छेद

दिग्विजयि-जय

जिस समय श्रीनिमाइ पडित नवद्वीपमें अध्यापकोके शिरोमणि होकर अवस्थान करते थे, उसी समय सरस्वतीसे वर प्राप्त एक दिग्वि-जयी महापडित सब देशोके पडितोको तर्कयुद्धमें जीतकर पडित-समाजके प्रधान केन्द्र नवद्वीपके पडितोको जीतनेके लिये आये। दिग्विजयीके साथ हाथी, घोडे और बहुतसे शिष्य थे। दिग्विजयीने गर्वके साथ आकर पडितोको तर्कयुद्धके लिये ललकारा। नवद्वीपकी पडितमडली इस प्रकार एक महादिग्विजयीके आनेका समाचार सुनकर बहुत ही चचल और चिंतित हो उठी।

इधर श्रीनिमाइ पडितके छात्रोने जब यह समाचार श्रीनिमाइको जाकर सुनाया तब वे उन लोगोसे बोले,—"दर्पहारी भगवान् अहकारीके दर्पको सदा ही चूर्ण करते हैं। फलवान् वृक्ष और गुणवान् जन सदा ही विनीत रहते है। हैहय, नहुष, वेण, वाण, नरक, रावण आदि राजा

अपनेको महादिग्विजयी मानकर अहकारसे प्रमत्त हो गये थे। अन्तमें भगवान्ने उनके सारे गर्वको चूर्ण कर दिया था। नवद्वीपमें नये आये हुए इस दिग्विजयीके अहकारको भी भगवान् ही शीघ्र चूर्ण-चूर्ण कर देंगे।"—इतना कहकर श्रीनिमाइ पडित उसी दिन सध्याकालमें छात्रोके साथ गगाके तीर बैठकर दिग्विजयीके उद्धारकी बात सोच रहे थे। उस दिन थी पूर्णिमा-तिथि , रातके पूर्वकालमें ही दिग्विजयी श्रीनिमाइ पडितके समीप आकर उपस्थित हो गये। श्रीनिमाइके छात्रोसे अति अद्भुत तेज और कान्तिसे युक्त श्रीनिमाइ पडितका परिचय प्राप्तकर दिग्विजयी, निमाइ पडितसे बातें करने लगे। श्रीनिमाइने दिग्विजयीकी सादर अभ्यर्थना करके कहा,—"सुना है कि आप काव्यशास्त्रके अतुलनीय पडित है, यदि आप पापनाशिनी गगाकी महिमाका वर्णन करे, तो उसे सुनकर सबके पाप-ताप दूर हो सकते है।" श्रीनिमाइकी यह बात सुनते ही दिग्विजयी तत्काल एक ही साथ सैकडो मेघगर्जनकी ध्वनिकी भाँति गम्भीर स्वरसे गगाकी महिमाके श्लोक अति शीघ्रतापूर्वक उच्चारण करने लगे। सभी दिग्विजयीकी इस प्रकारकी कवित्वशक्ति देखकर दग रह गये। दिग्विजयी एक पहर तक इस प्रकार अनर्गल श्लोक उच्चारण करके चुप हुए, तब श्रीनिमाइने उस स्तुतिमें से एक पूर्ण श्लोक* उच्चारण करके दिग्विजयीसे उसकी

* दिग्विजयीका रचित श्लोक यह था —

"महत्त्व गगाया सततमिदमाभाति नितरा
यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्ति-सुभगा।
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा।
भवानीभर्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुतगुणा॥"

अर्थात् श्रीगगाजीका यह महत्त्व सर्वदा निश्चित रूपसे देदीप्यमान हो रहा है कि इन्होने श्रीविष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न होनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, द्वितीय श्रीलक्ष्मीके समान इनका चरण सुरनर-गणके द्वारा पूजित होता है, तथा यह भवानी-भर्ता (श्रीशिवजी)के मस्तकमें धृत होकर अद्भुत गुणशालिनी हो गयी है।

व्याख्या करनेके लिये कहा। इससे दिग्विजयीने विस्मित होकर निमाइसे पूछा,—"मै तो इतनी देर आँधीके समान श्लोक पढता रहा, आपने किस प्रकार इसके बीचसे इस श्लोकको स्मरण कर लिया ?"

श्रीनिमाइ पडित बोले,—"आप जिस प्रकार देवताके वरदानसे श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, उसी प्रकार कोई श्रुतिधर भी हो सकता है।" श्रीनिमाइ पडितने दिग्विजयी-रचित उस श्लोकके गुण-दोषोका विचार करनेके लिये कहा। तब दिग्विजयी स्वरचित श्लोकके सारे गुण ही वर्णन करने लगे। तब श्रीनिमाइ पडित उनसे बोले कि,—"यदि आप असन्तुष्ट न हो तो मैं आपके कवित्वके विषयमे कुछ विचार करूँ। आपके उच्चारित श्लोकमे दो 'अविमृष्ट-विधेयाश' (अथवा 'विधेया-विमर्श') नामक दोष, एक 'विरुद्धमति' (अथवा 'विरुद्धमतिकृत्') नामक दोष, एक 'भग्नक्रम' (अथवा 'भग्न-प्रक्रमता') नामक दोष, एक 'पुनरात्त' (या 'समाप्तपुनरात्तता') नामक दोष—कुल ये पाँच दोष हैं। इसमें 'अनुप्रास' और 'पुनरुक्तवदाभास'—ये दो शब्दालकार तथा 'उपमा', 'विरोधाभास' और 'अनुमान' ये तीन अर्थालकार—कुल पाँच अलकार हैं। श्लोकस्थ इन पाँच दोषो और पाँचो अलकारोका विवेचन कर रहा हूँ, सुनिये।

(१) 'इद' (यह)—यह 'उद्देश्य'-अश या 'अनुवाद' पद 'महत्व गंगाया' (गगाका महत्त्व) —इस मूल 'विधेय' अशके पूर्व उक्त न होकर बादमें उक्त होनेके कारण 'अविमृष्ट-विधेयाश' दोष आ गया है। 'अनुवाद' या ज्ञातवस्तुके विषयमें पूर्वमें उल्लेख न करके तत्सबन्धी अज्ञात विषय या 'विधेय'का पूर्वमें उल्लेख करने पर वाक्यार्थ बोधमे बाधा उत्पन्न होती है। (२) 'द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव' (द्वितीय-श्रीलक्ष्मीके समान)—इस सामासिक पदमें विधेयवाचक 'द्वितीय' शब्दके बाद अनुवादवाचक 'श्रीलक्ष्मी' शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे 'अविमृष्ट-विधेयाश' दोष तो हुआ ही है, अतिरिक्त इसके समासका प्रयोजन गौण होकर श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ श्रीगगाजीकी तुल्यताका बोध करनेवाला

विवक्षित अर्थ भी नष्ट हो गया है। (३) 'भवानी' शब्दमें भव-पत्नी या शिव-पत्नी सतीका अर्थ निहित है, अतएव 'भवानीभर्ता' पदसे शिवका बोध होनेपर भी 'शिवपत्नीके भर्ता' अर्थात् शिवपत्नी भवानीके शिवके अतिरिक्त भी दूसरे कोई स्वामी है, इस प्रकारका विरुद्ध या प्रतिकूल अर्थ व्यञ्जित होनेसे 'विरुद्धमतिकृत्' नामक दोष होता है। (४) श्लोकके चतुर्थपादमें 'भवानीभर्त्तुर्या शिरसि विभवति' (जो महादेवके मस्तकपर विराजमान है) यहाँ 'विभवति' क्रियापदके उल्लेखमें ही वाक्यकी समाप्ति हो जाती है , वाक्यकी समाप्तिके बाद फिर 'अद्भुत-गुणा' (अद्भुत-गुणशालिनी)—इस विशेषणपदका प्रयोग करनेसे 'समाप्तपुनरात्तता' नामक दोष आ गया। (५) श्लोकके प्रथमपादमें 'त'का अनुप्रास, तृतीयपादमें 'र'का अनुप्रास तथा चतुर्थपादमें 'भ'का अनुप्रास है, परन्तु द्वितीयपादमें कोई अनुप्रास न होनेके कारण श्लोकका आद्यन्त एकसा नही हो पाया। अतएव इसमे 'भग्नक्रम' नामक दोष हो गया है। श्लोकमें ये पाँच दोष है।

अब पाँच अलकारोका विचार सुनिये। (१) श्लोकके प्रथम, तृतीय और चतुर्थ—इन तीन पादोमें 'अनुप्रास' अलकार है। (२) 'श्री' शब्दका एक अर्थ है—'लक्ष्मी'। अतएव 'श्रीलक्ष्मी' शब्द कहनेपर एक लक्ष्मी शब्द ही पुनरुक्त-सा जान पडता है। परन्तु पृथक्-पृथक् अर्थमें व्यवहृत होनेके कारण वस्तुत यहाँ पुनरुक्ति नही है। यहाँ 'पुनरुक्तवदाभास'-नामक अलकार हो गया है। (३) 'द्वितीय-श्रीलक्ष्मी-रिव' पदमें उपमान लक्ष्मीमें तथा उपमेय गगामें अर्चनीयत्वरूप समान धर्मका सम्बन्ध होनेके कारण 'उपमा' अलकार हुआ। (४) साधारणत. गगामें ही (जलमें ही) कमल उत्पन्न होता है, कभी कमलसे गगाकी (जलकी) उत्पत्ति नही होती। श्लोकस्थ 'एषा श्रीविष्णोश्चरण-कमलोत्पत्ति-सुभगा' (श्रीविष्णुके चरण-कमलसे उत्पन्न होनेके कारण यह गगा सौभाग्यवती)—इस वाक्यमें साधारण नियमके साथ विरोध दीख पडता है ; परन्तु प्रकृत-पक्षमें यहाँ कोई विरोध नही है, क्योकि,

ईश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे श्रीविष्णुके चरण-कमलसे गगाका जन्म सभव हो गया है। अतएव यहाँ 'विरोधाभास' अलकार हुआ। (५) श्रीविष्णुके श्रीचरणसे उत्पत्तिरूप साधन द्वारा गगाके महत्वरूप साध्य-वस्तुके साधनमें 'अनुमान' अलकार है।

इस प्रकार यद्यपि इस श्लोकमें पाँच अलकार दिखाई देते है, तथापि पूर्वकथित पाँच दोषोके कारण सब विनष्ट हो गया, क्योकि भरतमुनि कहते हैं,—

'रसालंकारवत् काव्यं दोषयुक् चेद्विभूषितम् ।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि शित्रेणैकेन दुर्भगम् ।।'

[नाना प्रकारके भूषणोसे भूषित सुन्दर देह एकमात्र श्वेत कुष्ठके द्वारा दूषित होनेपर जिस प्रकार अनादृत होती है, उसी प्रकार काव्य नाना प्रकारके अलकारोसे भूषित होनेपर भी यदि उसमे एक भी दोष हो तो वह अनादृत हो जाता है।]

इसके पश्चात् दिग्विजयीकी सारी प्रतिभा म्लान हो उठी। श्रीनिमाइके शिष्यगण हास्य करनेके लिये उद्यत हो रहे थे कि श्रीनिमाइने उनको रोक दिया तथा दिग्विजयीको नाना प्रकारसे आश्वासन दिया और उत्साहित करके कहा कि वे उस रात्रिको विश्राम करे और ग्रथादि देखकर पुन दूसरे दिन आवें।

दिग्विजयी मनमें अत्यन्त लज्जित और दु खित होकर सोचने लगे कि मैने षड्दर्शनके असाधारण पडितको भी पराजित किया है, परन्तु आज दैवदुर्विपाकवश अन्तमें शिशु-शास्त्र व्याकरणके एक तरुण अध्यापकके द्वारा मुझे पराजित होना पडा। इसका रहस्य क्या है? हो सकता है कि श्रीसरस्वती देवीके चरणोमें ही मुझसे कोई अपराध हो गया होगा—यह सोचकर सरस्वती-मन्त्र जपते-जपते वह कवि निद्रित हो गये। स्वप्नमें देखते क्या है कि श्रीसरस्वती देवी उनके समीप उपस्थित होकर श्रीनिमाइ पडितके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहती है,—"श्रीनिमाइ ठाकुर इस पृथ्वीके पडित नही है, यह सर्वशक्ति-

मान् स्वय भगवान् है , उनकी ही स्वरूप-शक्ति पराविद्याकी मैं छाया हूँ। इतने दिनोके बाद तुमको मन्त्रजपका फल प्राप्त हुआ है, तुम्हें अनन्त-ब्रह्माण्डके स्वामीका दर्शन प्राप्त हुआ है, तुम शीघ्र ही श्रीनिमाइके चरणोमें क्षमाप्रार्थना और आत्म-समर्पण करो।"

दिग्विजयी निद्रासे उठते ही श्रीनिमाइके पास पहुँचे तथा अपने स्वप्नकी बात और सरस्वतीदेवीके उपदेशको उनसे निवेदन किया। श्रीनिमाइने दिग्विजयीसे वेदोमें वर्णित पराविद्याकी बात कही, **भक्ति ही पराविद्या** है, भक्तिकी प्राप्ति ही विद्याकी अवधि है। पराविद्याके प्राप्त होनेपर जीव तृणादपि सुनीच बन जाता है। पराविद्यारूपी वधूका जीवन ही श्रीहरिनाम है। राजाका राज्यसुख, योगीका योगसुख, ज्ञानीका ब्रह्मसुख या मुक्तिसुख—सभी पराविद्याके सामने अति तुच्छ है।

श्रीनिमाइ पडितने जब दिग्विजयीको जीत लिया, तो नवद्वीप-निवासी पडितोने श्रीनिमाइको **'वादिसिह'** पदवीसे विभूषित करनेकी इच्छा प्रकट की। देश-विदेशमें श्रीनिमाइकी कीर्ति फैल गई।

इस दिग्विजयी पडितको कोई-कोई निम्बार्क-सम्प्रदायके गागुल्य भट्टके शिष्य 'केशव भट्ट', तथा कोई इनको 'केशव काश्मीरी' बतलाते है। 'निम्बार्क-सम्प्रदाय'की प्रधान गद्दी 'सलीमाबाद'में इस सम्प्रदायकी शिष्य-परम्पराके वर्णनमें देखा जाता है कि,—गोपीनाथ भट्टके शिष्य केशवभट्ट, केशवभट्टके शिष्य गागुल्य भट्ट और गागुल्य भट्टके शिष्य 'केशव काश्मीरी' हुए हैं।' श्रीभक्तिरत्नाकर'में गागुल्य भट्टके स्थानमें 'गोकुलभट्ट' नाम देखा जाता है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत छ गोस्वामि-योमें अन्यतम श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने 'श्रीहरिभक्ति-विलास' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीकामे 'क्रमदीपिका'के लेखक 'केशव भट्ट'का नाम उल्लेख किया है। आगे चलकर इसी केशवभट्टको निम्बार्क-सम्प्रदायकी गुरु-परम्पराके अन्तर्गत ले लिया गया है, बहुतोका ऐसा विचार है।

अठारहवाँ परिच्छेद
श्रीनिमाइका पूर्वबंग-विजय और श्रीलक्ष्मीदेवीका अन्तर्धान

श्रीनिमाइने अपनी गार्हस्थ्य-लीलामें जीवजगत्को आदर्श गृहस्थ-धर्मकी शिक्षा दी है। गृहस्थको चाहिये कि, वह घरके नित्य प्रभु श्रीविष्णु भगवान्की विधिपूर्वक पूजा-अनुष्ठान करे। वह श्रीभगवान्के प्रसाद, वस्त्रादि उपकरणोंको अतिथि, वैष्णव-अभ्यागत तथा सन्यासियोंमें वितरण करे। ब्राह्मण अयाचित प्रतिग्रह-धर्मको स्वीकार करनेपर भी समस्त भोज्य सामग्री, अर्थ, वस्त्रादि मुक्तहस्तसे सत्पात्रो और दीन-दु खियोंको दान करे। अतिथि-सम्मान, विशेषत वैष्णव-सन्यासीका सम्मान करना गृहस्थके लिये अपरिहार्य कर्त्तव्य है, गृहस्थ अपनी पत्नी को कभी अपने भोग सुखमे नियुक्त न करके अतिथियो और भगवद्भक्त सन्यासियोंकी भिक्षाके लिये उपयोगी विष्णु-नैवेद्य तैयार करने तथा विष्णु-सेवा कार्यमे नियुक्त करे। यदि गृहस्थ एकदम दरिद्र भी हो, तथापि तृण, जल, आसन अथवा मधुर वाक्यके द्वारा अतिथिकी पूजा करे। अतिथिकी सेवा करना गृहस्थमात्रके लिये परम धर्म है।

प्रभु से परम-व्ययी ईश्वर-व्यभार ।
दु:खितेरे निरवधि देन पुरस्कार ।।
दु:खीरे देखिले प्रभु बड़ दया करि' ।
अन्न, वस्त्र, कड़ि-पाति देन गौरहरि ।।
निरवधि अतिथि आइसे प्रभु-घरे ।
या'र येन योग्य प्रभु देन सवाकारे ।।
कोनदिन सन्न्यासी आइसे दश बिश ।
सबा' निमन्त्रेन प्रभु हइया हरिष ।।

सेइक्षणे कहि' पाठायेन जननीरे ।
कुडि सन्न्यासीर भिक्षा झाठ करिवारे ।।

—चै० भा० आ० १४।११-१५

[वे प्रभु अत्यन्त व्यय करनेवाले तथा ईश्वरकी नाईं व्यवहार करने-वाले हैं । दुखियोको निरन्तर सहायता प्रदान करते हैं । दुखियोको देखकर प्रभु श्रीगौरहरि अत्यन्त दया परवश हो उन्हें अन्न-वस्त्र, पैसा-रुपया आदि देते हैं । प्रभुके घर निरन्तर अतिथि आते हैं । जो जिसके योग्य होता हैं, प्रभु सबको वही देते हैं । किसी दिन दस-बीस जन सन्यासी उपस्थित होते तो प्रभु उनका सानन्द हृदयसे स्वागत करते और उसी क्षण माताजीको कहला भेजते कि बीस जन सन्यासी के भोजन की शीघ्र व्यवस्था करें ।]

तबे लक्ष्मीदेवी गिया परम-सन्तोषे ।
रान्धेन विशेष, तबे प्रभु आसि' वैसे ।।
संन्यासिगणेरे प्रभु आपने बसिया ।
तुष्ट करि' पाठायेन भिक्षा कराइया ।।

—चै० भा० आ० १४।१८-१६

[तब श्रीलक्ष्मीदेवी जाकर परम सन्तोषके साथ अच्छी-अच्छी रसोई बनाती हैं, फिर प्रभु आकर बैठते हैं और सन्यासियोको प्रभु स्वय बैठकर उन्हे खिलाते तथा सन्तुष्ट करके भेजते हैं ।]

गृहस्थेरे महाप्रभु शिखायेन धर्म ।
"अतिथिर सेवा—गृहस्थेर मूल कर्म ।।
गृहस्थ हइया अतिथि-सेवा ना करें' ।
पशु-पक्षी हैते 'अधम' बलि' ता'रे ।।"

—चै० भा० आ० १४।२१-२२

[महाप्रभु गृहस्थको धर्म सिखलाते हैं कि अतिथिकी सेवा गृहस्थका मूल कर्म है । गृहस्थ होकर जो अतिथि-सेवा नहीं करता उसको पशु-पक्षीसे भी 'अधम' कहते हैं ।]

स्वय श्रीलक्ष्मी-नारायण श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीगौरसुन्दरके रूपमे अवतीर्ण हुए है, यह जानकर श्रीब्रह्मा-शिव-शुक-व्यास-नारदादि भिक्षुकके वेषमे भगवत्प्रसाद-प्राप्तिकी लालसासे श्रीमायापुरमें श्रीनिमाइ पण्डितके घर आया करते थे।

आदर्श कुलवधू श्रीलक्ष्मीदेवी अरुणोदयके पूर्व ही विष्णुगृहके समस्त कार्य करती, श्रीविष्णुपूजाकी सामग्रीको तैयार करती तथा श्रीतुलसीकी सेवा करती थी। श्रीतुलसीसेवाकी अपेक्षा सास-माता श्रीशचीदेवीकी सेवामे श्रीलक्ष्मीदेवी सदा ही अधिक मन लगाती थी।

कुछ समयके पश्चात् श्रीनिमाइ पडितने अर्थ-सग्रहके बहाने छात्रोको साथ लेकर पूर्वी बगालमें जाकर पद्मा नदीके किनारे अवस्थान किया। श्रीनिमाइकी पाडित्य-प्रतिभासे मुग्ध होकर वहाँ असख्य छात्र श्रीनिमाइके पास अध्ययनके लिये आते थे। श्रीमन्महाप्रभुकी पूर्वदेशमें शुभ-विजय हुई थी, इसी कारण आज भी पूर्वी बगालकी आबाल-वृद्ध-वनिता श्रीचैतन्यके सकीर्तनसे उत्फुल्ल हो उठती है। परन्तु कभी-कभी कुछ पाखड स्वभावके लोगोने उदरपोषणकी सुविधाके लिये अपनेको अवतारके रूपमे प्रचार करके देशवासियोका सर्वनाश किया है। श्री-चैतन्यदेवके सिवा कलिकालमें दूसरा कोई भगवान्‌का अवतार नही हुआ। राढदेशमें भी कुछ लोगोने अपनेको 'अवतार' कहकर प्रकट किया है।*

श्रीनिमाइ पडित जिस समय पूर्वी बगालमे अवस्थान कर रहे थे, उस समय श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीगौरनारायणके विरहको सहन न कर सकनेके कारण पतिके चरण-कमलोका ध्यान करते-करते अन्तर्धान हो गयी।

श्रीनिमाइ पडितके पूर्वी बगालमें रहते समय वहाँ श्रीतपनमिश्र नामके एक महासौभाग्यवान् ब्राह्मण उनके पास आये। उन ब्राह्मणने अनेक लोगोसे धर्मके विषयमें नाना प्रकारके उपदेश सुने थे, परन्तु जीवके लिये सर्वापेक्षा परम मगलजनक साधन और साध्य (प्रयोजन)

* चै० भा० आ० १४।८२-८८ सख्या देखनी चाहिये।

क्या है, इसका निरूपण करनेमें असमर्थ होकर वे अत्यन्त उद्वेगके साथ समय बिता रहे थे, इसी समय एक दिन रातके पिछले पहर उन्होंने एक शुभ स्वप्न देखा। उसमें एक दिव्य पुरुषके द्वारा श्रीनिमाइ पडितके पास जानेका आदेश मिला। तपन मिश्रने जब श्रीनिमाइके पास जाकर उपदेशके लिये प्रार्थना की, तब श्रीनिमाइ बोले,—
"तुम निरन्तर,—

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।'

—इस सोलह नामके बत्तीस अक्षरके महामन्त्रको निर्बन्धपूर्वक ग्रहण करो। यही सर्व देश-काल-पात्रमें एकमात्र साधन और प्रयोजन है। कपट छोडकर अनन्य भावसे आर्त्तिके साथ इस नामका भजन करो।"

श्रीतपन मिश्रने श्रीनिमाइ पडितसे उनका अनुगमन करनेके लिये अनुमति माँगी। तब उन्होंने मिश्रसे कहा,—"तुम शीघ्र काशी जाओ, काशीमें तुम्हारे साथ फिर हमारी भेंट होगी।"

श्रीनिमाइ पडित पूर्वी बगालसे अर्थादि सचय करके घर लौटे और माताके आगे सारा अर्थ समर्पण कर दिया। बहुतसे शिक्षार्थी उनके साथ पूर्वी बगालसे नवद्वीप आये। घर आनेपर पडितने गृह-लक्ष्मीके अन्तर्धानकी बात सुनकर माताको प्रबोध देकर कहा,—

—"माता, दुःख भाव' कि कारणे ?
भवितव्य ये आछे, से खण्डिबे केमने ?
एइमत काल-गति, केह का'रो नहे।
अतएव, 'संसार अनित्य' वेदे कहे।।
ईश्वरेर अधीन से सकल-संसार।
संयोग-वियोग के करिते पारे आर ?
अतएव ये हइल ईश्वर-इच्छाय।
हइल से कार्य, आर दुःख केने ताय ?

स्वामीर अग्रेते गगा पाय ये सुकृति ।
ताँ'र बड़ आर के-वा आछे भाग्यवती ?"

—चै० भा० आ० १४।१८३-१८७

[माता, दु ख क्यो करती हो ? जो कुछ भावी है, उसको कैसे टालोगी ! कालकी ऐसी ही गति है, कोई किसीका नही है । इसीलिये वेद ससारको अनित्य कहते है । यह सारा ससार ईश्वरके अधीन है । दूसरा सयोग-वियोग कौन कर सकता है ? अतएव जो कुछ हुआ सो ईश्वरकी इच्छासे हुआ । जो कार्य हुआ, उसके लिये दु ख क्यो ? स्वामीसे पहले जिस पुण्यवती स्त्रीको गगालाभ होता है, उससे बढकर भाग्यवती दूसरी कौन है ?]

उन्नीसवाँ परिच्छेद

सदाचार-शिक्षादान

श्रीनिमाइ पडित जिस समय मुकुन्द-सजयके घर चडी-मडपमें बैठकर अध्यापन करते थे, उस समय यदि कोई छात्र ललाटमें ऊर्ध्वपुड्र तिलक* न देकर पढने आता तो पडित उसे इस प्रकार लज्जित करते कि वह छात्र दूसरी बार बिना तिलक लगाए पढने नही आ सकता । श्रीनिमाइ पडित कहते कि,—"जिस ब्राह्मणके ललाटमें तिलक नही, वेद उस ललाटको श्मशान-तुल्य कहता है ।" इतना कहकर प्रभु उस छात्रको पुन तिलक लगाकर सध्यादि करनेके लिये घर भेज देते थे । शास्त्रमें कहा गया है,—

* वैष्णवके ललाटपर जो ऊर्ध्वतिलक होता है उसका नाम 'ऊर्ध्वपुड्र तिलक' है । उसको 'श्रीहरिमन्दिर' भी कहते है ।

यच्छरीर मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्र बिना कृतम् ।
द्रष्टव्य नैव तत्तावत् श्मशानसदृश भवेत् ।।
शखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहित ब्राह्मणाधमम् ।
गर्दभन्तु समारोप्य राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ।।

—ह०भ०वि० ४।१८२, २४८, गौ० गौ०ग्र०स०

[ऊर्द्ध्वपुण्ड्र अर्थात् कपाल, उदर, वक्ष स्थल, कण्ठ, दक्षिणकुक्षि, दक्षिणबाहु, दक्षिण स्कन्ध, वाम कुक्षि, बाम बाहु, बाम स्कन्ध, ग्रीवा, और कटि—इन बारह स्थानोमें गोपीचन्दनादिके द्वारा अकित ऊर्ध्वमुख श्रीहरि-मन्दिर-तिलक जिस मनुष्य-शरीरमे नही रहता, वह श्मशान-तुल्य है, अतएव दर्शनयोग्य नही है। शख-चक्रादि तिलक-चिह्न और ऊर्ध्वपुण्ड्रहीन ब्राह्मणाधमको राजा गधेपर चढाकर अपने राज्यसे बाहर निकलवा देंगे ।]

हम तो स्वादेशिकताका बहुत गर्व करते है, परन्तु इसी बगालमें अध्यापक और छात्रगणके लिये जो वेदसम्मत अवश्य पालनीय सदाचार थे, वे भी आज हमारे लिये लज्जाके विषय हो गये है ! शिखा, तिलक, गलेमें तुलसीकी माला धारण करना आधुनिक सभ्य समाजमे मानो असभ्यताके लक्षण और उपहासकी वस्तु हो उठे है—या ये साम्प्रदायिकताके लक्षण माने जा रहे है ! इन सबका परित्याग कर वेद-विरोधीकी स्वेच्छाचारिताको वरण करना ही क्या उदारता और सार्वजनीनताका आदर्श है ? अथवा यह सब कालका प्रभाव है !

श्रीनिमाइ पडितके छात्र घरसे पुन तिलक धारण करके आनेपर ही उनके समीप पुन पढनेका अधिकार प्राप्त करते थे ।

श्रीनिमाइ पडित सभीके साथ नाना प्रकारसे हास-परिहास किया करते थे, विशेषत श्रीहट्ट-निवासियोके शब्दोच्चारणको लेकर विशेष रूपसे रँगरलियाँ करते थे। केवल परस्त्रीके साथ श्रीनिमा किसी प्रकारका हास-परिहास नही करते थे, वे परस्त्रीको आँखें उठाकर भी नही देखते थे। वे केवल सन्यासलीलाके बाद ही परस्त्रीके साथ

सभाषणमे सावधान रहे हो, ऐसी बात नही है, गार्हस्थ्य लीलाके समय भी वे स्त्रियोके सम्बन्धमे विशेष सतर्क रहते थे। उन्होने अपने आच-रणके द्वारा इस आदर्शकी शिक्षा दी है। ठाकुर श्रीवृन्दावन लिखते है,—

एइ मते चापल्य करेन सबा' सने ।
सबे स्त्री-मात्र ना देखेन दृष्टि-कोणे ॥
'स्त्री' हेन नाम प्रभु एइ अवतारे ।
श्रवनओ ना करिला,—विदित ससारे ॥
अतएव यत महामहिम सकले ।
'गौरांग-नागर' हेन स्तव नाहि बले ॥

—चै० भा० आ० १५। २८-३०

[इस प्रकार सबके साथ चपलता करते है, परन्तु स्त्रीमात्रको दृष्टिकोणसे भी बिल्कुल नही देखते। ससारको यह विदित है कि इस अवतारमे 'स्त्री' इस नामपर प्रभुने कभी कान ही नही दिया—अतएव जितने सब महामहिमावाले है, वे **'गौरांग-नागर' इस प्रकार स्तव नहीं करते।**]

इस प्रसगमें सुविज्ञ भक्तिसिद्धान्तविद् व्यक्तियोके लिये कुछ बातें कहना आवश्यक है। श्रीगौरसुन्दर स्वय भगवान् है। वे समस्त प्रकृतिके नित्य पति है। उन्होने जीवोको शिक्षा देनेके लिये जो लीला की है, वह जीवोके लिये अवश्य पालनीय है, परन्तु उस विधिके द्वारा विभुचैतन्य भगवान्को बाँधा नही जा सकता। इसी कारण श्रीकविराज गोस्वामिप्रभुने लिखा है,—

विद्या-सौन्दर्य-सद्वेश-सम्भोग-नृत्यकीर्तनैः ।
प्रेम-नाम-प्रदानैश्च गौरो दीव्यति यौवने ॥

—चै० च० आ० १७।४

[विद्या, सौन्दर्य, सुन्दर वेश, **सम्भोग**, नृत्य, कीर्तन, प्रेम-नाम-प्रदान आदि लेकर श्रीगौरसुन्दरने यौवनमें लीला-विलास किया है।]

अणुचैतन्य जीवके लिये सम्भोग बन्धनका कारण है, परन्तु विभु-चैतन्य परमेश्वरका यह नित्य स्वभाव है। श्रीठाकुर वृन्दावन श्री-निमाइ पडितके रूप-वर्णनके प्रसगमें विभिन्न द्रष्टाओके विभिन्नरूपमें दर्शन करनेका वर्णन करते हुए कहते हैं,—

यतेक 'प्रकृति' देखे मदन-समान ।
'पाषडी' देखये येन यम विद्यमान ॥
'पंडित' सकल देखे येन वृहस्पति ।
एइ मत देखे सबे, यार येन मति ॥

—चै०भा०आ०११।१०-११

[**सभी प्रकृतियो (स्त्रियों) ने उनको कामदेवके समान देखा।** पाखडियोने साक्षात् यमके रूपमें देखा। सब पडितोने देखा, मानों वृहस्पति हैं, इस प्रकार जिसकी जैसी मति थी, सबने उसी प्रकार देखा।]

यही श्रीभगवान्‌की भगवत्ता है। श्रीकृष्णने जब श्रीबलदेवके साथ कसके रगमडपमें प्रवेश किया था, उस समय भी उनको विभिन्न द्रष्टाओने विभिन्न रूपसे देखा था।

स्वय श्रीठाकुर वृन्दावनने भी एकाधिक बार कहा है,—

विश्वम्भर-मूर्ति येन मदन-समान ।
दिव्य गन्ध-माल्य, दिव्य वास-परिधान ॥

—चै० भा० म० ३।१८२

[**विश्वंभरकी मूर्ति** मानो **कामदेवके समान** है। दिव्य गन्ध, माला और दिव्य-वस्त्र पहने हुए हैं।]

श्रीठाकुर वृन्दावनकी इस उक्तिका यही तात्पर्य है कि स्वय भग-वान् श्रीगौरहरिमें सभोगरस-विग्रहत्व अवश्य ही है, नही तो उनकी भगवत्ता निरर्थक हो जाती है। नवद्वीप-वासिनी प्रकृतिगण भी श्री-गौरहरिको कोटिकन्दर्प-सुन्दर सभोगरस-विग्रहरूपमें दर्शन कर सकती हैं, परन्तु **श्रीगौरलीलाकी विशेषता यह है कि श्रीगौरहरि अपनी व्रजलीलाके श्यामरूपके समान दूसरोके इस प्रकारके दर्शन या**

संभाषणका कोई प्रत्युत्तर (reciprocation) **प्रदान नही किया।** श्रीस्वरूप-रामरायके द्वारा कथित 'राधाभावद्युतिसुवलित' श्रीकृष्णस्वरूप की आराधना ही श्रीश्रीगौरलीलाकी परम विशेषता है।

बीसवाँ परिच्छेद्

श्रीनिमाइ पंडितका दूसरीबार विवाह

श्रीनिमाइ पडित नवद्वीपमें श्रीमुकुन्द-सजयके घरमे अध्यापन कार्यके लिये नियुक्त हुए। प्रात कालसे दोपहरतक अध्यापन करते और अपराह्णसे अर्धरात्रितक पाठ-विचार किया करते। छात्रगण एक वर्षतक श्रीनिमाइके पास अध्ययन करके ही सिद्धान्तमे पडित हो जाते थे।

इधर श्रीशचीमाता पुत्रके दूसरे व्याहके लिये उत्सुक हो उठी। श्रीनवद्वीपमें श्रीसनातन मिश्र नामक एक परम विष्णुभक्त, परोपकारी, अतिथि-सेवा-परायण, सत्यवादी जितेन्द्रिय, सद्वशजात ब्राह्मण रहते थे। वे अवस्थापन्न व्यक्ति थे। उनकी पदवी थी 'राजपडित'। श्रीकाशीनाथ पडितको घटक बनाकर श्रीशचीमाताने श्रीसनातन मिश्रकी परमभक्तिमती कन्या श्रीविष्णुप्रियाके साथ निमाइका विवाह सम्बन्ध निश्चित कराया। श्रीबुद्धिमन्त खा नामके एक धनाढ्य सौभाग्यवान् व्यक्तिने स्वेच्छासे पडितके इस विवाहके समस्त व्ययभारको वहन किया। शुभ दिनमें, शुभ लग्नमें बडे समारोहके साथ अधिवास उत्सव सम्पन्न हुआ। श्रीनिमाइ पडितने एक सुसज्जित पालकीमे बैठकर गोधूलि-लग्नमें राजपडितके घरकी ओर यात्रा की। इस विवाह की बारात अद्वितीय थी। परम समारोहके साथ श्रीश्रीलक्ष्मी-नारायण-स्वरूप श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौरागकी विवाहक्रिया सम्पन्न हुई। एकमात्र

श्रीविष्णुके प्रीत्यर्थ श्रीसनातन मिश्रने श्रीनिमाइ पडितके हाथमें अपनी कन्याको अर्पण किया और जामाताको अनेको प्रकारकी वस्तुए दहेजमें दी। दूसरे दिन अपराह्णमें श्रीविष्णुप्रियादेवीके साथ पालकीमें बैठकर श्रीनिमाइ पडितने पुष्पवृष्टि और गीत-वाद्य-नृत्यादिके साथ अपने घरकी ओर शुभ-यात्रा की।

इक्कीसवाँ परिच्छेद्

श्रीगया-यात्रा

एक ओर श्रीनिमाइ पडित नवद्वीपमें अध्यापककी लीला दिखला रहे थे, और दूसरी ओर नवद्वीपमें भक्तिविरोधी नाना प्रकारके मत-वाद प्रबल होकर बढ रहे थे। कुछ लोग श्रीभगवान्‌की सेवाकी बात कानोसे सुनना भी सहन नही कर सकते थे। वे लोग झूठमूठ वैष्ण-वोकी निन्दा करते थे।*

अपनेको प्रकट करनेका उपयुक्त समय आ गया है, ऐसा विचार-कर श्रीनिमाइ पडितने पितरोका श्राद्ध करनेके बहाने बहुतेरे शिष्योको

* चतुर्दिके पाषड बाडये गुरुतर।
'भक्तियोग' नाम हइल शुनिते दुष्कर॥
निरवधि वैष्णव-सबेरे दुष्टगणे।
निन्दा करि' बुले, ताहा शुनेन आपने॥
—चै० भा० आ० १७।५,८

[चारो ओर पाखडी लोग बहुत अधिक बढ गये। 'भक्तियोग' नाम सुनना कठिन हो गया। दुष्टगण सब वैष्णवोकी निरन्तर निन्दा करते फिरते थे, उसे श्रीनिमाइ सुना करते।]

साथ लेकर श्रीगया-यात्राका अभिनय किया। पडितकी इस गया-यात्राका गूढ उद्देश्य साधारण लोग समझ नही सके।

रास्तेमे चलते समय नाना प्रकारके पशु-पक्षियोके कौतुक और स्वच्छन्द विहारको देखकर श्रीनिमाइ पडितने साथके लोगोसे कहा,—

लोभ-मोह-काम-क्रोधे मत्त पशुगण ।
कृष्ण ना भजिले एइमत सर्बजन ।।
संगिगणे हासिया बुझान भगवान् ।
ये बुद्धि पशुते, से मानुषे विद्यमान ।।
कृष्णज्ञान नाजि मात्र पशुर शरीरे ।
मनुष्ये ना भजे कृष्ण—'पशु' बलि ता'रे ।।

—चै०म०आ०, कै०ली०—गयायात्रा २५-२७

[पशुगण लोभ, मोह, काम, क्रोधमें मत्त हैं। कृष्णको न भजनेपर सब लोग ऐसे ही हैं। भगवान् अपने साथियोको हँसकर समझाते हैं कि जो बुद्धि पशुमें है, वही मनुष्यमें भी है। पशुके शरीरमें केवल कृष्णका ज्ञान नही है। जो मनुष्य कृष्णको नही भजता, उसको पशु कहते हैं।]

श्रीनिमाइ चलते-चलते 'चिर'-नदीके किनारे आकर उपस्थित हुए। वही स्नान-सध्यादि करके 'मन्दार' पर्वतपर पहुँचे।

जिस प्रकार श्रीमथुरामें 'श्रीकेशव', श्रीनीलाचलमें 'श्रीपुरुषोत्तम', श्रीप्रयागमे 'श्रीवेणीमाधव', केरलदेश, दाक्षिणात्य और आनन्दारण्यमें 'श्रीवासुदेव', 'श्रीपद्मनाभ' और 'श्रीजनार्दन', श्रीविष्णुकाचीमें 'श्री-वरदराज-विष्णु' श्रीमायापुरमें (श्रीहरिद्वार और श्रीधाममायापुर-नव-द्वीपमें) 'श्रीहरि' हैं, उसी प्रकार श्रीमन्दारमें 'श्रीमधुसूदन' विराजमान हैं। श्रीनिमाइ पडित इस स्थानमें शकाब्द १४२७ या सन् १५०५ ईस्वीमें गये थे। उस समय पर्वतके निम्नभागमें श्रीमधुसूदनका श्रीविग्रह अधिष्ठित था। श्रीचैतन्य-पादपद्माकित इस पुण्यतम स्थानकी स्मृति-पूजाके लिये वहाँ श्रीश्रीविश्ववैष्णव-राजसभाके पात्रराज गोलोक-गत श्रीमत् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने सन् १९२९
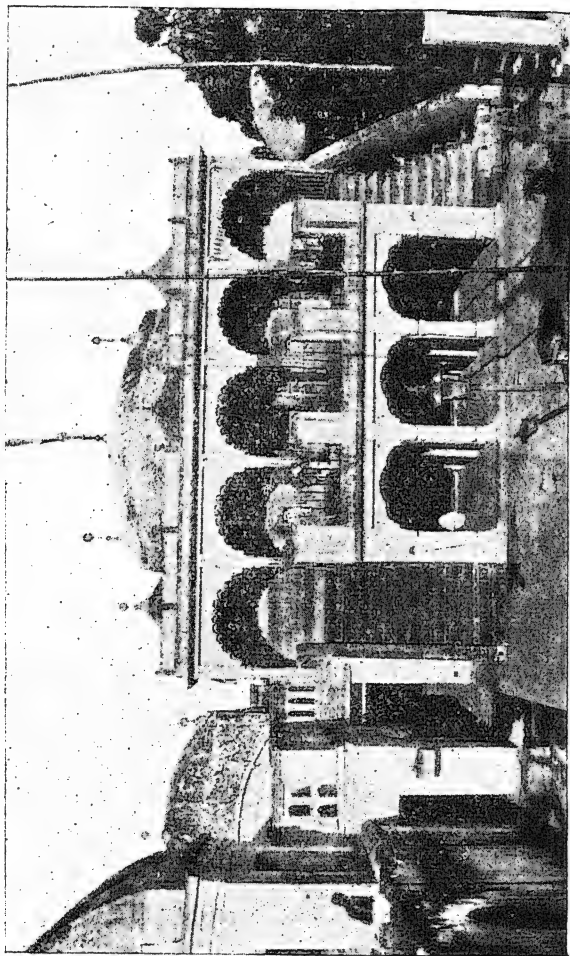
श्रीमन्दारमें श्रीमधुसूदनदेवका वर्तमान श्रीमंदिर
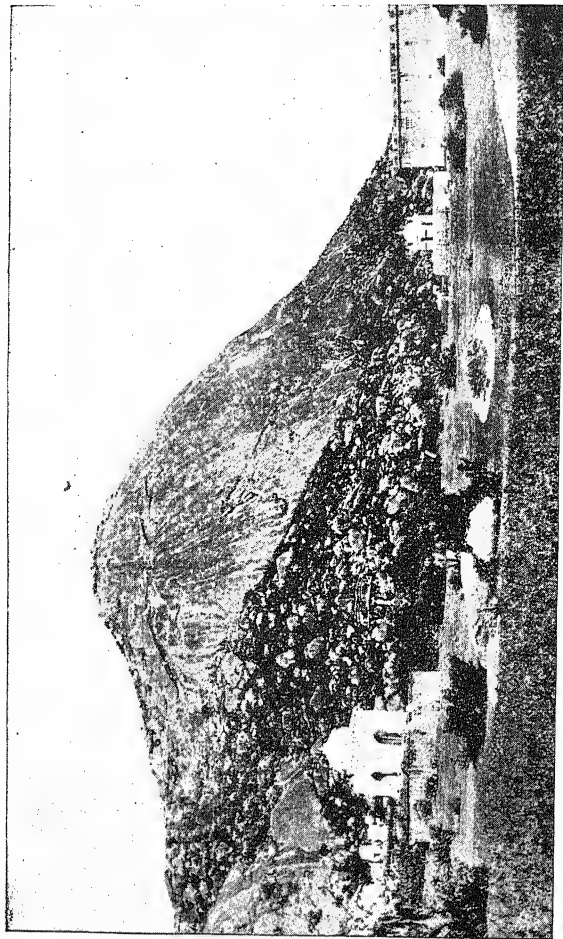
श्रीगौर-पादांकित श्रीमंदारपर्वत तथा उपत्यका ; पर्वतके निम्नभागमें दक्षिणकी ओर श्रीमत् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौर-पादपद्मका श्रीमंदिर ; उससे लगा हुआ श्रीमधुसूदनदेवका पुरातन श्रीमंदिर और भग्नावशेष ।

ई० की १५ वीं अक्तूबरको 'श्रीचैतन्य-पादपीठ' स्थापित करके उसके ऊपर एक मंदिर बनवा दिया है।

श्रीनिमाइ पंडितने गयाकी ओर जाते समय लोकानुकरणमें अपनी देहमें ज्वर प्रकाशित करके एक वैष्णव-ब्राह्मणका चरणोदक पान कर अपनी ज्वर-मुक्तिका अभिनय किया। श्रीनिमाइकी इस लीलाका यथार्थ उद्देश्य साधारण लोग नहीं समझ सके। ब्राह्मणके चरणोदकके द्वारा जीवकी त्रितापज्वाला नष्ट होती है तथा वैष्णवके चरणोदकके द्वारा उसे कृष्णप्रेम प्राप्त होता है,—यह शिक्षा-प्रदान करना ही श्रीमन्महाप्रभुका उद्देश्य था, और साधारण लोग जिससे उनको सामान्य मनुष्यमात्र जानकर उनके स्वरूपको समझ न सकें—यह भी था उनका एक दूसरा उद्देश्य, क्योंकि वे 'प्रच्छन्न अवतारी' हैं। ब्राह्मणका चरणोदक-पान करके उस विषयमें श्रीनिमाइने कहा,—

कृष्ण ना भजिले 'द्विज' नहे कदाचित।
पुराण-प्रमाण एइ शिक्षा आछे नीत ॥
चण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः।
विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥

—चै० म० आ०, कैं०ली०—गयायात्रा ५१-५२

[कृष्णको न भजने पर कभी द्विज नहीं हो सकता। इसमें पुराणका प्रमाण है। यह शिक्षा नित्य है। विष्णुभक्तिपरायण पुरुष यदि चाण्डालकुलमें भी उत्पन्न हुआ हो तो वह ब्राह्मण-मुनिकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु विष्णु-भक्तिसे रहित ब्राह्मण चाण्डालकी अपेक्षा भी निकृष्ट है।]

श्रीठाकुर वृन्दावनने भी महाप्रभुके इस विप्र-चरणोदक-पानके रहस्यके विषयमें इस प्रकार कहा है,—

ये ताहान दास्य-पद भावे' निरन्तर।
ताहान अवश्य दास्य करेन ईश्वर ॥

अतएव नाम ता'न 'सेवक-वत्सल' ।
आपने हारिया बाडाये'न भृत्य-बल ।।

—चै० भा० आ० १७।२५-२६

[जो निरन्तर ईश्वरके दास्य-पदकी कामना करते है, ईश्वर भी उनको दास्य करते हे। अतएव उनका नाम 'सेवक-वत्सल' है। आप हारकर भृत्यरूप भक्तका सदा वे गौरव बढाया करते है।]

श्रीनिमाइ शिष्योके साथ क्रमश 'पुन्पुन्' तीर्थमे आकर उपस्थित हुए। वहाँ 'पुन्पुन्' नदी प्रवाहित होती है। यह पटनाके ठीक अगले 'पुन्पुन्' स्टेशनके पास अवस्थित है।

पुन्पुन् तीर्थमे आकर श्रीनिमाइने पितृदेवोकी पूजा की और उसके बाद गया पहुँचे। गयामें ब्रह्मकुण्डमे स्नान और पितरोकी पूजा करके उन्होने 'चक्रवेड' तीर्थमें श्रीगदाधरके श्रीपादपद्मका दर्शन किया। यहाँ ब्राह्मणोके मुखसे श्रीगदाधरके श्रीचरणका माहात्म्य सुनकर श्रीनिमाइने प्रेमके पूर्ण सात्विक-विकारोको प्रकट किया। इतने दिनो बाद श्रीमहाप्रभुने जगत्के सामने **आत्म-प्रकाश** किया। श्रीनिमाइको अबतक भक्तगण भी केवल पडित ही समझते थे, उनके 'फक्किका' पूछनेके डरसे दूर-ही-दूर भागते रहते थे, इतने दिनोतक महाप्रभुने ससारमें प्रेमभक्ति-प्रदानके लक्षणोको प्रकट नही किया था, परन्तु गयामें आकर महाप्रभुने अपनी प्रेमभक्तिके उत्सके उद्घाटनकी पहले-पहल सूचना दी। वेगवती गगोत्तरीकी धाराके समान श्रीनिमाइके नेत्रोसे प्रेमकी अश्रुगगा प्रवाहित होने लगी। दैवयोगसे वहाँ ही श्रीईश्वरपुरीके साथ श्रीनिमाइका साक्षात्कार हुआ। पारस्परिक दर्शनसे दोनोके हृदयमें कृष्णप्रेमकी प्रबल तरग लहराने लगी। महाप्रभुने अपनी गया-यात्राके मूल उद्देश्यको प्रकट करते हुए कहा,—

प्रभु बले,—"गया-यात्रा सफल आमार ।
यतक्षणे देखिलाङ चरण तोमार ।।

तीर्थे पिण्ड दिले से निस्तरे पितृगण ।
सेह,—या'रे पिण्ड देय, तरे' सेइ जन ।।
तोमा' देखिलेइ मात्र कोटि-पितृगण ।
सेइक्षणे सर्वबन्ध पाय विमोचन ।।
अतएव तीर्थ नहे तोमार समान ।
तीर्थेरो परम तुमि मगल-प्रधान ।।
संसार-समुद्र हैते उद्धारह मोरे ।
एइ आमि देह समर्पिलाङ तोमारे ।।
"कृष्णपादपद्मेर अमृत-रस पान ।
आमारे कराओ तुमि'—एइ चाहि दान ।।"

—चै०भा०आ० १७।५०-५५

[प्रभुने कहा,—"जिस क्षण तुम्हारे श्रीचरण-दर्शन हुए, उसी क्षण मेरी गया-यात्रा सफल हो गई। तीर्थमे पिण्डदान करनेपर पितृ-गण तर जाते हैं, जिसको पिण्ड दिया जाता है, वह पुरुष तरता है। पर तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही करोडो पितरोकी उसी क्षण समस्त बन्धनोसे मुक्ति हो जाती है। अतएव तीर्थ तुम्हारे समान नही है, तुम तीर्थके भी परम मगल-प्रधान हो। मुझे ससार-समुद्रसे तार दो, मैंने यह देह तुम्हे समर्पित कर दी। श्रीकृष्ण-चरण-कमलका अमृतरस मुझे पान कराओ। मैं यही दान चाहता हूँ।"]

श्रीनिमाइ पडितने विश्वको बतलाया कि, "सर्वश्रेष्ठ तीर्थफल है—'साधुसग'। जबतक मनुष्यके भाग्यमें सद्‌गुरुका दर्शन नही होता, जबतक जीव सद्‌गुरुके चरण-कमलोमें आत्मसमर्पण करके भगवान्‌की सेवाके माधुर्यको उपलब्ध नही कर पाता, तभी तक उसका गया श्राद्ध, तीर्थस्थान, लौकिक-पूजा-पार्वण, दान-ध्यानादि वेदविहित सत्कर्ममे अधिकार है, तभीतक इन कार्योके लिये रुचि और प्रयोजनशीलता उपलब्ध होती है। गयामें पिण्डदान करनेपर जिनके उद्देश्यसे पिण्डदान किया जाता है, केवल उनकी ही सामयिक क्लेश-शान्ति होती है, परन्तु

वैष्णव, गुरु तथा साधुके दर्शनमात्रसे ही कोटि-कोटि पितरोका उद्धार हो जाता है। अतएव महाभागवतके श्रीचरणकमलोके साथ तीर्थोकी समानता नही है। महाभागवत्के श्रीपादपद्मरेणुमे इतनी शक्ति है कि वह श्रीकृष्णके पादपद्मोके प्रेमामृत-रसका पान करा सकती है।

जबतक श्रीचैतन्यदेवने जगत्मे आविर्भूत होकर सार्वभौमिक-धर्म श्रीहरिनाम-सकीर्तनकी प्रचार-लीला प्रकट नही की, तबतक ही सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिमें स्नान दानादि पुण्यकर्मोका लोग बहुत सम्मान-प्रदान करते थे। जबतक श्रीनिमाइ पडितने श्रीईश्वरपुरीपादके समान कृष्ण-तत्वविद् महाभागवतके समीप आत्मसमर्पण करनेकी लीला नही दिखलायी थी तबतक ही उन्होने गया-श्राद्धादि कर्मकाण्डकी प्रयोजनशीलता लोगोको बतलायी। जो लोग अनन्य-भावसे महाभागवतके चरणोका आश्रय लेकर श्रीकृष्णपादपद्म-प्रीतिको ही परम प्रयोजन रूपमें अनुभव करते है, उनको फिर अलगसे गया-श्राद्ध या पिण्ड-प्रदानकी आवश्यकता नही रहती, यही श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा है।* किन्तु शरणागतके अनु-करणसे अधिकारका उल्लघन करनेपर 'इतो भ्रष्टस्ततो नष्ट', होना पडता है, यह भी स्मरण रखना चाहिए।

श्रीनिमाइ पडित श्राद्धादि कार्य समाप्त करके, अपने डेरेपर लौट आये और अपने हाथसे भोजन बनाया। उसी समय कृष्णप्रेमसे आविष्ट श्रीईश्वरपुरीपाद भी वहाँ आकर उपस्थित हुए। श्रीनिमाइने जो भोजन तैयार किया था, वह समस्त श्रीईश्वरपुरीपादको भोजन करानेके उद्देश्यसे उनके सामने अपने हाथोसे परोस दिया।

---

* एवमेकान्तिना प्राय कीर्तन स्मरण प्रभो।
कुर्वता परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्न रोचते॥

—ह० भ० वि० २०वाँ विलासका उपसहार-धृत-
'विष्णुरहस्य'-वाक्य

[इस प्रकार अनन्य-भावसे परम प्रेमपूर्वक प्रभुका कीर्तन-स्मरण करनेवालोको और कोई कार्य नही रुचता।]

एक दिन एकान्तमें श्रीनिमाइ पडितने श्रीपुरीपादसे अत्यन्त दीनताके साथ मन्त्र-दीक्षा प्रदान करनेके लिये प्रार्थना की। श्रीपुरीपादने सानन्द श्रीनिमाइ पडितको दशाक्षर-मन्त्रकी दीक्षा प्रदान की। श्री-निमाइ पडितने श्रीईश्वरपुरीकी प्रदक्षिणा करके उनसे आत्मसमर्पण और कृष्णप्रेमकी प्राप्तिकी प्रार्थना की। समस्त ससारके गुरुने लोक-शिक्षाके लिये गुरुके चरणोका आश्रय लेनेकी लीला प्रकट की। महा-भागवतके चरणोका आश्रय लेकर अपनेको पूर्णरूपसे समर्पण किये बिना कोई कभी परमार्थ-राज्यमें प्रवेश नही प्राप्त कर सकता, यह शिक्षा देनेके लिये ही सारे ससारके गुरुओके गुरु श्रीनवद्वीपचन्द्रने गुरु-ग्रहण करनेकी लीला प्रकट की।

श्रीनिमाइ पडितने श्रीईश्वरपुरीके साथ कुछ समय गयामें अवस्थान किया। अन्तमें आत्मप्रकाशका समय आ उपस्थित हुआ। दिन प्रतिदिन उनकी प्रेमभक्तिके समस्त सात्विक-विकार प्रकट होने लगे। एक दिन वे निर्जनमें बैठकर इष्टमन्त्रका ध्यान करनेके समय कृष्ण-विरहमें व्याकुल होकर "कृष्ण रे! बाप रे! मेरे जीवनसर्वस्व हरि, तुम मेरे प्राणोको चुराकर कहाँ छिप गये?" —इस प्रकार आर्त्तनाद करके क्रन्दन करने लगे। परम गम्भीर श्रीनिमाइ पडित अतिशय विह्वल होकर धूलमें लोट रहे हैं—उच्चस्वरसे रो रहे है। साथके छात्रोने आकर उनको स्वस्थ करनेके लिये कितनी ही चेष्टा की, परन्तु—

प्रभु बले,—"तोमरा सकले याह घरे।
मुइ आर ना याइमु संसार-भितरे॥
मथुरा देखिते मुइ चलिमु सर्वथा।
प्राणनाथ मोर कृष्णचन्द्र पाड यथा॥"

—चै० भा० आ० १७।१२३-१२४

[प्रभुने कहा,—"तुम सब घर जाओ। मै अब ससारमें नही जाऊँगा। मै अपने निश्चयानुसार मथुरा देखनेके लिये जाता हूँ, जहाँ मेरे प्राणनाथ कृष्णचन्द्रको पाऊँगा।]

छात्रगण कृष्णप्रेमोन्मत्त पंडितको नाना प्रकारसे सान्त्वना देने लगे। किन्तु कृष्णविरहिणी गोपीके भावमे मग्न श्रीनिमाइ किसी प्रकार बातोसे आश्वस्त न हो सके। अन्तमें एक दिन रात्रिके अवसानमें अत्यन्त कृष्णविरहमें उन्मत्त होकर वे मथुराकी ओर दौड पडे। उच्च-स्वरसे "कृष्ण रे! मेरे बाप रे! तुमको कहाँ पाऊँगा!"—इस प्रकार उच्चारण करते-करते वे दौडे। कुछ दूर जाते ही एक मृदु-गभीर आकाशवाणी हुई,—

*   *   *

एखने मथुरा ना याइबा, द्विजमणि!
याइबार काल आछे, याइबा तखने।
नवद्वीपे निज-गृहे चलह एखने॥
तुमि श्रीवैकुण्ठनाथ लोक निस्तारिते।
अवतीर्ण हइयाछ सबार सहिते॥
अनन्त-ब्रह्माण्डमय करिया कीर्तन।
जगतेरे विलाइवा प्रेमभक्ति-धन॥
सेवक आमरा, तबु चाहि कहिवार।
अतएव कहिलाङ चरणे तोमार॥

—चै०भा० आ० १७।१२९-१३२,१३५

[हे द्विजश्रेष्ठ, अभी मथुरा मत जाओ। जानेका जब समय आयगा, तब जाना। अभी नवद्वीप अपने घर चलो। तुम श्रीबैकुण्ठनाथ,—लोगोका निस्तार करनेके लिये सबके साथ अवतीर्ण हुए हो। इस अनन्त ब्रह्माण्डमें कीर्तन करके जगत्को प्रेमभक्ति-धन वितरण करो। हम लोग सेवक हैं यद्यपि हमलोगोको ऐसा कहना शोभा तो नही देता, फिरभी तुम्हारे चरणोमें निवेदन करते हैं।]

आकाश-वाणीने बतला दिया कि श्रीनिमाइके गृहत्यागका समय अभी उपस्थित नही हुआ है। अभी कुछ समयके लिये उनको अपनी जन्मभूमि श्रीनवद्वीप-मडलमे ही प्रेमभक्ति-वितरण करना आवश्यक है।

आकाश-वाणी सुनकर श्रीनिमाइ पडित रुक गये और डेरेपर लौटकर उन्होने श्रीईश्वरपुरीकी आज्ञा ग्रहण पूर्वक छात्रोके साथ श्रीनवद्वीपके लिये प्रत्यागमन किया।

बाईसवाँ परिच्छेद

अद्भुत भावान्तर

गयासे लौट आनेके बाद श्रीनिमाइ पडित सबके सामने गयाधामकी महिमा वर्णन करने लगे। एकान्तमें श्रीमान् पडितादि कुछ नवद्वीप-वासी अन्तरग भक्तोके सामने गयाके विष्णुपाद-तीर्थकी बात उच्चारण करते ही श्रीनिमाइके शरीरमें अपूर्व प्रेमके विकार प्रकट होने लगे। भक्तगण श्रीनिमाइके उस प्रेम विकारको देखकर विस्मित हो गये।

श्रीनिमाइ पडित बाह्यदशा प्राप्तकर श्रीमान् पडित प्रभृतिको बुलाकर बोले,—"आज तुम लोग अपने-अपने घर जाओ। कल प्रात काल शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घरपर आना, वही तुम लोगोको मै अपने दु खकी बात बताऊँगा।"

दूसरे दिन प्रभातकालमे श्रीश्रीवास पडितकी वहिर्वाटिकामे श्रीगदा-धर, श्रीगोपीनाथ, श्रीरामाइ और श्रीश्रीवास पडित प्रभृति वैष्णवगण परस्पर कृष्णकथा कहते हुए पुष्प-चयन कर रहे थे, उसी समय श्री-श्रीमान् पडित भी वहा आ गये और उन्होने हँसते-हँसते उन्हे वैष्णवोको श्रीनिमाइ पडितके अति अद्भुत भावान्तरकी वात बतायी। श्रीश्रीमान् की यह बात सुनकर सभी महा आनन्दसे हरिध्वनि करने लगे। पहले ही श्रीश्रीवास पडित वोले,—

"गोत्रं नो वर्द्धताम् । 'गोत्र बाड़ाउन कृष्ण आमा सबाकार' ।"

—चै० भा० म० १।७३-७४

[श्रीकृष्ण हम सबकी संख्या बढावें ।]

तब,— "तथास्तु तथास्तु" बले भागवतगण ।
"सबेइ भजुक कृष्णचन्द्रेर चरण ।।"

—चै० भा० म० १।७६

[सब भागवतगण 'ऐसा ही हो—ऐसा ही हो' बोल उठे । सभी श्रीकृष्ण- चन्द्रके चरणकमलका भजन करें ।]

श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घर श्रीश्रीमान् पडित, श्रीश्रीवास पडित, श्रीगदाधर पडित और श्रीसदाशिव प्रभृति वैष्णवगण सम्मिलित हुए । श्रीनिमाइ पडित इनके सामने भगवद्विरहसे उद्दीप्त होकर "हे कृष्ण, तुम कहाँ हो, हे कृष्ण, तुम कहाँ हो ? तुम सामने आकर कहाँ छिप गये !"—इस प्रकार कहते-कहते मूर्छित हो गये । भक्तगण भी तब प्रेमानन्दमें मूर्च्छित हो गये । कुछ समय बाद विश्वभर वाह्यदशामें आकर पुन उच्चस्वरसे यह कहते हुए क्रन्दन करने लगे,—

"कृष्ण रे, प्रभु रे, मोर कोन् दिके गेला ?"

—चै० भा० म० १।९१

[ऐ कृष्ण, ऐ मेरे प्रभु, तू किस ओर चला गया ?]

रोते-रोते पुन पृथ्वीपर गिर पडे, भक्तगण भी उनको घेरकर रोने लगे । उच्च कीर्तनकी ध्वनि तथा प्रेम-क्रन्दनसे श्रीशुक्लाम्बरका घर मुखरित हो उठा ।

श्रीशचीमाता पुत्रके इस भावको देखकर वात्सल्य-प्रेमके स्वभाववश भीतर-ही-भीतर आशकित हो उठी और पुत्रके कल्याणके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगी । समय-समयपर श्रीशचीमाता पुत्रवधूको बुला-कर पुत्रके समीप बैठाती थी, परन्तु कृष्णके विरहमें उन्मत्त-प्राय

श्रीनिमाइ उस ओर दृष्टिपात भी नही करते थे।* केवल हर समय 'कृष्ण कहाँ, कृष्ण कहाँ' कहकर क्रन्दन और हुकार करते थे। श्री-विष्णुप्रिया भयसे भाग जाती थी, श्रीशचीदेवी भी भयभीत हो जाती थी। कृष्णविरहमे व्याकुल निमाइको रातमें निद्रा नही आती, वे कभी उठते, कभी बैठते और कभी भूमिमें लोटने लगते। परन्तु बाहरके आदमीको देखकर वे अपने भीतरके भावको छिपा लेते थे।

एक दिन प्रात काल श्रीनिमाइ पडित गगा-स्नान करके आये, उसी समय उनके पहलेके छात्रगण पाठ लेनेके लिये उनके पास उपस्थित हुए। छात्रोके बार-बार अनुरोध करनेपर श्रीनिमाइ पण्डित पढाने बैठे, छात्रोने 'हरि' बोलकर पोथी खोली। इससे पडित अत्यन्त आनन्दित हुए, हरिनाम सुनते ही उनका वाह्य-ज्ञान लुप्त हो गया। श्रीनिमाइ पडित आविष्ट होकर सूत्र, वृत्ति, टीकामें केवल हरिनाम व्याख्या करने लगे, कृष्णनाम छोडकर और कही कुछ नही है—

प्रभु बले,—"सर्वकाल सत्य कृष्णनाम।
सर्व शास्त्रे 'कृष्ण' बइ ना बलये आन॥
हर्ता, कर्ता, पालयिता कृष्ण से ईश्वर।
अज-भव-आदि, सब—कृष्णेर किंकर॥
कृष्णेर चरण छाड़ि', ये आर बाखाने।
वृथा जन्म याय ता'र असत्य-वचने॥
आगम-वेदान्त-आदि यत दरशन।
सर्बशास्त्रे कहे 'कृष्णपदे भक्तिधन'॥

---

*लक्ष्मीरे आनिञा पुत्र-समीपे बसाय।
दृष्टिपात करियाओ प्रभु नाहि चाय॥
—चै० भा० म० १।१३७

[लक्ष्मीको लाकर पुत्रके पास बैठाती है, पर प्रभु आँखें उठाकर भी उसकी ओर नही देखते।]

मुग्ध सब अध्यापक कृष्णेर मायाय ।
छाडिया कृष्णेर भक्ति अन्य पथे याय ।।

—चै० भा० म० १।१४८-१५२

[प्रभुने कहा,—"सर्वकालमे कृष्णनाम सत्य है । समस्त शास्त्र 'कृष्ण'के अतिरिक्त और कुछ नही कहते । वह कृष्ण हर्ता, कर्ता, पालनकर्ता ईश्वर है । ब्रह्मा, शिव आदि सब कृष्णके किकर है । कृष्णके चरणको छोडकर जो दूसरी चीजका बखान करता है, उसका असत्य वचन (उच्चारण)के कारण जन्म वृथा जाता है । आगम-वेदान्त-आदि जितने दर्शन है सभी शास्त्र 'श्रीकृष्णचरणोमे भक्तिधन'का वर्णन करते है । सब अध्यापक कृष्णकी मायासे मुग्ध है, इसीसे वे कृष्णकी भक्तिको छोडकर दूसरे मार्गपर जाते है ।]

कृष्णेर भजन छाडि' ये शास्त्र बाखाने ।
से अधम कभु शास्त्र-मर्म नाहि जाने ।।
शास्त्रेर ना जाने मर्म, अध्यापना करे ।
गर्दभेर प्राय येन शास्त्र बहि' मरे ।।
पडिञा-शुनिञा लोक गेल छारे-खारे ।
कृष्ण-महामहोत्सवे बञ्चिला ताहारे ।।"

—चै०भा०म० १५७-१५६

[श्रीकृष्णके भजनको छोडकर जो शास्त्रका व्याख्यान करता है, वह अधम कभी शास्त्रका मर्म नही जानता । जो शास्त्रका मर्म न जानकर अध्यापन करता है, वह मानो गदहेकी भाँति शास्त्रका भार ढोता हुआ मरता है । पढ-सुनकर लोग चौपट हो गये । कृष्ण महा-महोत्सवसे वे वचित ही रह गये ।]

श्रीनिमाइ पडितने छात्रोसे पूछा,—"आज मैंने सूत्रोकी कैसी व्याख्या की ?" छात्रोने उत्तर दिया,—"आपकी व्याख्या हमारी समझमें कुछ भी नही आयी, आपने प्रत्येक शब्दको केवल 'कृष्ण' कहकर व्याख्या की है, इसका तात्पर्य क्या है ?" पडितने कहा,—"आज

पोथी बाँधकर रख दो, चलो गगास्नान करने चले।" गगास्नान करके वे घर लौट आये, श्रीतुलसीमे जल दिया, विधिपूर्वक श्रीगोविन्दकी पूजा की, तुलसीमजरीसहित श्रीकृष्णको भोगनिवेदन करके प्रसाद ग्रहण किया।

श्रीशचीमाताने पूछा,—"निमाइ, तुमने आज पोथीमे क्या पढा ?" निमाइने उसके उत्तरमे कहा,—

*** *—"आज पडिलाड कृष्णनाम ।**
सत्य कृष्ण-चरण-कमल गुणधाम ।।
सत्य कृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन ।
सत्य कृष्णचन्द्रेर सेवक ये-ये जन ।।
सेइ शास्त्र सत्य—कृष्णभक्ति कहे या'य ।
अन्यथा हइले शास्त्र पाषडत्व पाय ।।"

—चै० भा० म० १।१९३-१९५

[आज मैंने कृष्णनाम पढा, गुणोके धाम श्रीकृष्ण-चरणकमल सत्य है। श्रीकृष्ण-नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन सत्य है। जो-जो मनुष्य कृष्णचन्द्रके सेवक है, वे सत्य है। जिस शास्त्रमें कृष्णभक्ति कही गयी है, वही शास्त्र सत्य है। ऐसा न होनेपर तो शास्त्र पाषडत्वको प्राप्त होता है।]

भगवदवतार श्रीकपिलदेवजीने जिस प्रकार माता श्रीदेवहूतिको उपदेश दिया था, उसी प्रकार श्रीनिमाइ पडितने भी अपनी माताको भागवत-धर्मकी कथाका उपदेश दिया। जीवके आवागमन और गर्भवासके दु खका उल्लेख करके उन्होने बतलाया कि कृष्ण-सेवाको छोडकर दूसरा कोई भी कल्याणका उपाय नही है,—

जगतेर पिता—कृष्ण, ये ना भजे बाप ।
पितृद्रोही पातकीर जन्म-जन्म ताप ।।

—चै० भा० म० १।२०२

[कृष्ण जगत्के पिता है, जो बापकी सेवा नही करता उस पितृद्रोही पापीको जन्म-जन्ममें सन्ताप मिलता है।]

श्रीनिमाइ पडित आहार-बिहार, शयन-स्वप्नमें अहर्निश कृष्णके सिवा और कोई बात न सुनते और न ही बोलते। छात्रगण प्रात काल उनके पास पढनेके लिये आते, परन्तु पढाने बैठनेपर पडितके मुखसे 'कृष्ण' शब्दके अतिरिक्त और कुछ भी नही निकलता,

"सिद्धो वर्णसमाम्नाय:"*—बले शिष्यगण ।
प्रभु बले,—"सर्व-वर्णे सिद्ध नारायण ।।"
शिष्य बले,—"वर्ण सिद्ध हइल केमने ?"
प्रभु बले,—"कृष्ण-दृष्टिपातेर कारणे ।।"†
शिष्य बले,—"पंडित, उचित व्याख्या कर' ।"
प्रभु बले,—"सर्वक्षण श्रीकृष्ण सोङर ।।
कृष्णेर भजन कहि—'सम्यक् आम्नाय' ‡ ।
आदि-मध्य-अन्ते कृष्ण-भजन बुझाय ।।"

—चै० भा० म० १।२५२-२५५

---

* 'कलाप' या 'कातन्त्र'-व्याकरणका प्रथम सूत्र है—"सिद्धो वर्ण-समाम्नाय" अर्थात् स्वर और व्यजन वर्णका पाठक्रम चिर प्रसिद्ध है। प्रभुके छात्रगण इस कलाप-व्याकरणके प्रथम सूत्रका उच्चारण करके कहने लगे कि,—"वर्णपाठकी रीति तो सुप्रसिद्ध है न ?" इसके उत्तरमें प्रभुने कहा,—"सारे वर्ण नित्य-शुद्ध-पूर्ण-मुक्त चिन्मयी परमुख्या विद्वद्-रूढि-वृत्तिसे श्रीनारायणका ही प्रतिपादन करते है।"—गौ० भा०

† छात्रोके वर्णसिद्धिका कारण पूछनेपर प्रभुने कहा,—"वाच्य-विग्रह श्रीकृष्णके निरीक्षण हेतु हैं अर्थात् श्रीकृष्ण ही अभिन्न पूर्ण-नित्य-शुद्ध-मुक्त-वाचक, व्यजक या सूचक अथवा द्योतक है, इसलिये प्रत्येक वर्ण ही नित्य सिद्ध है।—गौ० भा०

‡ 'सम्यक् आम्नाय,'—"आमनति उपदिशति विष्णो पर पदम्, आम्नायते सम्यगभ्यस्यते मुनिभिरसौ, आम्नायते उपदिश्यते परधर्मोऽनेनेति आम्नाय 'वेद', समम्नाय ।" भा० १०।४७।३३ श्लोकमें 'समाम्नाय'-शब्दसे श्रीवरस्वामी पादकृत टीकामें—"समाम्नायो वेद ।"

आमनति अर्थात् विष्णुके परमपदका उपदेश करते है। आम्नायते अर्थात् सम्यक् अभ्यस्त होते है मुनिगणके द्वारा, आम्नायते उपदिष्ट होते है परमधर्म इसके द्वारा—'आम्नाय'—वेद।

[शिष्योने कहा,—"सिद्धो वर्णसमाम्नाय"। प्रभुने कहा,—"सब वर्णोमे नारायण सिद्ध है।" शिष्योने कहा,—"वर्ण सिद्ध कैसे हुआ?" प्रभुने कहा,—"कृष्णके दृष्टिपात करनेसे।" शिष्योने कहा,—"पडितजी, उचित व्याख्या कीजिये।" प्रभुने कहा,—"सब समय श्रीकृष्णका स्मरण करो। समग्र वेद कृष्णके भजन करनेकी बात कहते है। आदि-मध्य-अन्तमे कृष्ण-भजन ही उपदेश करते है।"]

श्रीनिमाइ पडितकी व्याख्याको सुनकर उनके छात्रगण हँसने लगे, किसीने कहा,—"मस्तिष्कमें वायुके प्रकोपके कारण वे इस प्रकारकी व्याख्या कर रहे है।" एक दिन छात्रोने श्रीनिमाइके अध्यापक श्रीगगादास पडितके पास जाकर श्रीनिमाइ पडितकी इस प्रकारकी विकृत-व्याख्या (?) के विषयमे शिकायत की। उपाध्याय श्रीगगादासने अपराह्णमें छात्रोके द्वारा श्रीनिमाइको बुलवाकर पूछा,—"निमाइ, तुम श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती जैसे पडितके दौहित्र हो, मिश्र-पुरन्दरके समान पिताके पुत्र हो, तुम्हारा मातृकुल और पितृकुल दोनो ही पाडित्यके गौरवसे विभूषित है। सुन रहा हूँ कि, तुमने आजकल लिखना-पढना छोड दिया है, ठीक-ठीक अध्यापन नही कर रहे हो! क्या अध्ययन छोड देनेसे ही भक्ति होती है? तुम्हारे पिता और नाना क्या भक्त नही? मेरे सिरकी शपथ, तुम पागलपन छोडकर अच्छी तरह शास्त्र पढाओ।"

श्रीनिमाइ श्रीगगादाससे बोले,—"आपके श्रीचरणोकी कृपासे यहाँ नवद्वीपमे कोई ऐसे नही है, जो तर्कमें मुझपर विजय प्राप्त कर सकें! मै जिसका खडन करता हूँ, देखूँ तो नवद्वीपमें ऐसे कौन है, जो उसका मडन कर सकें। मै नगरके बीच बैठकर सबके सामने अध्यापन करूँगा, देखूँ किसकी शक्ति है जो मेरी व्याख्याका खडन कर सके!"

गगाके किनारे एक पुरवासीके घर बैठकर श्रीनिमाइ इस प्रकार अपनी व्याख्याका गौरव बतलाते और आत्मश्लाघा करते। एक दिन श्रीमद्भागवतके पाठक श्रीरत्नगर्भ आचार्य श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धसे याज्ञिक ब्राह्मणियोके श्रीकृष्णके रूपदर्शन विषयक श्लोकको पढ रहे

थे। श्रीनिमाइ पडितके कानमे वह श्लोक पडा, वे उसी क्षण प्रेमसे मूर्छित हो गये, पश्चात् बाह्य-दशा प्राप्त करके वे छात्रोके साथ गगाके किनारे गये। दूसरे दिन प्रात काल पुन श्रीनिमाइ पडितने छात्रोको पढाना प्रारम्भ किया। छात्रोने पूछा,—"धातु किसे कहते हैं?" पडित बोले,—"कृष्णकी शक्ति ही धातु है, देखूँ किसमें शक्ति है जो मेरे इस अर्थका खण्डन कर सकता है!" इतना कहकर श्रीनिमाइ पडित छात्रोको नाना प्रकारसे सदुपदेश देने लगे। दस दिनो तक इसी प्रकार व्याकरणके प्रत्येक सूत्रकी कृष्णपर व्याख्या करके अन्तमें छात्रोको सदाके लिये विदा देते हुए श्रीनिमाइ बोले,—"तुम लोग मेरे पास अब पढनेको मत आना, मुझे कृष्णको छोडकर और किसी बातकी स्फूर्ति नही होती है, तुम लोगोको जहाँ सुविधा हो वही जाकर अध्ययन करो।" इतना कहकर श्रीनिमाइने अश्रुपूर्ण नयनोसे पुस्तकमे 'डोरी' बाँधी, तथा सबके अन्तमें श्रीकृष्णके चरण-कमलोकी शरण लेनेके लिये सबको अन्तिम उपदेश दिया।

श्रीगौरहरि छात्रोसे बोले,—

"पडिलाड, शुनिलाड यत दिन धरि'।
कृष्णेर कीर्तन कर' परिपूर्ण करि'॥"

—चै० भा० म० १।४०५

[इतने दिन पढा-सुना, अब पूर्णरूपसे श्रीकृष्णका कीर्तन करो।]

तब छात्रोके यह पूछनेपर कि श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन क्या है और किस प्रकार किया जाता है, तो श्रीशचीनन्दनने श्रीनाम-सकीर्तनकी रीति बतलायी,—

"(हरे) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥"

—चै० भा० म० १।४०७

इस नामका उच्चारण करते-करते छात्रोको लेकर प्रभु हाथसे ताली देते हुए सकीर्तन, नृत्य तथा महाप्रेमावेशमें सात्विक-विकारोको

प्रकट करने लगे। इससे कुछ छात्रोने, जो विशेष सौभाग्यशाली थे, अर्थकरी विद्याका अनुशीलन त्यागकर परमार्थकरी विद्या अर्थात् भक्तिमार्गको ग्रहण किया।

श्रीगौरसुन्दरने व्याकरणके प्रत्येक सूत्रकी जिस प्रकार श्रीकृष्ण-नामपरक व्याख्या की थी, लोग जिससे उसी प्रकारके आदर्शसे अनु-प्राणित होकर व्याकरण पढते-पढते भी श्रीकृष्ण-नामका अनुशीलन कर सकें, इसी उद्देश्यसे श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद श्रीमत् श्रीजीवगोस्वामीपादने **"श्रीहरिनामामृत व्याकरण"**की रचना की। इसमे व्याकरणका प्रत्येक सूत्र हरिनाम-परक बनाकर ग्रथित किया गया है।

तेईसवाँ परिच्छेद

वैष्णव-सेवा-शिक्षादान

श्रीनिमाइ पडितने जड-विद्याके अनुशीलन अर्थात् जड-विद्याके अध्ययन और अध्यापनकी लीलाका परित्यागकर परविद्या अर्थात् श्रीकृष्णभक्तिके अनुशीलनके आदर्शको प्रदर्शित किया। भगवद्भक्तकी सेवाके बिना किसीको भक्ति-विद्या प्राप्त नही होती—इसे समझानेके लिये वे भगवान् होकर भी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये स्वय भक्तोकी सेवा करने लगे। अबसे श्रीश्रीवास पडित प्रभृति वैष्णवोको देखते ही श्रीनिमाइ पडित उनको नमस्कार एव उनसे कृपा-प्रार्थना करते। जब वैष्णव लोग गगाके घाटपर स्नान करनेके लिये आते तब श्रीगौर-सुन्दर अत्यन्त यत्नपूर्वक किसीके वस्त्रका जल निचोड देते और किसीके

हाथमें धोती उठा देते, किसीके लिये गगाकी मिट्टी सग्रह कर देते और किसीकी फूलकी डालियाँ लेकर घर पहुँचा देते थे।*

"कृष्ण भजिवार यार आछे अभिलाष।
से भजुक कृष्णेर मगल प्रिय दास॥"

—चै० भा० म० २।५५

[जिसको कृष्ण भजनेकी अभिलाषा हो, वह श्रीकृष्णके मगलमय प्रिय दासको भजे ।]

भक्तगण श्रीगौर-सुन्दरके वैष्णव-व्यवहारसे अत्यन्त सतुष्ट होकर उनके सामने बहुत दिनोंकी सचित व्यथा खोलकर कह देते थे,—

"एइ नवद्वीपे, बाप! यत अध्यापक।
कृष्णभक्ति बाखानिते सबे हय 'बक'!"

—चै० भा० म० २।६६

[बाबा, इस नवद्वीपमें जितने अध्यापक हैं, कृष्णभक्तिकी व्याख्या करनेमें सब 'बगुले' बन जाते हैं।]

कभी-कभी श्रीगौरसुन्दर अभक्त-सप्रदायके दौरात्म्यकी बातें सुनकर—

"संहारिमु सब" बलि' करये हुकार।
"मुञि सेइ, मुञि सेइ", बलें' बारे-बार॥

—चै० भा० म० २।८६

['सबका सहार कर दूंगा', कहकर हुकार करते और बार-बार कहते कि 'मैं वही हूँ, मैं वही हूँ'।]

श्रीशचीमाता श्रीगौरसुदरके इन सब भावोंको देखकर 'उनको वायुव्याधि हो गई है', ऐसा समझने लगी। तब अनेको लोग अनेको प्रकारकी औषधिकी व्यवस्था भी करने लगे। पुत्र-वात्सल्यके कारण सरल चित्तवाली श्रीशचीमाताने श्रीश्रीवास पडितको बुलाकर उनकी सम्मति लेनी चाही। श्रीश्रीवास पडितने आकर श्रीगौरसुन्दरको देखकर समझ लिया कि प्रभुके शरीरमें श्रीकृष्ण-प्रेमके विकार प्रकट हुए हैं।

* चै० भा० म० २।४४-४५ देखिये।

श्रीश्रीवासकी बातको सुनकर श्रीशचीमाताको आश्वासन तो मिला, परन्तु पुत्र पीछे कही कृष्णभक्त होकर ससारका परित्याग न कर दे—इस चिन्ताने ही अप्राकृत-वात्सल्यरससे मुग्ध श्रीशचीमाताके हृदयपर अधिकार कर लिया।

एक दिन श्रीगौरसुन्दर श्रीगदाधर पडितको साथ लेकर श्रीमायापुरमें 'अद्वैत-भवन'में श्रीअद्वैताचार्यको देखनेके लिये गये। देखते क्या है कि आचार्य दोनो भुजाएँ उठाकर हुकार करके गगाजल तुलसीके द्वारा श्रीकृष्णकी पूजा कर रहे है। श्रीअद्वैताचार्यको देखते ही महाप्रभु विश्वम्भर महान् प्रेमावेशसे मूर्छित होकर भूमिपर गिर पडे। श्री-श्रीआचार्यने अपने भक्तियोगके प्रभावसे प्रच्छन्नावतारी श्रीगौरहरिको पहचान लिया। श्रीअद्वैताचार्य पूजाका उपकरण लेकर श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणोकी पूजा करते-करते 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय'—मन्त्र-श्लोकका पुन-पुन सानन्द पाठ करने लगे। श्रीगदाधरने श्रीअद्वैताचार्यको इस प्रकार स्तुति करते देखकर, दाँतोतले जीभ दबाकर श्रीआचार्यसे कहा,—"बालकके प्रति आपका इस प्रकारका व्यवहार उचित नही है।" श्रीमदाचार्य बोले,—"गदाधर, तुम कुछ दिनोके बाद ही इस बालकको जान सकोगे कि ये कौन है?" श्रीगौरसुन्दरने बाह्य-दशा प्राप्त करनेके बाद आत्मगोपन करके श्रीअद्वैताचार्यकी स्तुति आरम्भ की और भावाविष्ट आचार्यकी चरणधूलि ग्रहण की।

श्रीअद्वैताचार्य बोले,—"विश्वम्भर, सभी वैष्णवोकी इच्छा है कि वे तुम्हारे साथ मिलकर श्रीकृष्ण-सकीर्तन करे, श्रीकृष्णकथाके रसमें कालयापन करे तथा निरन्तर तुम्हारा दर्शन प्राप्त करते रहें।" श्रीगौर-हरि आचार्यकी बातसे सहमत हो गये।

इधर श्रीअद्वैतप्रभु श्रीगौरहरिके भक्त-वात्सल्यकी परीक्षा करनेके लिये चुपकेसे शान्तिपुरमें अपने घर चले गये।

महाप्रभु भक्तगणोके साथ प्रतिदिन श्रीकृष्णकीर्तन करते थे, प्रभुके प्रेमावेशको देखकर सन्दिग्ध व्यक्ति भी हृदयमें प्रभुकी 'ईश्वर'के

रूपमे उपलब्धि होती थी। विभिन्न भक्त अपने-अपने विभिन्न रसोके अनुसार प्रभुको अनुभव करने लगे। बाह्यदशामे, महाप्रभु भक्तोका गला पकडकर रोते-रोते 'श्रीकृष्णकर्णामृत'के श्लोकका कीर्तन करते थे,—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि, हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो, हा हन्त! हा हन्त! कथ नयामि॥

—श्रीकृष्णकर्णामृत, ४१

तोमार दर्शन बिने, अधन्य एइ रात्रि-दिने,
एइ काल ना याय काटन।
तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणासिन्धु,
कृपा करि' देह' दरशन॥

—चै० च० म० २।५९

[तुम्हारे दर्शनोके बिना, इन अधन्य रात्रि-दिनोमे यह समय नही काटा जाता। तुम अनाथके बन्धु हो, अपार करुणाके सागर हो, कृपा करके दर्शन दो।]

श्रीविश्वम्भर अन्तरग भक्तोके सामने अपने कृष्ण-वियोगजनित दु खको अत्यन्त दीन भावसे निवेदन करते थे। गोपी-भावसे विभावित होकर गयासे लौटते समय कन्हाई-नाटचशालामें वे किस प्रकार एक अपूर्व तमाल-श्यामल सुन्दर-किशोर मुरलीवदन श्रीकृष्णका दर्शन पाकर पुन उस दर्शनसे वचित हो गये थे, यह बात कहते-कहते वे प्रेम-मूर्छित हो जाते थे। घर जाकर भी विश्वम्भर घरका कामकाज नही कर पाते थे। सर्वदा कृष्ण-प्रेमानन्दके आवेशमे मग्न रहते थे। सदा ही मुँहमें 'कृष्ण कहाँ ?, कृष्ण कहाँ ?', वैष्णवको देखते ही 'कृष्ण किस स्थानमें है ?', यदि कोई कुछ पूछता, तो 'कृष्ण कहाँ ?',—यही बात बोलते थे। एक दिन श्रीगदाधरको देखकर श्रीविश्वम्भरने 'पीतवसन श्यामल कृष्ण कहाँ है ?' यह प्रश्न पूछा। "तुम्हारे हृदयमें ही कृष्ण है"—श्रीगदाधरके यह कहनेपर श्रीविश्वम्भर नखाग्रके द्वारा अपने वक्षस्थलको विदीर्ण करनेके लिये उद्यत हो गये। श्रीगदाधरने

बहुत ही कठिनाईसे उन्हे रोकते हुए सान्त्वना दी। इससे श्रीशची-मातानें श्रीगदाधरको निरन्तर श्रीविश्वम्भरके पास रहनेके लिये कहा ।

श्रीशचीनन्दन प्रतिदिन अपने सहचरोके साथ सारी रात अपने घरमें उच्च-स्वरसे कीर्तन करते थे । इससे नवद्वीपके बहिर्मुख लोगोकी नीद टूट जानेके कारण वे नाना प्रकारकी कटूक्ति, विशेषत श्रीश्रीवास पडितके प्रति नाना प्रकारका गर्जन-तर्जन और भय-प्रदर्शन करते थे । पाखण्डी लोग कहने लगे,—"हिन्दूधर्म-विरोधी राजानुचरगण शीघ्र ही इस प्रकारकी कीर्तन-ध्वनि सुनकर वैष्णवोको पकडकर ले जायँगे और उनके ऊपर अत्याचार करेगे । श्रीविश्वम्भर निर्भय होकर नवद्वीप-नगरमें भ्रमण करते थे। एक दिन श्रीविश्वम्भर श्रीनृसिह पूजामे रत श्रीश्रीवासके किवाड बन्द घरके पास जाकर दरवाजेपर पदाघात करते हुए बोले,—"श्रीवास, तू किसकी पूजा करता है ? देख तेरे अभिष्ट देव यहाँ उपस्थित है ।"

श्रीश्रीवास पडित श्रीगौरहरिको चतुर्भुजी मूर्तिमे देखकर स्तम्भित हो उठे। श्रीगौरहरिने अपना तत्ववर्णन तथा अपने अवतारका कारण बतलाकर एव श्रीअद्वैताचार्यका प्रभुकी परीक्षाके हेतु शान्तिपुर गमन आदि विषयोका उल्लेख करते हुए श्रीश्रीवास पडितको अपनी स्तुति करनेके लिये कहा । पडितने 'नौमीडच तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय' (भा० १०।१४।१) श्लोकका पाठ करके प्रभुका स्तव किया। गोष्ठीके साथ श्रीश्रीवास पडितने प्रभुके आदेशसे उनकी पूजा की । महाप्रभु श्रीश्रीवासको अभयदान देते हुए बोले कि, 'वे भक्तिविरोधी अहिन्दू राजाको भी अपने अनुचरोके साथ श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त कराएँगे ।' उस समय श्रीश्रीवासकी भतीजी श्रीनारायणी—'श्रीचैतन्यभागवत'के लेखक श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी माता—केवल चार वर्षकी बालिका थी। महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीनारायणी 'हा कृष्ण !' कहकर प्रेमाश्रु-विसर्जन करने लगी। प्रभुकी इच्छासे चार वर्षकी बालिका भी

कृष्णप्रेममे उन्मत्त हो सकती है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण प्रदर्शन करके महाप्रभु ने श्रीश्रीवासको निर्भय कर दिया।
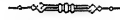
चौबीसवाँ परिच्छेद

श्रीमुरारि-गुप्तके घरमें

श्रीगौरसुन्दर क्रमश अपने आत्मस्वरूपको प्रकट करने लगे। एक दिन श्रीमुरारि-गुप्तके घरमे श्रीवराह-मूर्तिको प्रकट किया। जो लोग भगवान्‌को निरतिशय निराकार निर्विशेष कल्पना करके उनकी अचिन्त्य शक्तिको नही मानते है, श्रीगौरसुन्दर श्रीवराहरूपमें उनके प्रति इस प्रकार क्रोध प्रकट करने लगे,—

"हस्त-पद-मुख मोर नाहिक लोचन।'
एइ मत वेदे मोरे करे' विडम्बन॥
काशीते पडाय बेटा प्रकाश-आनन्द।
सेइ बेटा करे' मोर अग खड खड॥
बाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने।
सर्ब अगे हइल कुष्ठ, तबू नाहि जाने॥
सर्वयज्ञमय मोर ये अंग पवित्र।
अज-भव-आदि गाय याहार चरित्र॥
पुण्य पवित्रता पाय ये-अंग-परशे।
ताहा 'मिथ्या' बले' बेटा केमन साहसे?"

—चै० भा० म० ३।३६-४०

[वेदकी विकृत-व्याख्या करते हुए कहता है, मेरे हाथ, पैर, मुख, नेत्र नही है। काशीमें बेटा प्रकाशानन्द पढाता है, वह मेरे अगके टुकडे-टुकडे करता है। वेदकी व्याख्या करता है, पर मेरे विग्रहको नही

मानता। सारे अगमें कुष्ठ हो गया तो भी वह नही समझता। मेरा जो शरीर सर्वयज्ञमय और पवित्र है, ब्रह्मा-शकर जिसका चरित्र गाते है, जिसके अगस्पर्शसे पुण्य पवित्रता प्राप्त होती है, उसको वह बेटा किस साहससे मिथ्या कहता है ?]

महाप्रभु श्रीवराहमूर्तिमें कहते है, कि,—काशीमें प्रकाशानन्द नामक एक प्रसिद्ध सोऽहवादी अध्यापक वेदोकी व्याख्या करते समय श्रीभगवान्के सुमधुर सच्चिदानन्द आकारकी निन्दा करता रहता है। श्रीभगवान्के नित्य आकारको स्वीकार न करनेके कारण प्रकाशानन्द भगवान्के श्रीचरणोका बडा अपराधी है। इस अपराधके फल-स्वरूप उसके सारे शरीरमें कुष्ठ रोग हो गया था, तथापि उसके हृदयमें ज्ञानोदय नही हुआ। मै अपने भक्तके चरणोमें किये गये अपराधको किसी प्रकार सहन नही कर सकता। यदि मेरा पुत्र भी मेरे भक्तसे द्वेष करता है तो उस प्रिय पुत्रका भी मै विनाश कर देनेके लिये तैयार हूँ। मै भक्तकी रक्षाके लिये अपने निज पुत्रको भी काटकर फेंक सकता हूँ। 'नरक' नामका मेरा एक महा बलवान् पुत्र हुआ था। मैंने उसे धर्मोपदेश दिया था। मुझसे सदुपदेश प्राप्त कर उसका जीवन कुछ दिनोके लिये पवित्र हो गया था , परन्तु काल-क्रमसे वाण-राजाके दुष्ट ससर्गसे मेरे भक्तोके प्रति विरुद्धाचरण करनेकी उसे दुर्बुद्धि हो गयी ; इस कारणसे मैंने उस भक्तद्रोही पुत्रको काटकर भक्तकी रक्षा की थी। अपने प्रति अपराधी व्यक्तिको मै क्षमा करता हूँ, परन्तु अपने भक्तके प्रति अपराध करनेवालेको मै कभी क्षमा नही करता।"

वेदने प्राकृत आकारका निषेध करनेके लिये ही परब्रह्मको निराकार या निर्विशेष कहा है। इसके द्वारा प्राकृत आकार और प्राकृत विशेष धर्मका निषेध करके अप्राकृत नित्य सच्चिदानन्द आकार ही स्थापित किया गया है। भगवान्—सर्वशक्तिमान् हैं। हम लोग अपने विचारमें जिसका सामजस्य नही कर पाते, भगवान्के लिए वह भी सभव है। भगवान्का नित्य चिदानन्द आकार भी हमारे ही आकारके समान

अनित्य आकार होगा, इस प्रकारका **अनुमान** करना, भगवान्‌की **सर्वशक्तिमत्ताको अस्वीकार करना** मात्र है,—यही है प्रच्छन्न नास्तिकता। जो सर्वशक्तिमान् है उनमे समस्त शक्तियाँ है। जिनमें सारी शक्तियाँ नही ह, वे परमेश्वर नही है।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

ठाकुर श्रीहरिदास

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके प्राय तीस-पैंतीस वर्ष पहले उस समयके यशोहर प्रदेशके 'बूढन' * ग्राममें ठाकुर श्रीहरिदास आविर्भूत हुए। कोई-कोई कहते है कि श्रीहरिदास मुसलमान-कुलमे अवतीर्ण हुए, और किसीके मतसे वे ब्राह्मण माता-पितासे अवतीर्ण होकर शैशवमे ही मातृपितृहीन हो गये थे, तथा अहिन्दूके घरमे लालन-पालन होनेके कारण 'अहिन्दू' माने गये। बाल्यकालसे ही श्रीहरिदासकी श्रीहरिनाममें स्वाभाविक रुचि थी। वे यशोहर जिलेके 'बेनापोल' गाँवमें निर्जन बनमे एक कुटि बनाकर प्रतिदिन दिनरातमें तीन लाख हरिनाम लेते और ग्रामस्थ ब्राह्मणके घर भिक्षा लेकर अपना निर्वाह करते थे। श्रीहरिदासके इस प्रकारके चरित्रसे मुग्ध होकर सभी लोग श्रीहरिदास-जीके प्रति हृदयसे श्रद्धा-भक्ति करते थे। परन्तु उसी गाँवके उस समयके मत्सर-स्वभावके जमीदार रामचन्द्र खाँने, युवक श्रीहरिदासका

* पहले 'बूढन' परगना यशोहर जिलेके अन्तर्गत था, किन्तु आजकल खुलना जिलेके अन्तर्गत सातक्षीरा महकमेमें है। २४ परगना जिलेके बसिरहाट महकमेसे जलमार्ग द्वारा साँतापुल तक लगभग २६ मील मोटरलचमें जाकर वहाँसे पैदल चलकर दस मीलके भीतर बूढन परगना है, किन्तु बूढन गाव कहाँ था यह अभी तक ठीक नही जाना जा सका है। कोई-कोई इस स्थानके केडागाछि गावको ठाकुर श्री-हरिदासका आविर्भाव-स्थान बताते हैं।

वैराग्य नष्ट करनेके लिए एक सुन्दरी वेश्याको उनके पास भेजा। वह कुलटा श्रीहरिदासका धर्म नष्ट करनेके लिये लगातार तीन रात नाना प्रकारकी चेष्टा करके भी कृतकार्य न हो सकी। घडीभर भी श्रीहरिदासको श्रीहरिनाम-सकीर्तनके सिवा दूसरा कोई कार्य करते न देखकर उस वेश्याका चित्त बदल गया। तब वह वेश्या श्रीहरिदासजीसे क्षमा-प्रार्थना करती हुई अपने पापमय जीवनका परित्याग करके श्रीहरिनामका आश्रय लेनेके लिये व्याकुल हो उठी। नामाचार्य श्रीहरिदासने वेश्याको उसके घरका सर्वस्व ब्राह्मणोको दानकर सदा तुलसीकी सेवा तथा रातदिन तीन लाख हरिनाम लेनेके लिये उपदेश प्रदान किया तथा स्वय 'बेनापोल' त्याग करके चाँदपुरमे * जाकर श्रीबलराम आचार्यके घर रहने लगे।

श्रीबलराम आचार्य हरिदास ठाकुरकी कृपा प्राप्त कर तथा उनकी सेवा करके कृतार्थ हो गये। गोवर्धन मजुमदारके पुत्र श्रीरघुनाथ उस समय बालक और छात्र थे। बालक श्रीरघुनाथ श्रीबलराम आचार्य के घर जाकर श्रीहरिदास ठाकुरका दर्शन और कृपा प्राप्त करते थे। उस समय श्रीबलराम आचार्यकी प्रार्थनासे श्रीहरिदास हिरण्य-गोवर्धनकी सभामें गये। ठाकुर श्रीहरिदास प्रतिदिन तीन लाख हरिनामका जप और कीर्तन करते थे। उस सभाके पडितोमे किसी-किसीने नामाभासको ही शुद्ध नाम समझकर नामकीर्तनका फल—'पापक्षय और मुक्तिलाभ' स्थापित किया। परन्तु श्रीहरिदास ठाकुरने श्रीमद्भागवतके प्रमाणसे यह घोषित किया कि, 'श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति ही नामका फल है तथा पापनाश और मुक्ति नामाभासका फल है।' उसी समय गोपाल चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मणने इस सिद्धान्तको सुनकर अत्यन्त क्रोध-

* चाँदपुर—हुगली जिलेमें 'त्रिवेणी'के समीप यह गाँव था। स्थानीय कायस्थ जमीदार हिरण्य और गोवर्धन मजुमदारके पुरोहित थे श्रीबलराम आचार्य। श्रीगोवर्धन मजुमदार श्रीरघुनाथदास-गोस्वामी प्रभुके पूर्वाश्रमके पिता थे। हिरण्य मजुमदारके ही छोटे भाई गोवर्धन थे।

पूर्वक कहा,—"कोटि जन्ममें ब्रह्मज्ञान होनेपर भी जो मुक्ति नही प्राप्त होती, नामाभासके द्वारा उस मुक्तिकी प्राप्ति कभी नही हो सकती।" उद्धत चक्रवर्ती अत्यन्त स्पर्द्धाके साथ श्रीहरिदास ठाकुरसे बोले,—"यदि आपके कथनानुसार नामाभासके फलसे मुक्ति न हो तो आप दण्डस्वरूप अपनी नाक काट लेगे?" श्रीहरिदास अत्यन्त दृढताके साथ बोले,—"यदि हरिनामके आभाससे मुक्ति न हो, तो निश्चय ही मै अपनी नाक काट लूँगा।" तीन दिन बीतते ही न बीतते देखा गया कि उस दुर्जन ब्राह्मणकी ही अतिसुन्दर ऊँची नाक और चम्पाकी कलीके समान हाथ पैरकी अगुलियाँ कुष्ठ-व्याधिसे आक्रान्त हो उठी।

श्रीहरिदास ब्राह्मणकी यह अवस्था देखकर अत्यन्त ही दुःखित हुए और वहाँसे 'शान्तिपुर चले आये।

उस समय श्रीमत् अद्वैताचार्य श्रीहट्ट (सिलहट)से आकर शान्तिपुर में वास करते थे। 'फुलिया*' और 'शान्तिपुर'में उस समय ब्राह्मण-समाज प्रबल था। श्रीअद्वैताचार्यने श्रीहरिदासके श्रीनाम-भजनके लिये एक निर्जन स्थानमें एक 'गुफा' तैयार करा दी। आचार्य प्रतिदिन श्रीहरिदासको अपने घर भोजन कराते थे। उन्ही दिनो श्रीअद्वैताचार्यके पितरोके श्राद्धका समय आनेपर उन्होने श्रीहरिदासको वह श्राद्ध-पात्र प्रदान किया,—

'तुमि खाइले हय कोटि-ब्राह्मण-भोजन'।
एत बलि' श्राद्ध-पात्र कराइला भोजन ॥

—चै० च० अ० ३।२२०

['तुम्हारे भोजन करनेसे करोडो ब्राह्मणोका भोजन करना होता है', इतना कहकर श्राद्ध-पात्र भोजन करा दिया।]

उसी समय एक रात स्वय मायादेवी श्रीहरिदासको छलनेके लिये आयी, परन्तु श्रीहरिदासकी कृपासे माया भी कृष्ण-नाम प्राप्तकर धन्य

* शान्तिपुरके निकट एक गाँव।

हो गयी। मुसलमान-कुलमे उत्पन्न होकर श्रीहरिदास हरिनाम लेने हैं, यह सुनकर काजीने नवाबके पास श्रीहरिदासके विरुद्व अभियोग उपस्थित किया। नवाबके कर्मचारियोने श्रीहरिदासको पकडकर कारागारमें बन्दी कर दिया। श्रीहरिदास कारागारमें भी अन्यान्य अपराधी बन्दियोको सदुपदेश प्रदान करने लगे। नवाबने श्रीहरिदाससे उनको अपने जातीय-धर्मके उल्लघनका कारण पूछा, तो श्रीहरिदास ठाकुर बोले,—

*　　*　　*

शुन, बाप! सबारइ, एकइ ईश्वर॥
नाम-मात्र भेद करें हिन्दुये यवने।
परमार्थे 'एक' कहे कोराणे पुराणे॥

—चै० भा० आ० १६।७६-७७

[सुनो बापजी, सबके ईश्वर एक ही हैं। हिन्दू और यवन उन्हें अलग-अलग नामसे पुकारते हैं, सिर्फ यही अतर है। मूलत कुरान और पुराण दोनो ही उसी एक (ईश्वरकी) बात कहते हैं।]

श्रीहरिदासकी इस बातसे काजी सन्तुष्ट न हुआ और श्रीहरिदासको दण्ड देनेके लिये नवाबसे अनुरोध किया। नवाबके नाना प्रकारके भय प्रदर्शन करनेपर भी हरिदास ठाकुर विन्दुमात्र भयभीत नही हुए उल्टे सुदृढ भावसे बोले,—

"खण्ड-खण्ड हइ' देह याय यदि प्राण।
तबु आमि वदने ना छाडि हरिनाम॥"

—चै० भा० आ० १६।९४

[देहके टुकडे-टुकडे होकर चाहे प्राण भी चले जायँ, तब भी मैं मुँहसे हरिनाम नही छोडूगा।]

काजीके आदेशसे उसके कर्मचारियोने श्रीहरिदासको अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक बाईस बाजारोमें वेत्राघात करनेपर भी श्रीहरिदासके शरीरमें किसी प्रकार दुखका चिह्न प्रकट नही हुआ और न प्राण-

वियोग ही हुआ, इससे वे लोग बहुत विस्मित हो उठे। पीछे कही मारनेवालोका किसी प्रकारका अमगल न हो जाय, इसके लिये श्रीहरिदासने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की,—

"ए-सब जीवेरे, कृष्ण! करह प्रसाद।
मोर द्रोहे नहु ए-सबार अपराध।।"

—चै० भा० आ० १६।११३

[हे कृष्ण, इन सब जीवोपर कृपा करो। मेरे प्रति द्रोह करनेके कारण इन सबका अपराध न लेना।]

श्रीहरिदासको मार न सकनेके कारण काजीके कर्मचारियोको काजी कठोर दण्ड देगा, यह सुनकर श्रीहरिदासने कृष्णके ध्यानमें समाधि लगाकर अपनेको मृतवत् प्रदर्शित किया। श्रीहरिदासको कब्रमें गाडनेसे कही उसकी सद्गति हो जायगी, यह सोचकर श्रीहरिदासको असद्गति प्राप्त करानेके उद्देश्यसे काजीने श्रीहरिदासको श्रीगगामें फेंक देनेका आदेश दिया। श्रीहरिदास बहते-बहते किनारेपर आये और वाह्यदशा प्राप्तकर पुन 'फुलिया' ग्राममें उपस्थित हुए और वही पूर्ववत् उच्च स्वरसे श्रीकृष्णनाम-कीर्तन करते रहे।

फुलियामे जिस गुफामें श्रीहरिदास भजन करते थे, वहाँ एक महान् विषधर सर्प रहता था। ओझा लोगोके अनुरोधसे जब श्रीहरिदास उस गुफाको त्याग करनेकी इच्छा करने लगे तब वह सर्प अपन-आप गुफा त्याग करके चला गया।

एक दिन किसी गृहस्थके घर एक भगवद्भक्त नागराजाविष्ट सर्पक्रीडक (सँपेरा) कालिय-दमनका गीत गाते-गाते नृत्य करने लगा। श्रीहरिदास ठाकुर अचानक कहीसे वहाँ आ उपस्थित हुए तथा श्रीकृष्णके कालियनाग-दमन-लीलाका गान सुनकर प्रेमावेशसे मूर्छित होकर गिर पडे। उनके शरीरमें अद्भुत सात्विक भाव प्रकट हो उठे। इससे वह सपेरा हाथ जोडकर एक ओर खडा हो गया। दर्शक लोग प्रेमोन्मत्त महाभागवतवर श्रीहरिदासकी श्रीचरणधूलि लेकर अपने-अपने अगमें

लेपन करने लगे। यह देखकर मत्सर-स्वभाव एक भण्ड धूर्त ब्राह्मण इसी प्रकारकी सम्मान-प्राप्तिकी आशासे श्रीहरिदास ठाकुरका अनुकरण करके नाचते-नाचते जमीनपर गिर पडा और मूर्छित होनेका कपट जाल बिछाया। सँपेरा उस ब्राह्मणकी धूर्तताको ताड गया और उस भण्डको बेत मारकर जर्जरित करके उसे वहाँसे भगा दिया। भावाविष्ट सँपेरेने सबको श्रीहरिदासके अप्राकृत भावावेशकी अकृत्रिमता तथा मत्सरयुक्त पाखडी ब्राह्मणके स्पर्द्धामूलक अभिनयका भेद लोगोको समझा दिया।

उन दिनो बहिर्मुख व्यक्तिमात्र ही उच्च (स्वरसे) हरिकीर्तनके विरोधी थे, तथा उच्च हरिकीर्तनके फलसे देशमे नाना प्रकारकी दुरवस्था उपस्थित होती है, इस प्रकारका अभियोग लगाकर उच्च कीर्तन करनेवाले वैष्णवोके विरुद्ध आचरण करते थे। 'हरिनदी' ग्रामके दुष्ट-प्रकृतिके एक ब्राह्मणने एक दिन श्रीहरिदासको बुलाकर कहा,—"उच्च-स्वरसे श्रीहरिनामकीर्तन करना अशास्त्रीय है, मन-ही-मन जप करना ही शास्त्रीय विधि है, पडित सभामे इसका विचार होना चाहिए।" ठाकुर श्रीहरिदासने शास्त्रके प्रमाणो द्वारा बता दिया कि मन-ही-मन नाम जप करनेसे केवल अपना ही उपकार होता है, परन्तु उच्च कीर्तनके द्वारा अपना और दूसरेका भी उपकार होता है,—यहाँ तक कि पशु-पक्षी, वृक्ष-लताके लिये भी उससे सुकृत-सचय होता है।

उस समय श्रीनवद्वीप-श्रीमायापुरमें श्रीअद्वैताचार्यकी पाठशाला और वैष्णव-सभा थी। नवद्वीपमे श्रीहरिदासको पाकर श्रीअद्वैतप्रभु विशेष आनन्दित हुए।

श्रीगयासे लौटनेके बाद धीरे-धीरे श्रीगौरसुन्दरने हरिसकीर्तनका नेतृत्व ग्रहण किया। श्रीश्रीवासके घर जो नित्य सकीर्तनोत्सव प्रारम्भ हुआ, उसके प्रधान सहायक हुए—ठाकुर श्रीहरिदास और श्रीश्रीवास पडित।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

श्रीनित्यानन्दके साथ मिलन और श्रीव्यास-पूजा

ईस्टर्न रेलवेके लूप लाइनपर 'मल्लारपुर' स्टेशनसे प्राय चार कोस पूर्व वीरभूम जिलेमें प्राचीन 'एकचाका' वा 'एकचक्र' ग्राम अवस्थित है। श्रीनित्यानन्द प्रभुके पुत्र श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) प्रभुके नामानुसार पश्चात् इस स्थानका नाम 'वीरचन्द्रपुर' हो गया। श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व मैथिल ब्राह्मण श्रीहाडो वा श्रीहाडाइ ओझा तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीपद्मावतीके घर उपर्युक्त 'एकचाका'-गाँवमें माघ शुक्ल त्रयोदशी तिथिको श्रीनित्यानन्दप्रभु अवतीर्ण हुए।

एक वैष्णव-सन्यासी अतिथि-रूपमें उपस्थित होकर श्रीहाडाइ-पद्मावतीके प्राणोंकी पुतली द्वादश-वर्षीय श्रीनित्यानन्दको भिक्षा-स्वरूपमें ले गया। उस वैष्णव-सन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्दने बहुतसे तीर्थोंका भ्रमण किया। उसी पश्चिम-भारतमें भ्रमण करते समय श्रीनित्यानन्दके साथ सपार्षद महाप्रेमिक श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादका साक्षात्कार और प्रेमालाप हुआ।

बीस वर्षतक भारतके समस्त तीर्थोंमें घूमकर अन्तमें श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवृन्दावन आये। उसी समय श्रीगौरसुन्दरने श्रीनवद्वीपमें अपना स्वरूप प्रकट किया था। श्रीनित्यानन्द मानो श्रीगौरसुन्दरके महाप्रकाशकी अपेक्षा करके ही श्रीवृन्दावनमें वास कर रहे थे। श्रीधाम-नवद्वीपमें श्रीगौरसुन्दरने आत्मप्रकाश किया है, यह जानकर श्रीनित्यानन्दने श्रीवृन्दावनसे अति शीघ्र नवद्वीपमें आकर श्रीनन्दनाचार्यके घर अवस्थान किया। श्रीनन्दनाचार्य नवद्वीपवासी वैष्णव थे।

इधर श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्दके आनेके पूर्व ही वैष्णवोंसे कह दिया था कि दो ही तीन दिनोंमें कोई एक महापुरुष नवद्वीपमें आयँगे। उस समय वैष्णव लोगोंने श्रीमहाप्रभुकी बातके रहस्यको नहीं समझा

था । जिस दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीनवद्वीपमें आये, उसी दिन महाप्रभु ने वैष्णवोसे कहा कि उन्होने गत रातको एक स्वप्न देखा है, मानो तालध्वजाके रथमें नीलवस्त्र धारण किये हुए एक महापुरुष उनके घरके द्वारपर आये है । महाप्रभुने श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीश्रीवास पडित को नवद्वीपमें उन महापुरुषका पता लगानेके लिये कहा । पडित श्रीश्रीवास और श्रीहरिदास समस्त नवद्वीपमे तथा आसपासके गाँवोके प्रत्येक घरमे पता लगाकर भी किसी भी महापुरुषको कही देख न सके । महाप्रभुके पास जब वे लोग यह समाचार लेकर लौटे तो स्वय महाप्रभु उन दोनोको लेकर सीधे श्रीनन्दनाचार्यके घरमें उपस्थित हुए तथा वहाँ एक अदृष्टपूर्व ज्योतिर्मय महापुरुषको दिखलाया । ये ही है वे पतित-पावन श्रीनित्यानन्द ।

महाप्रभुने भक्तोके सामने श्रीनित्यानन्दकी महिमा प्रकट की । एक पूर्णिमाकी रात्रिमें महाप्रभुकी इच्छासे श्रीनित्यानन्द प्रभुने 'श्रीव्यास-पूजा' करनेका सकल्प किया । सर्वशास्त्रकर्ता श्रीव्यासकी कृपासे ही हमलोग श्रीभगवान्‌की सारी कथाएँ जान सकते है, इसीलिये साधुलोग श्रीव्यास-पूजा किया करते है । श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुपादपद्मकी पूजा भी 'व्यास-पूजा' है । श्रीमायापुरमें श्रीश्रीवास पडितके घर इस व्यास-पूजाका आयोजन हुआ । सर्वशास्त्रज्ञाता श्रीश्रीवास पडित व्यास-पूजाके आचार्य बने । पहले दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीवास पडितके घरका द्वार बन्द करके भक्तगणके साथ अधिवास-सकीर्तन किया । दूसरे दिन प्रात काल गगा-स्नानादि कृत्य सम्पन्न करके श्रीनित्यानन्द-प्रभुने श्रीश्रीवासप्रदत्त वनमाला श्रीगौरहरिके गलेमें पहनाकर श्रीव्यास-पूजा सम्पन्न की । श्रीगौरहरिने श्रीनित्यानन्दप्रभुको अपनी शख-चक्र-गदा-पद्म-हल-मूसल धारण की हुई षड्भुज-मूर्त्तिका दर्शन कराया ।

दिन भर श्रीव्यासपूजा-महोत्सवका सकीर्तन हुआ । श्रीगौरहरिने श्रीव्यासका प्रसाद वैष्णवगणको अपने हाथसे वितरण किया । श्रीश्रीवास पडितके दास-दासी तक श्रीभगवान्‌का प्रसाद पाकर धन्यातिधन्य हुए ।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

श्रीअद्वैताचार्यके सामने आत्मप्रकाश

श्रीव्यास-पूजाके बाद भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरने श्रीश्रीवास पडितके छोटे भाई श्रीश्रीराम (श्रीरामाइ) पडितको श्रीअद्वैताचार्यके पास शान्तिपुर भेजकर अपनी प्रकाश-वार्ताके विषयमे सूचित किया,—श्रीअद्वैत आचार्यने जिनके लिये इतनी आराधना की थी, वे प्रभु ही गोलोकसे भूलोकमे अवतीर्ण हुए है, तीर्थ-भ्रमणके अन्तमे श्रीनित्यानन्द भी श्रीमन् महाप्रभुके सग आकर मिल गये है।

श्रीअद्वैताचार्य श्रीरामाइ पडितका दर्शनकर आनन्दसे विह्वल हो उठे तथा श्रीरामाइसे सारी बाते सुनकर अपनी पत्नी श्रीसीतादेवीके साथ नाना प्रकारकी भेंट लेकर महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीनवद्वीपकी ओर चल पडे। आचार्यने महाप्रभुके साथ विनोद करनेके लिये रास्तेमें श्रीरामाइसे कहा दिया कि वे महाप्रभुसे जाकर कहे,—"आचार्यने आपके अनुरोध करनेपर भी नवद्वीपमे आना स्वीकार नही किया।" इधर अद्वैताचार्य छिपे रूपमें श्रीनन्दनाचार्यके घर रहने लगे। सर्वान्तियामी श्रीश्रीगौरसुन्दर आचार्यके मनकी बात जानकर भावावेशमे विष्णुके सिहासनपर बैठकर कहने लगे,—"आचार्य आ रहे है! आचार्य आ रहे है! आचार्य मेरे अन्तर्यामित्वकी परीक्षा करना चाहते है! मैं जान गया हूँ, श्रीअद्वैताचार्य श्रीनन्दनाचार्यके घरमे छिपे हुए है। रामाइ, तुम अभी जाकर उनको ले आओ।" श्रीमन्महाप्रभुके आदेशानुसार रामाइ श्रीअद्वैताचार्यको लानेके लिये श्रीनन्दनाचार्यके घर गये और उनसे सारी बातें कही, तब सहधर्मिणीके साथ श्रीअद्वैताचार्यने आनन्दपूर्वक दूरसे ही भूमिष्ठ होकर प्रणाम और स्तुति पाठ करते-करते श्रीमहाप्रभुके सामने आकर उनके अपूर्व महैश्वर्यका दर्शन किया। श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुकी महिमा और अहैतुकी दयाके विषयमें कीर्तन

करते-करते महाप्रभुके श्रीचरणोको प्रक्षालन कर पचोपचारसे उनकी पूजा की और "नमो ब्रह्मण्यदेवाय" श्लोकका उच्चारण करते हुए, प्राणधन श्रीगौरनारायणको प्रणाम किया। उस समय महाप्रभुने अपने गलेकी माला श्रीअद्वैताचार्यको प्रदान कर उनको वर माँगनेके लिये कहा। श्रीअद्वैताचार्य बोले,—"प्रभो, मैं और क्या वर माँगूँगा? जो वर मैंने चाहा था, वह सभी पा चुका। तुम्हारे सामने नृत्य करनेमें समर्थ हो रहा हूँ, इसीमें मेरा समस्त अभीष्ट पूर्ण हो गया है। प्रभो, यदि तुम मुझको वर देना ही चाहते हो तो तुमसे इसी वरके लिये प्रार्थना करता हूँ कि विद्या, धन, कुल और तपस्याके मदसे मत्त वैष्णवापराधीको छोडकर पृथ्वीपर जितने स्त्री, शूद्र, मूर्ख, चण्डाल, अधम है वे सभी तुम्हारे प्रेमरससे आप्लुत हो सकें।"

श्रीअद्वैताचार्यकी इस प्रार्थनाके प्रभावसे ही पृथ्वीके आपामर जीव-जगत् (जगत्के पामरसे लेकर ऊँचेसे ऊँचे सभी जीव) श्रीगौरसुन्दरके अपार्थिव प्रेमके अधिकारी हुए है।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि

श्रीगौरसुन्दर एक दिन अचानक 'पुण्डरीक'! 'पुण्डरीक'! कहकर उच्चस्वरसे रोने लगे। सब लोगोने समझा कि,—कृष्णका एक नाम 'पुण्डरीक' है, जान पडता है कि महाप्रभु कृष्णको पुकार रहे है। परन्तु महाप्रभुने सबसे कहा कि,—"पुण्डरीक विद्यानिधि नामक एक अद्भुत-चरित्रवाले भक्त शीघ्र ही श्रीमायापुरमें आवेंगे।" सचमुच ही शीघ्र श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि नवद्वीपमें आकर उपस्थित हुए।

चटगाँव शहरसे करीब १२ मील उत्तर 'हाटहजारी' थानेके अन्तर्गत और उस स्थानसे दो मील पूर्वकी ओर उस 'मेखला' गाँवमें १४०७ शकाब्दमें माघ मासकी श्रीपंचमी-तिथिको वाणेश्वर गंगोपाध्याय और गंगादेवीके घरमें श्रीपुण्डरीक आविर्भूत हुए।* श्रीवाणेश्वर घोर शाक्त थे और भैरवी-चक्रमें 'कौलाचार्य'के नामसे उनको सम्मान प्राप्त था।

श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिकी भजन-कुटी
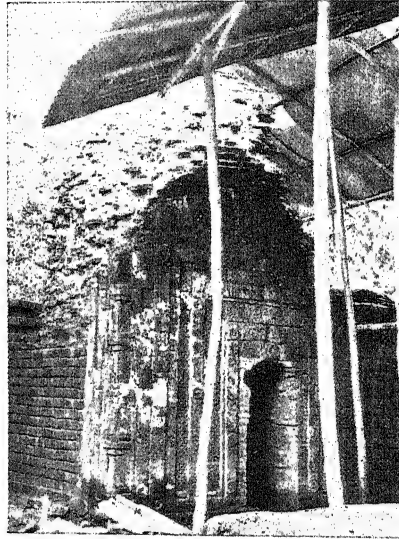
श्रीपुण्डरीक घोर शाक्त-समाजमें अवतीर्ण होकर भी बचपनसे ही विद्ध शाक्त-धर्मका† खंडन करने लगे। वे पाठाभ्यासके लिये उस समयके प्रसिद्ध विद्यापीठ श्रीनवद्वीपमें गये थे। श्रीनवद्वीपमें उनका घर था। श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामी प्रभु जिस समय श्रीमायापुर-नवद्वीपमें विचरण करते थे, उसी समय श्रीपुण्डरीकने श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादसे भागवती दीक्षा प्राप्त की। कहा जाता है कि, जब श्रीपुण्डरीकने श्रीमाधवेन्द्रसे कृपा-प्रार्थना की, तब श्रीपुरी-

---

* यह विवरण श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिके श्रीपाटस्थ प्राचीन हस्त-लिखित पोथी और वंश-परिचयसे संगृहीत है।

† जो लोग अप्राकृत स्वरूपशक्ति श्रीराधाकी दासियोंके अनुगत होकर श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते हैं वे शुद्ध शाक्त हैं, और जो अचित् शक्तिके सेवक हैं, वे विद्ध शाक्त हैं।

गोस्वामीने श्रीपुण्डरीकसे कहा था,—"तुम्हारे माता-पिता, आत्मीय-स्वजन और समाज सभी शक्ति-उपासक हैं। यदि तुम शुद्ध वैष्णव-धर्म ग्रहण करते हो तो तुमपर भीषण निर्यातन प्रारम्भ हो जायगा, यहाँ तक कि तुमपर प्राण-सकट आ सकता है।"

तव श्रीपुण्डरीकने श्रीपुरी गोस्वामीके सामने हाथ जोडकर निवेदन किया, —'प्रभो मैं निर्यातनके भयसे नही डरता। श्रीप्रह्लादने अपने पिता हिरण्यकशिपु और दैत्य-समाजकी लाछना सहकर हरिभजन किया था। उनके आदर्शका अनुमरण कर मैं भी उस प्रकारकी लाछना सहन करनेके लिये प्रस्तुत हूँ, आप मुझपर कृपा करे। आपकी कृपा प्राप्त किये बिना मैं जीवन धारण नही करूंगा।"

इससे सतुष्ट होकर श्रीमाधवेन्द्रने श्रीपुण्डरीकको शिष्यरूपमें ग्रहण किया। श्रीपुण्डरीकने श्रीनवद्वीपमें अध्ययन समाप्त कर पडित-समाजसे 'विद्यानिधि'की उपाधि प्राप्त की। दीक्षा प्राप्त करनेके बाद जब वे चटगाँव लौटे, तब उनके वैष्णव-वेशको देखकर स्थानीय विद्ध-शाक्त-समाज अत्यन्त रुष्ट हुआ। विद्यानिधि समाजको कुछ भी नही मानते, यह देखकर समाजके लोगोने उनके माता-पितासे कहा कि यदि वे लोग इस प्रकारके कुलागार पुत्रका (?) परित्याग नही करते हैं तो हम लोग उनको समाज-च्युत कर देंगे। समाजके शासन, निष्पेषण और शत-शत निर्यातनके भयसे श्रीपुण्डरीक तनिक भी शुद्ध-भक्तिसे विचलित नही हो रहे हैं, यह देखकर शाक्त-समाज, विद्यानिधि 'बहिस्तन्त्र' हो गये हैं अर्थात् तन्त्रोक्त कार्यके बाहर अधर्मका आचरण कर रहे हैं, इस प्रकारका प्रचार करने लगा।

श्रीमथुरानाथ श्रीकृष्णके प्रति श्रीव्रजवासियोका विप्रलम्भ-प्रेम, जिस प्रकार श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीरघुपति उपाध्याय, सनोडिया विप्र प्रभृति श्रीगौरपार्षदगणको प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिको भी प्राप्त हुआ। श्रीव्रजलीलामें जो वृषभानुराज हैं, वही श्रीगौरलीलामें श्रीपुण्डरीक

विद्यानिधि है। इसी कारण श्रीगौरसुन्दर (श्रीराधा-भावमे) श्रीपुण्ड-रीक विद्यानिधिको 'बाप' कहकर सम्बोधन करते थे।

श्रीपुण्डरीककी लौकिक उपाधि थी—'विद्यानिधि'। श्रीमन्महाप्रभुने नाम दिया था—'प्रेमनिधि' और 'आचार्यनिधि'। श्रीपुण्डरीकने सर्वत्र परविद्यावधूके जीवन श्रीहरिनामका प्रचार किया था, इसी कारण उनका नाम पडा 'आचार्यनिधि'। महापुरुष या महाभागवत आचार्य यदि गृहस्थके आकारमे या विषयीके आकारमें अवस्थान करे तो उनको गृहस्थ या सामान्य विषयीके रूपमें देखना अपराध है, यही शिक्षा देनेके लिये आचार्यनिधि श्रीपुण्डरीक वैष्णव-विरोधी कुलमे, विषयी और गृहस्थके आकारमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीगदाधर पडित गोस्वामी-प्रभुने एक अभिनय प्रकट कर—इस अपराधसे हमारी रक्षा की है।

चटगॉवके पटिया थानेके 'छनहरा' गॉवमें श्रीमुकुन्द दत्त ठाकुर आविर्भूत हुए। वे श्रीमहाप्रभुके समीप कीर्तन करते थे। श्रीमुकुन्द श्रीपुण्डरीककी महिमासे अवगत थे। उन्होने श्रीगदाधर पडितको श्रीपुण्डरीककी महिमा बतलाकर उन अद्भुत वैष्णवका दर्शन करनेके लिये उनसे अनुरोध किया। श्रीगदाधर पडित बाल-ब्रह्मचारी थे और विषयोसे विरक्त थे। पहले-पहल श्रीपुण्डरीकको देखकर उनमे भक्ति होना तो दूर रहा, अश्रद्धा ही उत्पन्न हो गयी। पुण्डरीक राजकुमारके समान चन्द्रातपके नीचे, बहुमूल्य पलगपर, ऊँची गद्दीके ऊपर बैठे है, महीन वस्त्र पहने हुए है, उनके चारो ओर कितने ही प्रकारकी विलास-की सामग्री पडी है। दो व्यक्ति सर्वदा मोर-पखसे हवा कर रहे है। गदाधरके मनमें आया,—क्या इस प्रकारका विलासी आदमी भी कभी भक्त हो सकता है! श्रीमुकुन्द श्रीगदाधरके मनकी बात समझ गये, उन्होने श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्णकी महिमाको व्यक्त करनेवाला एक श्लोक ज्यो ही पढा त्यो ही श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि अद्भुत अप्राकृत प्रेमके आवेशमें मूर्छित हो गये। उनके शरीरमे प्रेमके समस्त सात्विक-विकार प्रकट हो आये। श्रीगदाधर श्रीप्रेमनिधिके अद्भुत चरित्रको

देखकर विस्मित हो उठे और उन्होंने यह सोचकर कि इन महा-पुरुषके चरणोमें मेरा अपराध हुआ है, उन्हीके चरणोका आश्रय लेकर अपना अपराध मार्जन करानेके लिये दृढ निश्चय किया। श्रीगदाधर पडितने श्रीविद्यानिधिसे दीक्षा लेनेकी अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए श्रीमहाप्रभुसे अनुमति माँगी, श्रीमहाप्रभुने श्रीगदाधरको तुरन्त श्रीविद्यानिधिके चरणोका आश्रय लेनेका आदेश दिया।

बाह्य आकृति और क्रिया-मुद्रा देखकर महाभागवत या महापुरुष-का चरित्र नही समझा जा सकता। श्रीविद्यानिधिके चरित्रके द्वारा यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

श्रीश्रीवास-मन्दिरमें संकीर्तन-रास

श्रीनवद्वीपमे श्रीश्रीवास-भवन श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दके सकीर्तन प्रचारका प्रधान केन्द्र बना। इसी कारण 'श्रीवास-अङ्गन' महाप्रभुकी 'सकीर्तन-रासस्थली' के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीश्रीवासके घर एक वर्ष-तक यह सकीर्तन-रास हुआ था। कहना न होगा कि इसी स्थानसे भुवनमगल सकीर्तन समस्त विश्वमें फैला।

श्रीश्रीवास पडितका श्रीनित्यानन्दके प्रति सुदृढ विश्वास देखकर एक दिन श्रीमन्‌महाप्रभुने श्रीश्रीवाससे कहा,—"श्रीवास, तुमने हमारी अत्यन्त गुप्तनिधि श्रीनित्यानन्दको जब विशेष रूपसे पहचान लिया है तब तुमको मैं एक वर देता हूँ,—

बिडाल-कुक्कुर-आदि तोमार बाड़ीर।
सबार आमाते भक्ति हइबेक स्थिर ।।

—चै० भा० म० ८।२१

[तुम्हारे घरके सभी लोगोकी यहाँतक कि बिल्ली-कुत्तोकी भी मुझमे अटल भक्ति होगी ।]

जो लोग श्रीभगवानकी सेवामें निश्छल अनुराग रखते थे, वैसे ही लोगोको बुलाकर उनलोगोके साथ श्रीमन्महाप्रभुने प्रति रात्रि श्री-श्रीवासके आँगनमें श्रीकृष्ण-सकीर्तन आरम्भ किया । किसी-किसी दिन आचार्य श्रीचन्द्रशेखरके घर भी इसी प्रकारका कीर्तन होता था ।

श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीहरिदास, श्रीगदाधर, श्रीश्रीवास, श्रीविद्यानिधि, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीहिरण्य, श्रीगगादास, श्रीवनमाली, श्रीविजय, श्रीनन्दनाचार्य, श्रीजगदानन्द, श्रीबुद्धिमन्त खाँ, श्रीनारायण, श्रीकाशीश्वर, श्रीवासुदेव, श्रीराम, श्रीगोविन्द, श्रीगोविन्दानन्द, श्री-गोपीनाथ, श्रीजगदीश, श्रीश्रीधर पडित, श्रीश्रीमान्, श्रीसदाशिव, श्री-वक्रेश्वर, श्रीश्रीगर्भ, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीब्रह्मानन्द, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीसजय प्रभृति एकप्राण भक्तगण श्रीमनमहाप्रभुके साथ प्रतिरात्रि श्रीश्रीवास-मन्दिरमें सकीर्तन-नृत्य करते थे ।

अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी चिन्ता और आवेशके साथ अत्यन्त तीव्र व्याकुलता जब चित्तराज्यपर अधिकार कर लेती है, तभी हृदयसे जिह्वामें श्रीकृष्णनामकी प्लुत-ध्वनि बाहर निकलती है। जो नास्तिक हैं, देहको ही सब कुछ मानते हैं, इहलोकके सिवा और कुछ नही मानते, वे इसकी उपलब्धि नही कर सकते । जिस प्रकार बन्ध्याको पुत्र-स्नेहकी उपलब्धि नही हो सकती, इस लोकको ही सर्वस्व बतलानेवाले लोगोको भी उसी प्रकार कृष्णप्रेमकी बात हृदयमें नही उतर सकती। ऐसे लोगोको 'पाखडी' कहा जाता है। इस प्रकारके पाखण्डी लोग महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यको विविध दृष्टिसे देखते और नाना प्रकारसे समालोचना करते थे । कुछ लोग कहते थे कि,—"भक्तगण

व्यर्थ ही चिल्ला-चिल्लाकर मर रहे है।" दूसरे कहते थे कि,—"ये लोग मद्यपान करके अत्यन्त मतवाले होकर प्रलाप करते है।" कोई कहता, —"ये लोग मधुमतीसिद्धि-विद्यामे पारदर्शी है, उसी मन्त्रके प्रभावसे गुप्तरूपमे नीतिविरुद्ध कार्य करते है।" जिसकी जैसी चित्तवृत्ति होती, वह उसी भावसे महाप्रभु और उनके भक्तोक विषयमे नाना प्रकारकी बाते कहता था '

पाखण्डी सम्प्रदायको जब श्रीश्रीवासके घरमे प्रवेशका अधिकार नही मिला, तब वह महाप्रभु और भक्तोके सम्बन्धमे नाना प्रकारकी कुत्सित बातें करने और नाना प्रकारका भय दिखलाने लगा। किसीने कहा,—"श्रीनिमाइ पडित पहले अच्छे थे, अब कुसगदोषमे नष्ट हो गये हैं, मद्यपान, व्यभिचार आदि दोषोमे फँस गये (।) है"—इस तरह नाना प्रकारकी बाते करने लगे। कोई कहता,—"इन्हीलोगोके कारण देशमे दुर्भिक्ष और अनावृष्टि होती है और देशकी अर्थनैतिक अवस्था शोचनीय हो गयी है।" कोई कहता,—"इन लोगोने ब्राह्मणोका धर्म भूलकर मूर्ख और भावुकोका धर्म ग्रहण किया हैं, लोगोकी जात विगाड रहे हैं और वर्णाश्रम धर्ममें व्यभिचार ला रहे हैं।" कोई कहता,— "श्रीवास पडित ही सब अनर्थोका मूल हैं। इसके घर-द्वारको तोडकर नदीमे बहा देने तथा इसको गाँवसे निकाले बिना गाँवका कल्याण नही है। इसके घरमें जिस प्रकार कीर्तन बढ रहा है, उससे शीघ्र ही अहिन्दू शासक गाँवके ऊपर अत्याचार आरम्भ कर देंगे।"

श्रीचैतन्यके भक्तलोग बहिर्मुख व्यक्तियोकी इन सारी बातोपर कान न देकर श्रीमन्महाप्रभुके साथ हरिसकीर्तनमे प्रमत्त रहते थे। प्रेम-कल्पतरु महाप्रभु बाह्यज्ञानशून्य होकर निरन्तर नृत्य-कीर्तन करते। उनकी आर्त्तिको देखकर सबका हृदय विदीर्ण हो जाता। एकादशीके दिन प्रात कालसे प्रारम्भ कर सारी रात कीर्तन होता रहता। महाप्रभुका क्रन्दन और भूमिमें लोटना देखकर पाषाण भी पिघल जाता। इस सकीर्तन-रासका दर्शन करने तथा इस भुवन-मगल श्रीहरिध्वनिको

श्रवण करनेके लिये अदृश्यरूपसे कोटि-कोटि वैष्णव और देवता लोग उपस्थित रहते थे। श्रीचैतन्यलीलाके व्यास ठाकुर श्रीवृन्दावनने इस सकीर्तन-रासके वर्णन-प्रसगमे इस प्रकार लिखा है,—

हइल पापिष्ठ-जन्म, तखन ना हइल।
हेन महा-महोत्सव देखिते ना पाइल॥

—चै० भा० म० ८।१९८

[पापिष्ठ-जन्म अब हुआ पर उस समय नही हुआ। ऐसा महा-महोत्सव देख नही सका।]

बहिर्मुख व्यक्ति गृहके भीतर प्रवेशाधिकार न पाकर श्रीश्रीवास पडितका अपमान करनेके लिये अनेको प्रकारकी चेष्टाएँ करते थे। एक दिन 'गोपाल-चापाल' नामक एक ब्राह्मण-सन्तान देवीपूजाके उपहारके साथ मद्यका पात्र श्रीश्रीवास पडितके घरके बद द्वारके बाहर रख गया। उस वैष्णवापराधके कारण कुछ ही दिनोमे उसे गलित कुष्ठ रोग हो गया। असह्य यन्त्रणासे कातर होकर उसने महाप्रभुसे कृपाकी भीख माँगी, परन्तु उसके अपराधकी गुरुता देखकर महाप्रभुने उस समय उसको क्षमा प्रदान नही किया। महाप्रभु सन्यास ग्रहण करनेके बाद नीलाचलसे लौटकर जब 'कुलिया'में अवस्थान कर रहे थे, उस समय गोपाल-चापाल महाप्रभुके शरणापन्न हुआ, महाप्रभुने उसको उपदेश दिया कि—'तुम श्रीश्रीवास पडितको सतुष्ट करो।' श्रीश्रीवासकी कृपासे गोपालका अपराध नष्ट हो गया।

एक ब्राह्मण श्रीवास पडितके घर श्रीमन्महाप्रभुका सकीर्तन देखनेके लिये आये, परन्तु द्वार बन्द रहनेके कारण वे घरके भीतर प्रवेश न कर सके। ब्राह्मण अत्यन्त दु खित होकर चले गये। दूसरे एक दिन उस ब्राह्मणने श्रीमन्महाप्रभुको गगाके घाटपर देखकर अपना यज्ञोपवीत तोड करके महाप्रभुको शाप दिया—"तुम्हारा सासारिक सुख नष्ट हो जाय।" यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त उल्लसित हुए। क्योकि श्रीकृष्ण-सुखके लिये अनुसन्धान करनेवाला मनुष्य सासारिक सुखके

लिये लालायित नही होता। श्रीकृष्ण-सुखका चिन्तन ही जीवका एक-मात्र चरम उद्देश्य है। जिस-किसी निकृष्ट योनिमे जन्म ग्रहण करके भी तुच्छ क्षणिक और अन्तमे अशेष कष्टप्रद सासारिक सुख प्राप्त किया जाता है।

तीसवाँ परिच्छेद

'सात-प्रहरिया भाव' अथवा 'महाप्रकाश'

एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीवासके घर श्रीविष्णु-विग्रहकी खाटके ऊपर बैठकर अद्भुत ऐश्वर्य प्रकट किया। श्रीमहाप्रभु एक-एक करके विष्णुके सभी अवतारोके रूपोको प्रकट करने लगे। ये अद्भुत भाव सात पहर तक होते रहे, अतएव भक्त लोग इसे 'सात-प्रहरिया भाव' या 'महाप्रकाश' कहते है। भक्तोने 'पुरुषसूक्त'*के मन्त्रसमूहोका पाठकर गगाजलसे महाप्रभुका अभिषेक और विविध उपचारोसे पूजा करके भोग चढाया। यह अभिषेक 'राजराजेश्वर अभिषेक के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीधरको बुलवा भेजा और सबके सामने श्रीश्रीधरका माहात्म्य कीर्तन करने लगे। लोग श्रीश्रीधरको 'थोड-मोचा' (केलेके थम्भे और फूल) बेचनेवाला दरिद्र व्यक्तिमात्र समझते थे और उनकी महिमासे अवगत न थे। दूसरी ओर बहिर्मुख पाखण्डी लोग श्रीश्रीधरको क्या-क्या न कहते थे,—

* 'पुरुषसूक्त'—ऋग्वेदके प्रसिद्ध मन्त्र।

महाचाषा बेटा, भाते पेट नाहि भरे।
क्षुधाय व्याकुल हआ रात्रि जागि' मरे।।

—चै० भा० म० ६।१४८

[बेटा बडा गँवार है। भोजनसे पेट नही भरता, अत भूखसे व्याकुल होकर रात-रात भर जागकर मरता है।]

जब श्रीश्रीधर उपस्थित हुए तो श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीधरकी हरि-सेवाकी बात सबको सुनाई, श्रीश्रीधरने भी महाप्रभुकी स्तुति की। श्रीमहाप्रभुने श्रीश्रीधरसे कहा,—"श्रीधर! तुमको मैं अष्ट-सिद्धिका वर दे रहा हूँ।" श्रीश्रीधरने कहा,—"प्रभो, आप मुझे ठगना चाहते है?" इतनी बडी पृथ्वीके अधिपतिके पास क्या कोई मुट्ठीभर भिक्षाकी याचना करेगा? मै यह सब कुछ भी नही चाहता, अष्ट सिद्धि तो तुच्छ है, ज्ञानी-योगी-ऋषिगण जिस मुक्तिकी आकाक्षा करते है, वह भी श्रीभगवान्की सेवाके सामने अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन मेरा 'थोड-केला' और 'मोचा' (केलेके थम्भे, केले और केलेके फूल) छीन लेते हे, वे ही ब्राह्मण जन्म-जन्मान्तरमें मेरे प्रभु हो—यही मेरी प्रार्थना है, मै और कुछ नही चाहता।" व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीश्रीधरके सम्बन्धमें लिखा है,—

कि करिबे विद्या, धन, रूप, यश, कुले।
अहकार बाडि' सब पडये निर्मूले।।
कला-मूला बेचिया श्रीधर पाइल याहा।
कोटिकल्पे कोटीश्वर ना देखिबे ताहा।।
अहंकार-द्रोह-मात्र विषयेते आछे।
अध पात फल ता'र ना जानये पाछे।।

—चै० भा० म० ६।२३४-२३६

[विद्या, धन, रूप, यश, कुलसे क्या करोगे? अहकार बढनेसे तो सबका अध पतन होता है। केला-मूली बेचकर श्रीधरने जो कुछ प्राप्त किया, करोडो कल्पोमें कोटिपति तो उसको देख भी नही पाते।

विषयमें केवल अहकार और द्रोह है। उसका फल आगे चलकर अध पतन है, विषयी इसे नही जानते ।]

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमुरारि गुप्तको श्रीरामचन्द्र-रूपमे दर्शन देकर उसपर कृपा की और सबके सामने श्रीमुरारिकी महिमाको प्रकट करते हुए बोले,—"एक बार भी जो आदमी श्रीमुरारिकी निन्दा करेगा, कोटि-कोटि गगा-स्नानसे भी उसका निस्तार न होगा गगा-हरिनाम ही उसका सहार करेगा।"*

ठाकुर श्रीहरिदासको बुलाकर श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—

"एइ मोर देह हैते तुमि मोर बड।
तोमार ये जाति, सेइ जाति मोर दढ।।"

—चै० भा० म० १०।३६

[इस मेरे शरीरसे तुम मेरे बडे हो, तुम्हारी जो जाति है निश्चय ही वही मेरी जाति है।]

"पापिष्ठ विधर्मियोने तुम्हारे प्रति जो अत्याचार किया है, मैंने उसको अपने शरीरपर ले लिया है, यह देखो, मेरे शरीरपर उसके चिह्न हैं।" श्रीमन्महाप्रभुने तब श्रीहरिदासको वर प्रदान करके कहा कि तुमसे कभी कोई अपराध नही होगा, तुम भक्तिके स्वाभाविक अधिकारी हो। ठाकुर श्रीहरिदासके चरित्रके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने हम लोगोको शिक्षा दी है,—

जाति, कुल, क्रिया, धने किछु नाहि करे।
प्रेमधन, आर्ति बिना ना पाइ कृष्णेरे।।
ये-ते कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे।
तथापिओ सर्वोत्तम सवशास्त्रे कहे।।

—चै० भा० म० १०।९९-१००

* चै० भा० म० १०।३० सख्या देखिये।

[जाति, कुल, क्रिया, धन कुछ नही करते। प्रेमधन और आर्त्त-भावके बिना कृष्णको नही प्राप्त किया जा सकता। वैष्णवका जन्म जिस-किसी भी कुलमें क्यो न हो, तथापि वह सर्वोत्तम है, यह सब शास्त्र कहते है।]

श्रीमन्महाप्रभु जब श्रीविष्णु-खाटपर महाज्योति प्रकाश करके उपविष्ट थे, तो श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुके मस्तकके ऊपर छत्र धारण किया था। श्रीगौरहरिने श्रीमदद्वैतकी ओर देखकर हँसते-हँसते श्रीगीताके एक श्लोकका प्रकृत पाठ और भक्तिमूलक तात्पर्य सुनाया तो आचार्य प्रेमसे विह्वल हो उठे। श्रीश्रीगौरहरि—श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द दोनोके ही ईश्वर है।

अहर्निश लओआय ठाकुर नित्यानन्द।
"बल, भाइ सब—'मोर प्रभु गौरचन्द्र।।"
चैतन्य स्मरण करि' आचार्य-गोसाञि।
निरवधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाइ।।

—चै० भा० म० १०।१५९-१६०

[ठाकुर नित्यानन्द दिनरात नाम लिवाते है, भाई सब—'मेरे प्रभु गौरचन्द्र' बोलो। श्रीचैतन्यको स्मरण करके आचार्य गोस्वामी निरन्तर रोते है और कुछ भी स्मरण नही है।]

श्रीविश्वभरने भक्तोको अपना अभीष्ट वर माँगनेके लिये कहा तो श्रीअद्वैताचार्य बोले,—"प्रभो, मूर्ख, नीच और पतितके ऊपर तुम अनुग्रह करो मै इतना ही वर चाहता हूँ।" श्रीगौरहरिने 'तथास्तु' कहकर आचार्यके वचनके प्रति सम्मति प्रकट की।

इकतीसवाँ परिच्छेद

'खड़-जाठिया बेटा'

श्रीमन्महाप्रभुके 'महाप्रकाशके' दिन सब भक्तोने उनके पास आनेका अधिकार प्राप्त किया था और महाप्रभु भी एक-एक करके सभी उपस्थित भक्तोके ऊपर कृपा करते थे।

महाप्रभुके कीर्तन-गायक श्रीमुकुन्द उस समय घरके भीतरी पर्देके बाहर खडे थे, वे महाप्रभुके सामने उपस्थित न हो सके। श्रीमुकुन्द तो श्रीमन्महाप्रभुको प्रतिदिन कीर्तन सुनाया करते है, आज उसी मुकुन्दके प्रति महाप्रभुका ऐसा असन्तोष क्यो है, यह बात किसीकी समझमे नही आ रही थी। श्रीश्रीवास पडितने श्रीमुकुन्दके प्रति कृपा करनेके लिये श्रीमन्महाप्रभुसे प्रार्थना की तब वह बोले,—"मै उसपर कृपा नही कर सकता, मुकुन्द समन्वयवादी है—वह 'बेटा खड जाठिया'* है। जो सभीके धर्ममतोके लिये 'हाँ जी', 'हाँ जी' करके सभी दलोमें मिल जाते है, ह्लादिनीकी वृत्ति जो अव्यभिचारिणी भगवद्भक्ति है, उसे भी अन्यान्य मतोके समान ही एक लोककल्पित मत-विशेष समझते है, जब जिस सभामें जाते है, तब उसीके मतके अनुरूप बाते कहने लगते है, ऐसे समन्वयवादी लोग एक हाथ मेरे पैरपर और दूसरा हाथ मेरे गलेपर रखकर मुझसे कपटका आचरण करते है। किसी समय वे लोगोको दिखलानेके लिये दैन्य प्रकाशित कर दाँतोमे तृण धारण करते है, तो कभी लाठी लेकर मुझे मारने आते है। यथेच्छाचारिता कभी उदारता नही हो सकती। भक्ति और अभक्ति— दूध और इमलीको एक करके कोई कभी भगवान्की कृपा प्राप्त नही

---

* खड—तृण, जाठि—लाठी। अर्थात् जो प्रयोजनके समय पर तो हाथ जोडता है और प्रयोजन न होनेपर लट्ठ या आँखे दिखाता है, उसे 'खडजाठिया' कहते है।

कर सकता। जो लोग भक्तिके साथ दूसरे साधनको समान समझते है, वे मुझे लाठी मारते ह।* वे यद्यपि समय-समयपर भक्तिका स्वाँग रचकर पूजा, कीर्तन, पाठ आदिका अभिनय करते है, तथापि उनके इस प्रकारके कपट भावसे म सन्तुष्ट नही होता। उनकी यह सारी स्तव-स्तुतियाँ मेरे अगपर वज्राघात-सी लगती है। श्रीमुकुन्द भक्त-समाजमे हरिकीर्तन करता है, भक्तिकी बाते करता है और फिर मायावादीके पास 'योगवाशिष्ठ'का मायावाद भी स्वीकार करता है।"

श्रीमुकुन्द घरके बाहरसे ही महाप्रभुकी ये सारी बाते सुन रहे थे और मन-ही-मन विचार कर रहे थे कि जब शुद्धभक्तिदेवीके चरणोमे अपराध करनेके कारण मै महाप्रभुकी कृपासे वचित हो गया हूं.तब मेरे लिये अपराधमय शरीरका त्याग कर देना ही समीचीन है।

श्रीमुकुन्दने देहत्यागके पहले महाप्रभुसे एक अन्तिम बात पूछनेकी इच्छा प्रकट की तथा श्रीश्रीवास पडितके द्वारा महाप्रभुसे पुछवा भेजा कि—"मै क्या किसी दिन भी महाप्रभुके दर्शन नही पा सकूगा ?" श्रीमुकुन्द अनुतापकी अग्निसे दग्ध हो गये थे और उनकी आँखोसे अनर्गल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। श्रीमुकुन्दके दु खको देखकर भक्तगण भी रोने लगे।

श्रीश्रीवास पडितके प्रश्नके उत्तरमे श्रीमहाप्रभुने उनको बताया कि कोटि जन्मके बाद मुकुन्द महाप्रभुका दर्शन पायँगे। श्रीमुकुन्द महाप्रभुकी इस बातको सुनकर 'पाऊँगा', 'पाऊँगा' कहते हुए परमानन्दमे महानृत्य करने लगे, कितनी ही देर क्यो न हो, किसी-न-किसी दिन तो श्रीमहाप्रभुके दर्शन प्राप्त होगे ही, इस आशाने श्रीमुकुन्दके हृदयको उल्लसित कर दिया। मायावादी लोग चिद्विलास स्वीकार नही करते। अतएव वे कभी भी लीला-पुरुषोत्तमकी नित्य सेवाके अधिकारी नही होते—इस अवस्थाके अधीन अब नही होना पडेगा, यह समझकर ही श्रीमुकुन्द आनन्दसे इतने उल्लसित हुए।

* चै० भा० म० १०।१८३-१८५, १८८-१९२

श्रीमुकुन्दकी इस प्रकारकी उल्लासकी बाते सुनकर महाप्रभुने भक्तोको आज्ञा दी,—"तुम सब मुकुन्दको मेरे पास अभी ले आओ।" यह बात सुनकर मुकुन्दने चाँदको हाथमें पा लिया। श्रीमुकुन्द महाप्रभुके पास उपस्थित हुए तो महाप्रभुने कहा,—"मुकुन्द, तुम्हारा अपराध नष्ट हो गया है। अब तुम मेरी कृपाको ग्रहण करो। जब तुम 'कोटि जन्मके बाद भी भक्ति प्राप्त करनेकी' बातको अव्यर्थ समझकर उल्लसित हो गये तब मै समझ गया कि तुम्हारे हृदयमे ऐकान्तिकी भक्ति विराजिता है। तुम्हारे द्वारा लोकशिक्षाके लिये ही मैने इस प्रकारका आदर्श दिखलाया। तथाकथित समन्वयवादी लोग भक्तिके चरणोमें अपराधी हैं। वे प्रच्छन्न नास्तिक हैं,—तुम्हारे आदर्श द्वारा इस शिक्षाका मैंने प्रचार किया। वस्तुत तुम मेरे नित्य दास हो, अतएव तुम्हारे हृदयमे चित् और जडके समन्वयवादका अनर्थ कभी प्रवेश नही कर सकता।"

श्रीमहाप्रभुके वचनोको सुनकर मुकुन्द अत्यन्त सकुचित हुए और अधिकतर दैन्यभावसे कहने लगे,—"मै सेवाहीन मन्दभागी आदमी हूँ। इसी कारण मैंने तन, मन, वचनसे भक्तिके असमोर्ध्वत्वको स्वीकार नही किया। भक्ति सुखमय वस्तु है, भक्तिहीन होकर तुम्हें देखनेका अभिनय करके भी मै क्या सुख पाऊँगा? दुर्योधनने श्रीकृष्णके विराट रूपका दर्शन किया था, तथापि भक्तिके अभावसे उसको किसी सुखकी प्राप्ति न हो सकी तथा विश्वरूप दर्शन करनेपर भी उसका सवश विनाश हुआ। श्रीकृष्ण जब 'रुक्मिणी-हरण'के लिये गये थे तब शिशुपालके पक्षके बहुतसे राजाओने गरुडवाहन श्रीकृष्णके दर्शन किये थे, तथापि भक्तिके अभावसे वे आनन्द लाभ नही कर सके। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु श्रीवराहदेव तथा श्रीनृसिहदेवके दर्शन करके भी भक्तिके अभावसे वे उल्लसित नही हो पाये, इधर यज्ञपत्नी, पुरनारी, मालाकार प्रभृति सामान्य व्यक्तियोने भी भक्तियोगके प्रभावसे श्री-भगवान्का सेवाधिकार प्राप्त कर लिया। श्रीभगवान्की सेवाको प्राप्त करना ही उनका यथार्थ दर्शनलाभ है।"

10

श्रीमुकुन्दका निरुपाधि भक्तिके प्रति अनुराग देखकर महाप्रभु विशेष आनन्दित हुए और श्रीमुकुन्दको वर प्रदान करके बोले,—"मुकुन्द, तुम्हारी भक्ति मुझे बडी प्यारी लगती है। तुम जहाँ कृष्ण-गुणगान करते हो, वही मै अवतीर्ण होता हूँ।" फिर बोले,—

"भक्तिस्थाने अपराध कैले, घुचे भक्ति।
भक्तिर अभावे घुचे दरशन-शक्ति॥
भक्ति विलाइमु मुइ—बलिल तोमारे।
आगे प्रेमभक्ति दिल तोर कण्ठस्वरे॥
येखाने येखाने हय मोर अवतार।
तथाय गायन तुमि हइबे आमार॥"

—चै० भा० म० १०।२५६,२५८,२६१

[भक्तिदेवीके चरणोमें अपराध करनेपर भक्ति मिट जाती है, भक्तिके अभावमे दर्शन-शक्ति मिट जाती है। मै भक्तिका वितरण करूँगा, यह तुमसे कहा। पहले तुम्हारे कण्ठस्वरमें प्रेमभक्ति दी थी। जहाँ-जहाँ मेरा अवतार होगा, वहाँ-वहाँ तुम मेरे गायक होगे।]

इस लीलाके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने एक विशेष शिक्षा दी है। कई बार अव्यभिचारिणी भगवद्भक्तिके अनुशीलनको सकीर्ण साम्प्रदायिकता समझकर लोकप्रीति प्राप्त करनेके लिये सब दलोकी सब बातोमे 'हाँ जी', 'हाँ जी', करनेकी जो प्रवृत्ति लोगोमे देखी जाती है, वह उदारता नही है, वह कपटता है और परमेश्वरके प्रति ऐकान्तिकी प्रीतिके अभावको प्रकट करती है। भगवान्के अनुरागियोके चरित्रमें भगवान्की सेवा, अर्थात् उनके सुखानुसधानके प्रति ही अनन्यनिष्ठा होगी; वह कल्पित निष्ठा नही, रूढिवाद नही। रूढिवादमें तत्वान्धता होती है। श्रीहरिके प्रति प्रीति नही होती, पर अव्यभिचारिणी भक्तिमें तत्व और सिद्धान्तकी स्वाभाविक पारदर्शिता तथा जिन-जिन विषयोसे भगवान्की इन्द्रियतृप्ति होती है उनके सिवा अन्य विषयोके प्रति सर्वतोभावसे तीव्र निरपेक्षता होती है। लोक-प्रीति या निजेन्द्रिय-

प्रीतिके यूपकाष्ठमें स्वय भगवान् श्रीकृष्णकी इन्द्रियप्रीतिको बलि दे देना कभी उदारता नही हो सकती। वह तो उच्छृखलता तथा हीनतम नास्तिकता मात्र है।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

जगाइ-माधाइ-उद्धार

श्रीविश्वभरने श्रीनवद्वीपके घर-घर श्रीकृष्णनामका प्रचार करनेके लिये ठाकुर श्रीहरिदास और श्रीनित्यानन्द प्रभुको नियुक्त किया था। एक दिन नित्यानन्द प्रभु घर-घर नामका प्रचार करके रात्रिके समय श्रीमहाप्रभुके घरकी ओर लौट रहे थे, उसी समय 'जगाइ', 'माधाइ' नामक दो शराबी ब्राह्मण-पुत्रोके साथ श्रीनित्यानन्दका साक्षात्कार हो गया। ससारमें ऐसा कोई पाप आज तक नही पैदा हुआ, जिसको उन्होने न किया हो। सदा ही सब समय शराबी मतवाले लोगोके साथ रहनेके कारण केवल उनको 'वैष्णवोकी निन्दा' करनेका अवसर नही मिलता था। पतितपावन श्रीमन्नित्यानन्द और ठाकुर हरिदासने जगाइ-माधाइके ऊपर कृपा करनेका निश्चय किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु मानो उनके ऊपर कृपा करनेके लिये ही उस रातमें श्रीनवद्वीपमें घूम रहे थे। जगाइ-माधाइने श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखा। माधाइ 'अवधूत' नाम सुनते ही क्रोधसे पागल हो गया और श्रीमन्नित्यानन्दके सिरपर 'मुटकि' (फूटी हाँडी) फेंक दी। जगाइने यह देखकर माधाइको रोका। माधाइके द्वारा श्रीनित्यानन्दके श्रीअगपर चोट लगनेकी बात सुनकर श्रीमहाप्रभु दल-बलके साथ वहाँ उपस्थित हुए और महान्

क्रोधसे सुदर्शन चक्रका आह्वान किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमहाप्रभुसे कहा,—"जगाइने मेरी रक्षा की है, आप उसे क्षमा करे।" श्रीमन्महाप्रभु जगाइके ऊपर प्रसन्न हो गये। इससे माधाइका चित्त भी बदल गया। तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने माधाइको क्षमा कर दिया। उन दोनोको बहुत ही अनुताप हुआ और **जीवनमें फिर कभी हम कोई भी पाप कार्य नही करेगे, केवल निष्कपट हरिसेवामे ही जीवनयापन करेगे—ऐसी प्रतिज्ञा की।** यह देखकर उनके प्रति श्रीमहाप्रभु तथा भक्तोकी कृपा हो गयी। श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपासे दो दस्यु भी अपनी पापप्रवृत्तिका सदाके लिये त्यागकर 'महाभागवत' हो गये। महाप्रभुने भक्तोको ऐसा उपदेश दिया कि कोई उनके पूर्वचरित्रोका स्मरण कर भविष्यमे उनका अनादर या अश्रद्धा न करे।

ब्राह्मण-कुलीन-प्रधान नदीया नगरमे मुसलमान कुलमे अवतीर्ण ठाकुर श्रीहरिदासके द्वारा नाम-प्रचारका आदर्श तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा जगाइ-माधाइकी उद्धार-लीलाको प्रकट कर श्रीमहाप्रभुने यह सूचित किया कि, वैष्णवाचार्य प्राकृत जाति-कुलके अन्तर्गत नही है, वे (मर्त्य-जगत्से परे) अतिमर्त्य—जगद्गुरु है। उन्होने यह भी सूचित किया कि जो लोग हरिनामका प्रचार करे, वे हरिकथा और हरिनाम वितरणके बदलेमें किसी प्रकारका धन-द्रव्य आदि ग्रहण न करे। श्रीहरिकथा और श्रीहरिनाम साक्षात् श्रीहरि है। श्रीहरिको बेचनेकी चेष्टाके समान दूसरा कोई अपराध नही है। इस लीलामें महाप्रभुने एक और शिक्षा दी है कि, सब प्रकारके अपराध क्षम्य हो सकते है, परन्तु वैष्णवापराधको क्षमा करनेका सामर्थ्य स्वय श्रीभगवान्में भी नही है। जिस वैष्णवके प्रति अपराध हुआ है उसीसे निष्कपट भावसे क्षमाप्रार्थना करनी होगी। जो लोग वैष्णवापराधसे मुक्त है उन्हीपर श्रीगौरसुन्दर कृपा करते है।

महाप्रभुने क्रोधमें आकर सुदर्शन चक्रका आह्वान किया था, उसमें भी एक रहस्य है। भक्तद्वेषीके ऊपर क्रोध प्रदर्शन ही क्रोधवृत्तिका

सद्व्यवहार है, जैसे, हनुमानने रावणके प्रति क्रोध करके श्रीरामचन्द्रजी की सेवा की थी ।

जिस व्यक्ति या वस्तुके प्रति जिसकी आसक्ति होती है, उस व्यक्ति या वस्तुको अतिक्रमण करनेवालेके प्रति क्रोध होना ही स्वाभाविक धर्म है। भगवान्की भक्तके प्रति आसक्ति या प्रीति है और भक्तकी श्रीभगवान्के प्रति आसक्ति या प्रीति स्वाभाविक है। श्री-श्रीभगवान्को अतिक्रम करनेवालेके प्रति भक्तको तथा भक्तको अतिक्रम करनेवालेके प्रति भगवान्को क्रोध न हो, केवल निरपेक्षता मात्र बनी रहे, तो इससे प्रीतिका अभाव ही प्रमाणित होगा। प्रेमिक भक्त—भगवद्विद्वेषी, भक्त-विद्वेषी, भक्ति-विद्वेषीके प्रति क्रोध प्रकट करते है। उनका क्रोध साधारण प्रकृतिके लोगोके क्रोधके समान जगत्में झझट बढानेवाला, रजोगुण तमोगुणके कारण नही होता, वह सुमगलप्रद प्रेमविशेष होता है ।

भगवान्से द्वेष करनेवालोमें भी इष्टदेवताकी स्फूर्ति होनेके कारण किसी-किसी महाभागवतकी अनभिनिवेशरूप उपेक्षा देखी जाती है। कोई-कोई महाभागवत भगवान् और भक्तसे द्वेष करनेवालेमें इष्टदेवकी स्फूर्ति होनेके कारण उनकी वन्दना तक करते है। उत्तम महाभागवत श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीकृष्ण-विद्वेषी कसको 'भोजकुलका कुलागार' कहकर क्रोध प्रदर्शन किया था। और महाभागवतप्रवर श्रीमत् उद्धवजीने भक्तश्रेष्ठ पाडवोके विद्वेषी धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी वन्दना की थी। इस प्रकार महाभागवतके द्वारा भगवान् और भक्तसे द्वेष करनेवालेकी निन्दा या वन्दना, दोनोमें ही अपने इष्टदेवकी स्फूर्ति हो जाती है। बहिर्मुख व्यक्ति इस रहस्यको न समझ सकनेके कारण महाभागवतके आचरणको विरोधी समझते है ।

जगाइ-माधाइ श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त कर पहलेके नाना प्रकारके दुष्कर्मोके लिये अनुतापानलसे निरन्तर दग्ध होने लगे और उन्होने साधुसगमें तीव्रतापूर्वक हरिभजन करना आरम्भ

कर दिया। पहलेकी सारी बातो, सगो और स्मृतियोको पूर्णतया उन्होने परित्याग कर दिया। वे प्रतिदिन तडके उठकर गगास्नान करके दो लाख कृष्णनाम लेते थे तथा पूर्वके दुष्कर्मोके लिये अनुतप्त होकर 'श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द'—नाम ले-लेकर क्रन्दन करते थे। माधाइ श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोको पकडकर बारबार क्षमा प्रार्थना करते थे। श्रीनित्यानन्दके आदेशसे माधाइ प्रतिदिन 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए गगाघाटकी सेवा, घाटपर आये हुए व्यक्तियोको दण्डवत् प्रणाम तथा उनसे पूर्वकृत अपराधोके लिये क्षमा-प्रार्थना करते थे। कठोर तपस्याके प्रभावसे माधाइ 'ब्रह्मचारी' के नामसे प्रसिद्ध हुए। माधाइ अपने हाथ कुदाली लेकर गगाका घाट साफ करते थे, वह घाट 'माधाइके घाट'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। श्रीनवद्वीप परिक्रमाके मार्गमें श्रीमायापुरमें यह 'माधाइका घाट' आज भी देखनेमें आता है।

तैंतीसवां परिच्छेद

श्रीगौरांगकी विभिन्न-लीला

[१]

श्रीगौरहरि प्रतिदिन रातको अपने भक्तोके साथ श्रीश्रीवासके घरका द्वार बन्द करके सकीर्तन-नृत्य करते थे। एक दिन श्रीवासकी सास, व्यर्थ कौतूहलवश कीर्तन-भवनके एक कोनेमें 'डोलमुडि'* देकर

*अनाज रखनेकी बडी टोकरीको 'डोल' कहते है, उसमें शरीर ढककर छिप जानेको 'डोलमुडि' देना कहते है।

छिप गयी। छिपनेसे क्या होता, जिसके पास सुकृति नही है ऐसा व्यक्ति अप्राकृत सकीर्तन-रासको क्या अपनी चेष्टासे देख सकता है ? सकीर्तन-रासके नायक श्रीगौरहरि नाचते-नाचते बारबार कहने लगे,—"आज हमको उल्लास क्यो नही हो रहा है ? श्रीवास, देखो कोई बहिरग व्यक्ति यहाँ कही छिपा तो नही है ?" सबने श्रीवासके घरका चप्पा-चप्पा छान डाला। श्रीवासने स्वय सारा घर खोजकर देख लिया, पर किसी बहिरग आदमीको न देखा। श्रीगौरहरि भक्तोके कहनेपर नृत्य आरम्भ करके फिर बोले,—"आज किसी प्रकार भी कीर्तनमे सुख नही मिल रहा है।" तब भक्तगण अपनेको ही बहिर्मुख और अपराधी होनेकी आशका करके अत्यन्त व्यथाका अनुभव करने लगे। श्रीश्रीवास पडितने फिर अनुसन्धान करके देखा कि उनकी सास 'डोल-मुडि' देकर छिपी हुई है। श्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें रत, कृष्णावेशमें महामत्त पडित श्रीश्रीवासने सासका केश पकडकर घरसे बाहर करनेका आदेश दिया। तब श्रीमन्महाप्रभुका चित्त उल्लसित हुआ तथा उन्होने आनन्दसे कीर्तन आरम्भ किया।

इस लीलाके द्वारा भक्तराज श्रीश्रीवास पडितने ससारके लोगोको शिक्षा दी कि, श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धान ही जीवके सारे शिष्टाचार और मर्यादाका शिरोमणि है। जहाँ श्रीश्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें बाधा पडती है वहाँ लौकिक मर्यादा-सरक्षणकी दुर्बलता या जडासक्ति स्वीकार्य नही है, परन्तु, श्रीश्रीगौरहरिके सुखानुसन्धानमें जिनको आवेश नही होता वे कपट-भक्ति दिखलाने जाकर स्वाभाविक प्रीतिके आदर्शका यदि अवैध अनुकरण करेंगे तो उन्हे 'इतो भ्रष्टस्ततो नष्ट' ही होना पडेगा।

[२]

श्रीगौरहरि श्रीअद्वैताचार्यको जब 'दास'के (सेवक) रूपमें ग्रहण करते, तब आचार्यको विशेष प्रीति होती, परन्तु श्रीगौरहरि आचार्यको जब गुरुतुल्य समझकर चरणयुगल धारण करनेके लिये प्रवृत्त होते तो श्रीआचार्य अत्यन्त व्यथित होते। इस कारण जब श्रीश्रीविश्वम्भर

प्रेमावेशमे मूर्छित हो जाते थे, तब श्रीअद्वैताचार्य श्रीगौरहरिके श्रीचरणोमे दण्डवत् प्रणाम करके, अश्रुद्वारा पाद-प्रक्षालन, पदधूलि सिरपर धारण तथा विविध उपचारोसे श्रीगौरहरिके श्रीचरणोकी पूजा करके मनोवासना पूर्ण करते थे। एक दिन महाप्रभु नृत्य करते-करते मूर्छित हो गये, सुयोग देखकर श्रीअद्वैताचार्यने श्रीगौरहरिकी चरणरेणु अपने सर्वागमे लेपन कर ली। कुछ क्षणोके बाद श्रीगौर-हरिने पुन नृत्य आरम्भ करके भक्तोके सामने चित्तके अनुल्लासकी बात कह सुनायी। तब श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने भयसे श्रीमन्महाप्रभुकी चरणरेणु चुरानेकी बात स्वीकार करके क्षमा प्रार्थना की। श्रीगौर-हरि श्रीअद्वैताचार्यके प्रति क्रोध प्रकट करनेके बहाने श्रीअद्वैताचार्यका गुण-वर्णन करने लगे।

[३]

श्रीनवद्वीपमें श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नामके एक विष्णु-भक्त ब्राह्मण रहते थे। वे दिन रात 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहकर क्रन्दन करते रहते थे और भिक्षा द्वारा जीविका निर्वाह करते थे। लोग उनको भिखारी ही समझते थे, उनकी वैष्णवताको नही समझ पाते थे। महाप्रभु उनकी झोलीसे छोटे कण-सहित चावलोको छीनकर खाने लगते। श्रीभगवान् अर्थके वश नही है, प्रीतिके वश है। दाम्भिक धनवान्का कोई नैवेद्य भगवान् ग्रहण नही करते, परन्तु प्रेमी अकिंचनकी अति सामान्य वस्तु भी स्वय माँगकर ग्रहण करते है।

एक दिन महाप्रभु श्रीविश्वभरने श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारीसे कहा,—"तुम्हारे हाथका पकाया अन्न भोजन करनेकी मेरी बडी ही इच्छा है। तुम कुछ भय मत करो, मुझे अन्न दो।" भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरकी इस प्रकारकी पुन पुन प्रार्थनासे अत्यन्त सकुचित होकर श्रीशुक्ला-म्बरने दीनतापूर्वक श्रीविश्वम्भरसे कहा,—"मै एक नराधम, पापी, पतित, घृणित, भिक्षुक हूँ, और आप साक्षात् सनातन धर्मस्वरूप है। मुझे आप वचित न करें।"

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"मैं तुम्हे तनिक भी वचना नही करता। तुम्हारे हाथका पकाया हुआ अन्न खानेकी मेरी बडी ही इच्छा होती है। तुम शीघ्र डेरेपर जाकर नैवेद्य तैयार करो। मैं आज दोपहरको निश्चय ही तुम्हारे डेरे पर आऊँगा।"

श्रीशुक्लाम्बरने श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोसे इस विषयमें युक्ति पूछी तो भक्तगण बोले,—"श्रीभगवान् भक्तिवश है, उन्होने शूद्राके पुत्र विदुरके सामान्य अन्नको माँगकर खाया था, यह उनके प्रेमका स्वभाव है।"

श्रीशुक्लाम्बरने स्नान करके अत्यन्त सावधानीसे सुवासित जल चूल्हेपर चढाया और कही स्पर्श न हो इसका विचार करके ऊपरसे उसमें सुदर 'गर्भथोड' * एव उत्तम चावल डाल दिया तथा हाथ जोडकर 'जय कृष्ण, गोविन्द, गोपाल, बनमाली'—इन नामोका वह कीर्तन करने लगे। श्रीलक्ष्मीदेवीकी कृपादृष्टिसे भोजन तैयार हुआ। उसी समय श्री-नित्यानन्द आदिको साथ लेकर श्रीविश्वम्भर श्रीशुक्लाम्बरकी कुटीमें आये, अपने हाथसे अन्न ग्रहण कर विष्णुको निवेदन किया और बिना छूए ही इस प्रकारके अमृत-तुल्य भोजन बनानेकी और 'गर्भ-थोड' के स्वादकी प्रशसा करते-करते भक्तगणके साथ श्रीमहाप्रभुने भिक्षुकके घर भोजन किया और दोपहरको वही विश्राम किया। वहाँ ही लिपिकर श्रीविजयदासको श्री मन्महाप्रभुने अपना वैभव दिखलाया।

[४]

श्रीगौरहरिने 'हरेर्नाम' श्लोकके अर्थकी व्याख्या करके श्रीहरि-नामके द्वारा ही कलिकालमें जीवकी सर्वसिद्धि होती है, अन्य किसी साधनका प्रयोजन नही है और अन्य साधनके साथ हरिनाम-ग्रहणकी तुलना करनेसे भी अपराध होता है, यह शिक्षा दी। किस प्रकार नाम लेना चाहिये, इसके सम्बन्धमें भी कृपापूर्वक शिक्षा दी है,—

*'गर्भ-थोड'—ऐसे केलेके पेडका भीतरी हिस्सा जिसमें फूल ही फूल निकला हो, केले न निकले हो, उसे 'गर्भ-थोड' कहते है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।
कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार ।
नाम हैते हय सर्व-जगत्-निस्तार ।।
दार्ढ्य लागि' 'हरेर्नाम'—उक्ति तिनबार ।
जड़लोक बुझाइते पुनः 'एव' कार ।।
'केवल'-शब्दे पुनरपि निश्चय-करण ।
ज्ञान-योग-तप-आदि कर्म-निवारण ।।
अन्यथा ये माने, तार नाहिक निस्तार ।
नाहि, नाहि, नाहि—तिन उक्त 'एव' कार ।।
तृण हैते नीच हञा सदा ल'वे नाम ।
आपनि निरभिमानी अन्ये दिवे मान ।।
तरुसम सहिष्णुता वैष्णव करिवे ।
भर्त्सना, ताड़ने का'के किछु ना बलिबे ।।
काटिलेह तरु येन किछु ना वोलय ।
शुकाइया मरे, तबु जल ना मागय ।।
एइमत वैष्णव का'रे किछु ना मागिबे ।
अयाचित-वृत्ति, किंवा शाक-फल खा'बे ।।
सदा नाम ल'बे, यथा-लाभेते सन्तोष ।
एइमत आचार करे' भक्तिधर्म पोष ।।

—चै० च० आ० १७।२१-३०

[हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही सत्य है। इस कलियुगमें इस नामके बिना कोई गति नही, कोई गति नही, कोई गति नही। कलिकालमें नाम-रूपमें कृष्णका अवतार है। नामसे ही समस्त जगत्का निस्तार होता है। दृढताके लिये 'हरेर्नाम' तीनबार कहा और जड (मूर्ख या अज्ञ) लोगोको समझानेके लिये फिर 'एव' लगाया। 'केवल' शब्द फिर भी निश्चयके लिये तथा ज्ञान, योग, तप, कर्म,

आदिके निवारणके लिये लगाया। जो अन्यथा समझता है उसक निस्तार नही है, नही है, नही है। तीन बार कहकर उनमें 'एव' लगाया तृणसे भी नीच होकर सदा नाम ले। स्वय निरभिमानी होकर दूसरेका मान दे और वैष्णव वृक्षके समान सहिष्णुता करे। भर्त्सना या ताडना करनेपर भी किसीको कुछ न कहे। जैसे वृक्षको काट लेनेपर भी वह कुछ नही बोलता। सूखकर मर जाता है, तब भी जल नही माँगता, वैसे ही वैष्णव किसीसे कुछ न माँगे। अयाचित वृत्तिसे रहे या साग फल खाय। सदा नाम लेता रहे, जो मिल जाय उसीमें सन्तोष करे, इस प्रकार आचरण करके भक्तिधर्मका पोषण करे।]

[५]

एक दिन निशाकालमे महाप्रभुने सकीर्तन-नृत्य समाप्त किया, इसी समय एक ब्राह्मणी आकर बारबार श्रीमहाप्रभुके चरणोकी धूल लेने लगी। यह देखकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त व्यथित हुए और उसी क्षण शीघ्रतापूर्वक दौडकर गगामें कूद पडे। श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदासने श्रीमन्महाप्रभुको गगासे बाहर निकाला। उस रातको श्रीमहाप्रभु श्रीविजय आचार्यके घर रहे। प्रात काल भक्तगण महाप्रभुको घर ले आये।

अबतक श्रीमहाप्रभुने सन्यास-ग्रहण-लीला प्रकट नही की थी, उनकी गार्हस्थ्य-लीलाके समय ही यह घटना घटी थी। जो साधक जीव, गृहस्थ या सन्यासी गुरु-गोस्वामीके वेषमे स्त्रियोके द्वारा अपनी चरण-सेवा, चरण-स्पर्श आदि कार्य कराते है तथा उसको प्रश्रय प्रदान करते है, उनको सावधान करनेके लिये ही भगवान् श्रीगौरसुन्दरने यह आदर्श स्थापित किया था। गृहस्थ व्यक्ति भी चरणधूलि दान आदिके बहाने पर-स्त्रीका स्पर्श न करे। छोटे हरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा महाप्रभुने ज्ञानमिश्र साधक-सयासियोको आचारकी शिक्षा दी है।

[६]

श्रीश्रीवासके घरके समीप कोई मुसलमान दर्जी श्रीवासका कुर्ता सीता था। दर्जी श्रद्धापूर्वक श्रीमन्महाप्रभुका नृत्य देखकर मुग्ध हो

गया, महाप्रभुने उस भाग्यवान् दर्जीको अपना रूप दिखलाया। वह दर्जी तभीसे "मैंने क्या देखा! मैंने क्या देखा!!"—यह कहता हुआ प्रेममें पागल होकर आनन्दसे नृत्य करने लगा।

[७]

एक दिन महाप्रभु भक्तोंके सामने श्रीनामके माहात्म्यका वर्णन कर रहे थे। उसे सुनकर कोई छात्र बोल उठा,—"नाममें भला इतनी क्या महिमा है! यह तो केवल नामको बड़ा बनानेके लिये अति-स्तुति मात्र है! केवल नामसे ही सर्वसिद्धि होगी और किसीसे नहीं होगी—इस प्रकारकी साम्प्रदायिकता और रूढिवाद पंडित-समाजमें नहीं चल सकता।" नामके अतुलनीय माहात्म्यको अति-स्तुति समझना श्रीनामका 'अर्थवाद' रूप 'नामापराध' है, यही सत्शास्त्रोंका सिद्धान्त है। इसी कारण शास्त्रोंके सम्मानकी रक्षा करनेवाले महाप्रभुने उस नामापराधी छात्रका मुख देखनेसे सबको मना कर दिया और भक्तोंको साथ लेकर उसी क्षण सचेल (पहनी हुई धोती तथा उत्तरीयके सहित। चेल—वस्त्र, सचेल—पहने हुए वस्त्र सहित) गंगास्नान किया।

[८]

एक दिन महाप्रभु घरसे बहुत दूर 'गंगाकी चड़'* पर जाकर संकीर्तन कर रहे थे, उसी समय आकाशमें घनघोर घटा घिर आई। महाप्रभुने मेघोंको हट जानेका आदेश दिया। वे तत्काल हट गये। इस कारण उस गंगाकी चड़को लोग 'मेघकी चड़'के नामसे पुकारते हैं। एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीबलदेवके आवेशमें यमुनाकर्षण-लीला प्रकट करते हुए 'मधु लाओ', 'मधु लाओ' कहने लगे। उस समय श्रीचन्द्रशेखर आचार्य तथा श्रीवनमाली आचार्य आदि भक्तोंने प्रभुके हाथोंमें स्वर्ण-मूसलका दर्शन किया था।

---

*गंगाकी धाराके रास्ता बदल देनेके कारण अर्थात् गंगाकी धाराके हट जानेके कारण निकली हुई भूमिको 'गंगाकी चड़' कहते हैं।

चौंतीसवां परिच्छेद

आम्र-महोत्सव

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोको साथ लेकर नगर-सकीर्तन करते-करते थक गये। मध्याह्न कालमें भक्तोको श्रान्त और क्षुधार्त देखकर भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरने उनकी सेवाके लिये एक ऐश्वर्य दिखलाया।

सपार्षद महाप्रभु जिस स्थानपर आकर उपस्थित हुए थे, उसी स्थानमें एक भक्तके आगनमे ही महाप्रभुने विश्राम किया और वहाँ ही एक आमका बीज रोपा। आश्चर्यकी बात है कि देखते-ही-देखते एक ही घडीमे वहाँ एक आमका वृक्ष उत्पन्न होकर बढने लगा और उस वृक्षमे अगणित पके आम लगने लगे। महाप्रभुने शीघ्र ही उस वृक्षसे दो सौ आम सग्रह करवाये, उनको जलसे धोकर कृष्णका भोग लगाया और तत्पश्चात् भक्तोने उस आम्र-प्रसादको ससम्मान ग्रहण किया। इस प्रकारके अपूर्व आम कभी भी किसीने नही देखे थे। आममें गुठली और छिलके नही थे, वे सुन्दर पीले और लाल रगके आम थे। एक-एक आम खानेसे ही एक-एक आदमीकी उदरपूर्ति और परितृप्ति हो जाती।

वैष्णव लोग आमका फल खाकर तृप्त हो गये है, यह देखकर महाप्रभु अत्यन्त उल्लसित हुए। महाप्रभुने उस स्थानमें ऐसा ऐश्वर्य दिखलाया कि उस भक्तके आँगनमें बारहो महीने इस प्रकारके आम फलने लगे और महाप्रभु भी नगर-कीर्तनके बाद प्रति दिन उसी स्थानपर आकर उसी प्रकार भक्तोके साथ आम्र-महोत्सव करने लगे।

जिस स्थानपर महाप्रभुका यह आम्र-महोत्सव हुआ था, वह स्थान आजतक 'आम्रघट्ट' अथवा 'आमघाटा' के नामसे प्रसिद्ध हो रहा है। नवद्वीपघाट स्टेशनसे कृष्णनगर जानेवाली जो लाइट रेलवे है उसमें महेशगज स्टेशनके बाद ही यह 'आमघाटा' स्टेशन है।

श्रीमुरारि गुप्तके नामसे आरोपित कड्चा (श्लोकमय सूत्रग्रथ अथवा सूत्र रूपमें लिखा हुआ जीवन-चरित्र) मे आम्रवृक्ष रोपने और उसमे फल लगनेका विवरण इस प्रकार वर्णित है ,—

एक दिन श्रीविश्वम्भरने भक्तोको पुकार कर कहा,—"तुम हमारी नटबाजी देखो ! यह देखो ! मै इस अद्भुत बीजको रोप रहा हूँ। यह देखो, निमेष भरमे ही इससे अकुर निकल कर तुरन्त ही वृक्षरूपमें परिणत हो गया ! यह देखो, इसमें मजरी निकल आयी—देखो, देखो, फल लग गये ! यह देखो, फल पक गये—यह देखो, मैंने फल तोड लिये। अब देखो, न फल है और न वृक्ष है—यह सभी मायाके द्वारा रचा गया था। इस मैदानमें यह ऐन्द्रजालिक कार्य अब बिल्कुल ही नही रहा। इसी प्रकार मायाकृत सारे कर्म अनर्थक होने परभी श्रीभगवान्‌की सेवाके उद्देश्यसे किये जानेपर उससे विपुल लाभ होता है। परमेश्वरके लिये चाहे कोई भी कार्य क्यो न किया जाय, वह सबका सब सार्थक होता है।"

श्रीकविकर्णपूरके 'श्रीचैतन्यचरितामृत-महाकाव्य'में भी श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छासे इस प्रकार भूमिमें आम्र बीजका रोपण, उसमें वृक्ष, शाखा, फलका आविर्भाव और उसके बाद ही सबका अन्तर्धान तथा इस प्रसगमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा भक्तगणको शिक्षा-प्रदान करनेकी लीला दृष्टिगोचर होती है।

एवं हि विश्वमखिल वितथं यदेतन्निष्पाद्यते सततमीश्वरसेवनाय।
तत्सार्थकं भवति सम्यगसत्यमेतत्, सत्यं भवेदशुचि यत्तदिदं शुचि स्यात् ॥
तस्माज्जनैः सकलमेव परेश्वरस्य, सेवार्थमप्यनृतमेतदिहावचेयम्।
ससार एव न हि तस्य भवेद्विरोधी, सेवापरस्तु न हि बाध्यत एव कैश्चित् ॥

—चै० च० म० ६।३३-३४।

[यह निखिल अनित्य विश्व यदि निरन्तर परमेश्वरके सुखानुसन्धान के लिए हो तो उससे यह असत्य ससार भी सम्यक् रूपसे सार्थक हो जाता है, क्योकि परमेश्वरको समर्पित होनेपर अपवित्र वस्तु भी

पवित्र हो जाती है। अतएव इस पृथ्वीपर यदि मनुष्य सारी अनित्य वस्तुओको केवल परमेश्वरकी सेवाके निमित्त आहरण करे तो यह ससार उसका विरोधी नही हो सकता। हरिसेवामें रत व्यक्तिको कोई भी बाधा नही दे सकता।]

श्रीकविराज गोस्वामी प्रभुने इस लीलामें श्रीगौरहरिकी कृपासे भक्तगणके आम्रसेवन और सवत्सर-कीर्तनके अन्तमें इस प्रकारके आम्र-महोत्सवके अनुष्ठानकी कथा अपने ग्रन्थमें लिखी है और श्रीकवि-कर्णपूर आदि लीला-लेखकोने श्रीमन्महाप्रभुकी माया द्वारा रचित, भक्तोको शिक्षा देनेके लिये इसका सामयिक लीला-विशेषके रूपमें वर्णन किया है। वस्तुत, परमेश्वर या तदीयजनकी सेवाके उद्देश्यसे किया हुआ अनित्य व्यापार भी नित्य सार्थकतामें पर्यवसित होता है— इस चरम शिक्षाको लेकर श्रीमन्महाप्रभुके पक्षमें नित्य आम्र-महोत्सव-लीला प्रकट करना अथवा और भिन्न-लीला-प्रकाशन करना कुछ भी आश्चर्यजनक नही है। अनन्त लीलामयको ससीम ऐन्द्रजालिकके समान देखने जाना दृप्त द्रष्टाकी मूर्खताके सिवा और कुछ नही है। अविचिन्त्य सर्वशक्तिमान् ईश्वरके लिये सभी सभव है।

'आमघाटा' स्टेशनके पास ही 'सुवर्णविहार' नामक श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोसे अकित सकीर्तन-स्थान आज भी दिखलायी देता है। यह 'सुवर्णविहार' अति प्राचीन कालमें 'गौडराजेन्द्रपुर' नामसे गौडदेशकी राजधानी थी। जब बौद्धधर्मका बडा प्रसार हुआ, तब इस स्थानका नाम 'सुवर्णविहार' पडा। इस स्थानसे मालदह जिलेके समीप 'कर्ण-सुवर्ण' और ढाका जिलेका 'सुवर्ण-ग्राम' (सोणारगाँ)—त्रिकोणावस्थित भूखण्ड गौडदेशकी प्रादेशिक राजधानीके नामसे मध्य युगमे वर्णित हुआ है। सुवर्णविहारमें कुछ दिन पालवशके राजाओने निवास किया था। वर्त्त-मान कालमें वह जमीनके अन्दर अवस्थित है। यह श्रीमायापुरके पूर्व-दक्षिण कोणमें 'जलागी' नदीके दूसरे किनारेपर अवस्थित है। 'आतो--पुर' अथवा -'अन्तर्द्वीपके मैदान' से. इस स्थानकी उच्च भूमि आज भी

दिखलायी देती हैं। श्रीश्रीनिवास प्रभुको श्रीईशान ठाकुरने आतोपुरके मैदानसे सुवर्णविहार दिखलाया था। सत्ययुगमे 'श्रीसुवर्णसेन' नामके एक विशेष प्रतिष्ठित राजा थे। उन्होने अत्यन्त वृद्धावस्था पर्यन्त सुखसे राजसिहासनका उपभोग किया था। पूर्व जन्ममें अर्जित किसी विशेष पुण्यके फलस्वरूप वैष्णवश्रेष्ठ श्रीनारदजी सुवर्णसेनके प्रासादमें आ उपस्थित हुए। महाराज सुवर्णसेन विषयी होते हुए भी अतिथि और वैष्णवोंकी सेवामे रत रहते थे। उन्होने अत्यन्त आदरपूर्वक देवर्षि श्रीनारदकी पूजा की। श्रीनारदमुनिने कृपा करके जो तत्वोपदेश महाराजको प्रदान किया, उससे उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनको श्रीनारदजीकी कृपासे ज्ञात हुआ कि जिस स्थानमे वे निवास करते हैं वह स्थान 'श्रीनवद्वीप-मडल' के अन्तर्गत है। कलिकाल में इसी स्थानमें सुवर्णवर्ण श्रीगौरहरि सपार्षद अवतीर्ण होकर अपनी अभूतपूर्व औदार्य-लीला प्रकट करेंगे। श्रीनारदमुनि 'श्रीगौर' नामका माहात्म्य कीर्तन कर वीणाके स्वरमें श्रीगौर-नामका कीर्तन करते-करते प्रेमसे विह्वल होकर कहने लगे,—"कब वह धन्य कलिका आगमन होगा, जब कि श्रीगौरहरि सपार्षद अवतीर्ण होकर विश्वमय प्रेमकी बाढ बहावेंगे!" इसके बाद श्रीनारदजी अन्यत्र चले गये। श्रीनारदके मुखसे निकले हुए गौरनामको सुनकर राजाके मनमें विषय-वासनाका बीज निर्मूल हो गया। वे प्रेमसे 'हा गौराग' कहकर नाचने लगे। उनके हृदयमें दैन्यका उद्रेक हुआ। एक दिन महाराज सुवर्णसेनने नीदमें देखा कि श्रीगौर-गदाधर अपने पार्षदोके साथ महाराजके आगनमें 'हरे, कृष्ण' बोलते हुए नृत्य कर रहे हैं और सबको सप्रेम आलिगनके द्वारा कृतार्थ कर रहे हैं। महाराजने और भी देखा कि श्रीगौरहरि मानो एक साक्षात् सुवर्णकी पुतली हैं, उपनिषद्में कहे गये—"यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम्।" (मुण्डकोपनिषत् ३-३)। रुक्मवर्ण—सोनेका रग, अनर्पितचर—जो पहले कभी प्रदान नही किया गया। वही रुक्मवर्ण पुरुष अनर्पितचर प्रेमप्रदान करनेके लिये पसरा

(प्रेमका खोमचा) लिये घूम रहा है, यह देखते-देखते राजाकी नीद टूट गयी। नीद टूटनेपर अत्यन्त विरहकातर होकर वे 'गौर!' 'गौर!' पुकारकर क्रन्दन करने लगे। उसी समय दैववाणी (आकाशवाणी) हुई,—"हे महाराज, आप धैर्य धरिये, श्रीगौरहरि जब कलिकालमे नवद्वीप-मण्डलमे अवतीर्ण होगे, उस समय आप 'श्रीबुद्धिमन्त खाँ'के नामसे परिचित होकर उनकी श्रीचरण-सेवाका अधिकार प्राप्त करेगे।"

पैंतीसवां परिच्छेद

श्रीबुद्धिमन्त खां

'श्रीचैतन्य-चरितामृत'में श्रीकृष्णदास कविराज-गोस्वामिपाद लिखते है कि,—

श्रीचैतन्येर अति प्रिय बुद्धिमन्त खान्।
आजन्म आज्ञाकारी तेंहो सेवक-प्रधान।।

—चै० च० आ० १०।७४

[बुद्धिमन्त खाँ श्रीचैतन्यके अति प्रिय, आजन्म आज्ञाकारी और प्रधान सेवक थे।]

श्रीबुद्धिमन्त खा थे,—महाप्रभुके पडोसी तथा अत्यन्त अनुगत धन-वान् ब्राह्मण भक्त। महाप्रभु जिस समय नवद्वीपमें अध्यापककी लीला प्रकट कर रहे थे, उसी समय प्रभु एक दिन वायु-व्याधिके बहाने अपूर्व प्रेमभक्तिके विकारोको प्रकट किया था, इसे पाठकगण पहले ही पढ चुके है। उसी समय श्रीबुद्धिमन्त खाँने अत्यन्त वात्सल्य-रससे मुग्ध होकर श्रीनिमाइ पडितकी वायु-व्याधिकी चिकित्सा करवायी थी।

जिस समय श्रीनिमाइ पडितका श्रीविष्णुप्रियासे ब्याह हुआ, उस समय इन्ही श्रीबुद्धिमन्त खाँने वरपक्षकी ओरसे ब्याहका सारा व्ययभार अपने सिर लिया था। श्रीबुद्धिमत खाँने अत्यन्त उत्साहसे कहा था,—

ए-विवाह पण्डितेर कराइब हेन ।
राजकुमारेर मत लोके देखे येन ।।

—चै० भा० आ० १५।७२

[पडितके इस विवाहको ऐसा राजकुमारके समान कराऊँगा कि लोग देखेंगे ।]

पृथ्वीके लोग, अधिक क्या, तत्कालीन नवद्वीपके अधिवासीगण अपने पुत्र-कन्याके ब्याहमें, शौकीन धनाढ्य लोग कुत्ते-बिल्लीके विवाहमें बहुत पैसे खर्च करके अपनी इन्द्रियोको तृप्त किया करते थे, परन्तु श्रीबुद्धिमन्त खाँ सचमुच ही ऐसे बुद्धिमान् थे कि, उन्होने एक मात्र नित्य सेव्य श्रीगौर-नारायणके ब्याहमें अपना समस्त धन लगा दिया था, इसे ही वैष्णव-महापुरुशोकी भाषामें—'कनकके द्वारा माधवकी सेवा' कहते हैं ।*

---

*"मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रय ।
लभते निश्चला भक्ति मय्युद्धव सनातने ।।"

—भा० ११।११।२४

[मेरे प्रीत्यर्थ एकमात्र मेरे आश्रित होकर पुण्यकर्म, विषयभोग एव अर्थार्जन करते रहनेपर भी हे उद्धव! सनातन-भजनीय मुझमें सर्वदा अहैतुकी और नित्य अव्यवहित रहनेवाली श्रवण कीर्तनादिमयी भक्ति प्राप्त होती हैं ।]

"यश्चार्थो धनसग्रहस्तमपि मदर्थे मत्सेवामात्रोपयोगित्वेनैवाचरन् सेवमानो मदपाश्रय आश्रयान्तरशून्यचेताश्च सन् तामेव कथाश्रवणादि-लक्षणा भक्ति मयि निश्चला सर्वदाव्यभिचारिणी अव्यवहिता अहैतुकी लभते, तत्सुखेन कैवल्यादावप्यनादरात् , न च भजनीयस्य चलतया वा सा चलिष्यतीति मन्तव्यमित्याह—सनातने इति ।"

—भ० स० ७२ अनुच्छेद

नवद्वीप-लीलामें श्रीबुद्धिमन्त खाँने अर्थके द्वारा श्रीलक्ष्मीपति श्रीगौरहरिकी सेवा की। जब श्रीचन्द्रशेखरके घर महाप्रभुने पारमार्थिक नाट्यमचका उद्बोधन किया था, उस समय श्रीबुद्धिमन्त खाँने उस अभिनयके लिये समस्त वस्त्राभूषणोको सग्रह कराया था।

छत्तीसवां परिच्छेद्

श्रीचन्द्रशेखरके घर नाट्याभिनय

आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर श्रीहट्टमे आविर्भूत हुए थे। श्रीजगन्नाथ मिश्रके समान इन्होने भी श्रीनवद्वीप-मायापुरमें आकर वास किया था। ये 'नवनिधि'में अन्यतम होनेके कारण 'आचार्यरत्न'के नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके घर समय-समयपर श्रीमन्महाप्रभुका सकीर्तन-विलास होता था। श्रीचन्द्रशेखरके घर महाप्रभुने कृष्णलीला-नाटचाभिनयका प्रथम प्रवर्तन किया था अर्थात् नीव डाली थी, इसी कारण यह स्थान 'व्रजपत्तन' नामसे प्रसिद्ध है।

एक दिन महाप्रभुने भक्तोके सामने हरिलीला-नाटकका अभिनय करनेकी इच्छा प्रकट करके श्रीनवद्वीपके धनाढच भक्तवर श्रीसदाशिव

[धनसग्रहरूप जो अर्थ है, वह भी मेरी सेवाके उपयोगके रूपमें मेरे उद्देश्यसे ही आचरण करते-करते (भजन करनेवाला) मदाश्रित होकर, मेरे सिवा अन्य सबके आश्रयको परित्यागकर, अन्तमें मुझमें कथा-श्रवणादि लक्षणमयी, निश्चला और सर्वदा अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त करता है, तब वैसे भक्तिसुखको प्राप्त कर कैवल्य आदि मुक्तिके प्रति भी मेरे शुद्ध भक्तकी अनादर बुद्धि हो जाती है। भजनीय वस्तु और भक्ति अनित्य है, ऐसा नही समझना चाहिए। इसी लिये 'सनातन' शब्दका प्रयोग हुआ है।]

और श्रीबुद्धिमत खाँको शख (शखकी चूडियाँ), अँगिया, रेशमी साडी और गहने आदि सामग्री सग्रह करनेके लिये कहा। महाप्रभुने यह निर्देश कर दिया कि श्रीगदाधर श्रीरुक्मिणीका, श्रीब्रह्मानन्द श्रीरुक्मिणी की बूढी सखीका, श्रीनित्यानन्द श्रीयोगमायाका, ठाकुर श्रीहरिदास कोतवालका, श्रीश्रीवास श्रीनारदका तथा श्रीश्रीराम पडित स्नातकका वेश ग्रहण करके अभिनय करेगे, और महाप्रभु स्वय श्रीलक्ष्मीका वेश ग्रहण करके नृत्य करेगे, एव जो लोग वास्तविक जितेन्द्रिय है उनको ही यह नृत्य देखनेका अधिकार होगा, ये बाते बतला दी गयी।

प्रकृति-स्वरूपा नृत्य हइबे आमार ।
देखिते ये जितेन्द्रिय, ता'र अधिकार ॥
सेइ से याइबे आजि बाड़ीर भितरे ।
येइ जन इन्द्रिय धरिते शक्ति धरे ॥

—चै० भा० म० १८।१८-१९

[प्रकृति (स्त्री)के स्वरूपमें मेरा नृत्य होगा; जो जितेन्द्रिय है, उसीको देखनेका अधिकार है। आज घरके भीतर वही मनुष्य जाय, जो इन्द्रियोके निग्रहकी शक्ति रखता हो।]

श्रीमन्महाप्रभुकी बातको सुनकर सबसे पहले श्रीअद्वैताचार्य लोक-शिक्षाके लिये दीनतापूर्वक बोले,—"इस नृत्यके देखनेका मेरा तनिक भी अधिकार न होगा, क्योकि मै अजितेन्द्रिय हूँ।" श्रीश्रीवास पडित बोले,—"मेरी भी यही बात है।" इनके वचन सुनकर श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"यदि तुम लोग इसमे योगदान न करोगे, तो किनको लेकर मै अभिनय करूँगा?" सभी वैष्णवोकी ओर दृष्टि निक्षेप करके श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—"किसीको कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही है, तुम सभी महायोगेश्वर हो सकोगे, कोई भी मुझे देखकर मुग्ध न होगा, मै यह आश्वासन देता हूँ।"

श्रीगौरसुन्दरकी इस श्रीकृष्ण-लीलाके अभिनयका दर्शन करनेके लिये श्रीनवद्वीपवासी आबाल-वृद्ध-वनिता श्रद्धालु सभी श्रीचन्द्रशेखरके

घरमे उपस्थित हुए। श्रीशचीमाताके साथ श्रीविष्णुप्रिया देवी तथा वैष्णवोके परिवार अभिनय देखनेके लिये श्रीचन्द्रशेखरके घरमें इकट्ठे हुए। महाप्रभुकी इच्छाके अनुसार श्रीअद्वैताचार्य महा-विदूषकके समान नाना प्रकारसे नृत्य करने लगे। "राम कृष्ण, बोलो, हरि गोपाल गोविन्द!"—यह कहकर श्रीमुकुन्दने कीर्तनका शुभ आरम्भ किया। ठाकुर श्रीहरिदासने बैकुण्ठके कोतवालके वेशमे हाथमें दण्ड लेकर सबको सावधान कर दिया,—"साधु सावधान! आज जगत्के प्राण महालक्ष्मीके वेशमें नृत्य करेगे। तुम सभी कृष्ण भजन करो, कृष्णकी सेवा करो और कृष्णनाम कीर्तन करो।" श्रीहरिदासको देखकर अन्यान्य अभिनयकारियोने पूछा,—"तुम कौन हो? और इस स्थानमे क्यो आये हो?" श्रीहरिदास बोले,—"मै वैकुण्ठका कोतवाल हूँ। मै चिरकालसे—सदा ही श्रीकृष्णको पुकारता हुआ घूमता रहता हूँ। मेरे प्रभु गोलोकसे इस भूलोकमे प्रेमभक्ति वितरण करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। आज तुम लोग सावधान होकर उस प्रेम-भक्तिको लूट लो।" यह कहते-कहते ठाकुर श्रीहरिदास श्रीमुरारि गुप्तके साथ परिभ्रमण करने लगे। उसके बाद श्रीश्रीवास पडितने श्रीनारदका वेश धारण करके रगमचमें प्रवेश किया, श्रीश्रीरामाइ पडितने हाथमे आसन और कमण्डलु लेकर श्रीश्रीवासके पीछे-पीछे चले। श्रीअद्वैताचार्यने बडे ही गभीर स्वरसे श्रीश्रीवाससे पूछा,—"तुम कौन हो? किस लिये यहाँ आये हो?" श्रीश्रीवास बोले,—"मेरा नाम 'नारद' है। मै कृष्ण-गुणगान करते हुए अनन्त ब्रह्माण्डोमे घूमता हूँ, मै श्रीकृष्णको देखनेके लिये वैकुण्ठ गया था। वहाँ सुना कि वह नदीया नगरमे गये हुए हैं, इसलिए मै यहाँ आया हूँ।"

श्रीशचीमाताने श्रीनारदके वेशमें श्रीश्रीवास पडितको देखकर श्रीमालिनीसे पूछा,—"क्या ये ही पडित श्रीश्रीवास है?" श्रीशचीमाता प्रेमसे मूर्छित हो गयी, तब पतिव्रताओने 'कृष्ण-नाम' सुनाकर श्रीशची-माताको बाह्य ज्ञान कराया।

श्रीमहाप्रभु दूसरे घरमें श्रीरुक्मिणीका वेश सजते-सजते श्री-रुक्मिणीके भावमें मग्न हो गये। श्रीगौरसुन्दरका प्रेमाश्रु स्याही बना, हाथकी अँगुलियाँ लेखनी बनी, और पृथ्वीका पृष्ठ पत्र (कागज)के रूपमें परिणत हो गया। श्रीरुक्मिणीके भावमें महाप्रभु श्रीकृष्णको पत्र * लिखने लगे,—

"याँहार चरण-धूलि सर्व-अगे स्नान ।
उमापति चाहे, चाहे यतेक प्रधान ।।
हेन धूलि-प्रसाद ना कर' यदि मोरे ।
मरिब करिया व्रत, बलिलुं तोमारे ।।
यत जन्मे पाइ तोर अमूल्य चरण ।
तावत् मरिब, शुन, कमललोचन ।।"

—चै० भा० म० १८।६४-६६

[जिनकी चरणधूलिमें उमापति (शकर) तथा जितने प्रधान देव है सर्वांग स्नान करना चाहते है, वह धूलि-प्रसाद यदि मुझे नही प्रदान करोगे तो मैं व्रत करके मर जाऊँगी , जितने जन्मोके बाद तुम्हारे अमूल्य चरण प्राप्त करूँगी, उतने जन्म मरती रहूँगी। हे कमललोचन, सुनो, मैं यह तुमसे कहे देती हूँ।]

पहले पहरमें यह अभिनय हुआ, दूसरे पहर श्रीगदाधर और श्रीब्रह्मानन्दके अभिनयके समय जब वैष्णवोका वाद-प्रतिवाद और श्रीगदाधरका गोपिका-वेशमे प्रेम नृत्य हो रहा था, उस समय वही श्रीगौरसुन्दरने आद्याशक्तिके वेशमे रगमचपर प्रवेश किया। श्रीनित्यानन्द श्रीयोगमायाके वेशमें प्रेमरसमें विभोर हो, मत्त होकर टेढे-मेढे चलने लगे। श्रीनित्यानन्दके योगमायाके वेशको देखकर ही लोगोने श्रीगौर-

*श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, ५२ अध्यायमें ७ श्लोकोमें श्रीरुक्मिणीने पत्र लिखकर एक ब्राह्मणके द्वारा श्रीकृष्णके पास भेजा था, उसी प्रकारके श्रीकृष्णसेवा-विरह-कातरा श्रीरुक्मिणीके भावमें महाप्रभु मग्न हो गये।

सुन्दरको पहचाना, नही तो, श्रीगौरसुन्दरका वेश देखकर तो कोई भी उनको पहचान नही सका था। श्रीमन्महाप्रभुको कोई लक्ष्मी, कोई सीता, कोई महालक्ष्मी, कोई पार्वती, कोई श्रीराधा, कोई गगा, कोई मूर्तिमती दया और कोई महेशमोहिनी महामाया—इस प्रकार अपनी-अपनी भावानुरूप मूर्तिमें देखने लगे। जिन्होने आजन्म श्रीमहाप्रभुके दर्शन किये थे, वे भी उनको देखकर पहचान न सके। अधिक क्या, श्रीशचीमाता भी श्रीगौरसुन्दरके अभिनयसे विस्मित होकर सबसे पूछने लगी,—"ये क्या स्वय श्रीलक्ष्मी देवी बैकुण्ठसे आ गयी है ?"

जिस रूपको देखकर महायोगेश्वर महादेव तक मोहित हो जाते है, उस रूपको देखकर जो वैष्णवोको मोह नही हुआ, यह श्रीगौरसुन्दर की कृपाका ही एकमात्र निदर्शन है। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे उन श्रीलक्ष्मीदेवीके दर्शनकर सबके हृदयमे मातृभावका उदय हो गया। श्रीगौरसुन्दर जगज्जननीके भावमे नृत्य करने लगे और उनके अनुचर लोग समयोचित गाना गाने लगे। इस लीलाके द्वारा महाप्रभुने सबको विष्णुशक्तिके यथार्थ स्वरूपकी शिक्षा दी। श्रीविष्णुकी एक ही शक्ति 'योगमाया' और 'महामाया'के नामसे प्रकाशित होती है। योगमाया ही—उन्मुखमोहिनी स्वरूप-शक्ति है और महामाया—विमुखमोहिनी छायाशक्ति है। भगवान्‌के भक्त एक ही शक्तिके दोनो प्रकारके प्रकाशोको ठीक-ठीक जानकर स्वरूप शक्तिका आश्रय लेते है।

व्यपदेशे महाप्रभु शिखाय सबारे ।
पाछे मोर शक्ति कोन जने निन्दा करे' ।।
लौकिक वैदिक यत किछु कृष्णशक्ति ।
सबार सम्माने हय कृष्णे दृढ-भक्ति ।।
देवद्रोह करिले कृष्णेर बड़ दुःख ।
गणसह कृष्णपूजा करिले से सुख ।।

—चै० भा० म० १८।१४७ १४९

[पीछे कोई व्यक्ति मेरी शक्तिकी निन्दा करे, इसलिये महाप्रभु इस बहाने सबको शिक्षा देते है—"लौकिक वैदिक जितनी भी कृष्णशक्ति है, उन सबका सम्मान करनेसे कृष्णमें दृढ भक्ति होती है। देवद्रोह करनेपर कृष्णको बडा दुःख होता है। और गणोके साथ कृष्णपूजा करनेसे उन्हें सुख होता है।"]

श्रीमहाप्रभुके आद्याशक्तिके वेशमे नृत्य करते समय श्रीनित्यानन्द मूर्छित होकर गिर पडे, यह देखकर भक्तगण प्रेमावेशमें उच्च स्वरमे रोदन करने लगे। कुछ क्षणोके बाद श्रीगौरसुन्दर श्रीगोपीनाथ-विग्रहको गोदमे लेकर महालक्ष्मीके भावमे सिहासनपर चढ गये। भक्तगणने भी उनका स्तवन करते हुए उनकी कृपा-प्रार्थना की। इस प्रकार अभिनय-आनन्दोत्सवमें मानो बहुत ही शीघ्र सारी रात बीत गयी। प्रभात हो गया। वैष्णवगण और पतिव्रता स्त्रियाँ विषादके कारण धैर्य धारण नही कर सकी। महाप्रभु एक ही साथ लक्ष्मी, पार्वती, दया और महानारायणीके भावमे स्तन्यपान कराने लगे। इससे भक्तोके दुःख दूर हुए और सभी प्रेमरसमें मत्त हो उठे। श्रीठाकुर वृन्दावनने लिखा है,—

सप्तदिन श्रीआचार्य-रत्नेर मन्दिरे ।
परम अद्भुत तेज छिल निरन्तरे ।।
चन्द्र, सूर्य, विद्युत् एकत्र येन ज्वले ।
देखये सुकृति-सब महा-कुतूहले ।।

—चै० भा० म० १८।२२६-२२७

[सात दिनोतक आचार्यरत्नके मन्दिरमे निरन्तर परम अद्भुत तेज रहा, मानो चन्द्रमा, सूर्य और बिजली एक ही साथ जैसे जल रहे हो। सभी पुण्यात्मा लोग महान् कौतूहलसे इसे देखते रहे।]

इस प्रकारसे बगदेशकी प्राचीन राजधानी और सकीर्तन-धर्मकी आदि आविर्भाव-भूमि श्रीधाम-मायापुर नवद्वीपमें सर्वप्रथम स्वय सकीर्तन-प्रवर्त्तक श्रीगौरसुन्दरकी इच्छासे पारमार्थिक रगमचका उद्बोधन

हुआ। बगालके यथार्थ इतिहास-लेखक श्रीगौरसुन्दरकी इस कृपाका अनुसन्धान करेगे तो धन्यातिधन्य हो सकेंगे।*

सैंतीसवाँ परिच्छेद

दारि-संन्यासीके घरमें

एक दिन श्रीगौराग और श्रीनित्यानन्द श्रीमायापुरसे शान्तिपुरमे श्रीअद्वैताचार्यके पास जा रहे थे, रास्तेमें वे 'ललितपुर' नामक एक गाँवमे जा पहुँचे। गगाके पूर्वी किनारे हाटडागाके आगे यह गाँव पडता है। ललितपुरमें एक गृही-बाउल अथवा दारिसन्यासी † रहता था। श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यानन्द उस सन्यासीके घर उपस्थित हुए। सन्यासीने "विद्या, धन, उत्तम विवाह और वशवृद्धि हो"—यह कहकर महाप्रभुको आशीर्वाद दिया। इसपर श्रीमहाप्रभु बोले,—"सन्यासिवर! यह तो आशीर्वाद नही है, 'कृष्णकी कृपा हो'—इसीका नाम आशीर्वाद है। 'विष्णुभक्ति प्राप्त हो'—यही आशीर्वाद अक्षय और अव्यय है। अतएव इस प्रकारका आशीर्वाद देना आपके लिये उचित नही है।"

---

* १३४७ बगाब्दके बैशाख मासके बगला मासिक 'भारतवर्ष' पत्रिकामें "चारि शताधिक वत्सर पूर्बेर नाटयाभिनय" शीर्षक लेखमें अध्यापक श्रीमणीन्द्र मोहन वसु, एम०-ए०, महाशयने स्वीकार किया है कि,—"यही बगालके प्राचीनतम अभिनयका निदर्शन है"।

† तामसिक तान्त्रिक सन्यासी (?) सन्यासी-वेश धारण करके भी जो गृहस्थ (?) की भाँति पर-स्त्रीके साथ रहते है, उन्हींको 'दारि-सन्यासी' कहते हैं।

यह सुनकर सन्यासीने हँसते हुए कहा,—"पहले मैंने जो सुना था, उसका आज साक्षात् प्रमाण मिल गया। आजकल लोगोको अच्छा कहो तो वे डडा लेकर मारने आते है! कहाँ तो मैंने प्रसन्न मनसे इस लडकेको उत्तम आशीर्वाद दिया और कहाँ यह उसीमे दोष बता रहा है! पृथ्वीपर जन्म लेकर जिसको सुन्दरी कामिनीका सभोग और धन-दौलतकी प्राप्ति न हुई, उसका जीवन ही व्यर्थ है। तुम्हारे शरीरमें यदि 'विष्णु-भक्ति' हो और तुम्हारे पास अर्थ नही हो, तो तुम क्या खाकर बचे रहोगे?"

श्रीगौरसुन्दरने कहा,—"लोग अपने-अपने कर्मोके अनुसार फल भोग करते है। धन-जनके लिये कामना करके भी तो लोगोको उसकी प्राप्ति नही होती। शरीरको ठीक तरहसे रखनेकी अनेक चेष्टाएँ करनेपर भी शरीरमें अलक्षितभावसे रोग प्रवेश कर जाता है। इन सब बातोको सब लोग नही समझते। विषयसुखमे लोगोकी रुचि देखकर वेदने अनको प्रकारके काम्य-कर्मोकी प्ररोचना की है। श्रीगगास्नान करनेसे और श्रीहरि-नाम लेनेसे धन-पुत्रकी प्राप्ति होगी, इस लोभसे भी यदि विषयीलोग 'गगास्नान करें और हरिनाम लेनेको तैयार हो, तो कभी साधुसगसे वे श्रीगगाजी और श्रीहरिनामकी यथार्थ महिमाको सम्यक् प्रकारसे हृदयगम कर सकेंगे और तब उनका मगल हो जायगा— इसी उद्देश्यसे वेदोमें कर्मोकी नानाप्रकारकी फलश्रुतियोका वर्णन आता है। वस्तुत कृष्णभक्तिके सिवा दूसरा कोई उत्कृष्ट वर नही है।"*

महाप्रभुकी इन सब बातोको सुनकर उस दारि-सन्यासीने श्रीविश्व-भरको विकृत-मस्तिष्क बालक और अपनेको बहुतसे तीर्थोमें पर्यटन करनेवाला परमज्ञानी बतलाया!

अनधिकारी व्यक्तिके सामने महाप्रभुकी इन सब बातोका आदर न होगा, यह समझकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने दारि-सन्यासीको मौखिक

* चै० भा० म० १९।६०–६९

सम्मान प्रदान करके चुप किया और उसके घर दोनोने दुग्ध-फल आदि भोजन किया। दारि-सन्यासीने श्रीनित्यानन्द प्रभुको इशारेसे कुछ मद्यपान करनेके लिये अनुरोध किया। श्रीमहाप्रभुने इसे सुनते ही 'विष्णु !' 'विष्णु !' स्मरण करके आचमन किया तथा अति शीघ्र श्री-नित्यानन्दके साथ उस स्थानका त्यागकर गगाजीमे कूद पडे और गगामे तैर करके 'शान्तिपुर'में श्रीअद्वैताचार्यके घर जा पहुँचे।

ठाकुर श्रीवृन्दावन लिखते हैं,—

स्त्रैण-मद्यपेरे प्रभु अनुग्रह करे।
निन्दक वेदान्ती यदि, तथापि सहारे॥

—चै० भा० म० १६।६५

[स्त्रैण और मद्यपायीपर प्रभु अनुग्रह करते हैं, परन्तु निन्दक वेदान्ती भी हो, तब भी, उसका सहार करते है।]

"**एक लीलाय करेन प्रभु कार्य पाँच-सात।**"—अर्थात् 'एक लीलामें प्रभु पाँच-सात कार्य करते हैं।' श्रीकविराज गोस्वामिपादकी यह उक्ति महाप्रभुके चरित्रमें सर्वत्र ही देखी जाती है। दारि-सन्यासीके घर जाकर श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दने यह बतलाया कि यथार्थ आशीर्वाद क्या है ? और यह भी बतलाया कि,—"भगवान् कभी-कभी स्त्रैण मद्यपायी प्रभृति पापियोके ऊपर भी स्वेच्छासे कृपा कर सकते हैं। प्रभुकी कृपासे वे उन सब पापोको अनायास आनुसगिक रूपसे सदाके लिये त्याग देते हैं। परन्तु जो लोग भगवान्के नित्य नाम-रूप-गुण-परिकर और लीलाको स्वीकार नही करते, वे सब निन्दक, ज्ञानी, कितने ही त्यागी और पडित क्यो न हो, उनके प्रति भगवान्की कृपा नही होती। इस जगह श्रीमन्महा-प्रभुने एक और शिक्षा यह दी है कि, जो लोग मद्यपान तथा परस्त्री-सग आदि पाप कर्म करते है उनका सग करना उचित नही है। मद्यपानका नाम सुनते ही श्रीमन्महाप्रभु 'विष्णु'-स्मरण करते हुए गगामे कूद पडे थे। भगवद्भक्तोका चरित्र कभी पापयुक्त नही रह सकता। वे लोग किसी प्रकारके मादक द्रव्य या नशेके वशीभूत नही होते।

श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घरमें आकर उपस्थित हुए श्रीमन्महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे पूछा कि 'भक्ति और ज्ञानमें कौन श्रेष्ठ है ?' तब श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुके प्रसाद-लाभके लिये ज्ञानको बडा बतलाया। श्रीमन्महाप्रभुने वाह्यिक क्रोध दिखाते हुए श्रीआचार्यकी पीठपर मुक्का जमाकर उन्हें डाँट-डपट कर अपने तत्वको प्रकट किया। तब अद्वैत प्रभु आनन्दसे नृत्य करते हुए बोले, —"तुम मुझे पहले ही सम्मान देते, इसी कारण तुम्हारे कृपा-दण्डकी प्राप्तिके लिये ही मैंने यह कौशल किया था, बस, मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा दास रह सकूँ, यही मैं चाहता हूं।"

अड़तीसवाँ परिच्छेद

श्रीमुरारि गुप्त और श्रीगौरहरि

एक दिन श्रीविश्वम्भर श्रीनित्यानन्दके साथ श्रीश्रीवास-भवनमें बैठे थे। उसी समय श्रीमुरारि गुप्त वहाँ आये और उन्होंने पहले श्रीगौरसुन्दरको और उसके बाद श्रीनित्यानन्दको दण्डवत् प्रणाम किया। यह देखकर लोकशिक्षार्थ श्रीगौरहरिने श्रीमुरारिसे कहा—"तुमने आज शिष्ट व्यवहारका व्यतिक्रम किया है। आज घर जाओ, कल तुम्हें सब मालूम हो जायगा।"

श्रीमुरारिने उसी दिन रातमें स्वप्नमें देखा कि, श्रीनित्यानन्द मल्ल-वेशमें जा रहे हैं। उनके हाथमें हल-मूसल है और श्रीअनन्त देव फण फैलाये श्रीनित्यानन्दके सिरपर छत्रकी तरह शोभित हो रहे हैं। श्रीविश्वम्भर श्रीनित्यानन्दके मस्तकपर पखा झलते-झलते उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। श्रीविश्वम्भर हँसते हुए श्रीमुरारिसे कहते हैं—"मैं छोटा हूँ, श्रीनित्यानन्द मेरे बडे भाई हैं।"

श्रीमुरारिने अपनी स्वप्न-समाधिमें श्रीनित्यानन्द-तत्वको जानकर दूसरे दिन श्रीश्रीवासभवनमें जाकर पहले श्रीनित्यानन्दकी चरण-वन्दना करके पश्चात् श्रीविश्वम्भरके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीविश्वम्भरने हँसते-हँसते पूछा,—"मुरारि, आज तुम्हारा व्यवहार दूसरी तरह क्यों है?" श्रीमुरारिने उत्तर दिया,—"प्रभो, तुमने जैसी प्रेरणा दी, मैंने वैसा ही किया। वायुके वेगसे जिस प्रकार शुष्क तृण उडा करता है, उसी प्रकार तुम्हारी शक्तिसे जीव कार्य किया करता है।"

श्रीविश्वम्भरने मुरारिके प्रति सन्तुष्ट होकर अपने तत्वको व्यक्त किया। तथा अपना उच्छिष्ट ताम्बूल कृपापूर्वक श्रीमुरारिको प्रदान किया। श्रीविश्वम्भरने ईश्वरावेशमें ईश्वरके नित्य नाम-रूप-गुण-लीलाको मिथ्या प्रतिपादन करनेवाले काशीके प्रसिद्ध सन्यासी प्रकाशानन्दको लक्ष्य कर क्रोधलीला प्रकट की —

सन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते।
मोरे खंड-खंड बेटा करे' भालमते॥
पड़ाय वेदान्त, मोर विग्रह ना माने।
कुष्ठ कराइलुँ अंगे, तबु नाहि जाने॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगेते बैसे।
ताहा मिथ्या बले' बेटा केमन साहसे?
सत्य कहो मुरारि! आमार तुमि दास।
ये ना माने मोर अंग, सेइ याय नाश॥
अज, भवानन्त प्रभुर विग्रह से सेवे।
ये विग्रह प्राण करि' पूजे सर्वदेवे॥
पुण्य पवित्रता पाय ये अंग-परशे।
ताहा मिथ्या बले' बेटा केमन साहसे॥
सत्य सत्य करो तोरे एइ परकाश।
सत्य मुइ, सत्य मोर दास, ता'र दास॥

सत्य मोर लीलाकर्म, सत्य मोर स्थान।
इहा मिथ्या बले', मोरे करे' खान-खान॥
ये यश-श्रवणे आदि अविद्या-विनाश।
पापी अध्यापके बले'—'मिथ्या से विलास'॥
ये यशः-श्रवण-रसे शिव दिगम्बर।
याहा गाय आपने अनन्त महीधर॥
ये यशः-श्रवणे शुक-नारदादि मत्त।
चारिवेदे बाखाने ये यशेर महत्त्व॥
हेन पुण्यकीर्ति-प्रति अनादर यार।
से कभु ना जाने गुप्त, मोर अवतार॥

—चै० भा० म० २०।३३-४४

[सन्यासी प्रकाशानन्द काशीमें रहता है, वह बेटा अपने तर्कसे मेरे टुकडे-टुकडे कर देता है। वेदान्त पढाता है, मेरे विग्रहको नही मानता। उसके शरीरमें कोढ करा दिया, तब भी उसे ज्ञान नही हुआ, उसकी आँखें नही खुली। अनन्त ब्रह्माण्डोकी मेरे अगमें स्थिति है, उसको वह बेटा किस साहससे मिथ्या बतलाता है ? सत्य कहता हूँ—मुरारि, तुम मेरे दास हो, जो मेरे श्रीअगको नही मानता, उसका नाश हो जाता है। ब्रह्मा, शिव, अनन्त सब प्रभुके विग्रहका सेवन करते हैं। जिस विग्रहको प्राण-समान सब देवता पूजते है, जिस अगके स्पर्शसे पुण्यकी पवित्रता-प्राप्ति होती है, उसको बेटा किस साहससे मिथ्या बतलाता है ! मै सत्य-सत्य तुम्हारे सामने यह प्रकट कर रहा हूँ। मै सत्य हूँ, मेरा दास सत्य है, उसका दास सत्य है, मेरा लीलाकर्म सत्य है, मेरा स्थान सत्य है। इनको मिथ्या बतला-कर मुझे खड-खड करता है। जिस यशके श्रवणसे अविद्याका मूल तक नष्ट हो जाता है , पापी अध्यापक उस बिलासको मिथ्या कहता है। जिस यशके श्रवण-रसको पाकर शिव दिगम्बर हैं, जिसको महीधर अनन्त स्वय गाते है, जिस यशका श्रवण करके शुक-नारद आदि मत्त

हो रहे है, चारो वेद जिस यशके महत्वका बखान करते है ऐसे पुण्य-कीर्तिके प्रति जिसका अनादर है, गुप्त, वह कभी मेरे अवतारको नही जानता ।]

श्रीविश्वम्भरने 'भाई', सम्बोधन करके श्रीमुरारिको आलिगन किया, एव श्रीनित्यानन्द-तत्वकी उपलब्धि कर लेनेके कारण उनको अत्यन्त आदर प्रदान किया ।

श्रीमुरारि घर जाकर पत्नीके दिये हुए अन्नका एक-एक ग्रास श्रीकृष्णके उद्देश्यसे अर्पण करके भूमिपर डालने लगे । दूसरे दिन प्रात काल श्रीविश्वम्भर श्रीमुरारिके घर आकर बोले कि, मुरारिके प्रदान किये हुए अन्नको खानेसे उनको अजीर्ण हो गया है तथा चिकित्साके लिये गुप्तके पास आये है। इतना कहकर श्रीविश्वम्भरने श्रीमुरारिके सामान्य जलपात्रसे अजीर्ण व्याधि-शमनके लिये जलपान किया। श्रीमुरारि यह देखकर मूर्छित हो गये ।

फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवास-मन्दिरमें चतुर्भुज मूर्ति धारण कर 'गरुड' 'गरुड', कहकर पुकारने लगे। श्रीमुरारिने गरुडके भावमें विभावित होकर प्रभुके समीप अपना गरुडके रूपमें परिचय दिया। उन्होने प्रभुकी द्वापरयुगीय लीलामें गरुडरूपसे प्रभुकी सेवा की थी, यह बताकर श्रीगौरहरिको उन्होने अपने कधेपर चढनेके लिये अनुरोध किया। श्रीमुरारि महाप्रभुको कन्धेपर चढाकर श्रीश्रीवासके आँगनमें सर्वत्र परिभ्रमण करने लगे। भक्तगण श्रीमुरारिके सौभाग्यकी प्रशसा करने लगे ।

श्रीमुरारि गुप्तने श्रीगौरसुन्दरके लीला-सगोपनके पूर्व ही अपने अन्तर्धानके लिये सकल्प करके एक तेज हथियारको अपने घरमें छिपाकर रक्खा था । अन्तर्यामी महाप्रभु यह जानकर श्रीमुरारिके घर आये और गुप्तको इस प्रकारका कार्य करनेसे निषेध किया तथा सर्वतोभावेन उनपर कृपा की ।

उन्तालीसवाँ परिच्छेद्

देवानन्द् पंडित

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु नगर-भ्रमण करते-करते प्रसिद्ध श्रीसार्व-भौम भट्टाचार्यके पिता महेश्वर विशारदके 'विद्यानगर'में स्थित घरके पास पहुँचे। यहाँ 'देवानन्द पडित' नामक एक मोक्षकामी ब्राह्मण रहते थे। देवानन्द आजन्म ससारसे विरक्त, तपस्वी और ज्ञानी थे। वे श्रीमद्भागवतके 'महा-अध्यापक'के नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीमद् भागवतका पाठ करनेपर भी उनके हृदयमे भक्ति नही थी—उनके हृदयमें मुक्तिकी वासना ही प्रबल थी। दैवात् एक दिन महाप्रभुने उस मार्गसे जाते समय देवानन्दकी भागवत-व्याख्या सुनी। इस व्याख्याको सुनकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे,—

*** *,—बेटा कि अर्थ बाखाने ?**
भागवत-अर्थ कोन जन्मेओ ना जाने ।।

* * *

महाचिन्त्य भागवत सर्वशास्त्रे गाय ।
इहा ना बुझये विद्या-तप-प्रतिष्ठाय ।।

* * *

भागवते अचिन्त्य-ईश्वर-बुद्धि या'र ।
से जानये भागवत-अर्थ भक्तिसार ।।

—चै० भा० म० २१।१३, २३, २५

[बेटा कैसे अर्थकी व्याख्या करता है ? भागवतका अर्थ किसी जन्ममें भी नही जानता। भागवत महान् अचिन्त्य है, यह सब शास्त्र गाते है, इसको विद्या, तप और प्रतिष्ठासे नही समझा जा सकता। जिसकी भागवतमें अचिन्त्य ईश्वर-बुद्धि है, वह जानता है कि भागवतका अर्थ भक्तिसार है ।]

महाप्रभुकी इस लीलासे श्रीमद्‌भागवत-पाठके अधिकारीका निर्णय हुआ है। जागतिक पाण्डित्य, उच्चवशमें जन्म अथवा जागतिक पुण्य-पवित्रता होनेसे ही श्रीमद्‌भागवतका सिद्धान्त नही समझा जा सकता। भगवान्‌मे ऐकान्तिक सेवावृत्तिके द्वारा ही श्रीमद्‌भागवतके अर्थकी यथार्थ उपलब्धि होती है।

शुद्ध वैष्णव-श्रेष्ठ श्रीश्रीवास पडितके चरणोमें देवानन्दने पहले अपराध किया था। एक दिन देवानन्द पडित श्रीमद्‌भागवतकी व्याख्या कर रहे थे, उस समय महाभागवतवर पडित श्रीश्रीवास यदृच्छासे ही देवानन्दके घर जा पहुँचे और भागवतका श्लोक सुनते ही रसिकवर श्रीश्रीवास पडितमे सब प्रेमविकार प्रकट हो गये। देवानन्द पडितके कुछ पापी छात्रोने गुरुके पाठमें बाधक समझकर श्रीश्रीवास पडितको घरसे बाहर खीचकर ला गिराया। देवानन्द पडितने अपने छात्रोको मना नही किया। यद्यपि देवानन्दने स्वय प्रवृत्त होकर महाभागवत श्रीश्रीवास पडितके प्रति कुछ भी बुरा व्यवहार नही किया, तथापि छात्रोके ऐसे व्यवहारको गौण समझा एव मौन रहकर अनुमोदन ही किया, इसीसे बडा भारी वैष्णवापराध हो गया।

बहुत दिनो बाद देवानन्दको देखकर श्रीविश्वम्भरको श्रीश्रीवास पडितके प्रति किए हुए देवानन्दके उस अपराधकी बात याद आ गयी, इससे महाप्रभुने कृपापूर्वक देवानन्दको वाक्य-दण्ड देकर लोकको शिक्षा-प्रदान की। देवानन्द श्रीचैतन्यके वाक्य-दण्डको सिरपर धारण करके लज्जाके मारे निरुत्तर हो रहे।

चैतन्येर दण्ड ये मस्तके करि' लय।
सेइ दण्डे ता'र प्रेमभक्ति-योग हय॥

—चै०भा० म० २१।७९

[श्रीचैतन्यके दण्डको जो मस्तकपर धारण कर लेता है, उस दण्डसे उसको प्रेमभक्तिकी प्राप्ति होती है।]

सन्यास-लीला प्रकट करनेके बाद श्रीमहाप्रभुने जब नीलाचलसे गौडदेशकी विजय-यात्रा की थी, तब वे 'कुलिया' ग्राममें आये थे।

श्रीगौरसुन्दरकी गृहस्थ-लीलाके समय देवानन्द पडितका श्रीगौरहरिके चरणकमलोमें विश्वास नही था। श्रीचैतन्यदेवके प्रियपात्र प्रेमिकवर श्रीवक्रेश्वर पडित घटनाक्रमसे कृपापूर्वक देवानन्द पडितके आश्रयमें जाकर रहे थे। श्रीवक्रेश्वरकी , सेवाके प्रभावसे और उनके सगके फलसे देवानन्दका श्रीचैतन्यके चरणकमलोमें विश्वास हो गया। श्रीचैतन्य नीलाचलसे 'कुलिया'में पधारे हैं, यह सुनकर देवानन्द पडित श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये प्रभुके समीप पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभुने इस बार देवानन्दके समस्त अपराधोका खडन करके उनपर कृपा की। श्रीवक्रेश्वर पडितकी कृपासे देवानन्दपर महाप्रभुकी कृपा हुई। उनकी कृपासे अभिषिक्त होकर देवानन्द अब श्रीमद्‌भागवतकी व्याख्या तथा अध्यापन किस प्रकार करेंगे, इस विषयमें उन्हें श्रीमहाप्रभुके द्वारा उपदेश प्राप्त हो गया। श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—

आदि-मध्य-अन्ते भागवते एइ कय।
विष्णुभक्ति नित्यसिद्ध अक्षय अव्यय।।
अनन्त ब्रह्माण्डे सबे सत्य विष्णुभक्ति।
महाप्रलयेओ या'र थाके पूर्ण-शक्ति।।
मोक्ष दिया भक्ति गोप्य करे' नारायणे।
हेन भक्ति ना जानि कृष्णेर कृपा-बिने।।
भागवतशास्त्रे से भक्तिर तत्त्व कहे।
तेञि भागवत-सम कोन शास्त्र नहे।।
येन-रूप मत्स्य-कूर्म-आदि अवतार।
आविर्भाव-तिरोभाव येन ता' सबार।।
एइमत भागवत कारो कृत नय।
आविर्भाव-तिरोभाव आपनेइ हय।।
भक्तियोगे भागवत व्यासेर जिह्वाय।
स्फूर्ति से हइल मात्र कृष्णेर कृपाय।।

—चै० भा० अ० ३।५०६-५१२

[आदि, मध्य और अन्तमें भागवतमें यही कहा है कि विष्णुभक्ति नित्यसिद्ध, अक्षय और अविनाशी है। अनन्त ब्रह्माण्डमें केवल विष्णु-भक्ति सत्य है, महाप्रलयमें भी जिसकी पूर्णशक्ति विद्यमान रहती है। नारायण मोक्ष देकर भक्तिको छिपा लेते हैं, ऐसी भक्तिको कृष्णकी कृपाके बिना नहीं जाना जा सकता। भागवतशास्त्रमें उस भक्तिका तत्व कहा गया है। इस कारण भागवतके समान कोई शास्त्र नहीं है। जैसे मत्स्य, कूर्म आदि अवतार है, उन सबका जैसे आविर्भाव-तिरोभाव होता है, वैसे ही भागवत किसीके द्वारा रचित नहीं है, उसका अपने-आप ही आविर्भाव-तिरोभाव होता है। भक्तियोगसे कृष्ण की कृपाके कारण ही श्रीव्यासकी जिह्वामें भागवत स्फूर्त हुई।]

'भागवत बुझि' हेन या'र आछे ज्ञान।
सेइ ना जानये भागवतेर प्रमाण॥
अज्ञ हइ' भागवते ये लय शरण।
'भागवत-अर्थ ताँ'र हय दरशन॥
प्रेममय भागवत—श्रीकृष्णेर अङ्ग।
ताहाते कहेन यत गोप्य कृष्णरंग॥
वेदशास्त्र-पुराण कहिया वेदव्यास।
तथापि चित्तेर नाहि पायेन प्रकाश॥
यखने श्रीभागवत जिह्वाय स्फुरिल।
ततक्षणे चित्तवत्ति प्रसन्न हइल॥
हेन ग्रन्थ पड़ि' केह सकटे पड़िल।
शुन अकपटे द्विज, तोमारे कहिल॥
आदि-मध्य-अवसाने तुमि भागवते।
भक्तियोग मात्र बाखानिओ सर्वमते॥
तबे आर तोमार नहिब अपराध।
सेइक्षणे चित्तवृत्त्ये पाइबा प्रसाद॥

—चै० भा० अ० ३।५१४-५२१

[जिसको ऐसा ज्ञान है कि मैं भागवतको समझता हूँ वह भागवत की मर्यादाको नही जानता। जो अज्ञानी होकर भागवतकी शरण लेता है, उसको भागवतके अर्थका दर्शन होता है। प्रेममय भागवत श्री-कृष्णका अग है। उसमें श्रीकृष्णकी गोपनीय लीलाओका वर्णन है। वेदशास्त्र एव पुराणोको वेदव्यासने कहा, तथापि उनको चित्तकी प्रसन्नता नही मिली। जब उनकी जिह्वासे श्रीभागवतकी स्फूर्ति हुई उसी क्षण उनकी चित्तवृत्ति प्रसन्न हो गयी। ऐसे ग्रन्थको पढकर भी कोई सकटमे पड गया। हे द्विज, सुनो, मैंने निष्कपटरूपसे तुमसे कहा है,—तुम भागवतके आदि, मध्य और अन्तमे सब मतोमें केवल भक्तियोगकी ही व्याख्या करना। इससे फिर तुम्हें अपराध नही होगा और उसी क्षण चित्तवृत्तिमें प्रसाद (प्रसन्नता) की प्राप्ति हो जायगी।]

चालीसवाँ परिच्छेद

श्रीशचीमाता और वैष्णवापराध

सच्चे साधुकी निन्दाके समान दूसरा कोई अपराध नही है। साधुकी निन्दा अनेक प्रकारसे होती है। साधु या वैष्णवको साधारण दृष्टिसे देखनेपर साधु-निन्दा होती है। वैष्णवके सम्बन्धमें मिथ्या अपवाद, वैष्णवकी भक्तिका उदय होनेके पहलेका दोष, पूर्व दोषोके क्षय होनेपर बचे हुए दोष, दैवोत्पन्न दोष, उनके शरीरगत दोष अथवा प्रकृतिगत दोष, जैसे—उनके जाति-वर्ण प्रभृति तथा अग-विकृति अथवा कर्कश स्वभाव आदिको लेकर हरिनाम-भजन-परायण-व्यक्तिकी निन्दा करनेसे

'वैष्णवापराध' होता है। वैष्णवापराधके रहते श्रीहरिनामकी कृपा प्राप्त नही होती, कृष्णकृपा होनेपर भी प्रेम-लाभ नही होता।

श्रीगौरसुन्दरने अपनी माताको लक्ष्यकर समस्त आत्मकल्याणकी कामना करनेवालोको इस प्रकार शिक्षा दी है। एक दिन श्रीगौरसुन्दर श्रीश्रीवासके मन्दिरमें श्रीविष्णुके पलगपर चढकर अपने स्वरूपका वर्णन करने लगे और उन्होने सबको वर प्रदान किया। श्रीवास पडितने श्रीशचीमाताको प्रेम प्रदान करनेके लिये श्रीगौरसुन्दरसे प्रार्थना की, तब महाप्रभु बोले,—"श्रीवास, तुम इस बातको मुखपर न लाना। मै माताजीको प्रेम प्रदान नही कर सकता, क्योकि वैष्णवोके प्रति उनका अपराध हुआ है।" यह सुनकर श्रीश्रीवास पडित बोले,—"प्रभो, तुम्हारी यह बात सुनकर तो हम लोगोकी देहत्याग करनेकी इच्छा होती है। तुम्हारे जैसे पुत्र जिनके गर्भसे आविर्भूत हुए, उनको क्या प्रेमयोगमें अधिकार नही है! श्रीशचीमाता सबकी जीवन-स्वरूपा हैं, तुम बचना छोडकर उन्हें भक्ति दान करो। फिर, पुत्रके प्रति माताका अपराध ही क्या हो सकता है? और यदि अज्ञातरूपसे कोई अपराध हो भी गया हो तो उसका खडन करके उनके ऊपर कृपा करो।"

यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले,—"मै अपराध-खण्डन करनेका केवल उपाय बतला सकता हूँ। वैष्णवापराध क्षमा करनेकी क्षमता मुझमें नही है। जिस वैष्णवके प्रति अपराध होता है, वे कृपा करके क्षमा कर दें, तभी उस अपराधका मार्जन होता है, नही तो नही होता। अम्बरीषके प्रति दुर्वासाने अपराध किया था, उसे स्वय ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर क्षमा न कर सके। जब अम्बरीषने क्षमा किया तभी दुर्वासा मुनि अपराधसे मुक्त हो सके। श्रीअद्वैताचार्यके प्रति माताजी का अपराध हुआ है। उनके क्षमा करनेपर माताजीको प्रेम-प्राप्तिकी योग्यता होगी। माताजी यदि आचार्यकी चरण-धूलि मस्तकपर ग्रहण करे, तभी मेरी आज्ञासे उनको प्रेम-भक्ति प्राप्त होगी।"

श्रीगौरसुन्दरकी यह बात सुनकर उसी समय सब लोग श्रीअद्वैताचार्य के पास गये और वहाँ इन सारी बातोंको कह सुनाया। आचार्यने यह बात सुनकर श्रीविष्णुका स्मरण करते हुए कहा,—"तुम लोग क्या मुझे मार डालना चाहते हो? जिनके गर्भसिन्धुसे हमारे प्रभु श्रीगौरचन्द्र उदित हुए हैं, वे मेरी माता हैं—मैं उनका पुत्र हूँ। मैं उनकी ही चरण-धूलिका अधिकारी हूँ। वे स्वय विष्णुभक्ति-स्वरूपिणी हैं। श्रीदेवकी और श्रीयशोदा जो वस्तु है, वही श्रीशचीमाता भी है।"

इस प्रकार श्रीशचीमाताके स्वरूपका वर्णन करते-करते श्रीअद्वैत आचार्य प्रेमाविष्ट हो गये। उनकी वाह्य सज्ञा लुप्त हो गयी। यही उत्तम सुयोग और अवसर समझकर श्रीशचीमाताने आचार्यकी चरण-धूलि अपने सिरपर ग्रहण की और वे प्रेमसे विह्वल हो गयी। इस दृश्यको देखकर वैष्णव लोग उच्चस्वरसे जयध्वनि करने लगे। महाप्रभु विष्णु-पलगपर बैठे प्रसन्न-चित्तसे हँसते हुए बोले,—"अब माताजीका वैष्णवापराध नष्ट हो गया और उनको विष्णु-भक्ति प्राप्त हो गयी।"

इस लीलाके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने जो शिक्षा दी है उसे मैं श्रीचैतन्य-लीलाके व्यासकी भाषामें उद्धृत करता हूँ,—

जननीर लक्ष्ये शिक्षागुरु भगवान्।
करायेन वैष्णवापराधे सावधान॥
'शूलपाणि-सम यदि वैष्णवेरे निन्दे।
तथापिह नाश पाय', कहे शास्त्रवृन्दे॥
इहा ना मानिया ये सुजन-निन्दा करे।
जन्मे-जन्मे से पापिष्ठ दैव-दोषे मरे॥
अन्येर कि दाय, गौर-सिंहेर जननी।
ताँहारेओ 'वैष्णवापराध' करि' गणि॥

—चै० भा० म० २२।५४-५७

[जननीको लक्ष्य करके शिक्षागुरु भगवान्ने वैष्णवापराधसे सबको सावधान कर दिया। **शूलपाणि महादेवके समान देव भी यदि वैष्णवकी**

निन्दा करें तो वे भी नाशको प्राप्त होते हैं, ऐसा शास्त्रवृन्द कहते हैं। इसको न मानकर जो सुजनोकी निन्दा करते हैं, वे पापिष्ठ जन्म-जन्ममें दैव-दोषसे मरते रहते हैं। दूसरेकी क्या गिनती, स्वयं जो गौरसिहकी जननी हैं, उनपर भी वैष्णवापराध माना जाता है।]

श्रीश्रीशचीमाताने वस्तुत श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी किसी प्रकार निन्दा नही की, केवल अप्राकृत वात्सल्य-रसमयी श्रीशचीदेवीने इस प्रकारकी मानसिक आलोचना की थी कि उनके पुत्र श्रीमद्विश्वरूप पहले श्रीअद्वैताचार्यकी सगतिमें पडकर ससारसे विरक्त हो सन्यासी हो गये थे और श्रीगौरसुन्दर भी श्रीअद्वैताचार्यके सगमें सर्वदा कीर्तनादिमें प्रमत्त होकर सासारिक सुखसे उदासीन हो गये हैं। परन्तु इसके द्वारा भी श्रीशचीदेवीके अपराधाभासका अभिनय हुआ था, इसे श्रीगौर-सुन्दरने लोक-शिक्षार्थ प्रदर्शित किया।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

दुग्धफलाहारी ब्रह्मचारी

श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवासके घर प्रति रातको सकीर्तन करते हैं, यह सुनकर एक ब्राह्मण ब्रह्मचारीको वह सकीर्तन-नृत्य देखनेकी साध हुई। वह ब्रह्मचारी बाल-ब्रह्मचर्य पालन करके केवल दुग्ध-पान और फल भक्षण कर कठोर तपस्या करते थे। उनके जीवनमें कोई पाप छू भी नही गया था। ब्रह्मचारीने श्रीश्रीवास पडितसे विशेष अनुनय-विनय करके महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यको देखनेके लिये श्रीश्रीवासके घरमें स्थान माँगा। श्रीश्रीवासने ब्रह्मचारीके अत्यन्त अनुरोधसे तथा उनके

ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और निष्पाप जीवनका स्मरण कर ब्रह्मचारीजीको घरमें प्रवेशका अधिकार दिया और वहाँ गुप्त रूपसे रहनेके लिये कह दिया।

इधर महाप्रभु भक्तोंके साथ हरिसकीर्तन आरम्भ करनेके कुछ ही क्षणो बाद कहने लगे,—"आज मानो मेरे हृदयमें आनन्दकी स्फूर्ति नही हो रही है, जान पडता है यहाँ किसी बहिरग मनुष्यने प्रवेश किया है।" श्रीश्रीवास पडित बोले,—"यहाँ किसी बुरे आदमीने प्रवेश नही किया है, एक निष्पाप बाल-ब्रह्मचारी, दुग्धफलाहारी, तपस्वी ब्राह्मण विशेष श्रद्धाके साथ आपका सकीर्तन सुनने और नृत्यका दर्शन करने आये है।" यह सुनकर महाप्रभुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन ब्रह्मचारीको तत्काल ही घरसे निकाल देनेकी आज्ञा दी,—

दुइ भुज तुलि' प्रभु अँगुली देखाय।
'पयःपाने कभु मोरे केह नाहि पाय॥
चण्डालेओ मोहार शरण यदि लय।
सेइ मोर, मुञि ता'र, जानिह निश्चय॥
संन्यासीओ मोर यदि ना लय शरण।
सेह मोर नहे, सत्य बलिलँ वचन॥
गजेन्द्र-बानर-गोपे कि तप करिल।
बल' देखि, ता'रा मोरे केमते पाइल॥
असुरेओ तप करे', कि हय ताहार।
बिने मोर शरण लइले, नाहि पार॥'

—चै० भा० म० २३।४२-४६

[दोनों भुजाएँ उठाकर प्रभु अँगुली दिखाते (हुए बोले),—"दूध पीकर कोई मुझे प्राप्त नही कर सकता। चाण्डाल भी यदि मेरी शरण लेता है तो वह मेरा है और मैं उसका हूँ, यह निश्चय जानो। सन्यासी भी यदि मेरी शरण नही लेता, तो वह मेरा नही, यह मैंने सत्य वचन कहा है। गजराज, बदर और गोपोने कौनसा तप किया था

बताओ तो उन्होने मुझको कैसे प्राप्त किया। असुर भी तप करते है उससे क्या होता है। मेरी शरण लिये बिना निस्तार नही है।]

भय और लज्जासे ब्रह्मचारी श्रीश्रीवासके घरसे चले गये , परन्तु वे श्रीमन्महाप्रभुके ऊपर क्रोध करनेके बदले मन-ही-मन सोचने लगे,—"आज मेरा परम सौभाग्य है! मैंने जो अपराध किया था, उसीका दण्ड पाया परन्तु मुझे आज साक्षात् वैकुण्ठके दर्शन हुए।"

अन्यान्य बहिर्मुख लोगोके समान ब्रह्मचारीकी श्रीमन्महाप्रभुकी अथवा उनके भक्तोकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नही हुई। इसीसे उनको शीघ्र ही महाप्रभुकी कृपा प्राप्त हुई। पश्चात् महाप्रभुने ब्रह्मचारीको अपने पास बुलाया और अपना चरणकमल उनके मस्तकपर रखकर उपदेश दिया,—

प्रभु बले',—"तपः करि' ना करह बल।
विष्णु-भक्ति सर्वश्रेष्ठ जानह केवल॥"

—चै० भा० म० २३।५४

[प्रभुने कहा,—"तप करता हूँ इसका बल न बघारना। केवल विष्णुभक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ समझना।]

बहुतेरे अपने ब्रह्मचर्य, कुलीनता और तपस्याके अभिमानमें गर्व करके सोचते है कि भगवद्भक्तगण उनको हरिसकीर्तन आदिमें अधिकार अथवा भक्तोमें श्रेष्ठ स्थान क्यो नही प्रदान करेगे? परन्तु लोकशिक्षक महाप्रभुने इस लीलाके द्वारा इस प्रकारके विचारकी असारता बतला दी है। और यह भी बतला दिया कि केवल नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, सन्यास या निष्पाप जीवनके द्वारा ही महाप्रभुकी कृपा या भगवद्भक्ति प्राप्त नही होती। सुनीति या कुनीति कोई भगवद्भक्तिका सोपान या अग नही है। भगवद्भक्ति श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके भक्तोकी अहैतुकी कृपाके द्वारा ही प्राप्त होती है।

बयालीसवाँ परिच्छेद
चाँद काजी

श्रीमहाप्रभुने श्रीहरिनाम-प्रचारके प्रारम्भमे श्रीश्रीवासके आँगनके निकटवर्ती नगर-निवासियोको पहले ताली दे-देकर 'हरि-नाम' लेनेकी आज्ञा दी। क्रमश नवद्वीपके द्वार-द्वार मृदग करताल आदि वाद्योके साथ सकीर्तनका प्रचार प्रारम्भ हुआ। 'बख्तियार खिलजी'के आनेके बादसे नवद्वीपके फौजदार 'चाँदकाजी'के समय तक 'हिन्दुत्व'का अत्यन्त ह्रास हो गया था। हिन्दू लोग डरसे कभी भी श्रीभगवान्का नाम प्रकटरूपमें उच्चारण करनेका साहस नही करते थे। परन्तु श्रीचैतन्य-देवके आविर्भावके बाद उनके निर्देशानुसार जब नवद्वीपके घर-घर मृदग-करताल लेकर उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन होने लगा, तब नवद्वीपके तत्कालीन शासनकर्त्ता चाँदकाजी यह जानकर एक दिन सायकाल श्रीमायापुरमें श्रीश्रीवासके आँगनके समीपवर्ती एक कीर्तनकारी नगरवासीके घर जा पहुँचा और उसने उनका मृदग तोड दिया। जाते समय यह भय दिखा गया कि भविष्यमे कोई नगरवासी इस प्रकार कीर्तनादि करेगे, तो उनको विशेष रूपसे दडित और जातिभ्रष्ट कर दिया जायगा। जिस स्थानमें चाँदकाजीने नगरवासीके मृदगको तोड दिया था वह स्थान तबसे 'खोलभागार डागा' (मृदग तोडनेका स्थान)के नामसे प्रसिद्ध होकर आज भी श्रीमायापुरमें निर्दिष्ट है।

नगरके क्षुब्ध सज्जनोने यह सारी घटना श्रीमहाप्रभुसे निवेदन की। तब श्रीमहाप्रभु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये तथा उन्होने सबको और भी ज़ोर-जोरसे सकीर्तन करनेका आदेश दिया। नागरिकोके हृदयमें काजीका भय विद्यमान है, यह जानकर श्रीमन्महाप्रभुने उसी दिन सध्याके समय श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर प्रभृति भक्तोके साथ होकर तथा समस्त नगरवासियोको एकत्र करके तीन

विभिन्न दलोमें विराट् कीर्तनमडली सगठित की। और तत्पश्चात् महासकीर्तनका जुलूस निकालकर नवद्वीप नगरमे भ्रमण करते हुए काजीके घरके दरवाजेपर जा पहुँचे। काजी डरसे अपने घरके भीतर छिप रहा। श्रीमहाप्रभुने काजीको बाहर बुलवाया और उससे इस्लाम-धर्मके सम्बन्धमें नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे। काजी महाप्रभुके मुखसे धर्म-सिद्धान्त सुनकर निरुत्तर हो गया। काजीने बतलाया कि जिस दिन उसने मृदग तोडकर नवद्वीप-वासियोको कीर्तन करनेसे मना किया था, उसी रातको एक मनुष्यके समान शरीर और सिहके समान मस्तकवाली महाभयकर मूर्ति उसकी छातीपर कूदकर चढ बैठी और दाँत किटकिटाती हुई उसे भय दिखलाकर बोली,—"तुमने हरिकीर्तनका मृदग तोडा है, मै तुम्हारा कलेजा फाड डालूँगा और तुम्हे सवश मार डालूँगा।" काजीने इतना कहकर महाप्रभुको अपनी छातीमें नृसिहके नखोके निशान दिखलाये। काजीने और भी बतलाया कि,—उस दिन उसका एक प्यादा, जिसको उसने कीर्तनमें बाधा देनेके लिये भेजा था, उसके (काजीके) पास आकर कहने लगा कि कहीसे अचानक आगकी एक लपट आकर उसके मुँहमें लगी और उसकी सारी दाढीको जलाकर मुँहको भी दग्ध कर दिया। उस प्यादेने उसको यह भी कहा कि,—"मैंने हिन्दुओसे कहा कि तुम लोग कोई-कोई 'कृष्णदास', 'रामदास', हरिदास'—इस प्रकारके नाम परिचयमें 'हरि हरि' बोलते हो। 'हरि हरि' शब्दसे—हरण करता हूँ यानी 'चोरी करता हूँ, चोरी करता हूँ'—यह अर्थ होता है। इससे जान पडता है कि दूसरोके घरकी धन-सपत्ति चुरानेके अभिप्रायसे ही तुम लोग 'हरि हरि' शब्द उच्चारण करते हो। जिस दिन मैंने उनके साथ इस प्रकारका परिहास किया है, उसी दिनसे मेरी जिह्वा इच्छा न होते हुए भी 'हरि हरि' बोल रही है।" काजीने यह भी बतलाया कि इसके बाद एक दिन क्रुद्ध पाखण्डी हिन्दुओने उसके पास आकर यह शिकायत की कि,—"निमाइ हिन्दू-धर्मको नष्ट कर रहा है, पहले

मगलचडी, विषहरि-पूजामें रात्रि-जागरण करना ही लोगोमें धर्म-कर्म समझा जाता था, परन्तु निमाइ पडित 'गया'से लौटकर बिल्कुल विपरीत धर्म चला रहा है। मृदग-करतालके साथ समय-असमय उच्च कीर्तन करनेकी ध्वनिसे हमलोगोके कानोमें ताले लग गये हैं, रातमें निद्रामें बाधा पडती है और नगरमें शान्ति भग हो रही है। निमाइ अपना नाम बदलकर इस समय सर्वत्र अपनेको 'गौरहरि' कहकर प्रचार करता है। इससे हिन्दू-धर्म नष्ट हो गया, नवद्वीप नगर नष्ट हो गया ! इसका फल यह हो रहा है कि कुछ नीच लोगोकी स्पर्द्धा बढ रही है। हिन्दू-धर्ममें 'ईश्वरका नाम' मन-ही-मन लेनेकी ही व्यवस्था है, परन्तु यह निमाइ विपरीत मत चलाकर समस्त नवद्वीपकी शान्ति भग कर रहा है। अतएव आप जब हमारे गाँवके शासनकर्त्ता हैं तब आप इसकी कोई व्यवस्था करे। निमाइको बुलाकर शीघ्र उसे नवद्वीपसे बाहर निकाल दें।"

श्रीमहाप्रभु काजीके मुखसे श्रीहरिनाम-उच्चारण सुनकर उसके प्रति प्रसन्न हो गये और उसको स्पर्श करके बोले कि, जब आपने 'हरि', 'कृष्ण', 'नारायण' नाम उच्चारण कर लिया तो आपके सब अशुभ दूर हो गये हैं। काजीने श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोका स्पर्शकर उनके चरणोमें भक्तिकी याचना की। नवद्वीप नगरमें जिससे फिर सकीर्तनमें बाधा न पडे, इसके लिये महाप्रभुने काजीसे अनुरोध किया तब काजीने प्रतिज्ञा की कि,—"हमारे वशमें कभी कोई कीर्तनमें बाधा नही दे सकेगा। मै अपने वशमें इसकी शपथ देकर जाऊँगा।" आज भी श्रीमायापुर-नवद्वीपमें काजीके वशधरगण श्रीनवद्वीप-परिक्रमाके समय कृष्ण-सकीर्तनमें योगदान करते हैं।

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

श्रीमन्महाप्रभुका विश्वरूप-प्रदर्शन

एक दिन श्रीअद्वैताचार्य श्रीश्रीवासके आँगनमें गोपी-भावमें नृत्य और कीर्तन कर रहे थे। किसी प्रकार भी उनका नृत्य समाप्त होते न देखकर समस्त भक्तोंने मिलकर आचार्यको स्थिर किया। श्रीश्रीवास और श्रीरामाइ स्नान करने चले गये तब श्रीअद्वैताचार्य प्रेम-विभोर हो श्रीश्रीवासके आँगनमें बार-बार लोटने लगे। आचार्यकी इस आर्त्त-दशाकी बात श्रीमन्महाप्रभुके पास उनके घर पहुँची। उसी क्षण श्रीगौरसुन्दर श्रीश्रीवासके घर आये तथा श्रीअद्वैताचार्यको लेकर उन्होंने श्रीविष्णु-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया एवं आचार्यसे पूछा कि उनकी अभिलाषा क्या है? श्रीमद् आचार्य बोले,—"प्रभो, तुमने श्रीकृष्णावतारमें श्रीअर्जुनको जो 'विश्वरूप' दिखाया था, वह मुझे दिखाओ।"

'श्रीमद्भगवद्गीता'के एकादश अध्यायमें इस 'विश्वरूप'का वर्णन है। विश्वरूप प्रदर्शन करनेके पहले श्रीभगवान् श्रीकृष्णने श्रीअर्जुनसे कहा है,—

पश्य मे पार्थ! रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥
पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥
इहैकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश! यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

—गीता ११।५-८

श्रीकृष्णने कहा,—"हे अर्जुन, तुम मेरे योगैश्वर्यको देखो। मेरे शत-शत और सहस्र-सहस्र नाना प्रकारके दिव्य रूपों और नाना प्रकारकी

आकृतियोको प्रत्यक्ष करो। हे भारत, आदित्यसमूह, वसुसमूह, रुद्रसमूह, दोनो अश्विनीकुमार, समस्त मरुद्गण और अनेको अदृष्टपूर्व आश्चर्य-रूपोको देखो। सचराचर जगत् और जो-कुछ देखना चाहो, सब-कुछ मेरे इस ऐश्वर्यमय स्वरूपमें एक स्थानमें अवस्थित हैं। अतएव हे अर्जुन, और जो-जो देखना चाहो, वह सभी तुम मेरे श्रीकृष्ण-स्वरूपमें एक देशमें देखो। इस मानव-चक्षुके द्वारा तुम मुझको नही देख सकोगे। तुम मेरे नित्य-पार्षद हो, तुम्हारा जो अपना, स्वाभाविक निरुपाधिक प्रेम-चक्षु है, उसके द्वारा कृष्ण-स्वरूपका दर्शन करो। यह कृष्ण-स्वरूप ही मेरा नित्य स्वरूप है, और मेरा योगैश्वर्यमय विराट् रूप प्राकृत और अनित्य है, क्योकि उसका सम्बन्ध विश्वके साथ है। अतएव तुमको मै देवताओके उपयोगी ऐश्वर्यमय दिव्यचक्षु प्रदान करता हूँ। उसके द्वारा मेरे ऐश्वर्यमय स्वरूपके दर्शन करो।"

श्रीकृष्णने निज-पार्षद श्रीअर्जुनको देवताओके लिये उपयोगी चक्षु (दिव्यचक्षु) प्रदान कर अपने ऐश्वर्यमय रूपका दर्शन कराया था तथा अपने नित्य द्विभुज रूपको छिपा लिया था, श्रीगौरहरिने भी श्रीअद्वैत आचार्यके सम्मुख व ी किया।

नगर-भ्रमण करते-करते अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्दने श्रीश्रीवास-मन्दिरके विष्णु-गृहके बन्द द्वारपर आकर अपने आगमनकी सूचना दी। श्रीगौरसुन्दर द्वार खोलकर श्रीनित्यानन्दको घरके भीतर ले गये।

विश्वकी प्रकाण्ड मूर्तिका प्रतीक स्वरूप है—'विश्वरूप'। वह नित्य नही है। श्रीविष्णुके अवतारके नित्य नाम, रूप, गुण, पार्षद और लीलाके साथ उसकी समानता नही है। श्रीअर्जुनने ऐसा ही विचार प्रदर्शन किया था। जब उन्होने विश्वरूपके उपसहारके लिये प्रार्थना की तो श्रीकृष्णने अपने द्विभुज रूपको दिखलाया था।*

---

*"स्वक रूप दर्शयामास भूय" (गीता ११।५०) इति नराकार-चतुर्भुजरूपस्यैव स्वकत्वनिर्देशात्। तद्विश्वरूप न तस्य साक्षात्स्वरूपमिति स्पष्टम्।" (कृ० स० ८२)।

श्रीमन्महाप्रभुके सामने श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके विश्वकी प्रकाण्ड प्राकृत मूर्तिके दर्शन करनेकी अभिलाषाका अभिनय और महाप्रभुके द्वारा उसके प्रदर्शनमें एक गूढ रहस्य छिपा है। श्रीमन्महाप्रभुके समकालीन युगमें ही श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र और अनुगतके रूपमें अपना परिचय देनेवाले कुछ लोग श्रीमन्महाप्रभुको स्वय भगवान् स्वीकार करनेके लिये तैयार नही थे। वे लोग श्रीमन्महाप्रभुको श्रीअद्वैताचार्य-प्रभुका सेवक कहनेके लिये आग्रहशील थे। विश्वरूप-लीलाका प्रदर्शन करके श्रीमन्महाप्रभुने दिखला दिया कि, विश्वके उपादान-कारणके अधीश्वर श्रीअद्वैताचार्यप्रभुके भी प्रभु श्रीमन्महाप्रभु हैं। विश्वकी प्रकाण्डमूर्ति श्रीश्रीगौरकृष्ण-स्वरूपके एक अगमें अवस्थित है।

एक महाप्रभु, आर प्रभु दुइ जन।
दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण ॥

—चै० च० आ० ७।१४

[एक महाप्रभु हैं और दो जने प्रभु हैं। दोनो प्रभु महाप्रभुके चरणोकी सेवा करते हैं।]

अर्थात् उन्होने पुन 'स्वक अर्थात् स्वकीय स्वरूपको दिखलायाा था'—गीताकी इस उक्तिके द्वारा नराकार चतुर्भुज रूपका ही स्वकत्व अर्थात् स्वीयरूपत्व निर्दिष्ट होता है, अतएव 'विश्वरूप' उनक (श्रीकृष्णका) साक्षात् स्वरूप नही है, यही स्पष्ट है।

चौवालीसवाँ परिच्छेद

'दुःखी', नहीं 'सुखी'

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षामें हम सुनते है,—

दीनेरे अधिक दया करें' भगवान् ।
कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान ।।

—चै० च० अ० ४।६८

[भगवान् दीनोपर अधिक दया करते हैं , कुलीन, पण्डित, धनीको बडा अभिमान है ।]

यह बात श्रीमन्महाप्रभुने सर्वत्र अपने आचरणमे प्रदर्शित की है। उन्होने दिखलाया है कि,—"येइ भजे सेइ बड, अभक्त—हीन, छार ।" अर्थात् जो भगवान्‌की सेवा करता है, वही बडा है, अभक्त तो हीन, नगण्य है। श्रीचैतन्य-लीलाके व्यास श्रीवृन्दावनने सच-मुच ठीक ही गाया है,—

श्रीवासेर दास-दासी याँहारे देखिल ।
शास्त्र पड़ियाओ केह ताँहा ना जानिल ।।
मुरारि-गुप्तेर दासे ये प्रसाद पाइल ।
केह माथा मुडाइया ताहा ना देखिल ।।
यावत्-काल गीता-भागवत सबे पड़े ।
केह-वा पड़ाय,-कारो धर्म नाहि नड़े ।।
केह केह परिग्रह किछु नाहि लय ।
वृथा आकुमार-धर्मे शरीर शोषय ।।
बड़ कीर्ति हइले चैतन्य नाहि पाइ ।
भक्ति-वश सबे प्रभु—चारि वेदे गाइ ।।

—चै० भा० म० १०।२७६-२७७, २७३-२७४,२७९

[श्रीवासके दास-दासियोने जिनको देखा, शास्त्र पढकर भी उनको किसीने नही जाना। मुरारि-गुप्तके सेवकने जो प्रसाद प्राप्त किया, सिर मुँडाकर भी उसे किसीने नही पाया। गीता-भागवत पढते या पढाते समय लोग गीता-भागवतके बनाये धर्मको न मानकर अपने धर्मको यानी अपने सिद्धान्त या विचारको ही लिये बैठे रहते है। कोई-कोई दूसरेसे दान-स्वरूप कुछ नही लेते। व्यर्थमे बाल-ब्रह्मचर्य धारणकर या योगसाधनके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालते है, किंतु इससे क्या होता है? इस प्रकार चाहे कितनी ही प्रशसा, कितनी ही कीर्ति क्यो न प्राप्त कर ले, चैतन्यकी प्राप्ति नही होती। भगवान् तो भक्तिके वशमे है—यही चारो वेद गाते है।]

इसमें हम देखते है श्रीश्रीवासके घरकी दासी और श्रीमुरारि गुप्तके घरके नौकरने जो अनुग्रह प्राप्त किया है, माथा मुँडाकर सन्यासी सजकर, बाल-ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक शरीरको सुखाकर, दूसरोके दानादि ग्रहण करनेमे अनिच्छा प्रकट कर तथा गीताका अध्ययन-अध्यापन करके भी अनेको तपस्वी, कुलीन, ब्राह्मण, पडित तथा धनी लोगोने उसे प्राप्त नही किया। लोगोके सामने कीर्तिमान् होनेपर ही श्रीचैतन्य-देवकी कृपा प्राप्त नही की जा सकती है। एकमात्र अहैतुकी भक्तिसे ही श्रीचैतन्यचन्द्र वशीभूत होते है, इसका उज्ज्वल प्रमाण हमको श्रीश्रीवासके घरकी एक दासीके चरित्रमें दिखाई देता है।

श्रीश्रीवास पडित तथाकथित सन्यासी नही थे या तथाकथित बाल-ब्रह्मचारी नही थे। वे थे—श्रीगौर-सुखानुसन्धानमय गृहके नित्य गृहस्थ। उन्होने भक्तिके द्वारा श्रीमहाप्रभुको इस प्रकार वशमे कर लिया था कि उनके घरमे प्रभुका नित्य सकीर्तन-विलास होता था। सकीर्तनके बाद महाप्रभु जब भक्तोसे परिवेष्टित होकर श्रीश्रीवासके आँगनमे बैठते थे, तब किसी-किसी दिन भक्तगण महाप्रभुको घरमे ही स्नान करा देते थे। जब तक महाप्रभु नृत्य करते थे, तब तक श्रीश्रीवास के घरकी एक दासी महाप्रभुके स्नानके लिये गगासे कई घडे जल वहन

करके ले आती थी। उस दासीका नाम था 'दुःखी'। 'दुःखी'ने गंगाजलसे भरे हुए घड़े चारों ओर सजा रक्खे हैं यह देखकर एक दिन महाप्रभुने पंडित श्रीश्रीवाससे पूछा,—"प्रतिदिन कौन गंगासे इतना जल लाया करता है?" पंडित बोले,—"प्रभो, 'दुःखी'ही यह सेवा करती है।" महाप्रभुने कहा,—"आजसे तुममेंसे कोई उसे 'दुःखी' न कहना, सभी उसको 'सुखी' कहकर पुकारना। इस प्रकारकी भक्तिमतीका नाम 'दुःखी' रहे, यह किसी प्रकार भी योग्य नहीं है। जो वैष्णवके घरकी परिचारिका है, वैष्णव-सेवा ही जिनका व्रत है उनके समान पृथ्वीमें दूसरा कौन सुखी है?"

श्रीश्रीवासकी परिचारिकाके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी यह आशीर्वाद-वाणी सुनकर भक्तगण परम आनन्दित हुए और उसी दिनसे उसे 'सुखी' कहकर पुकारने लगे। श्रीश्रीवास पंडित भी अब उस महा-भाग्यवती श्रीगौर-सेविकाके प्रति दासी बुद्धि न रखकर उसका नित्य-गौर-सेविकाके रूपमें दर्शन करने लगे।

पाठकगण, यहाँ श्रीश्रीवासकी दासीके भाग्यके साथ श्रीश्रीवासकी सासके भाग्यकी तुलना कीजिये। दासी होकर भी निष्कपट और अहैतुकी सेवा-वृत्तिके बलसे वह परम सुखी हो गयी। और श्रीश्रीवासकी सास होनेका अभिमान करके भी उसे श्रीश्रीवासके घरसे निकलना पड़ा और वह महा दुःखी हो गयी। दुग्धफलाहारी ब्रह्मचारीके समान क्या दासीने कोई कठोर तपस्या की थी? अथवा उनके पास कोई धन, कुल, विद्या, पाण्डित्य और तपस्या थी? इसीलिये श्रीचैतन्य-लीलाके व्यासने कहा है,—

प्रेमयोगे सेवा करिलेइ कृष्ण पाइ।
माथा मुडाइले यमदण्ड ना एड़ाइ॥
दासी हइ' ये प्रसाद 'दुःखी'रे हइल।
वृथा-अभिमानी सब ताहा ना देखिल॥

—चै० भा० म० २५।१६, २२

[प्रेमयोगसे सेवा करनेपर ही कृष्ण मिलते है। सिर मुँडा लेनेसे यमदण्डसे नही छूट सकते। दासी होकर दुखीको जिस प्रसादकी प्राप्ति हुई, वृथा अभिमानी सब उसको देख भी नही पाये।]

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

श्रीश्रीवासके पुत्रकी परलोक-प्राप्ति

श्रीश्रीवास पडित शुद्ध भक्तोके आदर्श-स्वरूप है। किस प्रकार वैष्णव-गृहस्थको श्रीश्रीगुरु-गौरागके सुखानुसन्धानके लिये सर्वदा समस्त इन्द्रियोसे और सर्वतोभावसे सचेष्ट रहना चाहिये, इसका सर्वोत्तम आदर्श, श्रीश्रीवास पडितने गृहस्थलीलाका अभिनय करके सुधी-जीव-जगत्‌को सिखा दिया है।

शास्त्रमे 'गृहस्थ' और 'गृहव्रत'—ये दो शब्द सुननेमें आते हैं। जो हरिसेवा-परायण गृहस्थ हैं, उनकी आत्मा, देह, गृह, पुत्र, परिजन—सभी कृष्ण-सेवाके उपकरण हैं। उनका ससार कृष्णके सुखानुसन्धानका ससार है। और जो लोग गृह-व्रत है (गृह ही जिनके लिये सर्वस्व हैं) उन लोगोका ससार—भोगका ससार—मायाका ससार अर्थात् आत्मेन्द्रिय-सुखानुसन्धानका ससार है। वे अपने-अपने देह-गेह आदिमें आसक्त होकर पुण्य और पापके भोक्ताके रूपमे सुख और दुखकी चरखीपर घूमते रहते है।

विश्वमे श्रीचैतन्यका जो सकीर्तन-धर्म प्रचारित हुआ, वह वैष्णव-गृहस्थकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीश्रीवासके भजनमय गृहसे ही प्रकट हुआ था। श्रीश्रीवासने श्रीगौरसुन्दरके सकीर्तन-यज्ञमें सर्वस्व

आहुति दे दी थी। उनकी समस्त चेष्टाएँ उस सकीर्तन-यज्ञकी समिधा-स्वरूप बन गयी थी। अतएव श्रीश्रीवासका घर—भोगका आगार नही, वह इस प्राकृत-जगत्मे वैकुण्ठका अवतार है।

एक दिन श्रीश्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीवासादि भक्तोके साथ सकीर्तन-विलासमे प्रमत्त हो रहे थे। अकस्मात् व्याधिग्रस्त होकर श्रीश्रीवासके पुत्रने श्रीश्रीवासके घरमें ही परलोक गमन किया। अन्त पुरकी स्त्रियाँ शोकसे विह्वल होकर क्रन्दन करने लगी। क्रन्दनकी ध्वनि सुनकर पडित श्रीश्रीवासने अन्त पुरमे प्रवेश करके देखा कि उनके पुत्रकी परलोकप्राप्ति हो गई है। जो भगवद्भक्त है, वे इससे अधीर क्यो हो? इसीलिये परम गभीर महातत्वज्ञानी भक्तराज श्रीश्रीवासने नारियोको इस प्रकार प्रबोध देने लगे,—"तुम लोग शान्त होओ, रोओ मत। जिनका नाम केवल एक बार श्रवण करनेसे महापातकी भी श्रीकृष्णधाममे गमन करते है, वही प्रभु सपार्षद साक्षात् रूपमे यहाँ नृत्य कर रहे है, ऐसे समयमे जिनका परलोक-गमन हुआ है, उनके लिये क्या शोक करना चाहिए? यदि मुझे कभी इस शिशुके समान भाग्य मिल जाय, तो मै अपनेको कृतार्थ मानूँगा। यदि कहो कि तुम ससार-धर्ममे आसक्त हो, इसलिये शोकको नही रोक सकती, तो मै कहूँगा कि इस रोनेके लिये बहुत समय है। सावधान! इस समय तुम लोगोके रोनेके हो-हल्लेसे श्रीमन्महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यके सुखमे किसी प्रकारकी भी बाधा नही होनी चाहिये। यदि तुम्हारा रोनेका हो-हल्ला सुनकर श्रीमन्महाप्रभुको किसी प्रकार वाह्यदशा प्राप्त हो जायगी, तो निश्चय जान लो कि मै गगामे डूबकर आत्महत्या कर लूँगा।"

श्रीश्रीवास पडितकी बात सुनकर अन्त पुरकी सभी स्त्रियाँ शान्त हो गयी। श्रीश्रीवास पडित पुन श्रीमन्महाप्रभुके साथ सकीर्तनमें योगदान करके निरुद्वेग और परम आनन्दसे सकीर्तन करने लगे। कुछ समयके बाद भक्तोको एक दूसरेसे ज्ञात हुआ कि पडितके पुत्रका देहान्त हो गया है, तथापि किसीके मुखसे कुछ नही निकला। कुछ

समयके बाद सर्वज्ञ श्रीमन्महाप्रभुने स्वय ही कहा,—"आज मेरा चित्त न जाने किस प्रकार कर रहा है! जान पडता है, पडितके घर कोई विशेष दुख आ गया है।" श्रीश्रीवास पडित बोले,—"प्रभो, जिस स्थानमें तुम सानन्द नृत्य कर रहे हो, वहाँ फिर दुख कैसे हो सकता है ?"

अन्यान्य भक्तोने श्रीमन्महाप्रभुके पास श्रीश्रीवास पडितके पुत्रके परलोक-गमनकी बात कही। श्रीमन्महाप्रभुने पूछा,—"पडितके पुत्रको इहलोक त्याग किए हुए कितनी देर हुई ?" भक्तोने कहा,—"अढाई पहर हुआ होगा।" परन्तु पडितने आपके सकीर्तनके आनन्दमे बाधा पडनेके डरसे यह बात किसीके भी सामने प्रकट नही की। यह बात सुनकर महाप्रभु कहने लगे,—"मै इस प्रकारके भक्तका सग कैसे छोडूँगा।"

"पुत्रशोक ना जानिल ये मोहोर प्रेमे।
हेन सब-संग मुञि छाड़िब केमने॥"

—चै० भा० म० २५।५२

[जो मेरे प्रति अगाध प्रेम रखनेके कारण पुत्रशोकके आगे भी नही झुका, ऐसेका सग मै कैसे छोडूँगा ?]

—यह कहते-कहते महाप्रभु रोने लगे। श्रीमन्महाप्रभुके इस सकेतभरी बातको सुनकर भक्तगण सभी चिन्तित हो गये,—"न जाने, श्रीमन्महाप्रभु गृहस्थ-लीलाका परित्याग कर शीघ्र ही कही सन्यास-लीला प्रकट करे!" परलोकगत शिशुके सत्कारके लिये सभी व्यस्त हो गये, परन्तु श्रीमन्महाप्रभु मृत शिशुको लक्ष्य करके कहने लगे,—"तुम श्रीवासका घर छोडकर किस लिये अन्यत्र जा रहे हो ?"

कैसे आश्चर्यकी बात है! श्रीमन्महाप्रभुकी कृपाके प्रभावसे मृत-शिशुके मुखसे भी तत्वकी बात निकल पडी। शिशु बोलने लगा,—"प्रभो, आप जिसके प्रति जैसा विधान करते है, उसको अन्यथा करने

की सामर्थ्य किसमें है ? मेरे लिये इस समय जहाँ जानेकी व्यवस्था हुई है, मैं वही जा रहा हूँ। जितने दिन इस घरमें रहनेका सौभाग्य था, उतने दिन इस स्थानमें रहा, अब इस समय दूसरे स्थानमें जा रहा हूँ, सपार्षद आपके श्रीचरणोमें कोटि-कोटि नमस्कार है। आप मेरे शत-शत अपराधोका अपने गुणके द्वारा मार्जन कर दे।" इतना कहकर ही शिशु चुप हो गया। मृत-पुत्रके मुँहसे इस प्रकारकी अपूर्व तत्वकी बात सुनकर श्रीश्रीवासका सारा परिवार पुत्रशोकको भूल गया। सपरिवार श्रीश्रीवासने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोको पकडकर रोते-रोते प्रभुके चरणोमें अहैतुकी प्रेमभक्तिकी याचना की।

पाठकगण, श्रीश्रीवासके इस आदर्शके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने हम-लोगोको जो महती शिक्षा प्रदान की है, उसकी तुलना नही है। साधारण गृहव्रत मनुष्य और हरि-भजनपरायण गृहस्थका आकार बाह्य-दृष्टिसे देखनेपर एक होते हुए भी दोनोकी अन्तर्निष्ठा बिल्कुल ही पृथक् होती है। वैष्णव-गृहस्थ 'कृष्णके ससार मे रहते है, वे 'माया-के ससार'मे नही रहते। 'कृष्णके ससार'का अर्थ ही है—श्रीनाम-सकीर्तनका ससार। उस ससारके प्रभु ही ह—श्रीचैतन्यरसविग्रह श्रीकृष्णनाम। शुद्ध-वैष्णव कभी अपनेको 'प्रभु' होनेका अभिमान नही करते। श्रीकृष्णनामको 'ससारके प्रभु के रूपमें उपलब्ध करनेपर शोक-मोह आदि अनात्म-धर्म आक्रमण नही कर सकते। तब ये सभी श्रीकृष्णकी सेवामें अनुकूल व्यापारके रूपमे दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीश्रीवास आदि चारो भाइयोने शरणागत आदर्श, वैष्णव-गृहस्थकी चित्त-वृत्ति कैसी होनी चाहिये, इसको दिखला दिया है। उन लोगोने विपद या शोकमें मोहित न होकर दीनभावसे श्रीमहाप्रभुसे कहा,—

ओहे प्राणेश्वर !, ए-हेन विपद,
प्रतिदिन येन हय।
याहाते तोमार, चरण-युगले,
आसक्ति बाडिते रय ॥

विपद-सम्पदे,　　　　　सेइ दिन भाल,
ये-दिन तोमारे स्मरि।
तोमार स्मरण-　　　　　रहित ये-दिन,
से-दिन विपद हरि।।

[हे प्राणेश्वर, **ऐसी विपत्ति प्रतिदिन ही हो, जिससे तुम्हारे चरणयुगलमे आसक्ति बढती रहे।** विपत्ति-सम्पत्तिमें वही दिन उत्तम है, जिस दिन तुम्हे स्मरण करते है। **हे हरि, तुम्हारे स्मरणसे रहित जो दिन है, वह दिन मेरे लिये विपत्तिका है।**]

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवास पडितसे कहा,—"मै और श्रीनित्यानन्द ये दो पुत्र जबतक तुम्हारे है, तबतक तुमको क्या दु ख है? पुत्र-शोकादि अवश्यभावी सासारिक दु ख तुम्हे स्पर्श भी नही कर सकते। तुम्हारी बात तो दूर रही, जो तुम्हारा दर्शन और स्मरण करते है उनको भी ससार स्पर्श नही करता।"

श्रीगौरहरि सारे भक्तोके साथ श्रीश्रीवासके परलोकगत बालकको लेकर कीर्तन करते हुए गगाके तीर गये और बालककी यथोचित अन्त्येष्टि-क्रिया करके सबने गगास्नान किया।
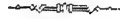
छियालीसवॉ परिच्छेद

श्रीमन्महाप्रभुके संन्यासकी सूचना

एक दिन श्रीगौरसुन्दर अपने घरमें बैठे कृष्ण-विरह-विधुरा गोपीके भावमे विरह-व्याकुल-हृदय हो 'गोपी, गोपी' नाम उच्चारण कर रहे थे, उसी समय एक विरुद्ध-प्रकृतिका छात्र महाप्रभुके पास आकर

बोला,—"आप कृष्ण नाम न लेकर 'गोपी, गोपी'—इस प्रकार स्त्रीका नाम क्यो उच्चारण कर रहे है? 'गोपी' नाम लेनेसे क्या पुण्य होगा?" यह बात सुनकर श्रीमहाप्रभु गोपीभावमें श्रीकृष्णके प्रति क्रोध और दोषारोपण करने लगे, वहिर्मुख विद्यार्थी इस दोषा-रोपणका अर्थ कुछ भी नही समझ सका।

गोपी-भावसे विभावित हुए श्रीमहाप्रभु छात्रको कोई कृष्ण-पक्षपाती व्यक्ति समझ कर डडा लेकर मारनेके लिये क्रोधमें भरकर उसके पीछे दौडे।* छात्र भयसे भाग खडा हुआ। इस घटनाको सुनकर नव-द्वीपके सारे ब्राह्मण और छात्रगण क्षुब्ध हो उठे और वे श्रीगौर-सुन्दर पर प्रहार करनेके लिये षड्यन्त्र करने लगे।

श्रीमन्महाप्रभुने यह सुनकर पहेलीके बहाने कहा,—

करिल पिप्पलिखंड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाडिल देहेते॥

—चै० भा० म० २६।१२१

[कफ दूर करनेके लिये पिप्पलीखड बनाया था, पर वह कफ तो देहमें उलटा बढ गया।]

कहाँ तो नदीयावासीके नित्य-मगलके लिये श्रीहरिनामका प्रचार किया, और कहाँ आज उनके लिये व्यवस्थित औषधि ही उनके अप-राधकी वृद्धिका कारण बन गयी।

श्रीगौरसुन्दर एक दिन श्रीनित्यानन्दको एकान्तमे बुलाकर अपने सन्यास-ग्रहणके सकल्प और उसके कारणोका निर्देश करते हुए बोले कि,—"वे जगत्के उद्धारके लिये पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए है, परन्तु नवद्वीप-वासी उनके चरणोमें अपराध कर रहे है, वे सन्यास ग्रहण करके उनके

---

* स्वधामगत श्रीश्यामलाल गोस्वामी महाशयने अपने 'श्रीश्री-गौरसुन्दर' ग्रन्थमें इस छात्रका 'कृष्णानन्द आगमवागीश'के नामसे उल्लेख किया है। (उक्त ग्रन्थका १३१३ बगाब्द सस्करण, १२१ पृष्ठ देखें।)

दरवाजेके भिखारी बन जायँगे तब सन्यासी-बुद्धिसे ही वे शायद श्रद्धाके नेत्रोसे देखेगे और उनका उपदेश सुनकर मगल-लाभ कर सकेगे।

श्रीमुकुन्दके घर जाकर श्रीमहाप्रभुने उनको 'कृष्णमगल' गाना गानेके लिये कहा तथा पश्चात् उनके सामने भी सन्यास-ग्रहण करनेका अपना अभिप्राय प्रकट किया। इसके बाद उन्होने श्रीगदाधरके घर जाकर उनके सामने भी अपनी सन्यास-ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की। श्रीगदाधरने श्रीमहाप्रभुको नाना प्रकारसे निषेध करते हुए कहा,—"प्रभो! सन्यासी होनेसे ही क्या कृष्ण मिल सकते है? क्या गृहस्थ-व्यक्ति वैष्णव नही हो सकता? तुम अनाथिनी माताका किस प्रकार परित्याग करोगे? पहले ही तो तुम्हे जननी-बधका भागी होना पडेगा!"*

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुने और भी कुछ अन्तरग भक्तोके सामने अपने सन्यासकी बात प्रकट की। सभीके सिरपर मानो वज्रपात हो गया! महाप्रभु सन्यासी होगे, यह सुनकर भक्तगण क्रन्दन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुने उनको अनेको प्रकारसे समझाया। लोग-परम्परासे श्रीशचीमाताके कानोमें भी यह दारुण समाचार पहुँचा। श्रीशचीमाताने विलाप करते हुए रो-रोकर निमाइको कितना समझाया—

ना याइय, ना याइय बाप, मायेरे छाडिया।
पाप जीउ आछे तोर श्रीमुख चाहिया।।

—चै० भा० म० २७।२२

[बेटा, माको छोडकर मत जाना, मत जाना। तेरा श्रीमुख देखकर ही तो अबतक यह पापमय जीवन धारण किए हुए हूँ।]

श्रीशचीमाताके विलापको सुनकर पाषाण भी द्रवीभूत हो गया, परन्तु जिनका हृदय वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी कोमल है—उन लोक-शिक्षक महाप्रभुको उनके सुदृढ सकल्पसे कोई भी विचलित न कर सका। उन्होने माताको बहुत सान्त्वना देते हुए कहा,—

* चै० भा० म० २६।१७२-१७४

आनेर तनय आने रजत-सुवर्ण।
खाइले विनाश पाय—नहे परधर्म ।।

आमि आनि' दिब कृष्णप्रेम हेन धन।
सकल-सम्पदमय कृष्णेर चरण ।।

—चै० म० म० १४८ पृष्ठ

[दूसरेके लडके चाँदी सोना लाते है, वह भोग करने पर नाश हो जाता है—यह सर्वश्रेष्ठ-भगवत्सेवारूप धर्म नही है। म कृष्णप्रेम जैसा परम धन ला दूँगा। श्रीकृष्णके चरण सर्वसम्पद्मय ह ।]

श्रीगौरसुन्दर श्रीशचीमाताको समझाकर बोले,—"शीघ्र ही सकीर्तनके सहयोगसे मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें दो बार जन्म लूगा।"

श्रीमन्महाप्रभुकी यह भविष्यत्-वाणी शीघ्र ही सफल हो गयी। उनके सन्यास-लीलाके पश्चात् ही श्रीविष्णुप्रिया देवीने विरह-व्यथित होकर अपने हृदयसे हृदयनाथ श्रीगौर-सुन्दरकी श्रीमूर्तिको प्रकट किया और तभीसे सभी लोग श्रीगौरनामका कीर्तन करने लगे। इस प्रकार श्रीशचीनन्दन 'श्रीमूर्ति' और 'श्रीनाम' इन दो रूपोमे जगत्के जीवोके सामने प्रकट हो गये।

माता, पिता और स्त्रीकी सेवाको छोडकर भगवान्की मेवा या भगवद्भक्ति-प्रचारके लिये जीवनोत्सर्ग करनेका बहुतसे लोग न्यायानुकूल नही समझते, वस्तुत जो लोग श्रीहरि-सेवाके मर्मको नही समझते, वे ही ऐसा विचार करते हैं। श्रीहरिके सतोषके द्वारा ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, देश, समाज और विश्वका यथार्थ उपकार किया जाता है और समस्त प्राणियोकी यथार्थ तुष्टि होती है। वृक्षके मूलमे जल देनेसे ही शाखा, पत्र, पुष्प, फल—सभी सजीवित और सर्वद्धित होते है। इस प्रकार सन्यासका उज्ज्वल आदर्श भगवदवतार श्रीकपिलदेव और मुक्तकुल शिरोमणि श्रीशुकदेवजीमे भी देखा जाता है। श्रीकपिलदेवजीने स्वामिहीना जननी श्रीदेवहूतिको और श्रीशुक-

देवजीने अपने पिना श्रीव्यासदेवको घरमे छोडकर जिस प्रकार श्री-हरिकीर्तनके लिये सर्वस्व त्याग दिया था, उसी प्रकार श्रीनिमाइ भी,——

शची-हेन जननी छाडिया एकाकिनी ।
चलिलेन निरपेक्ष हइ' न्यासिमणि ।।
परमार्थे एइ त्याग——त्याग कभु नहे ।
ए-सकल कथा बुझे कोन महाशये ।।

——चै० भा० म० ३।१०३-१०४

[शची जैसी जननीको अकेली छोडकर सन्यासी-शिरोमणि निर-पेक्ष होकर चले गये । **परमार्थकी दृष्टिमे यह त्याग——कभी त्याग नही है । इन सब बातोको आशयवाले पुरुष ही समझ सकते है ।**]

पहले कहा जा चुका है कि, एक ब्राह्मण श्रीश्रीवास पडितके अवरुद्ध द्वारके घरमें श्रीमन्महाप्रभुके सकीर्तन-नृत्यमे योगदान न कर सकनेके कारण दूसरे दिन श्रीमन्महाप्रभुको गगा-घाटपर देखकर अत्यन्त दुखी हो अभिशाप देते हुए कहा था,——"तुम्हारा सासारिक सुख नष्ट हो जाय ।" श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मणके अभिशापको सुनकर आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे ।* इस घटनाके बाद श्रीगौरसुन्दरने सन्यास-ग्रहण-लीला प्रदर्शन कर यह बतलाया कि,——"**जगत्के लोगोके लिये अमंगलसूचक अभिशाप भी श्रीकृष्णसे अनुकूलतामे ग्रहण किये जानेपर आत्माके लिये नित्य मगलकारक हो जाते है ।**" वस्तुत श्रीभगवान् किसी भी अभिशापके पात्र नही हो सकते। उनकी यह लीला जीवोको शिक्षा देनेके लिये है ।

---

* चै०च० आ० १७।६२-६३

सैंतालीसवाँ परिच्छेद
श्रीनिमाइका संन्यास

श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्दसे अपने सन्यास लेनेकी निश्चित तिथि और 'कटवा' * नगरमें श्रीकेशव भारती नामक सन्यासीसे सन्यास लेनेका अपना अभिप्राय बतलाकर कहा कि वे इस बातको केवल श्रीशचीमाता, श्रीगदाधर, श्रीब्रह्मानन्द, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीमुकुन्द——इन पाँच व्यक्तियोको जना दे। सन्यास-लीला-आविष्कारके पहले दिन महाप्रभुने सब भक्तोको लेकर दिन भर कीर्तन किया, सन्ध्याके समय गगाका दर्शन और नमस्कार करने गये, घर लौटकर भक्तोसे घिरकर बैठ गये। सबको अपने गलेकी प्रसादी माला देकर बोले,——

"बल कृष्ण, भज कृष्ण, गाओ कृष्ण नाम।
कृष्ण बिनु केह किछु ना भाविह आन।।
यदि आमा'-प्रति स्नेह थाके सवाकार।
तबे कृष्ण-व्यतिरिक्त ना गाइबे आर।।
कि शयने, कि भोजने, किबा जागरणे।
अहर्निश चिन्त कृष्ण, बलह बदने।।"

——चै० भा० म० २८।२६-२८

[कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्णका नाम गान करो। कृष्णको छोडकर कोई कुछ भी मत सोचना। यदि मेरे प्रति सबका स्नेह हो तो कृष्णके सिवा और कुछ भी मत गाना। **क्या सोते, क्या भोजन करते और क्या जागते——दिन रात कृष्णका चिन्तन करना और मुखसे कृष्ण ही बोलना।**]

---

* ईस्टर्न रेलवे की बण्डेल-बरहरवा लाईनपर बर्दवान जिलेमें कटवा (Katwa) नामका रेलवे स्टेशन है। यह स्थान गगाके किनारे स्थित है।

सन्ध्या होनेके बाद श्रीश्रीधर एक कद्दू हाथमें लेकर श्रीमन्महाप्रभुके पास आये और उसके कुछ ही क्षणो पश्चात् एक भाग्यवान् व्यक्ति थोडा-सा दूध उपहार-रूपमें दे गया। श्रीमहाप्रभुने श्रीशचीमातासे कहकर दूध और कद्दूका पाक बनवाया और उसे भोजन करके विश्राम किया। श्रीगदाधर और श्रीहरिदास श्रीमन्महाप्रभुके पास सोये रहे। श्रीशचीमाता जानती थी कि आज निमाइ गृह-त्याग करेंगे। उनके नेत्रोमें नींद नहीं थी—दोनो नेत्रोमे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। सबेरा होनेमें अभी चार घडी बाकी है यह जानकर श्रीमहाप्रभुने गृहत्यागका उद्योग किया। श्रीगदाधर पंडितने श्रीगौरसुन्दरका अनुगमन करना चाहा, परन्तु श्रीमहाप्रभुने अकेले जानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीशचीदेवी श्रीनिमाइके जानेकी तैयारी समझकर दरवाजेपर जाकर बैठ गयी, श्रीनिमाइ उस समय जननीको अनेक प्रकारसे प्रबोध देकर और उनकी चरणधूलि सिरपर लेकर घरसे निकल गये।

इसके बाद श्रीशचीमाता प्राय जडवत् हो गयी। भक्त लोग प्रातःकाल श्रीमहाप्रभुको प्रणाम करनेके लिये आये तो देखा कि, श्रीशचीमाता बाहर द्वारपर बैठी हुई हैं। श्रीश्रीवासने कारण पूछा तो श्रीशचीमाता कुछ उत्तर न दे सकी, केवल आँसू बहाने लगी। पश्चात् अत्यन्त कष्टपूर्वक किसी प्रकार बोली,—"भक्तगण ही भगवान्‌की वस्तुके अधिकारी हैं, अतएव निमाइकी जो कुछ वस्तुए हैं, उनको भक्त लोग ले जा सकते हैं, मुझे जहाँ इच्छा होगी वहीं चली जाऊँगी।" भक्तगण महाप्रभुके गृहत्याग-लीलाकी बात जानकर प्राय अचेतन होकर भूमिपर बैठ गये। कुछ देरतक रोते-रोते सबके सब श्रीशचीमाताको घेरकर बैठ गये। सारे नदीयामें श्रीमहाप्रभुके गृह-त्यागकी बात फैल गयी उसे सुनकर पहलेके निन्दक पाखण्डी लोग भी रोने लगे और निमाइको पहले पहचान न सकनेके कारण विशेष परिताप करने लगे।

श्रीमहाप्रभु अपनी नवद्वीप-लीलाके २४ वे वर्षके अन्तमे माघ मासके शुक्लपक्षमे उत्तरायणके समय संक्रान्तिके दिन रातके पिछले पहर

नवद्वीपमे 'निदयाके घाट' पर आये।* कहा जाता है कि नदीयाके निमाइकी निदारुण सन्यास-लीलाकी स्मृतिमें इस घाटका नाम 'निदयार घाट' हो गया है। इसी घाटने मानो निर्दय अथवा 'निदय' होकर सन्यास-ग्रहणके लिये कृतसकल्प श्रीनिमाइको कटवा जानेका मार्ग प्रदान किया था। श्रीमन्महाप्रभु 'निदयार घाट'से गगाको तैर कर पार हो 'कटवा' ग्राममे श्रीकेशव भारतीके पास जा पहुँचे और उनसे कृपा-प्रार्थना करने लगे। श्रीमुकुन्द आदि भक्तगण कीर्तन करते रहे। श्रीमन्महाप्रभु आवेशमें नृत्य करने लगे, श्रीचन्द्रशेखर सन्यास-विधिके अनुष्ठान करने लगे। नाई निमाइके केश-मुण्डन करनेके लिये बैठा तो रोने लगा। श्रीनित्यानन्द प्रमुख भक्तगण अविरल अश्रु बहाने लगे।

इस प्रकारसे प्राय दिनका अवसान हुआ। किसी तरह क्षौरकर्म समाप्त होनेपर लोक-शिक्षा-गुरु श्रीमन्महाप्रभुने किसी बहानेसे श्री-केशव भारतीके कानमे सन्यास-मन्त्र कहते हुए पूछा कि, उनका सन्यास-मन्त्र यही है न? श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छाके अनुसार श्रीकेशव भारतीने वही मन्त्र महाप्रभुके कानमें दिया। वस्तुत सर्वगुरु श्रीमन्महाप्रभुने श्रीकेशव भारतीको ही मन्त्र प्रदान करके शिष्य बनाया। परन्तु जगत्में सद्गुरु-ग्रहण करनेकी एकान्त आवश्यकताको बतलानेके लिये श्रीकेशव भारतीसे कानमे मन्त्र श्रवण करनेकी लीला प्रदर्शित की। श्रीमन्महा-प्रभुने गेरुआ वस्त्र पहना, उससे उनकी अपूर्व शोभा हो गयी। वे सर्वत्र श्रीकृष्ण-कीर्तनका प्रचार करके जगत्मे चैतन्यका विधान करते हैं, इसलिये भगवत्प्रेरणासे श्रीकेशव भारतीने श्रीनिमाइका सन्यास-नाम रक्खा—**श्रीकृष्णचैतन्य**। चारो ओर विपुल 'जय-जय' ध्वनि गूँज उठी।

---

* श्रीनिमाइकी सन्यास-ग्रहण-लीलाकी तारीख १४३१ शककी २९वी माघ, शनिवार, सक्रान्ति-दिवस—बगाब्द ९१६ सन् १५१० ई०, पूर्णिमा तिथि है।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

परिव्राजक-रूपमें श्रीगौरहरि

श्रीकेशव भारतीसे सन्यास लेकर श्रीमन्महाप्रभुने वह रात कटवामें ही बितायी और श्रीचन्द्रशेखर आचार्यको नवद्वीप भेजकर वे क्रमश पश्चिमकी ओर चलने लगे। श्रीमन्महाप्रभुके आगे श्रीकेशव भारती, पीछे श्रीगोविन्द तथा साथमे श्रीनित्यानन्द, श्रीगदा-धर, और श्रीमुकुन्द थे। चलते-चलते श्रीमहाप्रभुने 'अवन्ती नगरी'के त्रिदण्डी-भिक्षुकी गीतिका* का गान करते हुए राढ-देशमें प्रवेश किया और तीन दिनोतक उस देशमे भ्रमण किया। श्रीनित्यानन्दकी चतु-राईसे श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुरके निकट पश्चिम किनारे आ गये। श्री-नित्यानन्द प्रभुने स्थानीय गोपबालकोको चुपकेसे कह दिया था कि यदि श्रीमहाप्रभु उनसे श्रीवृन्दावनका मार्ग पूछें तो वे उनको गगातीरका रास्ता दिखला दें। श्रीनित्यानन्दके कहनेके अनुसार उन लोगोने वही किया। श्रीमहाप्रभुने भी गगाको यमुना समझकर स्तुति की। श्रीमहाप्रभु केवल कौपीन (लगोटी) मात्र पहने चलते थे और कोई दूसरा वस्त्र न था। पहलेसे समाचार पाकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु नौकापर सवार होकर नवीन कोपीन और वाह्य-वस्त्र लेकर अचानक वहाँ आ पहुँचे और महाप्रभुको वह कौपीन और वाह्य-वस्त्र पहनाकर नौकाके द्वारा 'शातिपुर' ले आये।

श्रीअद्वैत-गृहिणी श्रीसीतादेवीने नाना प्रकारकी भोजनकी सामग्री तैयार की, श्रीअद्वैतप्रभुने उसका श्रीमहाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुको भोग लगाया। श्रीमुकुन्ददत्त और अहिन्दूकुलमें आविर्भूत वैष्णव-श्रेष्ठ ठाकुर श्रीहरिदासको श्रीमन्महाप्रभुने अपने सहित एक साथ बैठकर प्रसाद पानेके लिये बुलाया। वे लोग महाप्रभुके भोजन कर चुकनेपर बचा हुआ भोजन

---

* भा० ११।२३।५७

करेंगे,—इस इच्छासे अपेक्षा करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके भोजनके बाद जब श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमन्महाप्रभुके चरण दबानेकी चेष्टा की, तब महाप्रभु बोले,—

बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान।
मुकुन्द, हरिदास लइया करह भोजन॥

—चै० च० म० ३। १०६

[तुमने बहुत नचाया, अब नचाना छोड़ो और मुकुन्द, हरिदासको लेकर भोजन करो।']

तब श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमुकुन्द और श्रीहरिदासको साथ लेकर प्रसाद-ग्रहण किया। श्रीमहाप्रभुकी इस लीलासे दो शिक्षाएँ मिलती हैं। पहली वे स्वयं श्रीभगवान् होनेपर भी—श्रीब्रह्मा-शिवादि देवताओंके द्वारा नित्य उनका पदसेवन होनेपर भी—लोक-शिक्षाके लिये उन्होंने श्रीअद्वैतप्रभुके द्वारा चरणसेवा स्वीकार नहीं की। साधक सन्यासी या साधक जीवके लिये अपने चरण दबवाने आदि की सेवा ग्रहण करना अकर्तव्य है, विशेषतः मर्यादाका संरक्षण ही साधुका स्वभाव है।

द्वितीय शिक्षा यह है कि, श्रीभगवान्‌के वास्तविक भक्तमें जाति-बुद्धि अथवा श्रीभगवान्‌के प्रसादमें स्थान-काल-पात्रके सम्बन्धमें स्पर्श-दोषका विचार करनेसे भक्तिराज्यसे जीवका पतन हो जाता है। श्रीमुकुन्ददत्त ठाकुर लौकिक ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न नहीं थे और श्रीठाकुर हरिदास तो वर्णाश्रमके बाहर अन्त्यज कुलमें आविर्भूत हुए थे, परन्तु शान्तिपुरके ब्राह्मण-समाजमें सर्वशिरोमणि श्रीअद्वैतने उनको साथ लेकर अपने घरमें इच्छानुसार अप्राकृत महाप्रसाद ग्रहण किया। इसमें महाप्रभुकी भी प्रत्यक्ष आज्ञा थी। बहुतेरे कहते हैं कि, एकमात्र श्रीक्षेत्रमें ही महाप्रसादमें स्पर्श-दोषका विचार नहीं किया जाता, परन्तु शान्तिपुरमें गृहस्थ-लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके आचरणसे इस कथनकी निःसारता प्रमाणित होती है। इस लीलाके प्रकट करनेके पहले

भी श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने ठाकुर श्रीहरिदासको अपने पितृ-श्राद्धका पात्र* (श्राद्धके दिन पितृ-पुरुषके उद्देश्यमें प्रदत्त नैवेद्य-पात्र) प्रदान किया था।

इन सब दृष्टान्तोसे कोई-कोई समझते हैं कि, आधुनिक युगमें जो अस्पृश्यता-निवारणका आन्दोलन चल रहा है, श्रीमन्महाप्रभु ही उसके प्रवर्त्तक हैं, विशेषत बगालमें वे ही प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं। परन्तु श्रीमहाप्रभुके चरित्रकी प्रत्येक घटनाकी निरपेक्षभावसे आलोचना करनेपर यह जाना जाता है कि, जिन्होने वास्तवमें परमार्थका आश्रय ले लिया है, श्रीमहाप्रभुने एकमात्र उन्ही लोगोके लिये ही जाति-बुद्धि, तथा केवलमात्र महाप्रसादके सम्बन्धमें ही स्पर्श-दोषके जागतिक विचारका निषेध किया है। नाना प्रकारके ऐहिक भोग अथवा राजनीतिक या सामाजिक सुविधाओके उद्देश्य-साधन करनेके लिये जो सब आन्दोलन चल रहे हैं, महाप्रभु उनके प्रवर्त्तक या समर्थक नहो हैं। वे पारमार्थिक समाजके ही शिक्षक और नियामक हैं।

नवीन सन्यासी श्रीगौरहरिके अद्वैताचार्यके घरमे रहते समय शान्तिपुरके सब लोग उनके श्रीचरणोके दर्शनार्थ आते रहे। सन्ध्या-समय सकीर्तन और नृत्य आरम्भ हुआ। श्रीमुकुन्दके हरिकीर्तन आरभ करनेपर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीअगमे आठो सात्विक विकार एक ही साथ प्रकट होने लगे। दूसरे दिन प्रात काल नवद्वीपके अनेको विरहार्त भक्तोके साथ श्रीशचीमाता डोलीपर चढकर शान्तिपुरमे श्रीअद्वैतके घर पहुँची, सन्यासी पुत्रके साथ श्रीशचीमाताका साक्षात्कार हुआ। श्रीमहाप्रभुने श्रीअद्वैतके घर दस दिन† रहकर श्रीशचीमाताको सान्त्वना प्रदान करके

* यह एकमात्र वेदविद् वैष्णव-ब्राह्मणको प्रदान करना ही शास्त्रका विधान है। —गरुड पुराण, पूर्व खड, ९९ अध्याय

† श्रीकविराज गोस्वामी प्रभुने (चै० च० म० ३।१३६ सख्यामें) शान्तिपुरमें दस दिन रहनेकी बात लिखी है। श्रीकविकर्णपूरने 'श्री-चैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक' में (६।५) श्रीचैतन्यके तीन दिन शान्तिपुरमें रहनेकी बात लिखी है।

नवद्वीपवासी भक्तोके साथ श्रीहरिकीर्तन किया और शचीमाताके हाथसे तैयार किये हुए पदार्थोकी भिक्षा ग्रहण की। सन्यासियोको आचार-शिक्षा देनेके लिये उन्होने श्रीनवद्वीपवासियोसे कहा—सन्यास-ग्रहण करके किसीको भी अपने आत्मीय-स्वजनके साथ अपने जन्म-स्थानमे रहना उचित नही है।"

श्रीशचीमाताने भी, पुत्रकी यह बात सुनकर, 'निमाइको जिसमें सुख हो वही होना चाहिये'—यह विचारकर उनको 'नीलाचल' में रहनेका अनुरोध किया। श्रीमन्महाप्रभुने नवद्वीपवासी सभी लोगोको निरतर कृष्ण-सकीर्तन, कृष्ण-नाम और कृष्ण-कथाके साथ जीवन-यापन करनेका उपदेश देकर शान्तिपुरके भक्तो और श्रीशचीमाताको बिदा देकर श्रीनित्यानन्द, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदरके साथ छत्रभोग के मार्गसे श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा की।

उन्चासवाँ परिच्छेद

'पुरी'के मार्गमें और श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें

श्रीमन्महाप्रभु छत्रभोगके मार्गसे 'वृद्ध-मन्त्रेश्वर' होते हुए उत्कल राज्यकी एक सीमामें पहुँचे, मार्गमें नाना प्रकारसे आनन्द-कीर्तन और भिक्षादि करते हुए 'रेमुणा'ग्राममें 'श्रीक्षीरचोरा श्रीगोपीनाथ'के दर्शन किये और वहाँके अपने भक्तोसे श्रीईश्वरपुरीके द्वारा कहे गये श्रीमाधवेन्द्रपुरी और श्रीगोपीनाथके प्रसगका वर्णन किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरी-पादके द्वारा कीर्तित 'अयि दीनदयार्द्रनाथ!'* श्लोकका पाठ

* अयि दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ! कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातर दयित! भ्राम्यति कि करोम्यहम्॥
—पद्यावली ३३०

[हे दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ! कब तुम्हारे दर्शन प्राप्त होगे!

करके श्रीकृष्ण-चैतन्यका कृष्ण-विरह और भी अधिक उद्वेलित हो उठा। वे वहीं वह रात बिताकर दूसरे दिन 'पुरी'की ओर यात्रा करके 'याजपुर' होते हुए 'कटक' पहुँचे। वहाँ 'श्रीसाक्षीगोपाल'* श्रीविग्रहके दर्शन कर श्रीनित्यानन्दप्रभुके मुखसे श्रीगोपालका इतिहास श्रवण किया। 'कटक'

याजपुरमें श्रीचैतन्य-पादपीठ

तुम्हारे दर्शन किये विना मेरा कातर हृदय चंचल हो उठा है। हे प्रियतम! मैं अब क्या करूं?]

* 'श्रीसाक्षीगोपाल' श्रीविग्रह उस समय कटकमें थे। पश्चात् वे पुरीसे तीन कोस दूर 'सत्यवादी' ग्राममें अधिष्ठित हुए।

से 'भुवनेश्वर' आकर श्रीक्षेत्रपालशिवके दर्शन किये। उसके वाद 'कमलपुर' में 'भार्गी' नदीके तीरपर 'कपोतेश्वर शिव'के दर्शनके वहाने श्रीकृष्णचैतन्य श्रीनित्यानन्दके पास अपना 'दण्ड' रख गये।

भगवान्के लिये साधक जीवके उपयोगी दण्ड (संन्यास-चिह्न) आदिके
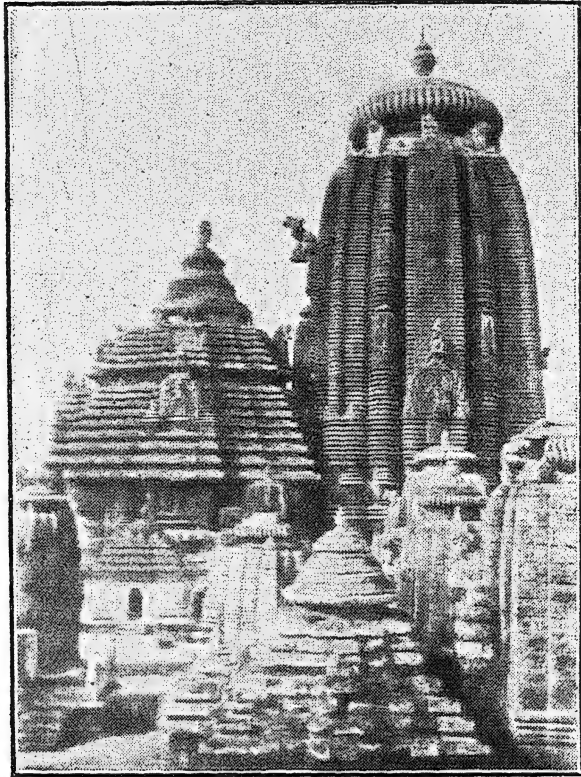
श्रीभुवनेश्वरका श्रीमंदिर, यहाँपर श्रीकृष्णचैतन्यदेवका पदार्पण हुआ था।
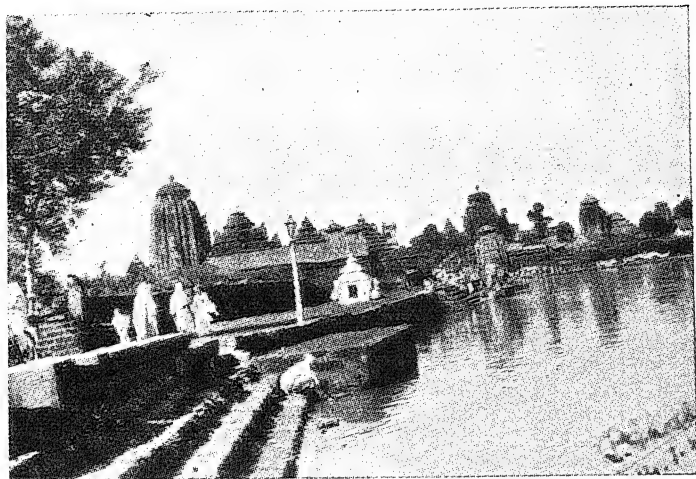
भुवनेश्वरमें श्रीविन्दुसरोवरके तीर पर श्रीअनन्तवासुदेवका श्रीमंदिर
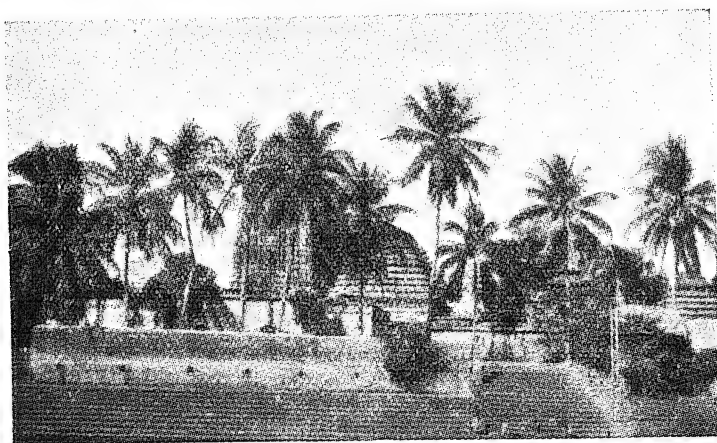
साक्षीगोपालमें श्रीश्यामकुंडके तीर पर श्रीसाक्षीगोपालजीका श्रीमंदिर

धारणकी कोई आवश्यकता नहीं है,—यह समझानेके लिये श्रीनित्यानन्दने श्रीगौर-सुन्दरके दण्ड के तीन टुकड़े करके उसे 'भार्गी' नदीमें बहा दिया।
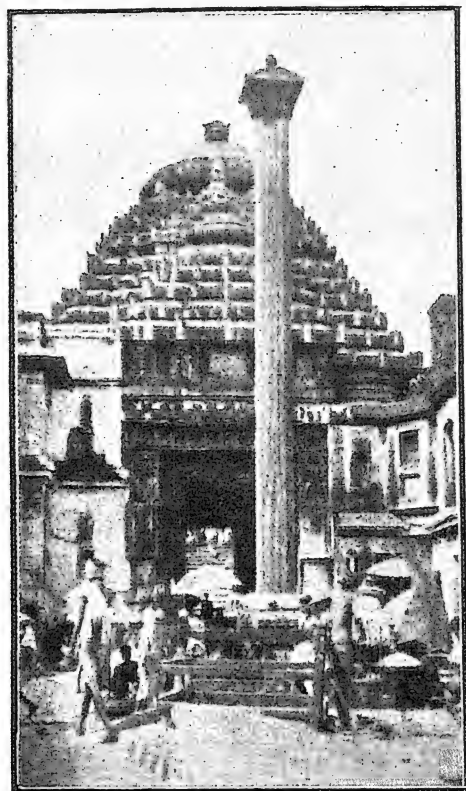
पुरीके श्रीमंदिरका सिंहद्वार और उसके सामने अरुण-स्तम्भ

'आठारनालाके' समीप पहुँचने पर श्रीमन्-महाप्रभुने अपना दण्ड न पाकर क्रोध प्रकट किया तथा साथियों-को पीछे रखकर ही अकेले श्रीजगन्नाथ-जीके मन्दिरकी ओर दौड़े। श्रीमहाप्रभुके इस प्रकार वाह्य क्रोध दिखलानेमें गूढ़ शिक्षा यही है कि, भगवान् या परमहंस वैष्णवके लिये आत्म-संशोधनके विधानकी आवश्यकता अवश्य नहीं है, परन्तु अनर्थ-युक्त* साधकके काय, मन और वाणीको

* जिनकी जगत्की वस्तुओंमें आसक्ति है, भगवान्के चरणोंमें सब समयके लिये स्वभाविक प्रीति उत्पन्न नहीं हुई उनको 'अनर्थयुक्त' कहा जाता है।

दण्डित करना* परम आवश्यक है, नहीं तो, उनके वास्तव मंगलकी संभावना नहीं।

श्रीगौरहरि श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर प्रेमावेशमें उनको आलिंगन करनेके लिये दौड़ पड़े। पड़िछा† इसे समझ न सकनेके कारण श्रीगौर-हरिको मारनेके लिये तैयार हो गया। पुरीके राजपंडित प्रसिद्ध नैयायिक
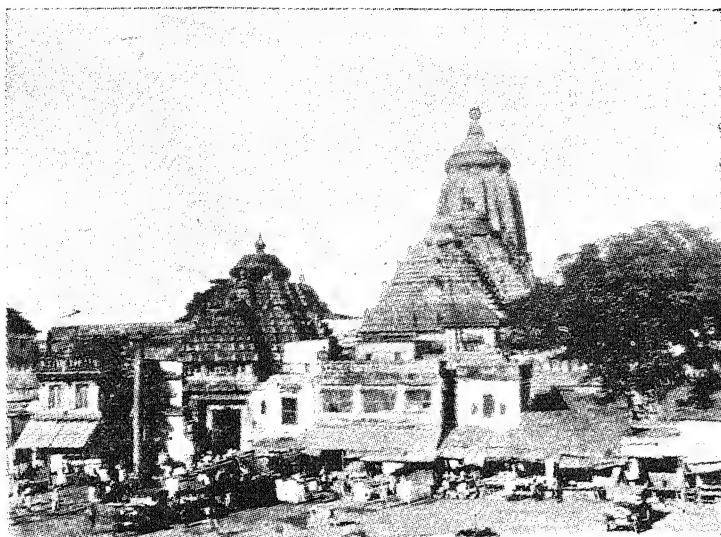
श्रीश्रीजगन्नाथदेवके श्रीमंदिरका सिंहद्वार, श्रीछत्रभोग मंडप, श्रीजगमोहन, श्रीमुखशाला और श्रीगर्भमंदिर

* देह, मन और वाणी—इन तीनोंको संशोधित या शासित करके श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धान करनेके लिए ही दण्ड ग्रहण किया जाता है। 'दण्ड' अर्थात् एक प्रकारका डंडा, जो संन्यास लेते समय ग्रहण किया जाता है।

† श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके दारोगाके समान कर्मचारी विशेषको "पड़िछा' कहते हैं।

एव अद्वैत-वैदान्तिक सार्वभौम भट्टाचार्य उस समय श्रीमन्दिरमें उपस्थित थे, दैवात् श्रीमन्महाप्रभुको इस अवस्थामें देखकर उन्होने पडिछा को रोका। सार्वभौम युवक सन्यासीके अद्भुत प्रेम-विकारको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और महाप्रभुकी वाह्यदशा प्राप्तिमें विलम्ब देखकर उनको उठवाकर अपने घर ले आये। लोक-परम्परासे महाप्रभुके महाभावकी बात सुनकर सभी भक्त लोग सार्वभौमके घर आकर उपस्थित हुए। सार्वभौमके बहनोई श्रीगोपीनाथ आचार्य अपने पूर्व परिचित श्रीमुकुन्दको देखकर उनके मुँहसे श्रीमहाप्रभुके सन्यास और पुरी आगमनकी सारी बाते सुनी।

श्रीनित्यानन्द आदि भक्तगण सार्वभौमके पुत्र 'चन्दनेश्वर' के साथ श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर आये। इधर सार्वभौमके घर तीसरे पहर श्रीमहाप्रभुको वाह्यदशा प्राप्त हुई। सार्वभौमके साथ श्रीकृष्णचैतन्यका परिचय होनेपर सार्वभौम भट्टाचार्यने अपनी मौसीके घर श्रीमन्महा-प्रभुके ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया।

श्रीमन्महाप्रभुके विषयमें सार्वभौमके साथ वार्तालाप करते हुए श्रीगोपीनाथने श्रीमहाप्रभुको 'स्वय भगवान्' बतलाया। इससे सार्व-भौम और उनके छात्रोके साथ श्रीगोपीनाथके अनेको तर्क-वितर्क हुए। "परमेश्वरकी कृपाके बिना परमेश्वर-तत्व कभी भी जाना नही जा सकता, जागतिक विद्या, बुद्धि और पाण्डित्यके द्वारा भी ईश्वरका तत्व-ज्ञान नही होता। ईश्वर साक्षात् उपस्थित होनेपर भी उनकी मायासे आच्छन्न जीव उनको देख नही सकता।"—श्रीगोपीनाथने ये बातें कहकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको एक प्रकारसे चुप करा दिया।

पचासवाँ परिच्छेद

श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य

अद्वैत-वेदान्त-गुरु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यको साधारण सन्यासी-मात्र समझकर और उनकी युवावस्थाको देखकर उन्हे 'वेदान्त'-श्रवण करनेका उपदेश दिया। श्रीमहाप्रभुने इसमे सम्मत होकर सार्वभौमसे लगातार सात दिनो तक मौन रहकर वेदान्त श्रवण किया। सार्वभौमने श्रीकृष्णचैतन्यको सात दिनोतक पूर्णतया मौन देखकर आठवें दिन उसका कारण पूछा तो श्रीमहाप्रभु बोले,—'वे श्रीव्यासकृत सूत्रोको भलीभाँति समझ लेते है, उनके अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है, परन्तु श्रीशकराचार्य-रचित भाष्यने उन सूत्रोके सहज निर्मल अर्थको ढक दिया है। शकर-भाष्य वास्तवमें वेदान्त-विरुद्ध है। अदैव-प्रकृतिके लोगोको मोहित करनेके लिये श्रीभगवान्‌के आदेशसे श्रीशिवके अवतार शकराचार्यने इस प्रकारके भाष्यकी कल्पना की है। 'अचिन्त्य-भेदाभेद-सिद्धान्त'* ही वेदान्तका यथार्थ मत है। मायावादी लोग प्रच्छन्न नास्तिक† है। श्रीमन्महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्यके सामने अनेको शास्त्र-प्रमाण विचारोके द्वारा इन सब विषयोको प्रदर्शित किया। अनेको विचार और तर्कोके बाद भट्टाचार्य परास्त हो गये।

इसके बाद जब भट्टाचार्यने श्रीमहाप्रभुसे श्रीमद्‌भागवतके "आत्मा-

---

*'अचिन्त्य-भेदाभेद-सिद्धान्तकी विस्तृत आलोचना आगे एक सौ तीन परिच्छेदमें देखें। इस सबधमें ग्रथकार रचित बगला भाषामें 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' नामक स्वतन्त्र ग्रथमे भी विशद आलोचना की गयी है।

† वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।
वेदाश्रये नास्तिक्यवाद बौद्धके अधिक ॥

—चै० च० म० ६।१६८

[वेद न माननेके कारण बौद्ध नास्तिक है। परन्तु ऊपरसे वेदको मानते हुए भी जो नास्तिकताका पोषण करते है वे बौद्ध से भी बडे नास्तिक है।]

रामाश्च" (भा० १।७।१०) श्लोककी व्याख्या सुननेकी इच्छा प्रकट की तो, श्रीमहाप्रभुने पहले भट्टाचार्यको ही इस श्लोककी व्याख्या करनेके लिये कहा। सार्वभौमने अपनी मनीषा और तर्कशास्त्रके पाण्डित्यके बलसे इस श्लोककी नो प्रकारसे व्याख्या की। श्रीमहाप्रभुने सार्वभौमकी उस व्याख्यासे किसीको भी बिना स्पर्श किये स्वतन्त्ररूपसे इस श्लोककी अठारह प्रकारसे व्याख्या की। भट्टाचार्य इससे चकित हो उठे और तब उनको आत्मग्लानि होने लगी। उन्होने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्मोमे शरणागतिकी याचना की। तब श्रीमन्महाप्रभु भी श्री-सार्वभौमके ऊपर प्रसन्न होकर पहले उनको अपने चतुर्भुज और पीछे द्विभुज-रूपके दर्शन कराये। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे सार्वभौमके चित्तमे तत्व-स्फूर्ति हुई। उन्होने बहुत ही थोडे समयमें श्रीमन्महाप्रभुकी स्तुतिसे पूर्ण, एक सौ श्लोकोकी रचना कर डाली। श्रीसार्वभौमके रचे हुए ये दो श्लोक तो भक्तोके कण्ठहार बन गये,—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥*

—चै० च० ना० ६।४३

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः, प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥†

—चै० च० ना० ६।४४

सार्वभौमके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी इस प्रकारकी अलौकिक कृपा देखकर श्रीगोपीनाथ प्रभृति सभी आनन्दित हो उठे। इसके बाद एक

* वैराग्य अर्थात् कृष्णविरह, विद्या अर्थात् कृष्ण-पादपद्ममे आसक्ति और निजभक्तियोग अर्थात् प्रेमशिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्य रूपधारी एक सनातन पुरुष जो सर्वदा कृपा-समुद्र है, उनके प्रति मै प्रपन्न होता हूँ।

† काल पाकर अपने भक्तियोगको नष्ट होता देखकर जो 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' नामक महापुरुष उसके पुन प्रचारार्थ आविर्भूत हुए, उनके श्री चरण-कमलमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर अत्यन्त प्रगाढरूपसे आसक्त हो।

दिन श्रीमन्महाप्रभु ऊषाकालमें श्रीजगन्नाथदेवका 'पाकाल प्रसाद'* लेकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको देनेके लिये उनके घर आये। भट्टाचार्य उस समय 'कृष्ण, कृष्ण' कहते हुए बस शय्या-त्याग कर रहे थे। परन्तु उन्होने महाप्रभुकी कृपासे लौकिक स्मार्त्तोंके जागतिक विचारोसे मुक्त होनेके कारण उसी क्षण—प्रात कृत्यादि करनेके पूर्व ही श्रीमहाप्रभुके दिये हुए महाप्रसादको सम्मानपूर्वक ग्रहण किया।

सार्वभौमने एक दिन श्रीमहाप्रभुसे पूछा—'सर्वश्रेष्ठ साधन क्या है ?' तो श्रीमहाप्रभुने उनको एक मन्त्र श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन करनेका उपदेश दिया—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

—बृहन्नारदीय पुराण, ३८।१२६

और एक दिन सार्वभौमने श्रीमद्भागवतके 'तत्तेनुऽकम्पा'† श्लोकके शेषाशमें 'मुक्तिपदे' पाठके बदले 'भक्तिपदे' पाठ करके श्रीमहाप्रभुको सुनाया। श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"श्रीमद्भागवतके पाठके परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नही है।' मुक्तिपद'‡ शब्दसे भी श्रीकृष्णका बोध होता है।"

---

*जलमे भिगोकर रक्खे हुए भात या चावल प्रसादको पुरीमे 'पाकाल-प्रसाद' कहते हैं।

† तत्तेऽनुकम्पा सुसमीक्षमाणो भुजान एवात्मकृत विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ।

—भा० १०।१४।८

[जो तुम्हारी अनुकम्पा प्राप्त करनेकी आशासे अपने कर्मफलोको भोगते हुए मन, वाणी और शरीरके द्वारा तुममें आत्मनिवेदनात्मिका प्रणति विधान करते हुए जीवनयापन करते हैं, वे मुक्तिपदमे दायभाक् अर्थात् श्रीकृष्णपादपद्मोकी प्राप्तिके योग्य पात्र हे।]

‡ मुक्ति पदे याँ'र, सेइ 'मुक्तिपद' हय।
किवा नवम-पदार्थ 'मुक्ति'र समाश्रय।।

—चै० च० म० ६।२७२

[जिसके पदमे मुक्ति रहती हो, उसका नाम मुक्तिपद है। अथवा

भट्टाचार्यकी वैष्णवताको देखकर नीलाचल-वासीगण श्रीमन्महाप्रभुको 'साक्षात् कृष्ण' समझने लगे तथा श्रीकाशी मिश्र आदि उत्कलवासीगण श्रीमहाप्रभुके श्रीपाद-पद्मोंमें शरणापन्न हुए।
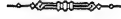
इक्कावनवाँ परिच्छेद

दाक्षिणात्यकी ओर

श्रीगौरसुन्दर १४३१ शकाब्द माघ मासकी सङ्क्रान्तिके दिन (२६ माघ) पूर्णिमा तिथिको सन्यासग्रहण-लीलाका अभिनय करके फाल्गुन मासमें 'नीलाचल' जा पहुँचे और वहाँ होलिकोत्सवके दर्शन कर चैत्र मासमें सार्वभौमका उद्धार करके १४३२ शकाब्दके वैशाख मासमें उन्होने दक्षिणकी यात्रा की। श्रीमन्महाप्रभुने जब भक्तोसे यह प्रस्ताव किया कि वे अकेले ही दक्षिण भ्रमणके लिये जाएँगे तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने विशेष अनुरोध करके 'कृष्णदास' नामक एक सरलचित्त ब्राह्मणको महाप्रभुके साथ कर दिया। सार्वभौमने चार कौपीन और चार वाह्य-वस्त्र महाप्रभुके साथ दिये तथा महाप्रभुसे 'गोदावरी'के किनारे श्रीरामानन्द रायके साथ साक्षात्कार करनेकी प्रार्थना की। श्रीनित्यानन्दप्रभु प्रभृति कुछ भक्तलोग 'आलालनाथ' तक श्रीमहाप्रभुके साथ गये थे। केवल कृष्णदास ब्राह्मणको साथ लेकर महाप्रभु अपूर्व भावावेशमें चलने लगे। महाप्रभु श्रीकृष्णविरह-विधुरा गोपीके भावमें उच्च स्वरसे गान करते हुए चले,—

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हे ।
कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! हे ।।

श्रीमद्भागवत-कथित सर्ग-विसर्ग आदि दस पदार्थोमें अन्यतम नवम पदार्थ मुक्तिके सम्यक् आश्रयस्वरूप भगवान् कृष्णचन्द्र ही मुक्तिपद है।]

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! रक्ष माम् ।
कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! पाहि माम् ।।
राम ! राघव ! राम ! राघव ! राम ! राघव ! रक्ष माम् ।
कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! पाहि माम् ।।

—चै० च० म० ७।९६

श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे श्रीहरिनाम सुनकर सभी 'हरि' नामका उच्चारण करने लगे। श्रीमहाप्रभुने शरणागत व्यक्ति मात्रको ही शक्तिसचार करके वैष्णव बनाया। वे ही वैष्णव लोग, फिर अपने गॉवोमे जाकर ग्रामवासियोको वैष्णव बनाने लगे। इस प्रकार समस्त दक्षिण देशके लोग वैष्णव हो गये। श्रीचैतन्यकी कृपा-महिमा श्रीनवद्वीपकी अपेक्षा दाक्षिणात्यमें कही अधिक रूपसे प्रकट हुई। इस प्रकार श्रीमहाप्रभु 'श्रीकूर्मस्थान'मे * आकर उपस्थित हुए और श्रीकूर्मदेवका दर्शन और स्तवन करने लगे। उस गॉवमें श्रीकूर्म नामके एक गृहस्थ ब्राह्मण रहते थे। उन्होने बहुत श्रद्धा और भक्तिके साथ महाप्रभुको भिक्षा करायी और सपरिवार प्रभुका अत्यन्त दुर्लभ श्रीचरणामृत और प्रसादस्वरूप उच्छिष्ट ग्रहण किया। श्रीगौरहरिने उस ब्राह्मणपर कृपा की तथा 'आचार्य' बनकर अर्थात् स्वय आचरण करके प्रत्येकके निकट कृष्ण-कथाका प्रचार करनेका उन्हे आदेश दिया,—

या'रे देख, ता'रे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश।।
कभु ना बाधिबे तोमाय विषय-तरग।
पुनरपि एइ ठाञि पा'बे मोर सग।।

—चै० च० म० ७।१२८-१२९

[जिसको देखो उसीको 'कृष्ण'का उपदेश करो। मेरी आज्ञासे

* कलकत्ता-वाल्टियर लाइनपर 'श्रीकाकुलम् रोड' स्टेशन आता है। इस स्टेशनसे 'श्रीकाकुलम्' शहर पूर्वकी ओर नौ मील पर है। वहाँसे 'श्रीकूर्मम' या श्रीकूर्मस्थान पूर्व-दक्षिणकी ओर ९।। मीलपर है।

गुरु होकर इस देशको तार दो। तुमको विषय-तरगे कभी बाधा नही देगी और इसी स्थानपर पुन मेरा सग प्राप्त करोगे।]

श्रीमहाप्रभु जिसके घर भिक्षा करते उन्हीको इस प्रकारका उपदेश और शिक्षा प्रदान करते थे। 'वासुदेव' नामके एक गलित-कुष्ठ रोगसे ग्रस्त ब्राह्मण, कूर्म-ब्राह्मणके घर श्रीमहाप्रभुके दर्शन करने आये और उनसे कृपा याचना की। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवासुदेवको देहरोग और भवरोगसे मुक्त करके **'आचार्य'** बनाया। श्रीवासुदेवका उद्धार करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुका 'वासुदेवामृतप्रद' नाम पडा। श्रीमहाप्रभुने क्रमश 'जियडनृसिह'-क्षेत्र* 'सिहाचल'में जाकर श्रीनृसिह भगवान्की स्तुति और वन्दना की,—
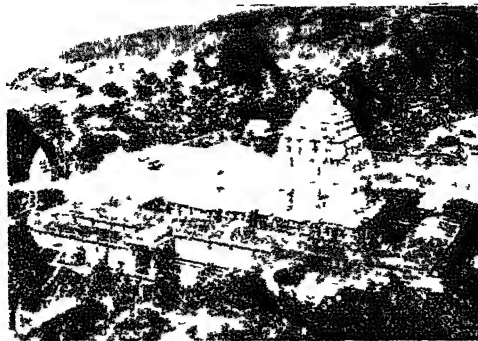
दूरसे सिहाचल पर्वत, जियड-नृसिहदेवका श्रीमदिर तथा श्रीचैतन्यपादपीठके श्रीमदिरका दृश्य

* ईस्टर्न रेलवे (पहलेके बी० एन० आर०) लाइनके अन्तिम स्टेशन वाल्टियरके पूर्ववर्ती स्टेशन 'सिहाचलम्'से प्राय चार मील दूर 'सिहाचल-पर्वत'के ऊपर श्रीनृसिह भगवान् विराजमान है। विशेष जानकारीके लिये साप्ताहिक 'गौडीय' पत्र बगाब्द १३४६, १६ अग्रहायण-सख्या (पृष्ठ सख्या २४४-२४६) देखे।

श्रीनृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह।
प्रह्लादेश, 'जय पद्मामुखपद्मभृग ।।

—चै० च० म० ८।५

[हे नृसिंह! हे नृसिंह! हे नृसिंह! आपने प्रह्लादपर कृपा की, आपके वक्षमे लक्ष्मी विराज रही है, आप लक्ष्मीकान्त है,—आपकी जय हो, जय हो, जय हो!]

इस स्थानमे रातको रहकर दूसरे दिन प्रात काल पुन प्रेमावेशमे चलते-चलते गोदावरीके किनारे पहुँचे। गोदावरीको देखकर श्रीगौरहरि के हृदयमें श्रीयमुनाकी स्मृति जाग उठी।

बावनवाँ परिच्छेद

श्रीरायरामानन्दके साथ मिलन

दाक्षिणात्यमें 'राजमहेन्द्री' नगरके 'कोटिलिगम्' तीर्थके उस पार 'गोष्पद' या 'पुष्करम्' तीर्थ अवस्थित है। लगभग सन् १५०२ ई० में उडीसाके सम्राट् गजपति श्रीप्रतापरुद्रके अधीन प्रसिद्ध शासक (Governor) श्रीरायरामानन्द गोदावरीके किनारे 'गोष्पद' तीर्थके घाटपर जुलूसके साथ स्नान करनेके लिये आ रहे थे।

इधर श्रीमहाप्रभुने गोदावरी पार करके राजमहेन्द्री होकर गोष्पद-तीर्थमें आगमन किया। बहुतसे वैदिक ब्राह्मणो और बाजे-गाजेके साथ पालकीमें बैठे एक व्यक्तिको जुलूसमें आते देखकर श्रीकृष्णचैतन्यदेवने उन्हीको 'रामानन्दराय' समझा। श्रीरामानन्दरायने भी एक अपूर्व सन्यासीको देखकर साष्टाग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीचैतन्यने रामरायको प्रेमपूर्वक आलिगन-पाशमे बाध लिया, दोनोमें प्रेमकी तरगें

बहने लगी। श्रीरामानन्दने श्रीमहाप्रभुसे पाँच-सात दिन वहाँ कृपापूर्वक रहकर श्रीहरि-कथा-कीर्तन करनेके लिये विशेष प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभु उस गाँवमें किसी एक वैदिक वैष्णव-ब्राह्मणके घर रहे और भिक्षा ग्रहण की। सध्याकालमे श्रीरामानन्द रायने अत्यन्त दीनवेशमें आकर महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया। तब महाप्रभुने श्रीरामरायसे कहा,—"जीवके प्रयोजन परम पुरुषार्थ या साध्यका जिसमे निर्णय किया गया हो, ऐसा प्रमाण-सूचक श्लोक पढिये।" तब श्रीरामानन्दरायने 'श्रीविष्णु-पुराण'का (३।८।८) एक श्लोक पढकर कहा,—"ब्राह्मण, क्षत्रिय,

राजमहेन्द्रीके गोदावरीकिनारेपर पुष्कर-तीर्थ

वैश्य और शूद्र'—ये चार वर्ण, तथा 'ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी'—ये चार आश्रमोके अपने-अपने वर्ण और आश्रमके आचार अर्थात् **स्वधर्म** पालनके द्वारा पुरुषोत्तम-विष्णुकी आराधना होती है। उनके सामने वर्णाश्रमके आचार पालन करनेके सिवा अन्य कोई साधन प्रीतिजनक नही होता। विष्णुको सन्तुष्ट करना ही 'पुरुषार्थ' अर्थात् प्रयोजन या 'साध्य' है। वर्णाश्रम-धर्मके आचरणरूप-साधनके द्वारा ही यह साध्य प्राप्त होता है।"

श्रीमन्महाप्रभ् बोले,—"स्वधर्ममें रहकर श्रीविष्णुको सन्तुष्ट करना ही 'साध्य वस्तु' है, परन्तु वर्ण और आश्रम-धर्मके आचरणरूप साधनके द्वारा साक्षात्‌रूपसे वह साध्य-वस्तु प्राप्त नही होती। 'विष्णुपुराण'के इस प्रमाणमें सर्वापेक्षा वहिरंग साधनकी * बात ही कही गयी है, क्योकि, प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवत (१।२।८)का कहना है,—'वर्णाश्रम-धर्म अत्यन्त सुन्दररूपसे अनुष्ठित होनेपर भी श्रीवासुदेव या उनके भक्तोके आश्रयके बिना यदि श्रीवासुदेवकी कथा अर्थात् उनके लीला-वर्णन आदिमें रुचि उत्पन्न नही होती, तो इस प्रकारके वर्णाश्रम-धर्मका आचरण वृथा परिश्रममात्र है।' सकाम वर्णाश्रम-धर्मकी बात तो दूर रही, केवल निवृत्तिपरक धर्म भी 'हरि-विमुख' होनेके कारण परमार्थ या 'साध्य'का प्रदान करनेमें असमर्थ है। श्रीनारदजीने श्रीव्यासजीसे कहा है,—'ब्रह्मके साथ एकाकारता-प्राप्त और उपाधिशून्य ज्ञान भी यदि श्रीभगवान्‌की भक्तिसे रहित हो, तो वह भी सम्यक्‌रूपसे मुक्तिका कारण नही हो सकता, और वर्णाश्रमादि धर्मके अन्तर्गत जो काम्य कर्म है, जिसके साधनकाल और फलकालमें क्लेश अनिवार्य है, वह दुःखरूप काम्यकर्म, यहाँ तक कि, निष्काम कर्म भी यदि श्रीभगवान्‌को अर्पित नही होता है, तो वह भगवान्‌के प्रति वहिर्मुखता-रूपी दोषसे दूषित होनेके कारण जीवकी चित्तशुद्धि नही कर सकता।' अतएव वर्णाश्रमधर्मके काम्यकर्मरूप साधनके द्वारा श्रीविष्णु-भक्तिरूप 'साध्य'की प्राप्ति नही हो सकती। यह साधन अत्यन्त वहिरंग है। वर्णाश्रमके आचार, तपस्या और अध्ययन आदि विषयक परिश्रम केवल महान् परिश्रम, प्रतिष्ठा और प्राकृत ऐश्वर्यकी प्राप्तिमें ही पर्यवसित

---

* कलौ कलुषचित्ताना वृथायु प्रभृतीनि च।
भवन्ति वर्णाश्रमिणा न तु मच्छरणार्थिनाम्॥
—भ० स०, ९८ अनुच्छेद-धृत 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण'-वाक्य

[कलिकालमें कलुषितचित्त वर्णाश्रमियोका जीवनधारण आदि वृथा है, परन्तु मेरे शरणार्थियोका जीवनधारण व्यर्थ नही है।]

होता है , परन्तु श्रीहरिके गुणानुवाद-श्रवणमे आदर-आदिके द्वारा श्रीभगवान्के श्रीचरणकमलयुगलकी अविस्मृतिरूप महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है। (भा० १२।१२।५४) वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेपर कभी श्रीविष्णु **प्रसन्न** होते हे अर्थात् 'मोक्ष'की प्राप्ति होती है , परन्तु वे **सुप्रसन्न** नही होते अर्थात् उनका 'साक्षात्कार' प्राप्त नही होता, वे 'सुखी' नही देख पडते, 'विमुक्ति'––विशेष मुक्ति––भगवदानन्द––परमानन्दका वैचित्र्य प्राप्त नही होता।" तब श्रीरामरायने श्रीगीताके (९।२७) एक श्लोकको पढकर कहा,––"क्या भोजन, क्या यज्ञ, क्या दान, क्या तप, और अन्य जो कुछ कर्म है, उन सबको कृष्णमें अर्पण करनेसे ही श्रीविष्णुभक्तिरूप 'साध्य' प्राप्त होता है।"

"श्रीविष्णुपुराणोक्त वर्णाश्रमाचार-पालनरूप कर्मको कोई-कोई फल-कामनारहित कहकर प्रतिपादन करते है पर उसमें फलके प्रति तीक्ष्ण दृष्टि और आग्रह विद्यमान है। सन्ध्या-वदनादि नित्यकर्म, अथवा पितृपुरुषोके श्राद्ध-तर्पणादि नैमित्तिक कर्मोमे जो अभिमान है, वह पूर्णतया प्राकृत है और वह चतुर्दश ब्रह्माण्डकी अस्मिता या देहके अभिनिवेशसे ही उत्पन्न है , अतएव स्वरूपत 'सकाम' है। और श्रीगीतामें जो कर्मफलको कर्मसहित श्रीभगवान्में अर्पणका उपदेश है, वह भी साध्य भक्तिका 'अन्तरग साधन' नही हो सकना , क्योकि भक्तिका अन्तरग साधन 'भक्ति' ही होगा। कर्मार्पणके द्वारा कर्मफलको न अपनानेसे कर्मका विष तो कुछ प्रशमित अवश्य होता है, पर वह 'साक्षाद्भक्ति' (स्वरूप-सिद्धा भक्ति) नही है। उसमें केवल इतना ही होता है कि, जडका अहकार अथवा देहकी आसक्ति लिये हुए ही भगवान्की ओर गरदन फेरनेकी चेष्टा होती है। अतएव यह भगवान्के प्रति 'गौण' उन्मुखता है। कर्मार्पण दो प्रकारका होता है––(१) फलत्याग और (२) भगवान्के सुखाभासकी चेष्टा। एकमात्र भक्तसगके द्वारा ही श्रीविष्णुके सुखाभासकी चेष्टा होती है। फलत्याग या कर्म-सन्यासमें उस सुखाभासकी चेष्टामात्र भी नही रहती। इसी

कारण कर्मार्पण करनेवाला अर्पणके द्वारा अभक्तके सग अभक्तिके द्वारपर भी पहुँच सकता है। शुद्ध-भक्तका सग हुए बिना उनमें 'शास्त्रीय-श्रद्धा' और 'साध्य-भक्ति' प्राप्त करना सभव नही। इसलिये कर्मार्पणको 'आरोपसिद्धा भक्ति' मात्र कहा जा सकता है। 'लौकिक-श्रद्धा'से कर्मार्पण या आरोपसिद्धा भक्तिका आरम्भ होता है, अतएव वह 'सगुणा' है। यह कर्मार्पण अथवा आरोपसिद्धा भक्ति 'सकैतवा' अर्थात् धर्मार्थादि-कामना-मूलक होनेपर तो वह 'भागवत-धर्म'का प्रथम सोपान भी नही बनती। यदि वही आरोपसिद्धा भक्ति 'अकैतवा' अर्थात् धर्मार्थकामादि वाछासे शून्य होती है, तब वह 'सगुण' भागवतधर्म-पदवाच्य हो सकती है। वस्तुत 'साध्यभक्ति' निर्गुणा है। कर्मार्पणको भक्ति और ज्ञानका द्वारस्वरूप कहा जाता है, तथापि उसमें स्वार्थपरता रहनेके कारण भक्ति और ज्ञान—दोनो मार्गोके अनुयायी ही कर्मका खडन करते हैं। सेव्य-वस्तुकी सुखदायिनी क्रिया ही 'भक्ति' है, वही साध्य है। वह भक्ति जब 'आदौ अर्पिता' अर्थात् सेव्यके सुखके लिये ही भाविता होकर अनुष्ठित होती है तभी 'स्वरूपसिद्धा' भक्ति' होती है, और यदि पहले अनुष्ठित होकर पश्चात् अर्पित होती है, तो वह कर्मार्पण अथवा स्वार्थपरतासे दूषित हो जाती है।"

श्रीमन्महाप्रभुके इस विचारको सुननेके बाद श्रीरामानन्द राय श्रीमद्भागवत और श्रीगीताका प्रमाण श्लोक पढकर बोले,—"वर्णाश्रमरूप **स्वधर्मका त्यागकर** श्रीभगवान्‌की शरण ग्रहण करना ही 'साध्यभक्ति'का उत्कृष्ट साधन है।" श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"स्वरूपत (केवल फलत नही) वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मके त्यागकी बात मुँहसे कह देनेसे ही वह कार्यत नही हो जाता। साध्यभक्ति—'ह्लादिनीका वृत्तिविशेष' है। वह ह्लादिनीकी वृत्ति ह्लादिनीके दूत जो 'महत्' (महाभागवत) हैं उनकी कृपा और उनके सगरूपी वाहनपर आरोहण करके आविर्भूत होती है। महत्‌की कृपाके बिना किसी भी साधनचेष्टाके द्वारा भक्तिकी प्राप्ति नही की जा सकती। वर्णाश्रममें या उससे वहिर्भूत समाजमें

रहनेपर भी यदि श्रीहरि-कथामें कथचित रुचि या श्रद्धा होती है, तो वही होता है 'भाग्य' , वर्णाश्रममें निष्ठा या उसमे व्यभिचार, इसमे कोई भी 'भाग्य' नही है। साधु लोग विष्णु या विष्णुभक्तके सम्पर्कसे युक्त स्थानमे और गगा आदि पुण्य नदीके तीरपर रहते है। किसी कार्यके बहाने यदि कोई विषयी पुरुष वहाँ पहुँचता है और साधुके दर्शन, पाद-स्पर्श, सम्भाषण या कुछ भेंट देनेका सौभाग्य प्राप्त करता है, तो इससे उसका सत्वगुण प्रबल हो जाता है और उसमे हरिकथामें रुचिरूप भक्तिकी प्रथम अवस्था आरम्भ हो जाती है। इससे बढकर कर्मी वर्णाश्रमीके लिये श्रेष्ठतर परमधर्म दूसरा नही है। अतएव, साधुकृपाके बिना साधारण जीवमे स्वरूपत स्वधर्मत्याग अथवा शरणागतिका उदय नही हो सकता। शरणागति, महत्‌की सेवा और श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति—'स्वरूपसिद्धा वैधी भक्ति' है। यदि कोई व्यक्ति महत्‌-सग आदिसे उत्पन्न सस्कार-विशेषरूप अनिर्वचनीय अति-भाग्यके फलसे भक्तिमें श्रद्धावान् होता है, तभी वह इस 'वैधी साधन-भक्ति'का अधिकारी हो सकता है। श्रीगीता प्रभृति शास्त्रमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—इन चार प्रकारके अधिकारियोकी बात कही गयी है। गजेन्द्र, शौनकादि मुनि, ध्रुव और सनकादि चतुष्टय क्रमश आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानीके उदाहरण है। ये आर्तादि पुरुष शुद्ध भक्तिके अधिकारी नही है , बल्कि आर्ति, ज्ञान आदि इच्छासे मुक्त भक्तकृपा-विशिष्ट व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी है। आर्त आदि व्यक्तिपर जब भगवान् या भगवद्भक्तकी कृपा होती है, तब उनके उन-उन भावोकी क्षीणता होनेपर शुद्ध-भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। भक्त और भगवान्‌की कृपासे ही गजेन्द्र आदिकी तत्तद् वासनाओका त्याग हुआ था। 'ज्ञानी-महत्'के सगाभासके फलसे साक्षात् ज्ञानके लक्षणस्वरूप निर्वेद, तथा 'भक्त-महत्' के सगाभासके फलसे भक्तिका मूल श्रद्धाका तथा उसके पूर्वके माहात्म्य-ज्ञानका उदय होता है। श्रीगीताके (१८।६६) चरम श्लोकमें जो 'सर्व-गुह्यतम परम वाक्य'के

उपदेशमें सर्वधर्म-त्यागकी बात है उसे भी ऊपरकी बात ही समझनी चाहिये, क्योकि यह त्याग स्वत स्फूर्त नही ; कारण—श्रीकृष्णके सुखकी चिन्तामें आविष्ट होकर या वर्ण और आश्रमधर्म तुच्छ है इस विचारसे भी त्याग नही हुआ। इसमें कर्तव्य न करनेपर पाप होता है, इस भयकी चिन्ता रहती है। यही देहासक्तिका प्रमाण है। गोपियोमें श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानके लिये आर्यधर्म-त्यागमे पापका भय या देहासक्ति लेशमात्र भी नही। देहासक्तिसे उत्पन्न कुछ जागतिक कर्तव्य है, उन्हें न करनेपर पाप होगा ऐसी बुद्धि मनुष्यमें रहनेके कारण ही श्रीकृष्णने कहा है,—"मैं तुमको कर्तव्य न करनेके कारण उत्पन्न सारे पापोसे मुक्त कर दूंगा, तुम कोई शोक न करो।" श्रीचैतन्यदेवने श्रीगीताके सर्वधर्मत्याग अथवा स्वधर्मत्यागकी बातको भी शोक और आकाक्षासूचक साधनके रूपमें प्रतिपादन किया।

श्रीरामानन्दरायने श्रीगीताके (१८।५४) एक और श्लोकको पढकर कहा,—"जीव ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा होकर जब कोई शोक या आकाक्षा नही करता तथा सारे प्राणियोमें समदर्शी होता है, तब श्रीभगवान्में भक्ति-लाभ करता है अर्थात् **'ज्ञानमिश्रा भक्ति'** रूप साधनके द्वारा 'साध्यभक्ति' प्राप्न कर सकता है।"

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"ज्ञानमिश्रा भक्ति भी स्वरूपसिद्धा निर्गुणा 'साध्यभक्ति' नही है। 'मिश्रा' कहनेसे यदि आवरण होता है, तब तो वह भक्ति ही नही हुई, उसने भक्तिको आवृत कर डाला। यदि 'मिश्रा' कहनेसे ज्ञानका 'आकार'मात्र ही लक्षित होता हो, तो इस प्रकारका आकार रहनेपर भी भक्तिका ही प्राधान्य अर्थात् प्रभुत्व रहा, परन्तु यह भी 'स्वरूपसिद्धा भक्ति' नही हुई, 'सगसिद्धा भक्ति' हो गयी। सगसिद्धा भक्ति यदि 'सकामा' (कामना-युक्ता) हो, तो वह आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानीका अधिकारोचित व्यापार हुआ। शास्त्रीय श्रद्धा या शरणागतिसे 'संगसिद्धा भक्ति'का आरम्भ होनेपर भी, वह स्वरूपसिद्धा अकिंचना भक्ति न होनेके कारण साध्य प्रेमभक्तिका

'अन्तरग-साधन' नही हो सकती। शोकादि विघ्नोके रहते श्रीहरिभजनमें प्रवृत्ति नही होती, इसके लिये ही ज्ञान अपेक्षित होता है , परन्तु ज्ञानकी अपेक्षा रहनेपर वह फिर भक्तिमें विघ्नकारक होता है ।* क्योकि, भक्ति निरपेक्षा है, वह ज्ञानकी अपेक्षासे युक्त नही, बल्कि ज्ञान और वैराग्य बहुधा भक्तिके प्रतिकूल ही होते है, यही श्रीमद्भागवत का सिद्धान्त है ।"

श्रीगौरहरिका इस प्रकारका विचार सुननेके बाद श्रीरामानन्द रायने श्रीमद्भागवतका (१०।१४।३) एक श्लोक पढकर **'ज्ञानशून्या भक्ति'**को ही 'साध्यसार' बतलाया। जो लोग ज्ञानके लिये तनिक भी प्रयास न करके साधुओके निवासपर अवस्थित होकर उनके श्रीमुखसे स्वभावत नित्य प्रकटित श्रीभगवान्‌की कथाका तन-मन-वचनसे अवलबन करके जीवन धारण करते हे, वे यदि और कुछ भी न करे, तो उनके द्वारा ही अजित भगवान् वशमे हो जाते हैं ।"

श्रीरामरायके मुँहसे इस 'ज्ञानशून्या अकिचना स्वरूपसिद्धा भक्ति'की बात सुननेके बाद श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"हाँ, यह सही है, इसे मै स्वीकार करता हूँ। यही निष्कामा 'निर्गुणा भक्ति' कहलाती है, तथापि यह 'साधनभक्ति' है , इसके आगे 'साध्यभक्ति'की बात कहिये। साध्य-भक्ति श्रीकृष्णप्रीति, विधिभक्तिरूप साधनके द्वारा भी प्राप्त नही होती।" तब श्रीरामरायने स्वकृत दो श्लोकोको पढकर यह बतलाया कि, "श्रीकृष्णके पाद-पद्मोमे स्वाभाविकी लोभमयी **'प्रेमभक्ति'** सब साध्योका सार है ।" और भी कहा,—"जिस समय तक पेटमें तीव्र भूख-प्यास है, उसी समय तक भोजन और जलीय पदार्थ सुस्वादु लगते है , अग्नि-मन्द होनेपर सर्वोत्कृष्ट भोज्य-पदार्थ भी रुचिकर नही होता। उसी प्रकार आर्तबन्धु श्रीकृष्णकी नाना प्रकारके उपचारोसे

* 'अत्र शोकादिविघ्नसत्त्वे भजनाप्रवृत्तौ ज्ञानापेक्षा, तदभावे तु सा पुनर्भजनविघ्न एवेति वाह्यम् ।' (श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती ठाकुर)

परिचर्या प्रीतिपूर्वक करनेपर ही वह श्रीकृष्ण और भक्तोके लिये सुखकर हो सकती है। कृष्ण-सेवारसमें 'आवेशमयी मति' जहाँ कही भी प्राप्त क्यो न हो, एकमात्र 'लोभ'-रूप मूल्यके द्वारा ही उसे क्रय करना चाहिये, कोटि-कोटि जन्मोकी सुकृतिसे उत्पन्न वैधी भक्तिके द्वारा भी यह आवेशमयी 'मति' प्राप्त नही हो सकती।

जानेमे हो या अनजानेमे, प्रीतिके अद्वितीय पात्र जो 'श्रीकृष्ण' हैं, नित्यपरिकर अनुरागी भक्तगण दास्य-सख्यादिभावसे उनका (श्रीकृष्णका) जो सुख-विधान करते हैं, श्रीकृष्ण भी उसमें जिस प्रकार सुखी होते हे तथा भक्तगण श्रीकृष्णको दास्य-सख्यादिभावसे सेवा करके जिस प्रकार उन्हे सुखी देखते हैं, उसी साध्यभक्तिकी परिपाटीको सुनकर जो उनको (अनुरागी भक्तोकी) अनुगति प्राप्त करनेके लिये लोभयुक्त होकर विद्युद्गतिसे दौड पडते हैं, उनकी (अनुरागी भक्तोके अनुगतोकी) भक्ति ही 'रागानुगा साधन-भक्ति' है। और नित्यसिद्ध व्रजपरिकरोकी भक्ति 'साध्यभक्ति' है। वैधी भक्तिमें शास्त्र-शासनका प्रयोजन होता है, परन्तु रागानुगा भक्ति रुचि, प्रवृत्ति या 'तृष्णा'से ही उदित होती है।"

श्रीमहाप्रभु बोले,—"प्रेमभक्ति सर्वसाध्यसार है, इसमें सन्देह नही, परन्तु ममत्ववर्जित 'शान्तप्रेम'से भी श्रेष्ठ जो 'साध्यभक्ति' है, उसकी बात कहिये।" तब श्रीरामरायने ममतायुक्त **'दास्य-प्रेम'**की बात कही। श्रीमन्महाप्रभुने उसकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ साध्यकी बात पूछी, तो श्रीरामरायने **'सख्य-प्रेम'**की बात कही। महाप्रभु बोले,— "गौरवमय दास्यप्रेमसे विश्वासभावमय सख्यप्रेम उत्कृष्ट है, अब उससे भी श्रेष्ठ साध्यकी बात कहिये।" तब रामरायने पाल्य या अनुग्राह्य-भावमय * **'वात्सल्य-प्रेम'**की बात कही। श्रीमन्महाप्रभुने उसकी अपेक्षा

* "भक्त—पालक, श्रीकृष्ण—पाल्य, भक्त—अनुग्राहक, भगवान्—अनुग्राह्य।"—इस प्रकारके भावसे पूर्ण।

भी उत्कृष्ट साध्यके विषयमें पूछा, तब श्रीरामरायने "स्वसुख-तात्पर्यसे वर्जित सर्वाग द्वारा सर्वतोभावेन नि सकोच श्रीकृष्णका सुखानुसन्धानपरक **'कान्त-भाव'** ही प्रेमकी पराकाष्ठा है।"—यह बताया। तात्पर्य यह है कि कान्तभावकी तुलनामे साधारण प्रेममे ममताका अभाव, दास्यरसमें विश्रम्भ या विश्वासका अभाव, सख्यरसमें स्नेहाधिक्यका अभाव तथा वात्सल्यरसमे नि सकोचभावका अभाव पाया जाता है। 'साध्यप्रेम'की परिपूर्णता तो एकमात्र 'कान्तभाव'में ही है। ये सारे रस ही 'अप्राकृत' हैं। इसलिये इनमें से किसीमें भी जागतिक अपूर्णता या अभाव नही है, इन रसोके भक्तोके लिये सभी परिपूर्ण और सर्वोत्तम है, तथापि निरपेक्ष होकर विचार करनेसे अप्राकृत राज्यमें इस प्रकारकी चमत्कारिताका तारतम्य दिखायी देता है। कान्तप्रेममें—शान्तकी कृष्णनिष्ठा, दास्यकी कृष्णनिष्ठा और ममतामयी सेवा, सख्यकी कृष्णनिष्ठा, सेवा और असकोच, वात्सल्यकी कृष्णनिष्ठा, सेवा, असकोच और स्नेहाधिक्य आदि अधिक रूपमे है, इनके अतिरिक्त कान्तप्रेममे निज सर्वाग द्वारा सेवारूप गुण अधिक देखा जाता है। गोपियोका श्रीकृष्णप्रेम ही 'साध्यकी अवधि' है। गोपियोकी मधुररसकी सेवामें श्रीकृष्ण अपनेको 'ऋणी' समझते है। इसके बाद भी श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरामरायसे और भी श्रेष्ठ साध्यकी बात पूछी तब उन्होने 'श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम' ही 'साध्य-शिरोमणि' अर्थात् परम प्रयोजनमें भी 'चरम' है, यह निर्देश किया।

इस जगत्में जो रस हमको जितना ही हेय अनुभव होता है, गोलोकमें वह रस उतना ही 'उपादेय' है, क्योकि यह जगत् गोलोकका विकृत प्रतिबिम्ब है—बिल्कुल ही विपरीत है। जिस प्रकार जब दर्पणमें हम अपनी मूर्ति देखते है तब अपने दाहिने हाथको बायाँ हाथ और बायें हाथको दाहिना हाथ इस प्रकार विपरीत ही देखा करते है। इस अनित्य जगत्के दर्पणमें प्रतिफलित होनेसे गोलोकके रसोकी इस प्रकार विकृत छाया दीख पडती है।

श्रीरामानन्दरायने क्रमश श्रीकृष्णके स्वरूप, श्रीराधाके स्वरूप, रसतत्वके स्वरूप और प्रेमतत्वका वर्णन किया। श्रीमन्महाप्रभुके जिज्ञासाके अनुसार श्रीरामानन्दरायने विप्रलम्भ-रसके 'प्रेमविलास-विवर्तरूप'* 'अधिरूढ-महाभाव'मय निजकृत एक गीत सुनाया,—

पहिलेहि राग नयनभगे भेल।
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल॥

—चै० च० महाकाव्य १३।४६, चै० म० म० ८।१९३

[पहले ही नेत्र-भगी देखकर पूर्वराग जन्मा। वह दिन-प्रति-दिन बढता गया एव अनुरागकी शेष सीमा अनन्त विस्तृत हो गई, अर्थात् उसका पार नही मिला।]

अन्तमें श्रीरामरायने "उस श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेमसेवाकी प्राप्तिका उपाय—एकमात्र ब्रजसखियोका आनुगत्य", बतलाया। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर प्रेम—इनमें प्रत्येक प्रेम-सेवामें ही उस प्रेमके मूल सेवकोका अनुगत होना पडेगा। जैसे, किन्हीके शान्तरस स्वभावसिद्ध है, तो उनको व्रजकी गायें, वेत्र, विषाण, वेणु, यमुना

---

*जो लोग महत्की कृपासे इस जगत्के चिन्तास्रोतके अतीत राज्यमें पहुँच गये है, तथा जिनके हृदय निरन्तर निष्कपट कृष्ण-सेवाकी लालसा से विभावित है, वे ही लोग श्रीराधाके प्रेममें जो परम विचित्रता है, उसे उपलब्ध कर सकते है। श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु' तथा 'श्रीउज्ज्वल-नीलमणि' प्रभृति ग्रन्थोमें इन सब सुदुर्लभ तत्वोको परममुक्त व्यक्तियोके अनुभवके लिये व्यक्त किया है। इन सब बातोको सब लोग अर्थात् महत्कृपासे वचित पडित, साहित्यिक, धार्मिक-सम्प्रदायादि कोई नही समझ सकेंगे, अत इन सब शब्दोकी व्याख्या यहाँ निष्प्रयोजन है। महत्की कृपासे भजनके उन्नततम सोपान पर अधिष्ठित हुए बिना इन सारी बातोका विकृत तात्पर्य जीवको अपराधी कर डालता है। इसीलिये बहुतेरे मनीषी और साहित्यिक इस 'प्रेमविलास-विवर्त'की व्याख्या समझनेमें समर्थ नही हो सके। भगवद्भजन और साधारण साहित्य-सेवा या साधारण धर्मानुष्ठान—बिल्कुल ही पृथक् व्यापार है।

आदि शान्तरसके मूल सेवकोंके अनुगत होकर श्रीकृष्णकी सेवा करनी होगी दास्य रसके रसिकोंको रक्तक, पत्रक और चित्रकके अनुगत होकर, सख्यरसके रसिकोंको सुदाम, श्रीदाम, स्तोककृष्णके अनुगत होकर, वात्सल्यरसके रसिकोंको श्रीनन्द-यशोदाके अनुगत होकर, तथा कान्तरसके रसिकोंको ब्रजगोपियोंका अनुगत होकर श्रीकृष्णकी सेवा करनी होगी।

जीव अपनेको 'भगवान्' कल्पना कर बैठे, तो जिस प्रकार भयानक अपराध होता है, उसी प्रकार अपनेको भगवान्‌का 'मूल सेवक'—जैसे, श्रीमती, श्रीनन्द, श्रीयशोदा आदि रूपमें कल्पना कर लेनेपर उससे भी अधिक अपराध होता है। इसीको 'अहग्रहोपासना' कहते हैं। वास्तविक वैष्णव-धर्ममें अथवा श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षामें किसी प्रकारकी कल्पना या आरोपकी बात नहीं है। परममुक्त सुनिर्मल चेतनकी वृत्तिमें जिसका जो स्वभाव या सिद्धरस है, वही महत्‌की कृपा-सगके फलस्वरूप स्वय प्रकाशित होता है।

श्रीमन्महाप्रभुने अपनी ही बात श्रीरामरायके मुखसे प्रकट करायी। उन्होंने कई प्रश्नोंके बहाने और भी अनेकों अमूल्य उपदेशोंको जगत्‌में प्रकट किया है—नीचे उनका उल्लेख किया जाता है। ये कुछ बातें श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाके सार हैं।

प्रभु कहे,—"कोन् विद्या विद्या-मध्ये सार?"
राय कहे,—"कृष्णभक्ति बिना विद्या नाहि आर॥"

"कीर्तिगण-मध्ये जीवेर कोन् बड कीर्ति?"
"कृष्णभक्त बलिया याँहार हय ख्याति॥"

"दुःख-मध्ये कोन् दुःख हय गुरुतर?"
"कृष्णभक्त-विरह बिना दुःख नाहि देखि पर॥"

"मुक्तमध्ये कोन् जीव मुक्त करि' मानि?"
"कृष्णप्रेम याँ'र, सेइ मुक्त-शिरोमणि॥"

"श्रेयोमध्ये कोन् श्रेय जीवेर हय सार ?"
"कृष्णभक्त-संग बिना श्रेय· नाहि आर ।।"
"मुक्ति-भुक्ति वाछे येइ, कॉहा दुँहार गति ?"
"स्थावरदेह, देवदेह यैछे अवस्थिति ।।"
—चै० च० म० ८ म० प०

[प्रभुने कहा,—"विद्याओमे कौन विद्या सार है ?"
रायने कहा—"कृष्णभक्तिके अतिरिक्त और विद्या ही नही है ।"
"कीर्तियोमे जीवकी बडी कीर्ति कौन है ?"
"जिनकी 'कृष्णभक्त'के नाममे ख्याति होती है ।"
"दुखोमें गुरुतर दु ख कौन है ?"
"कृष्णभक्तके विरह-दु खके अतिरिक्त और दूसरा दु ख देखनेमें नही आता ।"
"मुक्तोमे किस जीवको मुक्त माने ?"
"जिनके कृष्णप्रेम है वही मुक्त-शिरोमणि है ।"
"श्रेयोमें कौन श्रेय जीवनके लिये सार है ?"
"कृष्णभक्तके सगके अतिरिक्त और श्रेय नही है ।"
"जो मुक्ति भुक्ति चाहते हैं, उन दोनोकी कहाँ गति होती है ?"
"स्थावर देह और देवदेहकी भॉति स्थिति होती है ।"]

तिरपनवाँ परिच्छेद्

दाक्षिणात्यके विभिन्न तीर्थोंमें *

कुछ दिन प्रति रात्रि नाना प्रकारसे श्रीकृष्ण-कथा-सम्बन्धी वार्तालापके बाद श्रीगौरसुन्दरने श्रीरामानन्द रायको अपना श्याम और गौर रूप (रसराज-महाभाव-रूप) दिखलाया। श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्द रायको अपना राज-काज छोडकर श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जानेकी आज्ञा दी और स्वय दक्षिणकी ओर यात्रा की।

श्रीमन्महाप्रभु 'विद्यानगर'' से क्रमश 'गौतमी गगा', 'मल्लिकार्जुन', 'अहोबल-नृसिह', 'सिद्धवट', 'स्कन्दक्षेत्र', 'त्रिमठ', 'वृद्धकाशी'', 'बौद्ध-स्थान', 'तिरुपति', 'त्रिमल्ल', 'पाना-नृसिह', 'शिवकाची', 'विष्णु काची', 'त्रिकालहस्ती',† 'वृद्धकोल', 'शियाली-भैरवी',‡ 'कावेरी', 'कुम्भकर्णकपाल' होते हुए 'श्रीरगक्षेत्र'में पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे दाक्षिणात्यवासी कर्मी, ज्ञानी, रामोपासक, 'तत्ववादी', लक्ष्मीनारायणके उपासक 'रामानुजीय' वैष्णवोकी भी कृष्ण-भजनमे रति हो गयी। बौद्धस्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने बौद्धाचार्य पडितके समस्त कुतर्कोका खडन किया। इससे बौद्धाचार्यने षड्यन्त्र करके श्रीमन्महाप्रभुको महाप्रसादके नामसे मत्स्य-मास मिला हुआ अन्न प्रदान

---

*ग्रन्थकार-रचित 'श्रीगौर-पदाकित दक्षिणापथ-तीर्थ' ग्रन्थमें विस्तृत सचित्र विवरण लिपिबद्ध है।

†दक्षिण भारतके रेलपथमें गुडूर-काटपाडी शाखा लाइनमें 'कालहस्ती' स्टेशनसे लगभग दो मील दूरपर सुवर्णमुखरी नदीके किनारे यह शिवक्षेत्र विराजमान है। इसका वर्त्तमान नाम है—श्रीकालहस्ती।

‡मद्रास-भिल्लुपुरम्-मायाभरम्-मदुरा लाइन पर मद्राससे १६२ मील दक्षिण 'शियाली' रेलवे स्टेशनसे लगभग एक मील दूरपर प्रसिद्ध आकाश-भैरव एव श्रीकालीका मन्दिर है। इसलिए इस स्थान पर प्रचलित भाषामें शियाली, श्रीकाली या शिरकाली तथा भैरवक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध है।
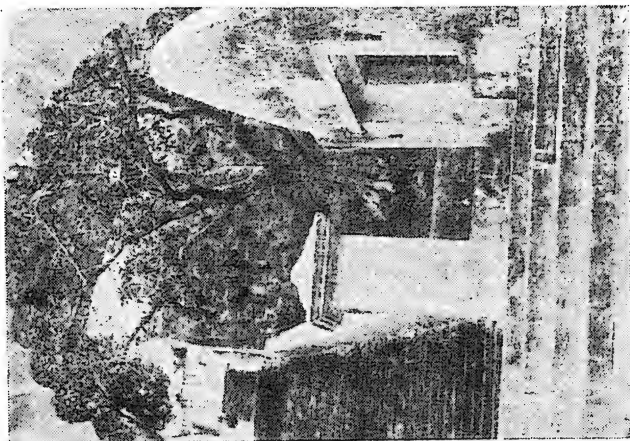
मंगलगिरिमें श्रीचैतन्यपादपीठ
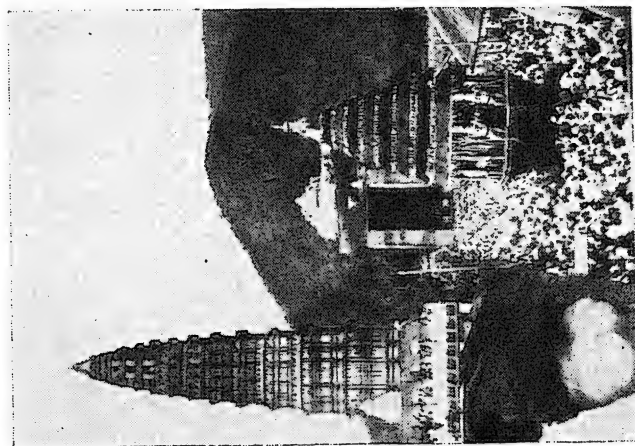
मंगलगिरिके पर्वतकी गोदमें 'श्रीपानानृसिंह' मंदिर

करनेके लिये आनेपर रास्तामें अचानक एक बड़ा पक्षी आया और उस अस्पृश्य खाद्यपूर्ण थालीको ले उड़ा। वह थाल बौद्धाचार्यके ऊपर गिरा और उनका मस्तक फट गया, वे मूर्छित हो गए। बौद्ध लोग अपने गुरुकी इस दशाको देखकर महाप्रभुके शरणापन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने महाप्रभुके आदेशसे श्रीकृष्णसंकीर्तन करके गुरुके साथ वैष्णवताको प्राप्त किया। बौद्धाचार्यने श्रीमहाप्रभुको कृष्ण समझकर स्तुति की। श्रीमन् महाप्रभुने शैवोंको भी भागवतधर्ममें दीक्षित किया।

श्रीमन्महाप्रभु 'कावेरी'के किनारे 'श्रीरंगक्षेत्र'में पहुँचे और वहाँ
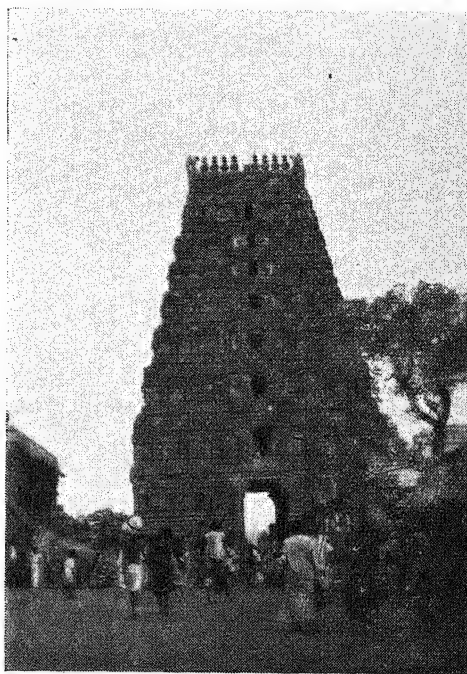
श्रीकालहस्ती या त्रिकालहस्तीमें शिवमंदिर
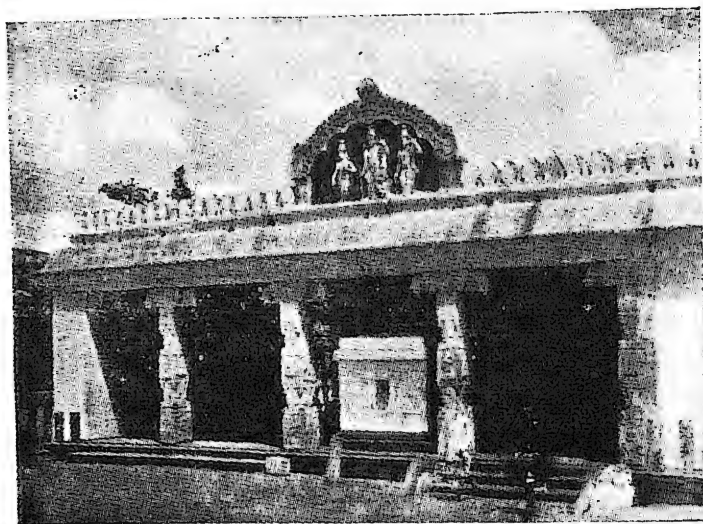
कोदण्ड रामस्वामीका श्रीमंदिर, तिरुपति (त्रिपदी)
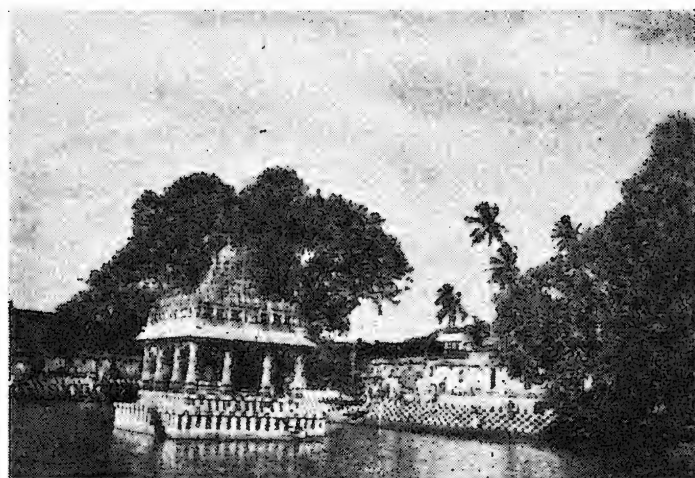
तिरुमलय पर्वतके ऊपर सुप्राचीन स्वामी (श्रीवेंकटेश्वर) तालाव

किसी एक आन्ध्रदेशीय श्रीरामानुजीय वैष्णव श्रीव्येंकटभट्टके घरमें चार मास तक रहकर श्रीलक्ष्मीनारायण-उपासक श्रीव्येंकटभट्टको सपरिवार 'श्रीकृष्णभक्त' बनाया ।

'श्रीरंगम्' से 'ऋषभ-पर्वत' पहुँचनेपर श्रीमन्महाप्रभु का श्रीपरमानन्द पुरीपादसे साक्षात्कार हुआ। वहाँसे श्रीमन्महाप्रभु 'सेतुबन्ध'का लक्ष्य करके चले। 'दक्षिण मथुरा' (मदुरा)में एक रामभक्त ब्राह्मण जगन्माता श्रीसीतादेवीको रावणके द्वारा हरण कर लिए जानेके कारण, चिंतित हो, बहुत ही दुःख पूर्वक दिन काट रहे थे। महाप्रभुने उस ब्राह्मणसे कहा,—"अप्राकृत वैकुण्ठेश्वरी श्रीसीता-देवीको रावणका स्पर्श करना तो दूर रहा, वह आँखसे उन्हें देख भी नहीं पाया था। हाँ, 'श्रीरामायण'में जो सीताहरणकी बात लिखी
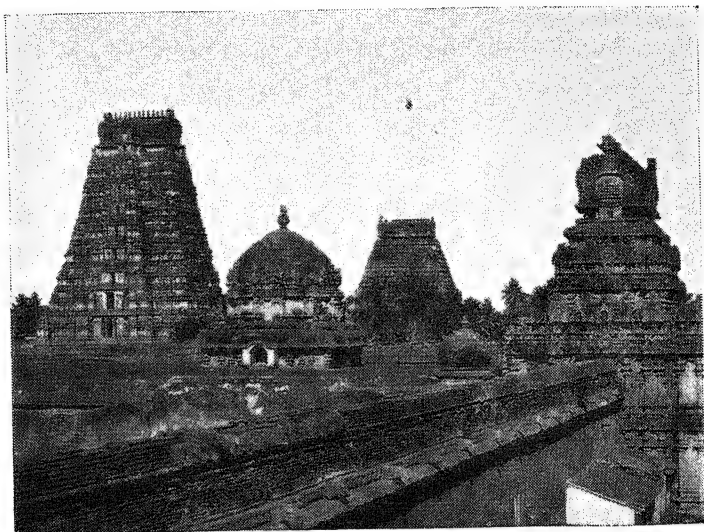
श्रीरंगक्षेत्रका श्रीमंदिर और गोपुरम्
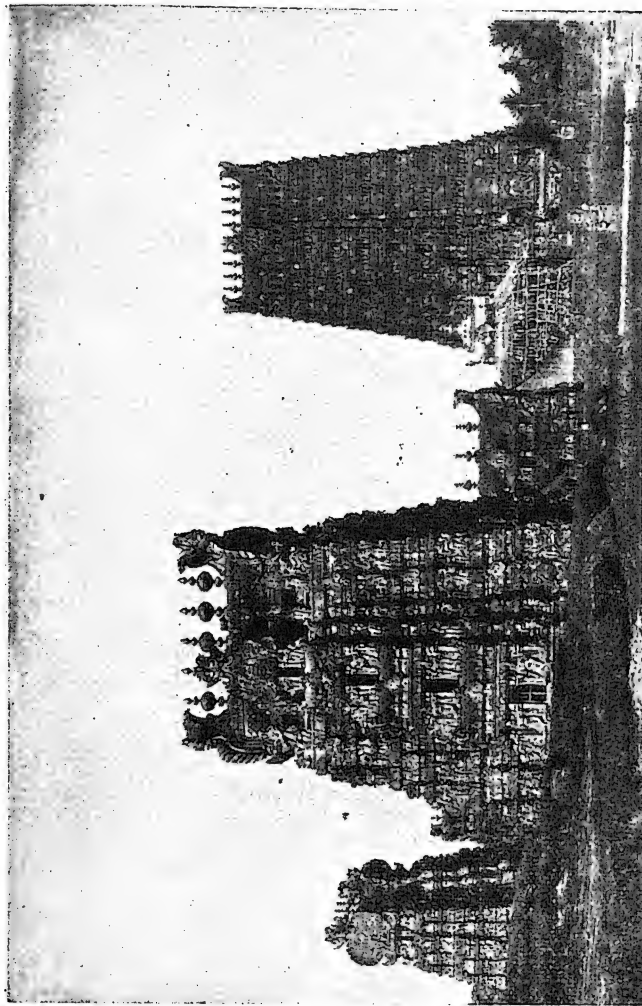
दक्षिण मथुरा (मदुरा)

है, वह मायाकी सीताके हरणकी कथा मात्र है। रावणने तो श्रीसीता की छायाको 'सच्ची सीता' समझ लिया था।" श्रीमहाप्रभुने कुछ दिनोंके बाद अपने इस सिद्धान्तके प्रमाण-स्वरूप 'कूर्म-पुराण'का एक श्लोक लाकर उस रामभक्त ब्राह्मणको शान्त किया था।
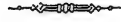
चौवनवाँ परिच्छेद्

श्रीचैतन्यदेव और भट्टथारि

श्रीमन्महाप्रभु पाण्ड्य-देशमें 'ताम्रपर्णी' नदीके तीरपर, 'श्रीनव-तिरुपति' 'नौत्रिपदी', 'चियडतला'-तीर्थमें श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'तिल-काची'में श्रीशिव, 'गजेन्द्रमोक्षण'में श्रीविष्णु, 'पानागडी' तीर्थमें श्री सीतापति, 'चाम्तापुर'में श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'श्रीवैकुण्ठ'में श्रीविष्णु, 'कुमारिका'में श्रीअगस्त्य, तथा 'अम्लीतला'में श्रीरामचन्द्रके दर्शन करके मालावार प्रदेशमें पहुँचे। वहाँ 'भट्टथारि' नामके एक वर्गके लोग रहते थे। ये लोग नेम्बुद्री ब्राह्मणोके पुरोहित थे, तथा मारण, उचाटन, वशीकरण आदि तान्त्रिक क्रियाओंमें पारदर्शिताके लिये प्रसिद्ध थे। वे अनेकों स्त्रियोंको वशीभूतकर अपने पास रखते थे, तथा स्त्रियोंके प्रलोभनके द्वारा दूसरे लोगोंको भुलाकर अपने दलकी वृद्धि करते थे।

श्रीमन्महाप्रभुके साथ 'कृष्णदास' नामके जो सरल ब्राह्मण प्रभुके दण्ड-कमण्डलु आदिको वहन करनेके लिये गये थे, वे इस प्रकार भट्ट-थारि स्त्रियोंके प्रलोभनमें फँसकर बुद्धिभ्रष्ट हो गये। जब महाप्रभुने भट्टथारिके घर जाकर कृष्णदास विप्रको माँगा तो वे महाप्रभुको अस्त्र-

शस्त्र लेकर मारने को तैयार हो गये; परन्तु उनके चलाये हुए सारे अस्त्र लौटकर उन्हीं लोगोंके शरीरपर जा पड़े। इससे भट्टथारि लोग चारों ओर भाग गये। श्रीमहाप्रभु तब कृष्णदासको केश पकड़ कर बाहर निकाल लाये।

जीव अणु-चेतन है, अतएव उसे अणु-स्वाधीनता है। जब यह जीव उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करता है, तभी वह श्रीभगवान्‌की भक्तिके मार्गमें विचरण करता है; और जब स्वाधीनताका असद्व्यवहार करता है तभी नाना प्रकारकी अभक्तिके मार्गपर तथा असत्पथपर दौड़ लगाता है। साक्षात्‌रूपमें स्वयं भगवान्‌की सेवाका अभिनय करके

नौ त्रिपदीके अलवर तिरुनगरीमें प्रसिद्ध इमलीका वृक्ष;
इस वृक्षके कोटर में नम्मा अलवर प्रकटित हुए :

भी, उनके साथ-साथ रहकर (?) भी स्वतन्त्रताके अपव्यवहारके फल-स्वरूप जीवका किस प्रकार पतन हो सकता है, इसका दृष्टान्त श्रीमन् महाप्रभुने अपने सेवक कृष्णदासकी इस घटनाके द्वारा प्रदर्शित किया है।
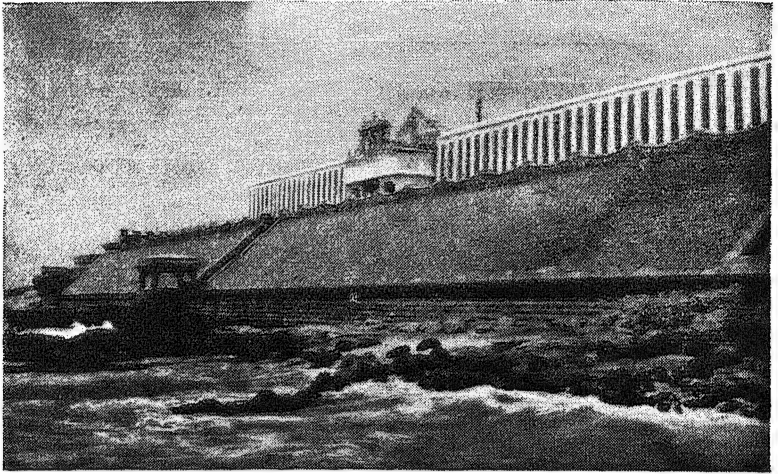
कन्याकुमारी के मंदिर के पूर्वद्वार, भारतमहासागर, अरब सागर तथा बंगनागर इन तीनोंका संगम और कन्या तीर्थघाट

पचपनवाँ परिच्छेद

'ब्रह्मसंहिताध्याय'-पुस्तक

श्रीमन्महाप्रभुने भट्टथारिके घरसे कृष्णदास ब्राह्मणका उद्धार करके उसी दिन त्रिवाकुर राज्यके अन्तर्गत पुण्यवती 'पयस्विनी' नदीके किनारे आकर वहाँ स्नान किया और 'श्रीआदिकेशव' मन्दिरमें* उपस्थित होकर श्रीकेशवजीके दर्शन किये। श्रीकेशवदेवके सामने बहुत दण्डवत् प्रणाम, स्तुति, नृत्य, गीत करके महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीगौरसुन्दरके अपूर्व प्रेमको देखकर स्थानीय सभी लोग परम चकित हो उठे। इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभुने कतिपय शुद्ध भक्तोके साथ **'ब्रह्मसंहिता'**-ग्रन्थके पचमाध्यायका आविष्कार किया। इस ग्रन्थके प्राप्त होनेपर महाप्रभुके अगमें आठो सात्त्विक विकार प्रकट हो उठे, क्योकि इस पुस्तकमें थोडे ही अक्षरोमें सारे वैष्णव-सिद्धान्त लिपि-बद्ध है। अधिक क्या कहा जाय, यह ग्रन्थ समस्त वैष्णव-सिद्धान्तके शास्त्रोका सार-स्वरूप है।

श्रीमन्महाप्रभुने बहुत यत्न करके लिपिकारके द्वारा उस ग्रन्थकी नकल करवा ली। यह ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु और वैष्णवजगत्का परम प्रिय और प्रामाणिक ग्रन्थ है, ऐसा समझकर श्रीगौडीय-वैष्णव आचार्यवर श्रीजीवगोस्वामिपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थकी टीका और वृत्ति रचना की है। कटक रेवेन्सा कालेजके भूतपूर्व पर-लोकगत अध्यापकवर श्रीनिशिकान्त सान्याल, एम०ए० भक्तिसुधाकर महाशयने सर्वप्रथम इस ग्रन्थका अग्रेजीमें अनुवाद किया और श्रीगौडीय मठके द्वारा वह प्रकाशित हुआ।

---

* त्रिवेन्द्रम् से कन्याकुमारी जानेके रास्तेपर करीब बीचमें तिरुवत्ति २४।। मील तथा वहाँसे दूसरी शाखा लाइनपर तिरुवट्टर चार मील है, अर्थात् त्रिवेन्द्रम् नगरसे पूर्व-दक्षिण दिशामें लगभग २८।। मीलकी दूरी पर अवस्थित तिरुवट्टरमें ही श्रीआदिकेशवदेवका मदिर है।

इस ग्रन्थमें श्रीकृष्णके सर्वकारण-कारणत्व, श्रीकृष्णके धाम, माया, सृष्टितत्व, श्रीकृष्णके विभिन्न अवतारोंके तत्व, निर्विशेष ब्रह्मतत्व, देवी, शिव और हरिधामके स्वरूप, सूर्य, शक्ति, गणेश, रुद्र और विष्णुतत्वका तारतम्य, प्रेमभक्ति आदि विषयोंके सिद्धान्त भली भाँति वर्णित हैं ।

उसके बाद श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीअनन्तपद्मनाभ'के मन्दिरमें पहुँचे और वहाँ दो दिन रहनेके बाद श्रीजनार्दनदेवके* दर्शन करने गये। पयस्विनीके तीरपर जाकर 'शंकर-नारायण' और 'शृंगेरीमठ'के तत्का-लीन शंकराचार्य (श्रीरामचन्द्र भारती ?) के साथ साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् 'मत्स्यतीर्थ' दर्शन करके 'तुंगभद्रा'में आकर स्नान किया।
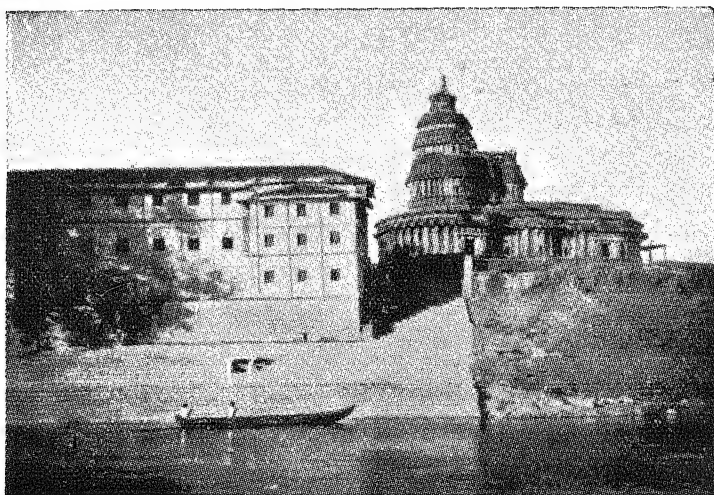
तुंगभद्रा नदीके किनारे शृंगेरी मठ तथा विद्याशंकरका समाधि-मंदिर

* त्रिवेन्द्रम् जानेके रास्तेमें 'वर्कलां' स्टेशनसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरी पर श्रीजनार्दनदेवका मंदिर है।

छप्पनवाँ परिच्छेद
'उड्‌पी'में श्रीकृष्णचैतन्य

दाक्षिणात्यमें 'सह्य' पर्वतके पश्चिममें कनाडा जिला है। दक्षिण-कनाडाका प्रधान नगर है—'मंगलोर'। मंगलोरसे ३७ मील उत्तर 'उडुपी'* है। इस स्थानका प्राचीन संस्कृत नाम 'रजतपीठपुरम्' है। उडुपी क्षेत्रसे सात मील पूर्व-दक्षिणकोणमें 'पाप-नाशिनी' नदीके तटपर 'विमानगिरि' है। उससे एक मील पूर्वकी ओर 'श्रीपरशुराम' के द्वारा स्थापित 'धनुस्तीर्थ' है। उसके समीपके प्रदेशमें 'पाजका-क्षेत्र' अवस्थित है। इसी पाजकाक्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्य आविर्भूत हुए थे। आजकल यह गाँव जनशून्य है। परवर्ती समयका एक पत्थरका बना घर ही यहाँ श्रीमन्मध्वाचार्यके आविर्भाव-स्थानका निर्देश करता है।

उडुपी क्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्यके द्वारा सेवित 'श्रीनर्तक-गोपाल' की श्रीमूर्ति और उनके द्वारा प्रतिष्ठित 'अष्ट मठ' शोभा पा रहे हैं। श्रीमन्मध्वाचार्यने किसी एक व्यापारीकी नौकामें रक्खे हुए एक बडे गोपी-चन्दनके खडके भीतरसे इस श्रीनर्तक-गोपालकी मूर्त्तिका आविष्कार किया था। श्रीमन्महाप्रभुने जब उडुपीमें पदार्पण किया था तब इन श्रीनर्तक-गोपालके सामने नृत्य और कीर्तन करते हुए वे प्रेमावेशमें मग्न हो गये थे।

श्रीमन्मध्वाचार्यका अनुसरण करनेवाला सम्प्रदाय मायावादका विरोधी होनेके कारण 'तत्ववादी'के नामसे पुकारा जाता है। श्रीश्री-जीवगोस्वामिपादने श्रीमन्मध्वाचार्यका 'तत्ववाद-गुरु'के नामसे उल्लेख किया है। 'तत्व' कहनेसे सविशेष श्रीपुरुषोत्तमका बोध होता है।

---

* दक्षिण-भारतीय प्रशस्त रेल-पथके अन्तिम स्टेशन मंगलोरसे समुद्रतीरके मोटर बसके रास्ते उडुपी ३७ मील है तथा पार्वत्य मोटर-बसके रास्ते मंगलोरसे कारकल नामके स्थानसे उडुपी ५७ मील है, इस रास्तेपर मोटरबस बदलना नही पडता।

मायावादिगण 'केवलाद्वैतवाद' को मानते हैं और तत्ववादिगण 'शुद्ध-द्वैतवाद'को ।

श्रीमन्महाप्रभुके समकालीन तत्ववादी लोगोंने महाप्रभुको वाह्य-रूपमें 'मायावादी संन्यासी' समझकर पहले-पहल उनको असंभाष्य समझा; परन्तु, पश्चात् महाप्रभुके अद्भुत सात्विक विकारोंको देखकर
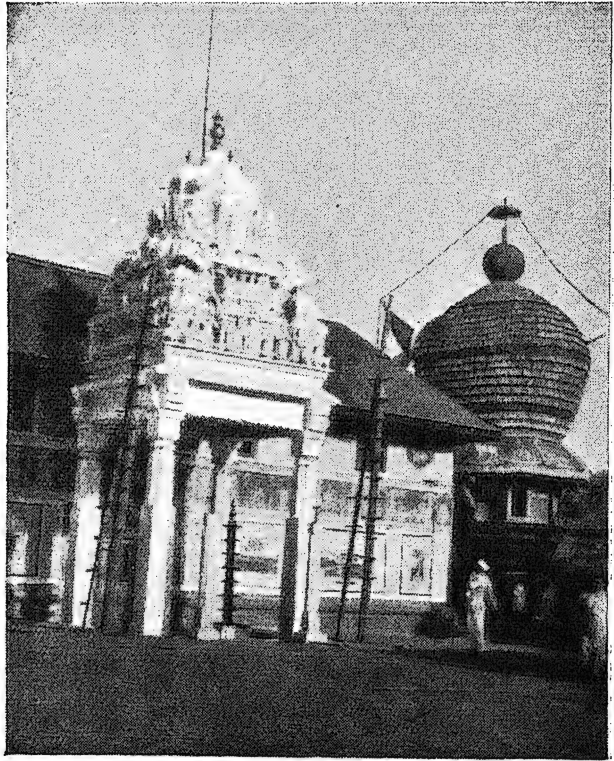
श्रीकृष्णमंदिर, उड़ुपी

श्रीमन्मध्वाचार्य

उनको वैष्णव जानकर बहुत सत्कार किया। तत्त्ववादी लोगोके मनमें अपने 'वैष्णवपन'का अभिमान है, यह देखकर उनके अहकारको कृपापूर्वक दूर करनेके लिये महाप्रभुने अत्यन्त दीनभावसे तत्ववादी आचार्यसे प्रश्न किया कि,—"साध्य और साधनमें कौन श्रेष्ठ है ?" तत्ववादी आचार्य बोले,—"वर्णाश्रमधर्मका पालन करते हुए श्रीकृष्णके चरण-कमलोमें कर्मफल-समर्पण रूप कर्ममिश्रा भक्ति ही श्रेष्ठ साधन, तथा पचविध मुक्ति प्राप्त करके वैकुण्ठमें जाना ही श्रेष्ठ साध्य है।" इसके उत्तरमें श्रीमद्भागवत और श्रीगीताके प्रमाणोका उल्लेख करते हुए श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—"वर्णाश्रमधर्मका परित्याग करके श्रीकृष्णके अनन्य शरणागत होकर नवधा भक्तिका अनुशीलन, विशेषत 'श्रवण-कीर्तन' ही श्रेष्ठ साधन है और पचम पुरुषार्थ 'कृष्ण-प्रेम' ही श्रेष्ठ साध्य है। सभी पारमार्थिक शास्त्र एक स्वरसे कर्मकी निन्दा करते हैं। कर्मके द्वारा कभी भी कृष्णमें प्रेमभक्ति प्राप्त नही होती। भगवद्भक्तगण पाँच प्रकारकी मुक्तिका परित्याग करते है और उनको नरक-तुल्य देखते है। कर्मी और ज्ञानी दोनो ही भक्तिविहीन हैं। परन्तु तत्ववादी सम्प्रदायका एक विशेष शुभ लक्षण यह है कि, वे लोग मायावादियोकी भाँति उपास्य वस्तुको निर्विशेष नही बतलाते। वे लोग, उपास्य वस्तुके सविशेषत्वको और चिद्विलासको स्वीकार करते हैं। यही उनकी आस्तिकताका लक्षण है।" श्रीमन्महाप्रभुका सिद्धान्त सुनकर तत्कालीन तत्ववादी गुरु स्तम्भित हो गये और अपने मतकी अपूर्णताको स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुए।

उडुपीसे श्रीमन्महाप्रभु 'फल्गु-तीर्थ' होकर 'त्रितकूपमें विशालाक्षी दर्शन, 'पचाप्सरा' तीर्थमें शुभागमन, 'गोकर्ण'में शिवदर्शन, 'द्वैपायनी' और 'सूर्पारक तीर्थ'में आगमन, 'कोलापुर'में लक्ष्मी, भगवती, गणेश और पार्वतीके दर्शन करते हुए 'भीमा' नदीके तीर 'पाढरपुर' पहुँचे और वहाँ 'श्रीविट्ठलदेव'के दर्शन किये। इस स्थानमें आकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य श्रीरगपुरीके पास अपने अग्रज

श्रीविश्वरूपके पांढरपुरमें अन्तर्धान होनेकी बात सुनी। वहाँ चार दिन ठहरकर 'कृष्णवेण्वा'*नदीके तीर पहुँचे। वहाँसे श्रीमद्विल्व-मंगलके द्वारा रचित **'श्रीकृष्णकर्णामृत'** ग्रन्थका संग्रह कर उसकी प्रतिलिपि करा ली; तत्पश्चात् कृपापूर्वक और भी अनेकों तीर्थोंका उद्धार करते हुए पुनः 'विद्यानगर'में आ गये। वहाँ श्रीरामानन्द राय से साक्षात्कार कर उनसे समस्त तीर्थोंका वर्णन कर उनको 'श्रीब्रह्म-संहिता' और 'श्रीकृष्णकर्णामृत' दो ग्रन्थ प्रदान किये, तदनन्तर श्री-मन्महाप्रभु 'आलालनाथ' होते हुए पुरी लौट आये।
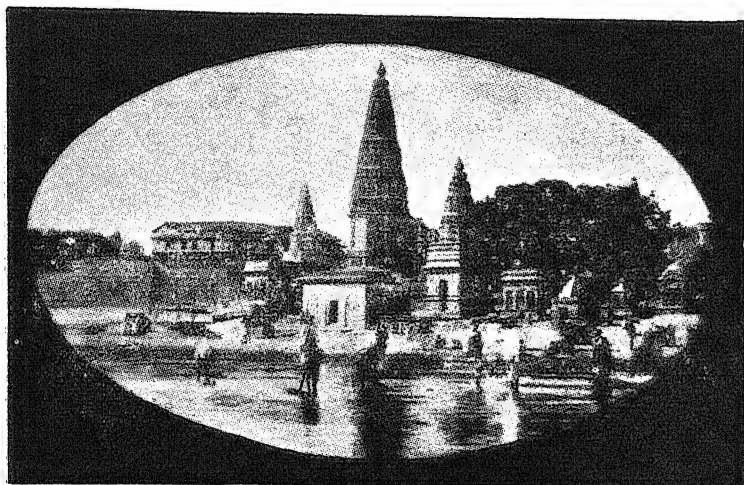
भीमानदी या भीमरथीके किनारे भक्त श्रीपुण्डरीकका मंदिर,

---

*इस नदीके तटपर ही श्रीविल्वमंगल ठाकुर रहते थे। 'वेण्वा'के बदलेमें कोई इसको 'वीणा', कोई 'वेणी, 'सिना' और 'भीमा' कहते हैं।

सत्तावनवाँ परिच्छेद
पुरीमें लौटना और भक्तोंके संग रहना

दक्षिण-देशसे लौटकर महाप्रभु पुरीमें श्रीकाशीमिश्रके घर ठहरे। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुके साथ श्रीक्षेत्रके निवासी वैष्णवोका परिचय करा दिया। सेवक श्रीकृष्णदास विप्र श्रीनवद्वीप भेज दिये गये। श्रीकृष्णदासके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीक्षेत्र लौट-आनेका समाचार सुनकर गौडीय भक्तगण पुरी जानेकी तैयारी करने लगे। श्री परमानन्द पुरी नवद्वीप होकर श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य द्विज श्रीकमलाकान्त को साथ लेकर पुरीमें आये। नवद्वीपवासी 'श्रीमत् पुरुषोत्तम भट्टाचार्य'ने काशीमें 'श्रीचैतन्यानन्द भारती' नामक गुरुसे सन्यास-ग्रहणकी लीला अवश्य दिखलायी, परन्तु वे योगपट्ट* ग्रहण न करके 'स्वरूप' नामसे परिचित हुए और पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोमें आकर उपस्थित हुए। श्रीईश्वरपुरीके शिष्य श्रीगोविन्द भी श्रीपुरी गोस्वामीके अन्तर्धान होनेपर उनके आदेशानुसार श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उनकी सेवामें लग गये।

अपने सन्यास गुरु श्रीकेशव भारतीके शिष्य होनेके कारण 'श्री-ब्रह्मानन्द भारती'को श्रीमन्महाप्रभु गुरुकी तरह सम्मान करते थे।† एक दिन श्रीमुकुन्द श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि, उनका दर्शन करनेके लिये श्रीब्रह्मानन्द भारती आये हैं। इसके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले;—"वे मेरे गुरु हैं, मैं ही उनके पास आ रहा हूँ। गुरुदेवके पास ही शिष्यको जाना चाहिए।" भारतीके पास आकर महाप्रभुने देखा कि श्रीब्रह्मानन्द मृगचर्म पहने हुए हैं। भगवद्भक्त या वैष्णव सन्यासी

---

* सन्यासीके लिये धारण करने योग्य वस्त्र विशेष। सन्यासके योगपट्टकी प्राप्ति हो जानेपर नैष्ठिक ब्रह्मचारीके 'स्वरूप' नामके बदले सन्यास नाम 'तीर्थ' होता है।

† श्रीचैतन्य-चरितामृतमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकृत 'अमृत-प्रवाह-भाष्य' (आदि ६।१३-१४) द्रष्टव्य।

के लिये कभी भी मृगचर्म पहनना उचित नहीं, यह जानते हुए भी गुरुस्थानीय पुरुषका शासन करना मर्यादाकी हानि करनेवाला समझकर, महाप्रभुने भारतीको सामने देखते हुए भी कहा,—"भारती गोसाईं कहाँ है?" जब मुकुन्दने श्रीमहाप्रभुको बतलाया कि भारती गोसाईं श्रीमन्महाप्रभुके सामने ही तो उपस्थित है, तब श्रीमहाप्रभु बोले,—"तुम भूल करते हो, ये भारती गोसाईं नहीं है, भारती गोसाईं मृगचर्म क्यों पहनेंगे?" तब ब्रह्मानन्द भारती श्रीमन्महाप्रभुका कौशल-पूर्ण उपदेश समझ गये एव मन-ही-मन विचारने लगे, सचमुच ही चर्माम्बर पहनना केवल दाम्भिकताका परिचय मात्र है, इससे ससारसे उद्धार नहीं हुआ जा सकता।

श्रीभारती गोस्वामीने उसी दिनसे मृगचर्म न पहननेकी प्रतिज्ञा की। श्रीमहाप्रभुने भी नवीन बाह्य वस्त्र मँगवाकर श्रीब्रह्मानन्दको पहननेके लिये दिया।

श्रीभारती गोस्वामी बोले,—'मैंने आजन्म निराकारका ध्यान किया है, परन्तु तुम्हारे दर्शनसे आज मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हो गयी। कृष्ण-प्रेम ही परम पुरुषार्थ है।'

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

श्रीमन्महाप्रभु और श्रीप्रतापरुद्र

महाराज श्रीप्रतापरुद्रका श्रीमन्महाप्रभुके साथ साक्षात्कार करा देनेके लिये श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य विशेष आग्रहयुक्त हो गये और इसके लिये उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें निवेदन किया। लोकशिक्षक श्रीगौरसुन्दरने, 'सन्यासीके लिये विषयीका दर्शन करना निषिद्ध है'—

यह कहकर भट्टाचार्यके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। श्रीमहाप्रभु बोले,—

निष्किंचनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितांच
हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, ८।२४

[हाय! भवसागरके उसपार जानेकी इच्छा रखनेवाले एवं भगवद्-भजनमें लगे हुए अकिंचनके लिये भोगबुद्धिसे विषयी पुरुषका और स्त्रीका दर्शन विष-भक्षणसे भी बढ़कर अमंगलकारी है।]

इधर श्रीरामानन्द राय राजकार्यसे अवसर लेकर पुरीमें श्रीमन्महाप्रभुके पास आ गये। श्रीरामानन्द श्रीचैतन्यदेवके चरणोंमें अनन्य--भावसे रहेंगे, यह जानकर श्रीप्रतापरुद्र उनको कार्यसे छुट्टी देकर भी पूर्ववत् वेतन प्रदान करते रहे। जब श्रीरामानन्द रायने श्रीमहाप्रभुसे
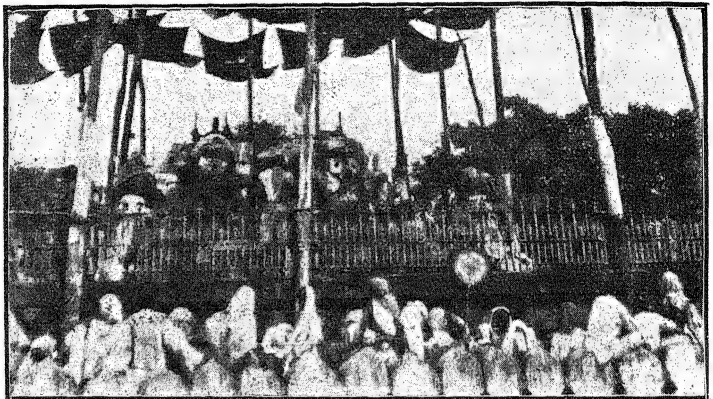
श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्राका दृश्य

श्रीप्रतापरुद्रके वैष्णवोचित विविध गुणोंका कीर्तन किया तब राजाके प्रति महाप्रभुके चित्त-भावमें कुछ परिवर्तन हुआ।

श्रीजगन्नाथदेवकी 'स्नान-यात्रा'के बाद उनके 'नवयौवनोत्सव'के पूर्व दिन तक एक पखवाड़े उनके दर्शन नहीं होते, इस समयको 'अनवसर-काल' कहा जाता है। इस समय श्रीजगन्नाथके दर्शन न पाकर श्रीमहाप्रभु गोपीभावसे कृष्णविरहमें 'आलालनाथ'चले गये और वहाँसे लौटकर गौड़देशसे आये हुए श्रीमत् अद्वैत आदि भक्तोंसे मिले।
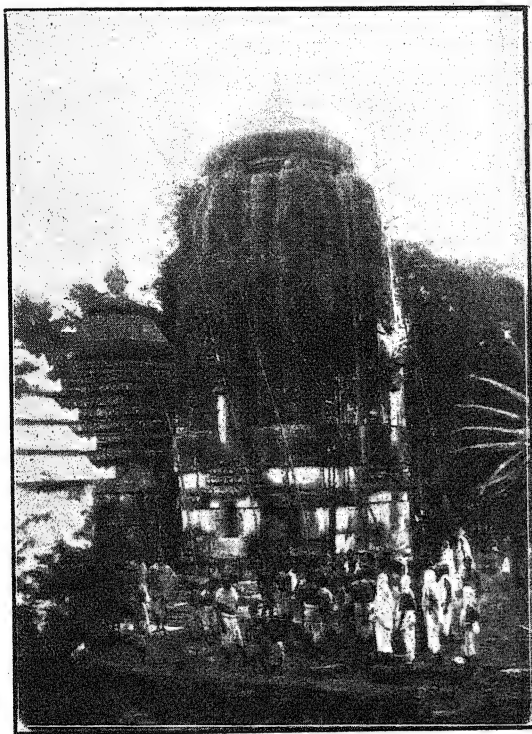
श्रीआलालनाथका श्रीमंदिर

श्रीप्रतापरुद्रने गौडीय-भक्तोके वास-स्थानकी तथा उनके महा-प्रसादकी व्यवस्था की। श्रीजगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरमें चार सम्प्रदायोके विभागक्रमसे सन्ध्याकालमें महा-सकीर्तन आरम्भ हो गया। श्रीनित्यानन्द प्रभृति भक्तोने श्रीगौरसुन्दरको उनके दर्शन-लाभके लिये श्रीप्रतापरुद्रके प्रबल आर्त्तभावकी बात बतलायी। अन्तमें राजाकी सान्त्वनाके लिये श्रीनित्यानन्द प्रभुने राजाको श्रीमन्महाप्रभुका व्यवहार किया हुआ एक वाह्य वस्त्र प्रदान किया। पश्चात् श्रीरामानन्दके आग्रहसे श्रीमन्-महाप्रभुने श्रीप्रतापरुद्रके श्यामवर्ण किशोर-वयस्क पुत्रको वैष्णव समझकर आलिगन किया। श्रीमन्महाप्रभुके स्पर्शसे राजकुमारको प्रेमावेश हो गया। उस पुत्रको स्पर्श करके प्रतापरुद्रको भी श्रीमन्महाप्रभुका कृपा-सग प्राप्त हुआ तथा मनमें अलौकिक प्रेमका उदय हुआ।

उनसठवाँ परिच्छेद

श्रीगुण्डिचा-मन्दिरकी सफाई

श्रीजगन्नाथजीकी श्रीरथयात्राका समय आ गया। श्रीरथयात्राके पहले श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोके साथ 'श्रीगुण्डिचा-मन्दिर'के परिष्कार की लीला प्रकट की† एव इस लीलाके द्वारा साधनराज्यके अनेको

†श्रीजगन्नाथदेव रथपर चढकर श्रीमन्दिरसे 'सुन्दराचल'-नामक स्थानमें 'गुण्डिचा' मन्दिरमें जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीक्षेत्रको— 'श्रीकुरुक्षेत्र' और श्रीसुन्दराचलको 'श्रीवृन्दावन' के रूपमें अनुभव किया था। रथयात्राको उत्कलवासी लोग 'गुण्डिचा-यात्रा' भी कहते हैं। इसी गुण्डिचा-मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजी आकर नवरात्र लीला या नौ दिनतक उत्सव करते हैं।

रहस्योंकी शिक्षा दी। श्रीमन्महाप्रभु बोले,--"यदि कोई सौभाग्यवान् जीव श्रीकृष्णको अपने हृदय-सिंहासनपर बैठानेकी इच्छा करे तो सबसे पहले उसको अपने हृदयके मलको साफ करनाआवश्यक है। बहुत दिनोंके संचित नाना प्रकारके भोग और त्यागकी अभिलाषा-रूप कूड़े-कर्कटको झाड़-बुहारकर तथा फेंककर श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानरूपी शीतल
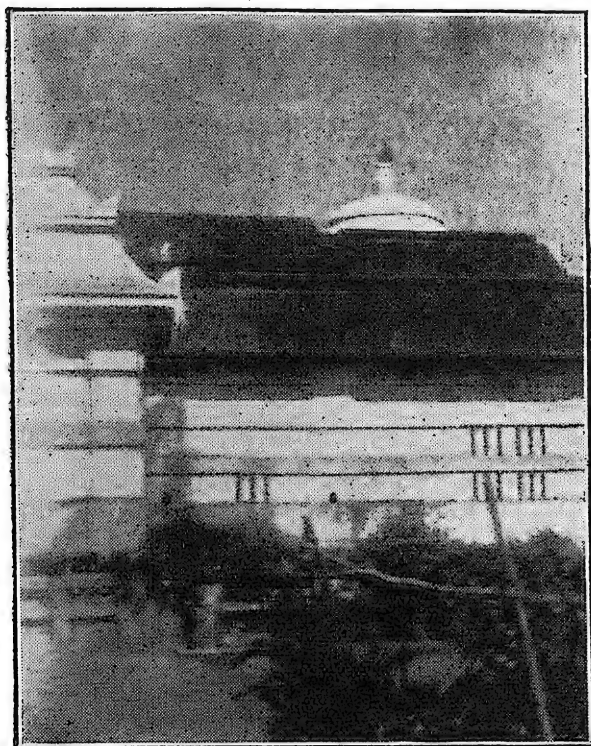
श्रीगंडिचा मंदिर

जलसे हृदयको धोकर निर्मल, शान्त, मसृण और भक्तिसे उज्ज्वल बनाने पर श्रीजगन्नाथदेव वहाँ आकर आसन ग्रहण करते हैं।"

श्रीमन्दिरकी सफाई करते समय किसी गौडीय भक्तने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोपर जल डालकर उसे पान कर लिया, इस पर लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभुने गौडीयोके मूल महाजन श्रीस्वरूप-दामोदरके द्वारा उस गौडीयाको गुण्डिचाके आँगनसे बाहर निकलवा दिया। इसके द्वारा भी श्रीगौरसुन्दरने यह शिक्षा दी कि, श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जीवके लिये पैर पखारना या सेवा ग्रहण करना एक सेवापराध है।

साठवाँ परिच्छेद

श्रीरथयात्रा तथा श्रीप्रतापरुद्रके प्रति कृपा

श्रीगौरसुन्दर भक्तगणके साथ श्रीजगन्नाथजीके श्रीरथारोहणके दर्शन कर रहे थे, उस समय महाराज श्रीप्रतापरुद्र एक सोनेके झाड़ूसे रथके जानेके मार्गको साफ करके उसपर चन्दनका जल छिड़क रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी इस प्रकारकी अभिमानशून्य सेवा प्रवृत्तिको देखकर भीतर-ही-भीतर उनके प्रति विशेष प्रसन्न हुए।

श्रीमहाप्रभुने अलग-अलग सात कीर्तन-सम्प्रदाय बनाकर भक्तोके साथ श्रीजगन्नाथके रथके सामने नृत्य किया तथा कीर्तनमें अलौकिक और अचिन्त्य ऐश्वर्य प्रकट किया। जब कीर्तन समाप्त करके श्रीमन्महाप्रभु 'बलगण्डि'* उपवनमें विश्राम कर रहे थे, उस समय उनको अद्भुत प्रेमावेश हो गया। उसी समय श्रीप्रतापरुद्रने वैष्णव-वेषमें

*पुरीमें श्रद्धावालि और अर्द्धासनीदेवीके स्थानके बीचमें जो भूमि है, उसे 'बलगण्डि' कहते हैं।

वहाँ अकेले उपस्थित होकर श्रीमन्महाप्रभुके पैर दबाते हुए श्रीमद्भागवतके 'गोपी-गीता'के एक श्लोकका पाठ करने लगे। राजाके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुने तत्कालोचित भागवतीय श्लोकका पाठ सुनकर प्रेमाविष्ट हो राजाका आलिंगन किया। राजाकी वैष्णव-सेवामें निष्ठा देखकर महाप्रभुने राजाको विषयी न जानकर, वैष्णव-सेवक समझा और उनके ऊपर कृपा की।

श्रीजगन्नाथजीके 'सुन्दराचल' विराजनेपर श्रीमन्महाप्रभुको श्रीवृन्दावन-लीलाकी स्फूर्ति हुई। नवरात्र-यात्रामें श्रीमन्महाप्रभुने 'श्रीजगन्नाथ-बल्लभोद्यान'में निवास किया। रथ-द्वितीयाके बादकी पंचमी तिथिको जो 'हेरा-पंचमी'-उत्सव होता है, उस उत्सवको देखकर श्रीमहाप्रभु, श्रीश्रीवास पण्डित और श्रीस्वरूपगोस्वामीके बीच श्रीलक्ष्मी और श्रीगोपियोंके स्वभावके सम्बन्धमें बहुत-सी रहस्यमयी बातें हुईं।

श्रीमंदिरके सम्मुख श्रीविग्रहाधिष्ठित रथत्रय

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवासके साथ रहस्यके बहाने श्रीलक्ष्मीनारायणकी उपासना, यहाँतक कि श्रीद्वारकानाथकी उपासनासे भी श्रीगोपीकान्त श्रीराधाकान्तकी उपासनाका श्रेष्ठत्व प्रदर्शन किया। 'पुनर्यात्रा'*के समय कीर्तनादि हुए, परन्तु सुन्दराचलसे लौटनेके समय श्रीमन्महाप्रभु और उनके भक्तगण श्रीजगन्नाथके रथको खीचकर नीलाचल नही लाये। क्योकि गोपियाँ अपने प्राणधन श्रीकृष्णको अन्य स्थानसे श्रीवृन्दावनमें ले आती है, परन्तु अपने घरसे अन्यत्र नही ले जाती।

इकसठवाँ परिच्छेद

गौड़ीय भक्तगण

श्रीरथयात्रा समाप्त होनेके बाद श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीगौरसुन्दरकी पुष्प-तुलसीके द्वारा पूजा की। श्रीगौरसुन्दरने भी पुष्प-पात्रमे बचे हुए पुष्प और तुलसीके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी 'योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते'† मन्त्रके द्वारा पूजा की। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्यने श्रीगौरसुन्दरको निमन्त्रण देकर भोजन कराया। श्रीनन्दोत्सवके दिन श्रीमहाप्रभुने प्रिय भक्तोके साथ गोप-वेष धारण कर आनन्दोत्सव मनाया। 'विजया-दशमी'के दिन लका-विजयोत्सवमें श्रीमहाप्रभुने अपने भक्तोकी वानर-सेना सजाकर स्वय श्रीहनुमानके आवेशमें अत्यन्त आनन्द प्रकट किया। इसी प्रकार अन्यान्य यात्रा-महोत्सवोके समाप्त होनेपर श्री-महाप्रभुने श्रीरामदास, श्रीदास-गदाधर प्रभृति कुछ पार्षद वैष्णवोको

* 'पुनर्यात्रा'—उलटा रथ। इस समय 'सुन्दराचल'से श्रीजगन्नाथ-देव रथपर चढकर पुन 'नीलाचल' लौट आते हैं।

† तुम जो हो, सो हो, मैं तुमको ही नमस्कार करता हूँ।

साथ देकर श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैताचार्यको आचण्डाल सब लोगोमें निर्बाध प्रेम भक्तिका वितरण करनेके लिये गोडदेशको भेजा। पश्चात् अनेको दीनता-भरी उक्तियोके साथ श्रीश्रीवास पडितके हाथ श्रीशची माताके लिये प्रसाद और वस्त्रादि भेजे। गौडीय भक्तोके विविध गुणोका बखान करते हुए श्रीमहाप्रभुने सबको विदा किया और श्रीसत्यराज खाँ और श्रीरामानन्द वसुको प्रति वर्ष रथके समय 'पट्टडोरी' लानेका आदेश किया।

बासठवाँ परिच्छेद्

'कुलीनग्राम'-वासियोंके परिप्रश्न

बगालमें आधुनिक बर्दवान जिलेके पूर्व-दक्षिण भागमें 'कुलीन-ग्राम'* एक प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है। श्रीहरिदास ठाकुरने कुलीन-ग्राममें रहकर भजन किया था और उस ग्रामके प्रधान और प्रतिष्ठित वसुवशी लोगोके प्रति कृपा वितरण की थी। श्रीगौरसुन्दरके आविर्भावके पहलेसेही कुलीन-ग्राम निवासी श्रीसत्यराज खाँ प्रभृतिने श्रीहरिदास ठाकुरकी कृपासे उद्भासित होकर कुलीनग्राममें श्रीनाम-सकीर्तनकी बाढ बहा दी थी।

'श्रीकृष्णविजय' ग्रन्थके रचयिता कुलीनग्रामवासी श्रीमालाधर वसु (श्रीगुणराज खाँ) है, उनके द्वितीय पुत्र 'हृदय-नन्दन' श्रीलक्ष्मी-

---

*हवडा-बर्दवान कर्ड लाइनमें, हवडासे ४१ मील दूरपर जौग्राम नामका स्टेशन आता है। वहाँसे पूर्वोत्तर कोणकी ओर लगभग तीन मीलपर कुलीन ग्राम है। ग्रथकार रचित 'कुलीनग्राम' प्रबन्ध तथा 'गौडमण्डल' में सविस्तार आलोचना देखें।

नाथ वसु (श्रीसत्यराज खाँ) हुए; उनके पुत्रका नाम था श्रीरामानन्द वसु। श्रीश्रीगौरसुन्दर श्रीगुणराज खाँ और उनके वंशको, यहाँतक कि उनके गाँवके कुत्ते आदि पशुको भी अपना प्रिय समझकर उन्होंने अपने मुँहसे कहा है,—

"गुणराज खान् कैल 'श्रीकृष्णविजय'।
ताहाँ एक वाक्य ताँ'र आछे प्रेममय ।।
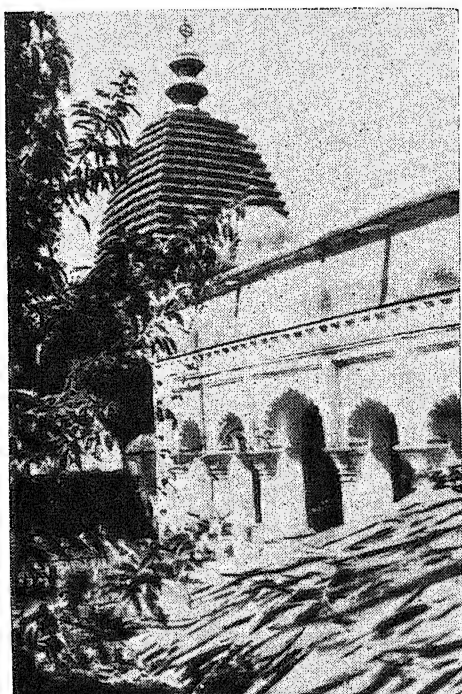
श्रीसत्यराज खाँका प्रतिष्ठित श्रीमदनगोपाल देवका श्रीमंदिर (कुलीनग्राम)

'नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ।'
एइ वाक्ये बकाइनु ताँ'र वशेर हात॥
तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुक्कुर।
सेह मोर प्रिय, अन्यजन रहु दूर॥"

—चै० च० म० १५।९९-१०१

[गुणराज खाँने 'श्रीकृष्णविजय'की रचना की। उस ग्रथमें—'नन्द-नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ,'—उनका एक प्रेममय वाक्य है। इस वाक्यके कारण मै उनके वशके हाथ बिक गया हूँ। तुम्हारी तो बात ही क्या है, तुम्हारे गाँवका कुत्ता भी मुझे प्यारा है, दूसरे लोगोकी तो बात ही छोड दो]

श्रीरथयात्राके बाद पुरीसे 'देशमें लौटते समय श्रीसत्यराज और श्री-रामानन्दने श्रीमहाप्रभुसे लगातार तीन वर्ष तक (प्रतिवर्ष) वैष्णव-गृहस्थके कर्तव्यके सबधमें कुछ प्रश्नोके द्वारा जानकारी प्राप्त की थी।

प्रथम वर्ष श्रीमहाप्रभुने कहा,—

****"कृष्ण-सेवा, वैष्णव-सेवन।**
निरन्तर कर' कृष्णनाम-संकीर्तन॥"

—चै० च० म० १५।१०४

[कृष्णसेवा, वैष्णवसेवन और निरन्तर कृष्णनाम-सकीर्तन करो।]

तब श्रीसत्यराज खाँने पूछा,—"हम वैष्णवको कैसे पहचानें? वैष्णवके साधारण लक्षण क्या है?" श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"जिनमें नामापराध नही है, नामाभास होता है उनको ही तुम 'वैष्णव' जानो। नामाभासके फलस्वरूप समस्त पाप और अनर्थ नष्ट हो जाते हैं; नामसे नवधा भक्ति पूर्णताको प्राप्त होकर प्रेम प्रकट हो जाता है।"

पूर्व वर्षकी भाँति दूसरे वर्ष भी श्रीसत्यराज खाँ और श्रीरामा-नन्द वसुने फिर उसी प्रश्नको महाप्रभुसे पूछा। इस बार महाप्रभुने उन लोगोसे कहा,—

*** * "वैष्णव-सेवा, नाम-सकीर्तन।**
दुइ कर', शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण॥"

—चै० च० म० १६।७०

[वैष्णवसेवन तथा नाम-सकीर्तन दोनो करो। श्रीकृष्णके चरणोको शीघ्र प्राप्त करोगे।]

उन्होने पुन जब वैष्णवके लक्षण पूछे तब महाप्रभुने इस बार पूर्वापेक्षा श्रेष्ठ वैष्णवका (वैष्णवतरका) लक्षण बतलाया,—

"कृष्णनाम निरन्तर याँहार बदने।
सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे॥"

—चै० च० म० १६।७२

[जिसके मुखमें निरन्तर कृष्णका नाम रहता है, वह श्रेष्ठ वैष्णव है, उसके चरणोका भजन करो।]

तीसरे वर्ष पुरीमें जाकर श्रीसत्यराज खाँ प्रभृतिने श्रीमहाप्रभुसे वही एक प्रश्न पूछा। इस वर्ष श्रीमहाप्रभुने उत्तम वैष्णव (वैष्णवतम) अथवा महाभागवतका लक्षण बतलाया,—

"याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।
ताँहारे जानिओ तुमि 'वैष्णव-प्रधान'॥"

—चै० च० म० १६।७४

[जिनके दर्शनसे मुखमें कृष्णनाम आ जाता है, उनको तुम 'वैष्णव प्रधान' समझो।]

अर्थात् जिनके नामाभास होता है वे 'वैष्णव' है। जिनके मुखमें निरन्तर श्रीकृष्णनाम नृत्य करता है, वे 'वैष्णवतर' है और जिनके द्वारा कीर्तन किये हुए श्रीकृष्णनामको सुनकर दूसरे मनुष्यके मुखसे भी श्रीकृष्णनाम प्रकट हो जाता है, अर्थात् दूसरा भी श्रीभगवान्के सुखानुसन्धानमें रत हो जाता है, वे ही 'वैष्णवतम' या सर्वोत्तम वैष्णव है। इन तीनो प्रकारके वैष्णवोकी सेवा करना ही गृहस्थ-वैष्णवका कर्तव्य है।

'श्रीखंड'-वासी भक्तोंमें श्रीमुकुन्द, उनके पुत्र श्रीरघुनन्दन और मुकुन्दके कनिष्ठ भ्राता श्रीनरहरि सरकार—ये तीन प्रधान हैं। श्री-मन्महाप्रभुने श्रीमुकुन्दसे पूछा,—"रघुनन्दन तुम्हारा पुत्र है या पिता?" श्रीमुकुन्दने उत्तर दिया,—"जब श्रीरघुनन्दनके द्वारा ही मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हुई है तो श्रीरघुनन्दन ही मेरे पिता हैं और मैं उनका पुत्र हूँ।" इससे श्रीमुकुन्दने कृष्णभक्त श्रीरघुनन्दनमें पुत्र-बुद्धिका त्यागकर गुरुबुद्धि करनेका आदर्श दिखलाया है। जो लोग परमार्थका आश्रय करते हैं उनका चरित्र इसी प्रकारका होता है ; **देहके सम्बन्धसे वे लोक किसी व्यक्ति या बिषयको नहीं देखते।**

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीखंडवासी वैष्णवोंकी सेवाका निर्देश करके, सार्वभौम और विद्यावाचस्पति—इन दोनों भाइयोंको दारु-ब्रह्म श्रीजग-न्नाथ और जल-ब्रह्म श्रीगंगाकी सेवा करनेका आदेश देकर श्रीमुरारि गुप्तकी श्रीराम-निष्ठाका वर्णन किया।

श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त—ये दो भाई चटगाँवमें आवि-र्भूत हुए थे। श्रीरघुनाथदास-गोस्वामीके दीक्षागुरु श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके कृपापात्र थे। वैष्णव-सेवामें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरका बहुत खर्च होना आदि देखकर श्रीमहाप्रभुने श्रीशिवानन्द सेनको उनका 'सरखेल'* होकर खर्च सम्हालनेका आदेश दिया। श्री-महाप्रभुसे श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने अत्यन्त कातर होकर निवेदन किया,—"प्रभो, जगत्के जीवोंके त्रिताप-दुःखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जीवोंके सारे पाप मेरे सिरपर डालकर मुझे नरकभोग करने दीजिये; और आप सब जीवोंके भव-रोगको दूर कर दीजिये।"

श्रीवासुदेवकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीमन्महाप्रभुका चित्त द्रवी-भूत हो गया। श्रीमहाप्रभु बोले,— "श्रीकृष्ण भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

* सरखेल—तत्वावधायक अर्थात् देखरेख करनेवाला व्यवस्थापक
—चै० च० म० १५।९६, अ० प्र० भा०

हैं। जब तुम्हारी यह शुभ इच्छा हुई है, तब श्रीकृष्ण अवश्य ही उसे पूर्ण करेंगे। भक्तकी इच्छामात्रसे ही सारा ब्रह्माण्ड अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।"

श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरकी इस प्रार्थनामें कई सोचनेकी बातें हैं। पाश्चात्य देशमे ईसाई-भक्तोका विश्वास है कि, महामति 'यीशुखृष्ट' ही जगत्के एकमात्र गुरु है, वे जीवोके समस्त पापोका बोझ अपने सिरपर लेनेके लिये तैयार होकर जगत्मे आये थे। परन्तु, श्रीगौर-पार्षदोमे श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर, श्रीहरिदास ठाकुर प्रभृति परदुख-दुखी महापुरुष लोगोने जगत्के जीवोको उनकी (ईसाकी) अपेक्षा अनन्त कोटि गुना अधिकतर उन्नत, उदार और सार्वजनीन प्रेमभावकी शिक्षा दी है। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके आदर्शमें एक ही साथ जडीय-स्वार्थत्यागरूप निस्वार्थ, श्रीकृष्ण सेवा-दानरूप चिन्मय परार्थ और स्वार्थका अपूर्व सम्मेलन दीख पडता है। सब जीवोके केवल पाप ही नही, सब प्रकारके पापोकी अपेक्षा भी भीषणतर भवरोगके मूल कारण जो भगवद्विमुखता है, उसको भी अपने कन्धोपर लेकर श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर उनके भवरोगको मिटानेके लिये निष्कपट प्रार्थना करके जो अनिर्वचनीय सर्वोत्कृष्ट दयाका आदर्श प्रदर्शित किया है, वह समग्र विश्वके सर्वश्रेष्ठ कर्मवीर और ज्ञानवीरोकी भी कल्पनासे अतीत है। प्रायश्चित्तादिके द्वारा पाप दूर होते हैं, परन्तु भगवद्विमुखताका बीज दूर नही होता। पाप—प्राकृत प्रतिबन्धक है, परन्तु अपराध—अप्राकृत वस्तुकी सेवामें प्रतिबन्धक होता है। स्व-स्वरूपकी उपलब्धिमें जो विघ्नस्वरूप है, वही अनर्थ है। भगवद्विमुखता ही मूल भवरोग है। अनादिकालसे ही जीव परतत्व (श्रीकृष्ण)के विषयमें ज्ञानहीन होकर मायाके कारागारमें ताप भोग रहा है। किसी दिन भी उसको श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ज्ञान नही था। महापुरुषकी कृपासे वह ज्ञानका अभाव दूर हो जाने पर फिर वह विमुखता-रोग आक्रमण नही करेगा। महान् उदार श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने जीवके उस भवरोग या अविद्याको सदाके

लिये दूर करके सब जीवोको श्रीकृष्णप्रेममे विभोर करनेके लिये स्वय नरककी कामना की थी। इसलिये उनका आदर्श ही अतुलनीय और उच्चतम है ।

तिरसठवाँ परिच्छेद

'अमोघ'-उद्धार

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी विशेष प्रार्थनासे उनके घर क्रमश पाँच दिन भिक्षा स्वीकार की। भट्टाचार्यकी एक कन्याका नाम था—'षष्ठी'। पुकारनेका नाम था—'षाठी'। एक दिन 'षाठी की माता अर्थात् श्रीभट्टाचार्यकी सहधर्मिणीने नाना प्रकारके उत्कृष्ट भोजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीमहाप्रभुके भोजनके समय षाठीका स्वामी 'अमोघ' श्रीमहाप्रभुके सामने विचित्र नैवेद्यको देखकर श्रीमहाप्रभुको भोगी सन्यासी बताकर उनकी निन्दा करने लगा। श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर श्रीभट्टाचार्य हाथमें लाठी लेकर दामादको मारनेके लिए तैयार हो गये , अमोघ भागा और भट्टाचार्य उसके पीछे दौडे। षाठीकी माता श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर अपना सिर और छाती पीटने लगी, तथा 'षाठी विधवा हो जाय' कहकर बार-बार शाप देने लगी। अपनी कन्याके सासारिक सुख-भोगकी ओर देखते हुए भी उन्होने श्रीमहाप्रभुकी निन्दा करनेवाले दामादको क्षमा नही किया। अन्तमें दोनोने ही श्रीमहाप्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करके उनको अपने वासस्थानपर भेज दिया। इधर भट्टाचार्य घरके भीतर आकर अपनी सहधर्मिणीके सामने अत्यन्त खेद प्रकट

करते हुए बोले,—"श्रीमहाप्रभुके निन्दकके प्राण लेने अथवा अपने प्राण देनेपर ब्राह्मण-वधका पाप लगेगा। अतएव अबसे उस निन्दकका मुख न देखना या नाम न लेना ही श्रेय है। षाठीका पति 'पतित' हो गया है, अतएव षाठीको अपने पतिका परित्याग करनेके लिए कह दो। पतित स्वामीका त्याग करना ही उचित है।"

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नीकी यह आदर्श शिक्षा हम सभीके लिए अनुसरण करने योग्य है। जगत्में आत्मीयरूपसे परिचित अतिप्रिय स्नेहभाजनगण भी यदि भक्त और भगवान्से द्वेष करते हैं, तो वैसे तथाकथित आत्मीयोका भी दु सग निर्मम होकर छोड दे और साधुसगमें दृढरूपसे लगा रहकर भगवान्की सेवा करे, यही कर्तव्य है।

दूसरे दिन प्रात काल अमोघको हैजेने आ दबाया। कृपामय श्रीगौरहरि यह सुनते ही भट्टाचार्यके घर आये तथा उनके प्रति कृपा-परवश होकर उन्होंने अमोघको तुरन्त ही रोगमुक्त करके श्रीकृष्ण-नाममें रुचि प्रदान की।

चौसठवाँ परिच्छेद

गौड़ीय-भक्तोंका पुनः नीलाचलमें आना

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा की, परन्तु श्रीरामानन्द राय और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन्महाप्रभुको नाना प्रकारसे भुलावेमें डालकर श्रीवृन्दावन जानेसे रोक लिया। श्रीभगवान् स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तोके अधीन हैं।

तीसरे वर्ष यथा-समय श्रीअद्वैतादि गौडीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिए नीलाचल आये। श्रीशिवानन्द सेनने सबके मार्ग-

व्ययका प्रबन्ध किया। श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रतिवर्ष ही नीलाचल आकर श्रीमन्महाप्रभुकी एकमात्र अभिलाषा तथा उनके द्वारा दिए गए निर्देश श्रीनामप्रेम-प्रचारके समाचार सुनाते। अत इस बार श्रीमहाप्रभुने श्रीनित्यानन्दसे कहा,—"तुम प्रतिवर्ष नीलाचल मत आना। गौडदेशमें रहकर मेरी इच्छा पूरी करना, क्योंकि मेरे अभीष्टरूप इस गुरुतर सेवा-कार्यको करनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कोई योग्यपात्र नही है।"

इसका उत्तर देते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"मै देहमात्र हूँ, और उस देहमें तुम्ही प्राण हो। देह और प्राण परस्पर अभिन्न है। देहकी अर्थात् मेरी कोई स्वतन्त्रता नही है। तुम अपनी ही अचिन्त्य शक्तिसे समस्त कार्य सम्पन्न करते रहते हो।*

आज जो सब लोग कल्पनाके वशीभूत हो यह सोचते है कि श्रीनित्यानन्दके श्रीगौरसुन्दरसे अलग होकर गौड-देशमें धर्म प्रचार करनेके कारण तथा श्रीचैतन्यदेवके भी नीलाचलमें रहने और गौडदेशके प्रचारका कोई सवाद न रखनेके कारण श्रीनित्यानन्दका प्रचारित मत श्रीचैतन्यके मतसे पथक् हो गया था , उनलोगोकी ऐसी धारणा बिल्कुल निराधार और भ्रान्तिमूलक है, यह श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी उपर्युक्त बातोसे ही प्रमाणित होती है।

---

* चै० च० म० १६।६६-६७

पैंसठवाँ परिच्छेद्

श्रीमन्महाप्रभुका वृन्दावन जानेका संकल्प

इतने दिनो तक श्रीराय रामानन्द और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीचैतन्यदेवको श्रीवृन्दावन धाम नही जाने दिया। चौथे और पाँचवे वर्ष भी गौडीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन कर प्रभुके आदेशसे पुनः गौडदेश लौट गये। इस बार श्रीगौरसुन्दरने गौडदेश होते हुए श्रीवृदावन जानेके लिये श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दसे अनुमति चाही, परन्तु भट्टाचार्य और रायके अनुरोधसे वे वर्षाकालमें श्रीवृन्दावन न जाकर पुरीमें ही कुछ समय तक रह गए। तदनन्तर उन्होने भक्तोके लिये श्रीजगन्नाथका प्रसादादि साथ लेकर विजया-दशमीके दिन श्रीवृन्दावनके लिए यात्रा की। श्रीमहाप्रभुके साथ श्रीरामानन्द राय 'भद्रक' तक पहुँचाने आये। श्रीमहाप्रभुके विच्छेदके डरसे तथा सगके लोभसे श्रीगदाधर पडितने 'क्षेत्र-सन्यास'* त्यागनेका दृढ सकल्प कर लिया, श्रीमहाप्रभुने पडित गोस्वामीको शपथ देकर 'कटक' से सार्वभौमके साथ श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र भेज दिया और भद्रकसे श्रीरामानन्दको भी बिदा कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु क्रमश उडीसाकी सीमामें आ पहुँचे। इस सीमाभूमिके बादसे पिछन्दा-तकके समस्त स्थान उस समय मुसलमानोके अधिकारमें थे, डरके मारे कोई उस रास्तेसे नही जाता था। श्रीमहाप्रभुकी कृपासे स्थानीय मुसलमान-शासककी चित्तवृत्ति बदल गई। तत्कालीन राजनीतिक अवस्थाका विचार करके वह

---

* जो लोग अपना पहला घर त्यागकर किसी विशेष विष्णुतीर्थमें अर्थात् पुरुषोत्तम क्षेत्रमें, नवद्वीपधाम या मथुरामडलमें एकमात्र श्रीभगवान्की सेवाके उद्देश्यसे निवास करते है उनके आश्रमको 'क्षेत्र-सन्यास' कहते है। श्रीगदाधर पडित इस प्रकारका 'क्षेत्र-सन्यास' लेकर पुरीमें श्रीटोटा-गोपीनाथकी सेवा करते थे।

मुसलमान शासक हिन्दू-पोशाक पहनकर महाप्रभुके दर्शन करने आया तथा दूरसे ही साष्टाग दण्डवत् करके अश्रु-पुलकित हो तथा हाथ जोडकर श्रीमहाप्रभुके सामने श्रीकृष्ण नाम लेने लगा।*

पश्चात् यही मुसलमान शासक श्रीमहाप्रभुके स्वच्छन्द गमनके लिये नौका प्रदानकर तथा अन्यान्य सुव्यवस्था करके धन्य हो गया। कही जलके डाकू लोग श्रीमहाप्रभुको कोई हानि न पहुँचावें, इस दृष्टिसे दस नौका-सेना साथ लेकर वह परम भाग्यवान् भक्त मुसलमान-शासक स्वय 'मन्त्रेश्वर'नद पार होकर 'पिछल्दा' तक साथ आया। श्रीमहाप्रभुने उस भक्त महाशयको पिछल्दासे बिदा किया और नौकापर सवार होकर वे 'पानिहाटी' पहुँचे। पानिहाटीके श्रीराघव पडितके घरसे क्रमश 'कुमारहट्ट'में श्रीश्रीवास पडितके घर, उसके समीप श्रीशिवानन्दके घर, तत्पश्चात् 'विद्यानगर' में श्रीविद्यावाचस्पतिके स्थानसे चुपके-चुपके 'कुलिया' ग्राममें जाकर श्रीश्रीवास पडितके चरणोमें अपराधी भागवत-पाठक देवानन्द पडित और गोपाल-चापालके अपराधको दूर किया।

वर्तमान नवद्वीप-शहर ही 'कुलिया' या 'कोलद्वीप' है। इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णवापराधियोंके अपराध क्षमा कराये थे। अतएव यह 'अपराध-भजनका पाट' के नामसे भी प्रसिद्ध है।

---

* चै० च० म० १६।१७९-१८०

छासठवाँ परिच्छेद

'कानाइ-नाट्यशाला'

श्रीमन्महाप्रभुने महत् (महापुरुष) के पादपद्मोमे आश्रयकी लीला प्रकट करके श्रीगयाधामसे नवद्वीपकी ओर लौटते समय पहले 'कानाइ-नाटचशाला' में ही अपने आत्मप्रकाशकी लीलाका आविष्कार किया था। इसी स्थानमे विप्रलम्भप्रेम-विग्रह श्रीगौरसुन्दरकी कृष्णानुसन्धान-लीला और आत्म-प्रकाशकी प्रथम सूचना मिलती है। इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने महत्के पद-रजसे अभिषिक्त व्यक्तिके लिए ही दिव्य-किशोर-मूर्त्ति-श्रीकृष्णके दर्शन होना सहज और सभव है, अपनी लीलासे इस तत्वको प्रकट किया था। गयासे नवद्वीपकी ओर लौटते समय श्रीमहाप्रभुकी 'कानाइ-नाटचशाला' में यह प्रथम आगमन-लीला है। यह १४२६ शकाब्दीकी बात है।

सन्यास-ग्रहण-लीला प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल चले गये थे। श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छासे श्रीमहाप्रभु नीलाचलसे गौडमडलमें आये तथा विद्यानगरमें महेश्वर विशारदके पुत्र अर्थात् श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके भ्राता श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमे पाँच दिनो तक ठहरे। वहाँ जन-समारोह देखकर श्रीमहाप्रभु रातको वर्तमान नवद्वीप-शहर 'कुलिया' में आ गये और कुलियासे श्रीवृन्दावनके लिए चल पडे। असख्य जनता श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये व्याकुल होकर प्रभुका अनुसरण करने लगी। चलते-चलते श्रीमहाप्रभु 'गौड' के समीप गगाके किनारे 'रामकेलि' गाँवमें आये। उस समय वहाँ श्रीरूप और श्री-सनातन—ये दो भाई क्रमसे 'दबीर-खास' और 'साकर-मल्लिक' के नामसे परिचित होकर गौडाधिपति हुसैन शाह बादशाहके राज्य-सचालनमे प्रधान सहायकके रूपमें अधिष्ठित थे।

हुसेन शाहने दबीर-खाससे श्रीमहाप्रभुका माहात्म्य सुनकर उनको 'साक्षात् ईश्वर' समझा। रामकेलिमें श्रीमन्महाप्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द, श्रीहरिदास, श्रीश्रीवास, श्रीगदाधर, श्रीमुकुद, श्रीजगदानन्द, श्रीमुरारि, श्रीवक्रेश्वर-प्रभृति भक्तगण थे। श्रीचैतन्यदेवने अपने भक्तोंके साथ श्रीसनातन और श्रीरूपको अपने नित्य अन्तरग-सेवकके रूपमें स्वीकार किया। हुसेन शाह बादशाहने श्रीमहाप्रभुके प्रभावको सुनकर उनके स्वच्छन्द गमनमें किसी प्रकार बाधा न दी जाय, इसके लिये अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुको शीघ्र रामकेलिसे अन्यत्र जानेके लिये प्रार्थना की। क्योंकि, यद्यपि बादशाह श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखता है तथापि वह यवन है, उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुसे और
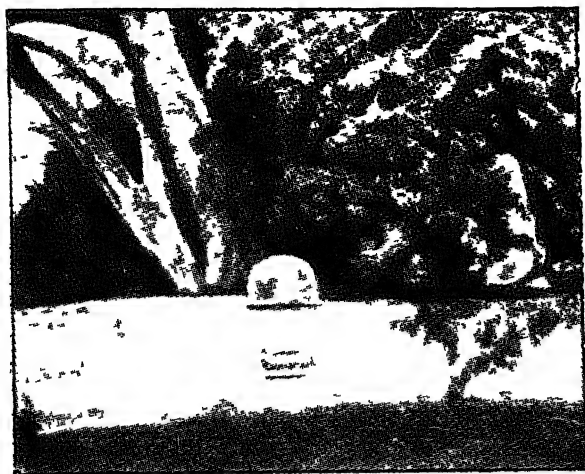
गौडके रामकेलिग्राममें श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीश्रीरूप-सनातनका मिलन-पीठ

भी कहा कि,—"प्रभो, आप इस समय वृन्दावनके मार्गमे और अग्रसर न हो, तीर्थयात्रामे इतना जन-समुदाय अच्छा नही,—

'याहाँ सगे चले एइ लोक लक्ष-कोटि।
वृन्दावन याइवार ए नहे परिपाटी॥"

—चै० च० म० १।२२४

[जिनके साथ लाखो-करोडो आदमी चलते हो, वृन्दावन जानेकी यह रीति नही है, अर्थात् लाखो-करोडो आदमियोको साथ लेकर वृन्दावन जानेकी पद्धति नही है।]

यवन राजाके राज्यशासनमें राष्ट्रीय जगत्की तत्कालीन अवस्था जैसी हो गयी थी, उसीको देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवामे तत्पर, बुद्धिमें वृहस्पति श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारका परामर्श दिया।

इधर, जिस समय श्रीमहाप्रभुके कुलियासे श्रीवृन्दावन जानेकी बात हुई, उसी समय प्रभुके भक्त श्रीनृसिहानन्द श्रीवृन्दावनके मार्गकी दुर्गमताको समझकर श्रीमहाप्रभुके लिये ध्यानमग्न होकर मानस-सेवा द्वारा 'कुलिया' (आजकल म्यूनिसिपल शहर—नवद्वीप) से श्रीवृन्दावन तक रास्ता बनाने लगे। अति कण्टकाकीर्ण और ककडोसे पूर्ण मार्ग पर पैदल चलनेसे प्रभुके सुकोमल श्रीचरणकमलोमें चोट लगेगी, यह सोचकर श्रीनृसिहानन्दने मानस-सेवा द्वारा उस रास्तेमें वृन्त-रहित कोमल-पुष्पोकी शय्या बना दी। धूपसे प्रभुको कही कष्ट न पहुँचे, इसलिये श्रीनृसिहानन्दने रास्तेके दोनो किनारे पुष्प-युक्त मौलसिरीकी श्रेणियाँ स्थापित कर दी। सुशीतल छाया और मौलसिरीकी सुगन्ध—दोनो ही प्रभुके लिये स्निग्धता प्रदान करेगी। यदि मार्गकी थकावटसे महाप्रभुको प्यास लगे तो इसके लिये नृसिंहानन्दने बीच-बीचमें रास्तेके दोनों ओर 'रत्नबँधे घाट' तथा फूले हुए कमलदलोसे सुशोभित और सुधामय जलसे पूर्ण दिव्य पुष्करिणी बना दी। पुष्करिणीके चारो ओर मधुर कण्ठवाले पक्षियोकी सुललित काकली, तथा मृदु-मन्द,

सुगन्ध समीर प्रभृतिकी मनोहारिणी सुषमा प्राण-प्रभुकी सेवाके लिये सुसज्जित कर दी। इस प्रकार कुलिया नगरसे रास्ता बनाना आरम्भ करके जब 'गौड' के निकट 'कानाइ-नाट्यशाला' तक रास्ता बन गया, तब श्रीनृसिहानन्दका ध्यान टूट गया। इससे श्रीनृसिहानन्द भक्तोके सामने भविष्यद्वाणी करते हुए बोले,—"इस बार श्रीमहाप्रभु केवल 'कानाइ-नाटचशाला' तक ही जायेंगे, श्रीवृन्दावन नही जायेंगे। तुम लोगोको यह बात पीछे मालूम हो जायगी।" ठीक यही हुआ भी, श्रीरूप-सनातनकी सेवा-वत्सलता और श्रीनृसिहानन्दकी भविष्यद्वाणीको सार्थक करनेके लिये श्रीमन् महाप्रभु श्रीवृन्दावनके मार्गमें 'कानाइ-नाट्यशाला' में जाकर वहाँ कानाइके नाना प्रकारके नाटच और लीला-विलासके देखनेके पश्चात् श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा छोडकर नीलाचलके (पुरीके) रास्तेमें 'शान्तिपुर' पहुँचे और वहाँ श्रीअद्वैताचार्यके घर सात दिन रहकर पुन श्रीनीलाचलमें लौट आये। श्रीमन्महाप्रभुने १४३४ शकाब्दमें दूसरी बार 'कानाइ-नाटचशाला' में शुभागमन किया।

'कलकत्ता-हवडा-काटवा-अजीमगज-बरहरवा' लाईनमें 'तालझरी' स्टेशनमें उतरकर मैदानके कच्चे रास्तेसे प्राय दो मील पूर्व-उत्तरकी ओर अथवा पक्के रास्तेसे स्टेशनके पूर्वकी ओर-स्थित 'मगलहाट' गाँवसे प्राय दो मील उत्तर 'कानाइ नाटचशाला'* नामक गाँव है। यह गाँव एक छोटी पहाडीपर बसा है। पूर्वकी ओर विष्णुपादोद्भवा पतितपावनी जाह्नवी प्रवाहित हो रही है। चारो ओर हरे-भरे बन सुशोभित हो रहे हैं, बनके पुष्पोपर मधुलोभी भ्रमर मधुर गुजार कर रहे हैं, नाना प्रकारके खग-मृग बनभूमिको मुखरित करते हुए निर्जनताके बीच एक स्वाभाविक एकतानके भावकी सृष्टि कर रहे है।

वह स्थान अकिचन भजनानन्दी जनोके लिये जिस प्रकार भजनके अनुकूल और उद्दीपक है, उसी प्रकार प्राकृत विराट्-रूपमें मोहग्रस्त

* स्थानीय लोग इसको 'कन्हैयाका थान' कहते है।

लोगोकी भाव-प्रवणताके लिये भी सहायक है। पहाड़ीके ऊपर एक मन्दिर और सेवकोके लिये वास-गृह है। उस श्रीमन्दिरमें श्रीश्री-राधाकृष्णकी युगल मूर्त्ति विराजमान है। इस श्रीश्रीराधा-कन्हाईकी नाट्यशालासे ही इस स्थानका नाम 'कानाइ-नाटचशाला' पड़ा है। गंगाके दूसरे किनारे जिस प्रकार श्रीश्रीराधारमण श्रीरामका केलिस्थान 'रामकेलि' है, उसी प्रकार गंगाके इस पार भी श्रीकृष्णका केलि-स्थान 'कानाइ-नाटचशाला' है।

अंग्रेजी सन् १९२९ ई० की १२वी अक्तूबरको श्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामि-प्रभुपादने 'कानाइ-नाटचशाला'में श्रीचैतन्यदेवके 'पादपीठ' की स्थापना की है।

सड़सठवाँ परिच्छेद

श्रीरघुनाथ दास

हुगली जिलेके अन्तर्गत 'त्रिश-विघा' रेलवे स्टेशनके पास सर-स्वती नदीके किनारे 'सप्तग्राम' नामक नगरके अन्तर्गत 'श्रीकृष्णपुर' ग्राममें 'हिरण्य' और 'गोवर्द्धनदास' निवास करते थे। इनकी राज-प्रदत्त उपाधि थी—'मजुमदार'। ये लोग कायस्थ-कुलोत्पन्न विशेष सम्भ्रान्त धनाढ्य व्यक्ति थे। इनकी वार्षिक खजानेकी आय उस समयकी बारह लाख मुद्रा थी। अनुमानत १४१६ शकाब्दमें श्री-रघुनाथ दास गोवर्द्धन मजुमदारके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे।

हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुरके कृपापात्र थे। जब श्रीरघुनाथ श्रीबलराम आचार्यके घर अध्ययन करते थे, तभी श्रीरघुनाथको श्रीठाकुर हरिदासका सग प्राप्त हुआ। जिस क्षण श्रीरघुनाथने श्रीगौरसुन्दरका नाम सुना, उसी क्षणसे उनके दर्शनके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीरघुनाथने कई बार पुरी भागनेकी चेष्टा की। परन्तु गोवर्द्धन दासने नाना प्रकारसे उसमें बाधाएँ उपस्थित की। एकमात्र पुत्र और विपुल ऐश्वर्यके भावी उत्तराधिकारी श्रीरघुनाथको ससार-साँकलमें बाँधनेके लिये गोवर्द्धन दासने एक परम-रूप-लावण्यवती कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया, परन्तु रघुनाथ किसी प्रकारसे भी शान्त नही हुए।

श्रीगौरसुन्दर दूसरी बार श्रीवृन्दावन जानेका उद्योग करके नीलाचलसे कानाइ नाटचशाला तक आये तथा श्रीवृन्दावन जानेकी चेष्टा छोडकर पुन शान्तिपुर श्रीअद्वैतके घर लौट गये। सन्यासके बाद श्रीचैतन्यदेव यह दूसरी बार 'शान्तिपुर' आये। यह समाचार सुनकर रघुनाथ शान्तिपुरमें जा पहुँचे। पुत्र कही सन्यासी न हो जाय,—इस डरसे गोवर्द्धन दास श्रीरघुनाथके साथ बहुतसे आदमियोको भेजा।

श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घर इस बार सात दिन रहे। श्रीरघुनाथकी अवस्था देखकर श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—"रघुनाथ, तुम पागलपन मत करो, स्थिर होकर घर लौट जाओ। मनुष्य धीरे-धीरे ही इस ससारको पार कर सकता है। लोगोको दिखलानेके लिये 'मर्कट-वैराग्य'* मत करो, हरि-सेवाके लिये अनासक्तभावसे यथायोग्य विषयोको ग्रहण करो। बाहर लौकिक व्यवहार दिखलाकर भीतर परमार्थके प्रति दृढ निष्ठा करो। इससे शीघ्र ही कृष्णकी कृपा प्राप्त होगी।"

---

* मर्कट-वैराग्य—वाह्य वैराग्य। (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

श्रीगौरसुन्दरने अपने नित्यसिद्ध अन्तरंग पार्षद श्रीरघुनाथको लक्ष्य करके हमलोगोंके लिये यह अमूल्य उपदेश दिया है। जो लोग वाह्य-वैराग्यके उच्छ्वासमें तथा नवीन उन्मादमें लोगोंसे सम्मान पानेकी आशासे सामयिक 'फल्गु-वैरागी' सजते हैं, वे उस वैराग्यकी रक्षा अधिक दिनोंतक नहीं कर सकते, शीघ्र ही 'पुनर्मूषिको भव' न्यायसे वैराग्य-च्युत हो जाते हैं। दूसरी ओर एक श्रेणीके लोग 'मर्कट वैराग्य'के निषेधका सुयोग पाकर सदा ही घरमें जमकर 'घर-पागल' बने रहनेको ही 'युक्त वैराग्य' समझते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इन दोनों प्रकारके विचारोंकी सर्वतोभावेन निन्दा की है। श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा यह है कि, कृत्रिम वैराग्य या तपस्यादिसे कभी भी भक्ति प्राप्त
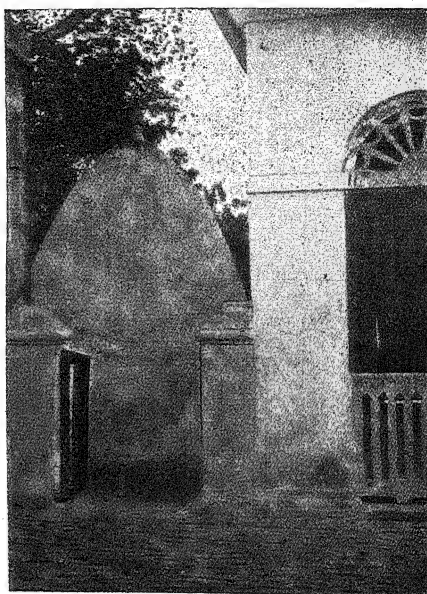
श्रीराधाकुंडमें श्रीरघुनाथ दास
गोस्वामिपादकी समाधि

नही होती। हृदयमें भगवान्‌के प्रति भक्ति उदित होनेपर अन्य विषयोमें वैराग्य अपने-आप आनुषंगिक रूपसे ही प्रकट हो जाता है, उस वैराग्यमें कृत्रिमता नही होती। भक्ति-राज्यमें कृत्रिमताके लिये स्थान ही नही होता।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथसे कह दिया कि, जब वे श्रीवृन्दावनसे नीलाचल लौट आवे, तब श्रीरघुनाथ किसी बहाने आकर उनसे मिलें।

अड़सठवाँ परिच्छेद

श्रीवृन्दावनकी ओर—'झारखंड' के मार्गसे

श्रीकृष्णचैतन्यदेव शान्तिपुरसे श्रीबलभद्र भट्टाचार्य और श्रीदामोदर पडितको लेकर पुरी लौट आये और कुछ दिन पुरीमें रहकर एकमात्र बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर 'झारखड'के* वन-मार्गसे श्रीवृन्दावनकी ओर चल पड़े।

श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए निर्जन अरण्यके बीच चले जा रहे है। झुण्डके झुण्ड बाघ, हाथी, गेंडा, शूकर आदि बन्य और हिंस्र पशुओके बीचमेंसे भी श्रीमहाप्रभुको भावावेशमें चलते देखकर भट्टाचार्यको बडा भय हुआ। परन्तु वे सब हिंस्र पशु श्रीमहाप्रभुका रास्ता छोडकर अपने-अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चले जाने लगे। एक दिन मार्गमें एक बाघ सोया था। चलते-

* वर्तमान आटगढ, ढेंकानल, अंगुल, सबलपुर, लहारा, कियोझड, बामडा, बोनाई, गागपुर, छोटानागपुर, सथाल परगना, यशपुर, सरगुजा—आदि के पहाडी और बडे जगली स्थानको 'झारखण्ड' कहा जाता था।

चलते श्रीमहाप्रभुका श्रीचरण अकस्मात् उस बाघके शरीरपर लग गया। श्रीमन्महाप्रभु भावावेशमें 'कृष्ण-कृष्ण' बोल रहे थे, वह बाघ भी उस समय श्रीमहाप्रभुका पादस्पर्श प्राप्त कर 'कृष्ण-कृष्ण' बोल-कर नाचने लगा। दूसरे एक दिन महाप्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे, उस समय मतवाले हाथियोका एक झुण्ड उसी नदीमें पानी पीनेके लिये आया। श्रीमहाप्रभुने 'कृष्ण बोलो' कहकर उन हाथियोके ऊपर जल फेंका, जिसके शरीरपर वह जल-कण लगा, वही उस समय 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर प्रेमसे नाचने लगा। यह सब देख-सुनकर बलभद्र भट्टाचार्य चकित हो उठे। रास्तेमें चलते समय महाप्रभु कृष्ण-सकीर्तन करते और उनकी मधुर कण्ठध्वनि सुनकर कान उठाये मृगागनाएँ उनके पास दौड आती। श्रीमहाप्रभु उनके शरीरको सहलाते हुए श्रीमद्-भागवतका श्लोक पढने लगते। बाघ और मृग परस्पर हिंसा भूलकर एक सग महाप्रभुके साथ चलते। इन सब दृश्योसे वृन्दावन-स्मृति उद्दीप्त हो जानेके कारण श्रीमहाप्रभु श्रीमद्भागवतके श्लोकोका उच्चारण करने लगते। वे जब, 'कृष्ण कृष्ण बोलो' कहते, तब बाघ और मृग एक साथ नाचने लगते, कभी परस्पर आलिगन करते तो कभी एक दूसरेका मुख-चुम्बन करते थे। मोर आदि पक्षिगण श्रीमहाप्रभुको देखकर कृष्णनाम बोलते-बोलते नृत्य करते। जब श्रीमहाप्रभु उच्च स्वरसे 'हरिबोल' कहते थे तो वृक्ष-लताएँ भी उस ध्वनिको सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित होती। झारखण्डके समस्त स्थावर और जगम श्रीगौरसुन्दरकी प्रेम-बाढमें आप्लावित हो गये। श्रीमहाप्रभु जिस ग्राममें-से होकर जाते थे, जहाँ ठहरते थे, उन सभी जगहोके लोगोमें प्रेमभक्ति प्रकट हो जाती थी। एक दूसरे के मुँहसे, दूसरा तीसरेके मुँहसे—इस प्रकार कृष्णनाम सुनते-सुनते वहाँके सभी लोग वैष्णव हो गये। श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके प्रभावसे ही सब लोग वैष्णव होने लगे। श्रीमहाप्रभु जब झारखड के मार्गसे चले जा रहे थे, उस समयकी उनकी अवस्थाका वर्णन सुनिये,—

बन देखि' भ्रम हय—एइ 'वृन्दावन' ।
शैल देखि' मने हय,—एइ 'गोवर्धन' ॥
याहाँ नदी देखे, ताहाँ मानये 'कालिन्दी' ।
महाप्रेमावेशे नाचे, प्रभु पडे कान्दि' ॥

—चै० च० म० १७।५५-५६

[बन देखकर भ्रम होता—यह वृन्दावन है। पर्वत देखकर मनमें आता—यह गोवर्द्धन है। जहाँ नदी देखते, वहाँ समझते—यह यमुना जी हैं। प्रभु महान् प्रेमावेगमें नाचते और रो पडते ।]

श्रीमहाप्रभु महाभागवतकी लीला प्रकट करके सर्वत्र श्रीकृष्ण-भोग्य उपकरणोको देखकर व्रजभावसे उद्दीप्त होने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य झारखडके वनपथमें कभी-कभी जगली शाक, फल, मूल चयन करके वन्य-व्यजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराते थे, कभी-कभी दो-चार दिनोके लिये अन्न तैयार करके साथ रख लेते थे। पहाडी-स्रोतोके उष्णजलमें श्रीमहाप्रभु तीनो समय स्नान करते थे, प्रात. एव सायकाल जगली लकडियोकी आग तापकर शीत दूर करते थे।
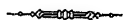
उनहत्तरवां परिच्छेद्

प्रथम बार 'काशी' और 'प्रयाग'में

झारखण्डके वनमार्गसे चलते-चलते श्रीचैतन्यदेव बलभद्र भट्टाचार्यके साथ 'काशी'में जा पहुँचे। वहाँ 'मणिकर्णिका' घाटपर स्नान कर, श्रीविश्वेश्वर और श्रीविन्दुमाधवके दर्शन करके उन्होनें काशीवासी वैष्णव श्रीतपन मिश्रके घर पदार्पण किया। श्रीतपन मिश्रके पुत्र श्रीरघुनाथ (जो पीछे श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके नामसे परिचित हुए)

को उस समय श्रीमहाप्रभुकी चरण-सेवा तथा उच्छिष्टादि ग्रहण करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। श्रीमहाप्रभुने इस बार केवल चार दिन 'काशी' में अवस्थान किया। तपन मिश्र और एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणने श्रीमहाप्रभुके पास मायावादके हलाहलसे प्लावित काशीकी दुर्दशा तथा काशीके मायावादी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीके द्वारा श्रीमहाप्रभुके प्रति दोषारोपणके विषयमें निवेदन करके विशेष दुःख प्रकट किया। श्रीमहाप्रभुने मायावादियोंकी दुर्दशाका वर्णन कर

काशीमें श्रीचन्द्रशेखर-भवन ; वर्तमान
नाम चैतन्य-वट या यतन-वट
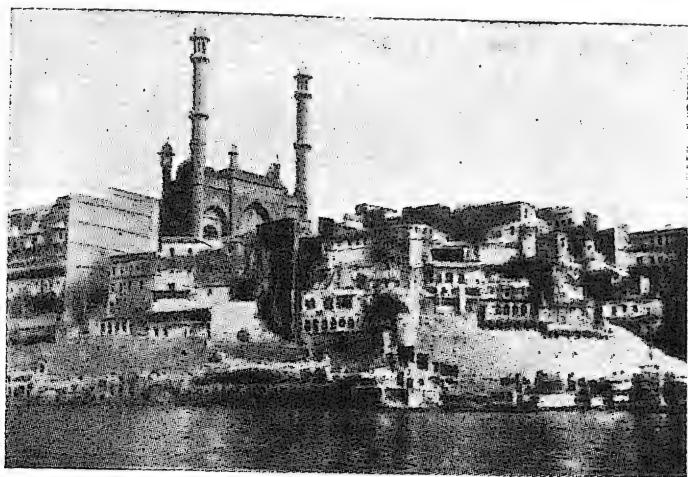
पंचगंगा और श्रीविन्दुमाधवकी ध्वजा
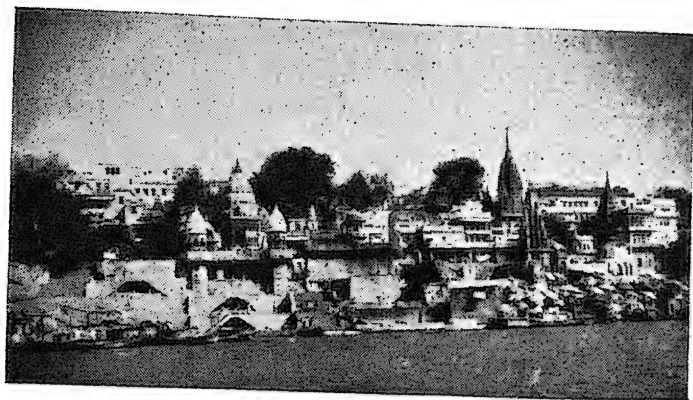
काशीमें मणिकर्णिका-घाट

उस समय मायावादियोकी उपेक्षा की। श्रीमहाप्रभु बोले,—"श्रीकृष्ण-चरणमें अपराधी मायावादियोके मुँहसे श्रीकृष्ण-नाम नही निकलता। इसी कारण वे, 'ब्रह्म', 'आत्मा', 'चैतन्य', प्रभृति शब्दोका उच्चारण किया करते हैं। वस्तुत श्रीकृष्णका नाम और श्रीकृष्णका स्वरूप अर्थात् देह—दोनो एक ही वस्तु है।"

श्रीमहाप्रभु उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मणपर कृपा करके 'प्रयाग' चले गये। प्रयागमें भी केवल तीन दिन रहकर श्रीकृष्णनाम-प्रेम वितरण किया और लोकोद्धार करते हुए श्रीमथुराजीमें आ उपस्थित हुए। दाक्षिणात्यकी भाँति पश्चिम-देशमें भी श्रीमहाप्रभुने सब लोगोको वैष्णव बनाया।

सत्तरवां परिच्छेद

श्रीमथुरा और श्रीवृन्दावनमें

श्रीमन्महाप्रभुने मथुराके निकट पहुँचकर श्रीधाम-मथुराको देखते ही साष्टाग दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीमथुरामें आकर 'श्रीविश्राम-घाट' पर स्नान करके श्रीकृष्णके जन्म-स्थानमें 'आदिकेशव'के दर्शन किये। उस समय एक ब्राह्मण वहाँ आकर श्रीमहाप्रभुके अनुगत हो प्रेमावेशमें नृत्य, गान करने लगे। श्रीमहाप्रभुने निर्जनमें उन ब्राह्मणका परिचय पूछकर जान लिया कि वे श्रीमाधवेन्द्र पुरीके शिष्य है। श्रीमाधवेन्द्र पुरीने श्रीमथुरामें आकर उक्त ब्राह्मणके घर उन्हीके हाथके पकाये अन्नको ग्रहण किया था। वह ब्राह्मण सनोढिया* ब्राह्मणकुलमें आविर्भूत हुए थे। याजन-दोषसे पतित

* सनोढ-शब्दसे सुवर्ण-वणिकका बोध होता है। उनके याजक ब्राह्मण ही सनोढिया (वर्ण) ब्राह्मणके नामसे पुकारे जाते हैं।
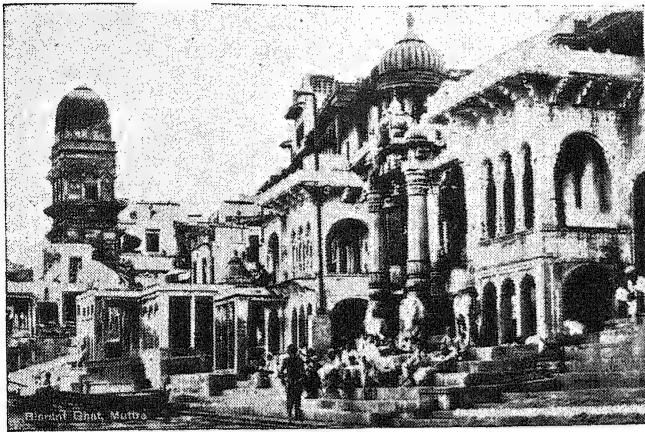
श्रीमथुरामें विश्राम-घाट

होनेके कारण ही इनके घर संन्यासी लोग कभी भी भोजन नहीं करते ; परन्तु श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादने जिनको शिष्य बनाकर जिनके हाथके बनाये अन्नको स्वीकार किया, वह व्यक्ति साधारण सामाजिक जातिकुलके अन्तर्गत नहीं रहे। श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीपादके आचरणका अनुसरण करते हुए उन सनोढ़िया ब्राह्मणके घर भोजन ग्रहण किया। महापुरुष और गुरुजनोंके आदर्शका अनुसरण करना ही कर्तव्य है—इसी वैष्णव आचारकी शिक्षा श्रीमहाप्रभुने इस लीलाके द्वारा दी है। साधु पुरुषोंका व्यवहार ही सदाचार है ।

जो लोग समझते हैं, —श्रीमहाप्रभु आधुनिक जातिभेद-वर्जनके प्रवर्त्तक थे ; अथवा जो यह समझते हैं कि वे यथार्थमें परमार्थी लोगोंके सम्बन्धमें भी जाति-विचार करते थे; यह दोनों ही प्रकारका भ्रम श्रीमहाप्रभुके इस आदर्शके द्वारा दूर हो जाता है। श्रीमहाप्रभु जहाँ एक ओर अपारमार्थिक लोगोंकी व्यावहारिक जाति-भेद-प्रथाके उठाने या न उठानेके प्रश्नपर पूर्णतया निरपेक्ष थे, उसीप्रकार दूसरी ओर

अपारमार्थिक तथाकथित ब्राह्मण सन्तानके हाथकी बनायी हुई कोई भी चीज उन्होंने कभी भी ग्रहण नहीं की। उन्होंने पारमार्थिक ब्राह्मण के हाथकी बनायी हुई वस्तु ग्रहण की है। श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी अन्यान्य घटनाओंकी आलोचना के प्रसंगमें भी इसके बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमथुराके "चौबीस घाटों'पर स्नान किया। श्रीमाधवेन्द्र पुरीके शिष्य उपर्युक्त सनोढ़िया ब्राह्मणके साथ श्रीमन्महाप्रभुने श्रीव्रजमंडलके द्वादश बनोंमें भ्रमण कर समस्त लीला-स्थानोंके दर्शन किये। 'आरिट्'-ग्राममें जहाँ अरिष्टासुरका बध हुआ था,

श्रीकृष्णके जन्मस्थानमें प्राचीन
ध्वंसावशेष (श्रीमथुरा)

वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभुने वहाँके लोगोंसे पूछा कि, 'श्रीराधाकुण्ड कहाँ है।' परन्तु कोई भी नहीं बता सका। साथवाले सनोढ़िया ब्राह्मण भी इसे नहीं जानते थे। इससे, वह तीर्थ गुप्त हो गया है, यह जानकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीगौरसुन्दरने निकटके दो धानके खेतोमें जहाँ थोड़ा-

श्रीराधाकुंडके इस स्थानपर महाप्रभुने उपवेशन
किया था ऐसा प्रसिद्ध है। इस स्थानपर
श्रीचैतन्यदेवका एक पादपीठ है
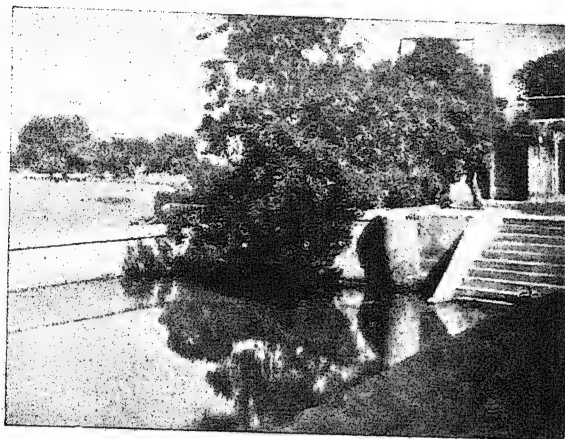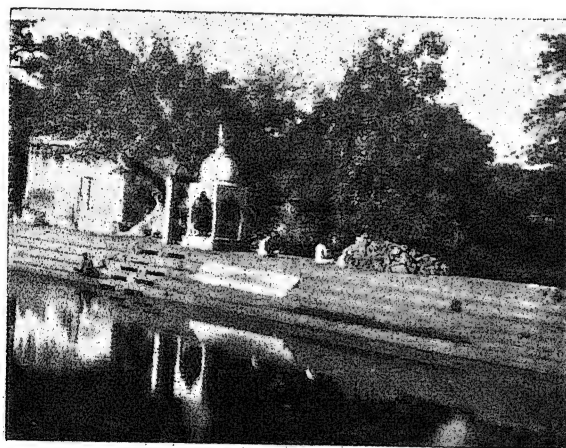
'श्रीश्यामकुंड' और 'श्रीराधाकुंड'का
मिलन-स्थान

थोड़ा पानी था, वहीं स्नान किया और यह बतला दिया कि वे धानके खेत ही 'श्रीराधाकुण्ड' और 'श्रीश्यामकुण्ड' हैं।

बहुधा हमलोग साधारण पुरातत्व-विद्याके बलपर भगवान्के गुप्त धाम और तीर्थोंके निरूपणकी चेष्टा करते हैं तथा उस विषयमें नाना प्रकारके तर्क उठाया करते हैं, परन्तु भगवान् श्रीगौरसुन्दरने दिखला दिया कि, गुप्त अप्राकृत तीर्थोंका आविष्कार वस्तुतः केवल श्रीभगवान् और उनके अनन्य अन्तरंग भक्त ही कर सकते हैं। यह बात हमारी साधारण विद्या-बुद्धिके लिये बोधगम्य न होनेपर भी यही परम वास्तविक सत्य है।

श्रीगौरसुन्दरने श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्डका आविष्कार करके 'श्रीगोवर्द्धन'में 'श्रीहरिदेव'के दर्शन किये। श्रीगोवर्द्धन भगवान्

श्रीगिरिराज श्रीगोवर्द्धन

श्रीकृष्णके अंग हैं—इस प्रकार विचार कर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीगोवर्द्धन पर जाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके द्वारा प्रतिष्ठित 'श्रीगोपाल'विग्रहके दर्शन न करनेकी बात मन-ही-मन स्थिर कर ली। श्रीगोपालदेव म्लेच्छोंके भयके बहाने श्रीगोवर्द्धन-पर्वतसे उतरकर 'गाठोलि' ग्राममें आ गये। श्रीमन्महाप्रभुने वहाँ जाकर श्रीगोपालदेवके दर्शन किये थे।

श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीनन्दीश्वर', 'पावन-सरोवर', 'श्रीशेषशायी', 'मेलातीर्थ', 'भाण्डीरवन', 'भद्रवन', 'लौहवन', 'महावन' और 'श्रीगोकुल' आदिके दर्शन करके श्रीमथुरा लौट आये। श्रीकृष्णके लीला-समयके प्रसिद्ध 'चीरघाट'पर इमलीके पेड़के तले बैठकर श्रीमहाप्रभु दोपहरतक नाम-संख्या पूरी करते थे और सबको श्रीनाम-कीर्तनका उपदेश देते थे। अक्रूर-तीर्थमें श्रीकृष्णदास नामक किसी एक राजपूत
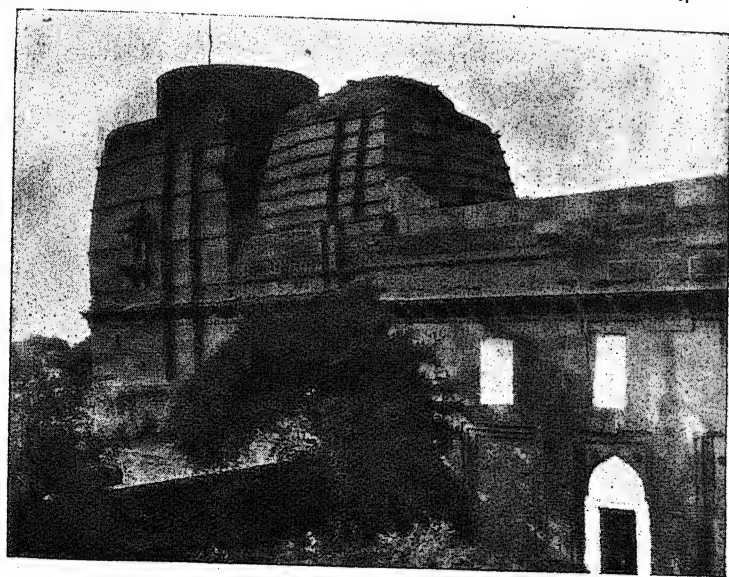
श्रीगोवर्द्धनपर श्रीहरिदेवका मंदिर

पर श्रीमहाप्रभुने कृपा की। श्रीकृष्णदास उसी समयसे संसारके प्रति उदासीन होकर श्रीमहाप्रभुका कमण्डलु ले चलनेवालेके रूपमें उनके नित्य संगी हो गये।

रातको एक मछुआ 'कालियह्लद'में नावपर चढ़कर मछली पकड़ा करता था। उसकी नावमें दीपक जला करता था। साधारण ग्रामीण लोगोंने दूरसे उसे देखकर समझा कि कालियह्लदमें कालियनागके सिरपर श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं। मूढ़ लोगोंको उस समय नावसे 'कालियनाग' का, दीपकसे उस नागके सिरकी 'मणि'का और काले रंगके मछुएसे 'श्रीकृष्ण'का भ्रम हो गया था। उन्होंने एक अफवाह फैला दी कि, श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्णका पुनः आविर्भाव हो गया है। सरस्वतीदेवीने
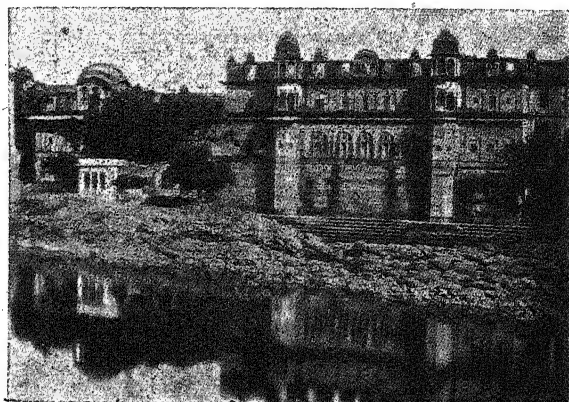
श्रीमानसी-गंगा

उनके मुखसे सच्ची बात ही कहलायी थी, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण श्री-गौरहरि उस समय श्रीवृन्दावनमें ही विराजमान थे। परन्तु लोग यथार्थ कृष्णको नहीं पहचान सके; उनको एक मछुएमें श्रीकृष्णका भ्रम हो रहा था। अज्ञ और मूढ़ जनता भेड़ियाधसानकी भाँति अपनी विचारबुद्धिको बहाकर जनमतको ही सत्य मान लेती है। स्वयं

श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण-चैतन्यके साथ रहनेपर भी सरलबुद्धि बलभद्र भट्टाचार्यको यह अफवाह सुनकर उस अफवाहके 'कृष्ण' (?) को देखनेकी इच्छा हुई ; परन्तु श्रीमहाप्रभुने सरलबुद्धि भट्टाचार्यके भ्रमको दूर करके कहा,—"तुम पंडित हो। क्या तुम भी मूर्खोंकी बातमें पड़कर मूर्ख हो गये हो ?"
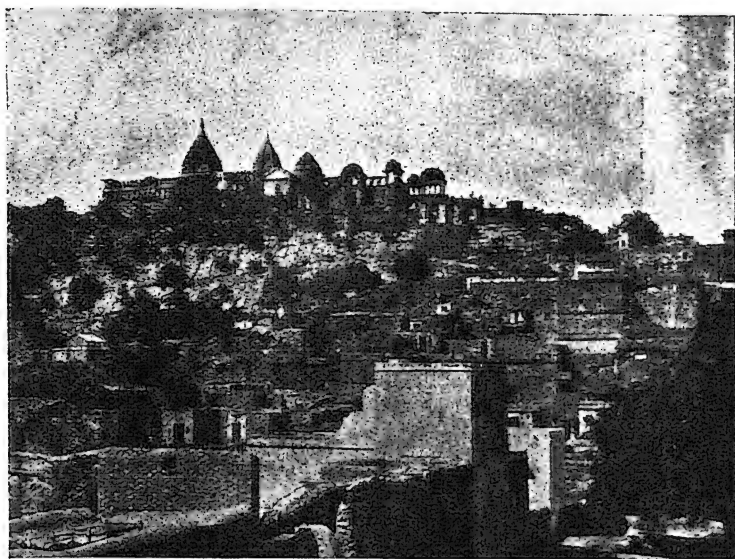
श्रीनन्दग्राम

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ लोगोंने—श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उसका सच्चा रहस्य बताया। उनमेंसे किसी-किसीने श्रीमहाप्रभुको कृष्ण समझकर जब वन्दना की तब श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—"ईश्वर-तत्व और जीव-तत्व कभी भी एक नहीं हैं। ईश्वर-तत्व मानो विशाल ज्वलन्त अग्निस्वरूप है और जीव-तत्व उस अग्निकी चिनगारीके छोटे कणके समान है। मूढ़तावश ईश्वर और
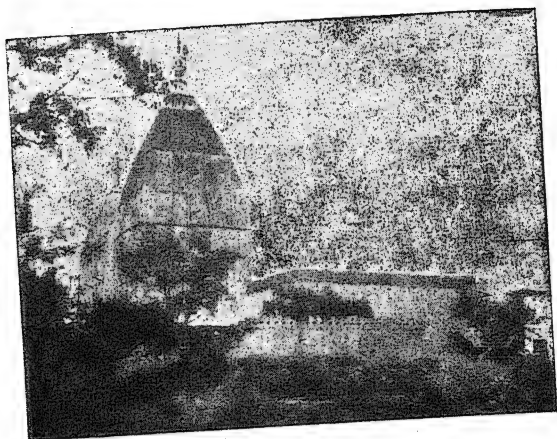
श्रीवर्षाणामें श्रीराधारानीका श्रीमंदिर

श्रीसंकेत (व्रजमें)

जीव 'एक' कहनेसे अपराध होता है और उस अपराधके फलसे यमदण्ड भोगना पड़ता है ।*

एक प्रकारके लोग कहा करते हैं कि—"श्रीचैतन्यके अभक्तलोग, जो श्रीचैतन्यदेवको 'परमेश्वर' नहीं कहते, यह उनकी निजी कल्पना नहीं है, श्रीचैतन्यदेवकी अपनी उक्तिके बलपर ही वे इस प्रकार कहने
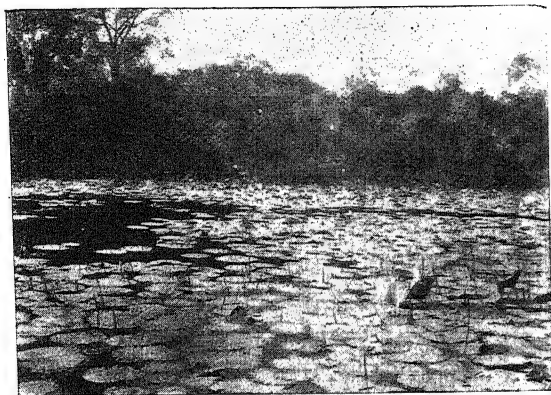
श्रीकाम्यवन (व्रजमंडल)

का साहस करते हैं; परन्तु इस प्रकारके लोग थोड़े-से गंभीर और निरपेक्षरूपसे विचार करके देखेंगे तो वे समझ सकेंगे कि मायावादी-सम्प्रदाय और उनके अनुयायी साधारणलोग जो 'जीव'को 'ब्रह्म' कहा करते हैं, उसका खण्डन करना ही लोक-शिक्षक श्रीमहाप्रभुकी इस उक्तिका वास्तविक उद्देश्य है ।

---

* चै० च० म० १८।११३–११५

इकहत्तरवां परिच्छेद

'पठान-वैष्णव'

श्रीवृन्दावनमें श्रीमन्महाप्रभुका अत्यधिक प्रेमोन्माद देखकर श्रीबल-भद्र भट्टाचार्यने श्रीमहाप्रभुको व्रजमण्डलसे 'प्रयाग' ले जानेका सकल्प किया। 'सोरोक्षेत्र'में गगास्नान करके प्रयाग जायँगे, ऐसा निश्चय करके राजपून श्रीकृष्णदास, श्रीमथुराके सनोढिया ब्राह्मण, बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी दूसरे एक ब्राह्मणने श्रीमन्महाप्रभुको साथ लेकर यात्रा की। रास्तेमें गौओका विचरण देखकर और गोपमुखोसे अकस्मात् वशीध्वनि सुनकर श्रीमहाप्रभुकी व्रजलीलाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी और वे प्रेमसे मूर्छित हो गये। इसी समय वहाँ दस घुड-सवार पठान आ पहुचे। उन लोगोने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकार मूर्छित देखकर सन्देह किया कि इस मूर्छित सन्यासीके साथियोने सन्यासीका अर्थादि छीन लेनेके लिये सन्यासीको धतूरा खिलाकर बेहोश कर दिया है। उनके सरदार 'बिजली खाँ'ने इस सन्देहको जताकर श्रीमहा-प्रभुके साथियोको बाँध लिया। श्रीमहाप्रभुको वाह्य-चेतना होनेपर बिजली खाँके दलके एक मौलानाके साथ प्रभुकी कुछ बातचीत और शास्त्रालोचना हुई। श्रीमन्महाप्रभुने कुरानशरीफसे ही कृष्णभक्तिकी स्थापना की—

तोमार शास्त्रे कहे शेषे 'एकइ ईश्वर'।
'सर्वैश्वर्य-पूर्ण तेंहो श्याम-कलेवर'॥

—चै० च० म० १८।१९०

[तुम्हारा शास्त्र कहता है कि अन्तमें 'एक ही ईश्वर है', वह सर्वैश्वर्यपूर्ण तथा श्याम कलेवर है।]

उक्त मौलाना साहब श्रीमहाप्रभुके शरणागत हो गये तब श्रीमहा-प्रभुने उनका सस्कार सम्पादन करके 'रामदास' नाम रक्खा। बिजली खाँ

और उनके अनुगत घुडसवार सभी श्रीमहाप्रभुके चरणोका आश्रय लेकर श्रीकृष्णभक्त और 'पठान वैष्णव'के नामसे विख्यात हुए और बिजली खाँकी 'महाभागवत'के नामसे ख्याति हुई।*

बहत्तरवां परिच्छेद

पुनः प्रयागमें—'श्रीरूप-शिक्षा'

सोरोक्षेत्रमें गगास्नान करके श्रीमहाप्रभु प्रयागमें त्रिवेणीपर आये और वहाँ दबीरखास (श्रीरूप) और अनुपम मल्लिक (श्रीबल्लभ) से उनकी भेंट हो गयी।

रामकेलि-ग्राममें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके बादसे ही दबीरखास (श्रीरूप) और साकर मल्लिक (श्रीसनातन) दोनो ही विषय-त्यागके लिये नाना प्रकारके उपाय सोचने लगे। अन्तमें दबीरखास चतुराईसे हुसेनशाहका काम छोडकर बहुतसे धन-रत्नोके साथ अपने घर 'फतेहा-बाद'में आ गये और उस धनका आधा हिस्सा ब्राह्मण-वैष्णवो को और एक चौथाई आत्मीय-स्वजनोको बाँट दिया, शेष एक-चौथाई अपनी भावी विपत्तिके टालनेके लिये रख लिया। गौडदेशमें श्रीसनातनके पास दसहजार रुपये रख दिये। श्रीरूपको पता लगा कि श्री-महाप्रभु पुरी गये हुए हैं और वहाँसे श्रीवृन्दावन जायँगे। श्रीरूपने श्रीमहाप्रभुके श्रीवृन्दावन जानेकी निश्चित तिथि जाननेके लिये शीघ्र ही एक दूत भेजा।

इधर सनातन राजकार्यसे अवसर ग्रहण करनेके लिये शारीरिक अस्वस्थताका बहाना करके अपने घर श्रीमद्भागवतकी आलोचना

*चै० च० म० १८।२११-२१२

करते थे। अचानक एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और श्रीसनातनको इस अवस्थामें पाकर उनको कारागारमें बन्दी कर दिया। श्रीरूपके भेजे हुए दूतने आकर श्रीसनातनको श्रीमन्महाप्रभुकी श्रीवृन्दावन-यात्राका समाचार दिया। श्रीरूपने तब एक पत्र श्रीसनातनको लिखकर जताया कि, वे और अनुपम श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये जा रहे हैं, अतएव आप शीघ्र-से-शीघ्र किसी-न-किसी उपायसे श्रीमहाप्रभुके पास चले आवे।

श्रीरूप और श्रीअनुपम श्रीचैतन्यदेवसे मिलनेके लिये चलते-चलते प्रयाग पहुँचे, वहाँ श्रीमन्महाप्रभु आये हैं, यह सुनकर उनको बडा आनन्द हुआ और एक दिन श्रीमहाप्रभु जब भिक्षार्थ एक दक्षिण-देशीय वैष्णव-ब्राह्मणके घर गये, तब दोनो भाइयोने अकेलेमें श्रीमहाप्रभुसे भेंट करके अत्यन्त दीनतापूर्वक श्रीमहाप्रभुसे कृपाकी याचना की। तदनन्तर श्रीरूपने इस श्लोकके द्वारा महाप्रभुको प्रणाम किया,—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ।।

[हे दाताशिरोमणि कृष्णप्रेम-प्रदाता श्रीकृष्णचैतन्य-नामधारी गौर-कान्ति श्रीकृष्ण ! तुमको नमस्कार है ।]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपसे श्रीसनातनके विषयमें पूछा। तब श्रीरूपने कहा कि, श्रीसनातन-प्रभु कारागारमें बन्दी हैं। श्रीमहाप्रभु बोले,— "सनातन बन्धनमुक्त हो गया है। शीघ्र ही मेरे पास आयगा।"

उस दिन मध्याह्नके समय श्रीरूप और श्रीअनुपम दोनो ही श्रीमहाप्रभुके पास रहे। त्रिवेणीके ऊपर श्रीमहाप्रभुके वासस्थानके समीप ही श्रीरूप और श्रीअनुपमने डेरा डाला। इसी समय श्रीवल्लभ भट्ट (जो आगे चलकर 'श्रीवल्लभाचार्य' के नामसे विख्यात हुए) 'आडाइल' ग्राममें* रहते थे। श्रीमहाप्रभुके प्रयाग-आगमनका समाचार सुनकर

---

* आडाइल-ग्राममें श्रीवल्लभाचार्यकी 'बैठक' या 'गद्दी' अब भी

वल्लभ भट्ट उनके दर्शन करने आये और दण्डवत्-प्रणाम करके बहुत-सारी हरिकथाएँ श्रवण कीं। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरसुन्दरको निमंत्रित कर यमुनाके दूसरे पार आड़ाइल ग्राममें अपने घर ले जाकर भोजन कराया तथा सपरिवार उनका चरणोदक लिया तथा उनकी पूजा की; तब श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय करा दिया। वहाँ मिथिला-निवासी श्रीमद् रघुपति उपाध्यायके साथ श्रीमहाप्रभुका बहुत-सा रसालाप हुआ।
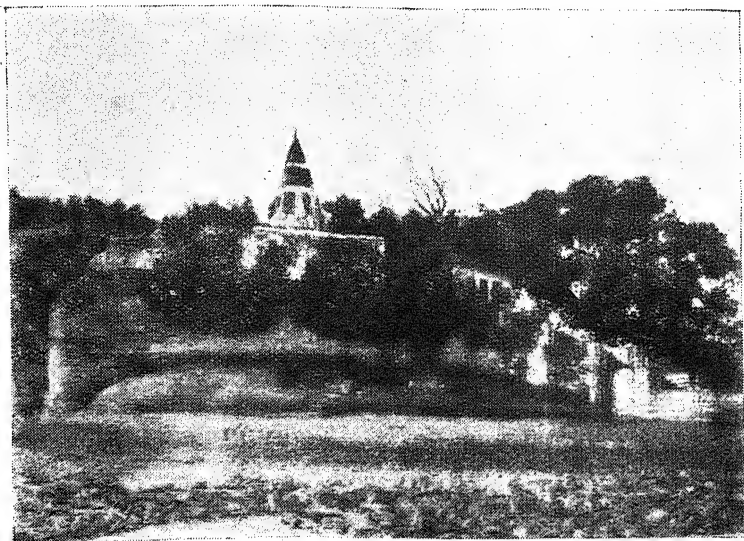
आड़ाइल ग्राममें श्रीनृसिंहदेवका श्रीमंदिर

वर्तमान है। जहाँ यह गद्दी है, उस मुहल्लेका नाम है 'देवरख'। 'देवरख'—'नैनी' स्टेशनसे ढाई मील है। जो लोग प्रयागसे इस स्थानके दर्शन करने आते हैं उनको यमुना पार होना पड़ता है।

श्रीवल्लभ भट्टने अपने पुत्रको श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें समर्पण किया तथा श्रीमहाप्रभुका प्रेमोन्माद देखकर वे उनको प्रयाग ले गये।

श्रीमहाप्रभुने प्रयागमें दस दिन रहकर 'दशाश्वमेध घाट' पर निर्जनस्थानमें श्रीरूपको शक्ति-संचारपूर्वक सूत्ररूपमें भक्तिरसके समस्त तत्वोंकी शिक्षा दी तथा इसी सूत्रका अवलम्बन करके 'श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु' नामक ग्रन्थकी रचना करनेका आदेश दिया।

'श्रीरूप-शिक्षा'का संक्षेपमें तात्पर्य यही है कि,—चौदहों ब्रह्माण्डोंमें अनन्त बद्धजीव चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। जीवोंमें स्थावर और जंगम—दो प्रधान श्रेणियाँ हैं। जंगम जीव तीन प्रकारके
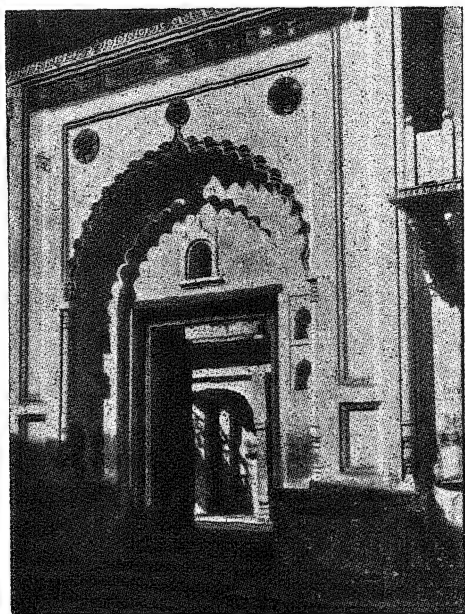
श्रीप्रयागमें श्रीवेणीमाधवके श्रीमंदिरका वहिर्द्वार

हैं,—जलचर, स्थलचर और नभचर। इनमें स्थलचर ही श्रेष्ठ हैं। स्थलचरोंमें मानव-जाति सर्वश्रेष्ठ है। मानव-जातिकी संख्या अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ी है। मनुष्योंमें असभ्य, सदाचारहीन और नास्तिक बहुत हैं। जिनको सदाचारी और वेदानुगामी कहा जाता है उनमें भी आधे तो केवल मुँहसे वेद मानते हैं। धार्मिक लोगोंमें अधिक संख्या कर्मियोंकी है, करोड़ों कर्मियोंमें कोई एक ज्ञानी

श्रीप्रयागमें दशाश्वमेध घाटपर 'श्रीरूप-शिक्षास्थली'

होता है। करोडो ज्ञानियोमे कोई एक मुक्त-पुरुष मिलता है। इस प्रकार कोटि मुक्त-पुरुषोमे एक श्रीकृष्णभक्त मिलना बहुत ही दुर्लभ है। श्रीकृष्णभक्त निष्काम होते है, अतएव शान्त होते है। कर्मी हो, ज्ञानी हो या योगी हो—ये सबके सब किसी-न-किसी प्रकारसे आत्म-सुख (धर्म, अर्थ, काम और कुछ नही तो मुक्ति)के लिये कुछ-न-कुछ वासना करते है। अतएव वे अशान्त होते है। इनमें कोई भी श्री-भगवान्के सुखका अनुसन्धान (चिन्ता, ध्यान) नही करते।

जीवका स्वरूप अति सूक्ष्म है, सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त जीव चित्कण है अर्थात् जीवशक्तिविशिष्ट ब्रह्मका अणु या कण है। वर्तमान स्थूल-देह (पाचभौतिक शरीर) तथा सूक्ष्मदेह (मन, बुद्धि और अहकार), इन दो आवरणोसे वहिर्मुख जीवका नित्य स्वरूप आवृत है। इस प्रकार चौदहो ब्रह्माण्डोमें चौरासी लाख योनियोमें बार-बार भ्रमण करते-करते जीवका जब भगवान्की इच्छासे बन्धनसे छूटनेका समय आता है, तब कोई भी जीव अकस्मात् कोई साधुसग या साधु-सेवा करके परम सौभाग्य प्राप्त कर सकता है, तभी वह भाग्यवान् जीव सद्गुरुका अनुसन्धान तथा श्रीकृष्णकृपाके वाहन सद्गुरुके द्वारा भक्तिलताका बीज प्राप्त करता है। उस बीजको वह साधक जीव मालीकी भाँति अपने हृदय-क्षेत्रमें रोपता है तथा साधु-गुरुके मुँहसे भग-वान् श्रीकृष्णकी कथाका निरन्तर श्रवण तथा उसी कथाका अनुकीर्तन-रूप जलसिचन करते हुए भक्तिलताके बीजको अकुरित कर पाता है। वह भक्तिलता क्रमश बढती हुई इसी चौदहो भुवनोकी वस्तुओमें ही आबद्ध नहो रह सकती। ब्रह्माण्डके परे 'विरजा' नामकी एक चिन्मयी नदी है, वहाँ सत्व, रज और तमोगुणका पारस्परिक द्वन्द्व नही है, सभीका शान्त भाव है। विरजाके उस पार 'ब्रह्मलोक' है। निराकारका ध्यान करनेवाले तथा भगवान्के हाथसे मारे गये भगवद्-विद्वेषी लोग इसी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते है। इसके भी ऊपर 'पर-व्योम' या 'वैकुण्ठ' है। वहाँ श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीसीताराम अथवा

श्रीविष्णुके अन्यान्य अवतारोके उपासक लोग श्रीभगवान्‌की साक्षात् सेवा करते है। इसके भी ऊपर है 'श्रीगोलोक वृन्दावन'। वहाँ श्रीकृष्णचरण-कल्पतरु नित्य वर्तमान है। श्रीभक्तिलता उसी कल्पतरु का आश्रय लेती है तब उसमें प्रेमफल लगते है। कल्पतरुसे प्रेमफल फल जाने पर भी भजन करनेवाला माली श्रवण-कीर्तनादिरूप जल-सिचनका कार्य बन्द नही करता, वह अनन्त कालतक श्रवण-कीर्तनादि रूप जल-सिचन करके श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करता रहता है।

इस प्रकार साधन करते-करते यदि अत्यन्त दुर्भाग्यवश किसीके पास श्रीमहत् (महा-भागवत)के श्रीचरणोमें अपराध रूपी मत्त हाथी आकर खडा हो जाता है, तो वह मत्त हाथी उस भक्तिलताको जडसे उखाड फेंकता है, जिससे वह लता सूख जाती है। अतएव साधक मालीका कर्तव्य है कि वह सर्वदा विशेष सावधान रहकर यत्नपूर्वक भक्तिलताके चारो ओर आड लगा दे, जिससे वैष्णवापराधरूप हाथी किसी भी प्रकार भक्तिलताके पास न जा सके।

लताके साथ-साथ यदि उपशाखाएँ (जो देखनेमे लताके समान अर्थात् भक्तिके समान लगती है परन्तु वस्तुत होती है—अवान्तर पदार्थ) उठती रहती है, वे उपशाखाएँ जल-सिचन अर्थात् भजन-साधनके वाह्य अभिनयके द्वारा बढ जाती है। उन उपशाखाओके अनेको प्रकार है—जिनमें भोग-वाछा, मोक्ष-वाछा, शास्त्र-निषिद्ध आचरण, छल-कपट, जीवहिसा, स्त्री, अर्थ-प्रभृति प्राप्त करनेकी तृष्णा, लोगोसे पूजा तथा सम्मान प्राप्तिकी आकाक्षा-प्रभृति प्रधान है। साधकको चाहिये कि पहले इन सारी उपशाखाओको काट डाले। तभी मूल शाखा वृद्धिको प्राप्त होकर श्रीगोलोक-वृन्दावनमें श्रीकृष्णके श्रीचरणरूप कल्प-वृक्षपर आरोहण कर सकेगी।

श्रीकृष्णप्रेमके सामने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तृण-तुल्य है। भोग अथवा मोक्ष प्राप्तिके उद्देश्यसे विभिन्न कामनाओकी पूर्ति करनेवाले देवताओकी पूजा छोडकर एकमात्र लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी सुखानु-

सन्धानमयी भक्ति ही जीवके लिये परम प्रयोजन है। श्रीकृष्णके सुखकी इच्छाके अतिरिक्त किसी प्रकारकी भी अभिलाषामें लगे हुए स्वभावका त्याग करके, ब्रह्मके साथ एकीभूत होनेकी चिन्ता या ज्ञान, स्मृति-वर्णित नित्य-नैमित्तकादि कर्म, फल्गु वैराग्य, योग और साख्य-ज्ञान प्रभृति जो श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानको आवृत करते हैं, उन्हें भी त्याग करके श्रीकृष्णमें अनुरागपूर्ण प्रवृत्तिके साथ जो कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टा और भावमय अनुशीलन है, वही 'उत्तमा या शुद्धा भक्ति' है। इस शुद्धा भक्तिसे 'प्रेमा' उत्पन्न होती है। यदि हृदयमें तनिक भी भोग या मोक्षकी वाछा है तो कोटि-कोटि जन्मोके साधनसे भी कृष्णप्रेमकी प्राप्ति नही होती।

भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था, भावावस्था और प्रेमा-वस्था। प्रेम-भक्ति जब गाढसे गाढतर होने लगती है तब वह स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव पर्यन्त उन्नति करती है।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने विभिन्न रसोके तारतम्य तथा सेवाके गाढतर तारतम्यका वर्णन किया, श्रीरूपप्रभुको प्रयागसे श्रीवृन्दावन भेजकर श्रीमन्महाप्रभुने काशीके लिये गमन किया तथा वहाँ श्रीचन्द्र-शेखरके घरमें रहना स्थिर किया।

तिहत्तरवां परिच्छेद

श्रीकाशीमें 'श्रीसनातन-शिक्षा'

श्रीसनातन जब बादशाह हुसेनशाहके कोप-भाजन होकर कारागार में बन्द थे, उस समय उनको श्रीरूपका एक पत्र मिला। पत्र पानेके बाद श्रीसनातन कारागारके रक्षकको नाना प्रकारकी चिकनी-चुपडी बातोसे फुसलाकर और उसे सात हजार रुपये घूस देकर कैदसे छूट गये तथा नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको पार करते हुए काशीमें श्रीचन्द्रशेखरके घरके द्वार पर जा पहुँचे। अन्तर्यामी श्रीमहाप्रभुने जान लिया कि श्रीसनातन घरके दरवाजेपर आ गये हैं, अतएव उन्हें भीतर बुलाया और उनकी दरवेशी दाढी तथा केशोकी हजामत करवा कर तथा मलिन वेषका जिस बनावटी पोषाकमें वे भागकर आये थे उस पोषाकका त्याग कराकर उन्हें वैष्णवोचित कपडे पहनाये। श्रीसनातनने श्रीचन्द्रशेखरका दिया हुआ नया वस्त्र ग्रहण नही किया और श्रीतपन मिश्रकी दी हुई एक पुरानी धोती लेकर उससे दो बाहरी वस्त्र और कौपीन बना ली। श्रीमन्महाप्रभुके भक्त महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने श्रीसनातनको निमन्त्रित किया कि वे जब तक काशीमें रहें, उनके ही घर प्रतिदिन भोजन किया करे। परन्तु श्रीसनातनने एक स्थानपर भोजन करनेका विचार छोडकर विभिन्न स्थानोसे मधुकरी* भिक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातनके वैराग्यको देखकर आनन्दित हुए। गौडदेशसे भागकर आनेके समय रास्तेमें हाजीपुरमें श्रीसनातनके साथ उनके बहनोई श्रीकान्तकी भेंट हो गयी। शीतका

---

* मधुकर (भ्रमर) जिस प्रकार विभिन्न फूलोसे मधु सचय करके पान करता है, उसी प्रकार निष्किचन भक्तगण एक स्थानपर किसी विषयी या दाताका राजसिक निमन्त्रण स्वीकार न कर विभिन्न घरोसे कुछ-कुछ माँगकर भिक्षा किया करते हैं। यही 'मधुकरी' भिक्षा है।

अत्यन्त प्रकोप देखकर श्रीकान्तने विशेष अनुरोध करके श्रीसनातनको एक भोट कम्बल (भूटान देशका बनाया हुआ कम्बल) दिया। श्रीसनातनके शरीरपर वह भोट कम्बल था। श्रीमहाप्रभु उस कम्बलकी ओर बार-बार देखने लगे। श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुके अभिप्रायको समझकर मध्याह्नमें स्नानके समय गगाके किनारे एक बगदेशीय व्यक्तिको अपना बहुमूल्य भोट कम्बल दे दिया और उसके बदलेमें उसकी एक गुदडी ले ली।

श्रीमहाप्रभुके काशीमें रहते समय श्रीसनातनने उनसे प्रश्न करके जीवके स्वरूप, कर्तव्य और प्रयोजनके सम्बन्धमें जो सारगर्भित उपदेश प्राप्त किया था, वही 'श्रीसनातन-शिक्षा'के नामसे विख्यात है।

'श्रीसनातन-शिक्षा'में श्रीचैतन्यदेवके प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त पाये जाते है। श्रीचैतन्यदेवने अद्वय-तत्व श्रीभगवान्के साथ उनकी शक्ति और शक्ति-परिणत वस्तुओका अचिन्त्य-भेदाभेद-सम्बन्ध बतलाया है। जीवात्मा—जीवशक्ति-विशिष्ट श्रीकृष्णका नित्य दास है। जीव—सूर्यस्वरूप श्रीकृष्णके किरणका कण-स्थानीय है, और सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। किरण-कणको जिस प्रकार स्वय सूर्य नही कहा जा सकता, साथ ही वह जिस प्रकार सूर्यसे सम्पूर्ण भिन्न भी नही है, उसी प्रकार जीव भी साक्षात् श्रीकृष्ण या परब्रह्म नही है, साथ ही वह श्रीकृष्ण या परब्रह्मसे सपूर्ण भिन्न भी नही है। जो सब जीव अनादिकालसे श्रीकृष्णको भूले हुए है, उनके उस भगवद्विस्मृतिरूप छिद्रको पाकर माया उनको आवृत और विक्षिप्त करके इस ससारमें सुख-दु ख देती है।

श्रीकृष्णकी अन्तरगा स्वरूपशक्ति और वहिरगा मायाशक्तिके तट (सीमास्थलमें) पर अवस्थित जीवशक्ति ही 'तटस्था शक्ति'के नामसे प्रसिद्ध है। जीव अणु-चेतन पदार्थ है, चेतनका स्वाभाविक धर्म ही है—स्वाधीनता या स्वतन्त्रता। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति चेतनमात्रमें ही रहती है, परन्तु वह चेतन पूर्ण चेतनका

'अणु-अंश' है, अत उसकी 'अणु-स्वतन्त्रता' है अर्थात् जीवकी स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित है , परन्तु परमेश्वर पूर्ण-चेतन है, अत उनकी स्वतन्त्रता असीम है और मानवीय चिन्तनसे अतीत है, वे स्वेच्छामय स्वराट् है। मायाबद्ध जीवोको कृष्ण-स्मृति-ज्ञान नही। उसके प्रति दया करके श्रीकृष्ण साधु-शास्त्र-गुरुरूपमे अपनेको प्रकट करते है। साधु-शास्त्रकी कृपासे ही श्रीकृष्णको जाननेकी इच्छा होती है। जिस प्रकार लोग ज्योतिषीसे अपने पैतृक धनका पता पाकर ठीक स्थानसे गुप्त धनको निकाल लाते है, उसी प्रकार साधु-शास्त्र और गुरुके द्वारा अपने स्वरूप, कर्तव्य और प्राप्य-वस्तुका पता पाकर उनके उपदेशोके अनुसार साधन करनेपर श्रीगुरु-कृष्णकी कृपासे जीवको प्रेमधनकी प्राप्ति होती है।

श्रीकृष्ण ही परम तत्व है , ब्रह्म श्रीकृष्णकी अंग-ज्योति है। सूर्यको जिस प्रकार हम पृथ्वीसे केवल ज्योतिर्मय देखते है, परन्तु जो लोग सूर्यलोकमे वास करते है या सूर्यके समीप जा पाते है, वे सूर्यको अवयवयुक्त देखते है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके असम्यक् दर्शनसे अर्थात् बाहरी अंगकी ज्योतिमात्रके देखनेपर ऐसी धारणा होती है कि, वे केवल ज्योतिर्मय है। योगीगण जो श्रीकृष्णको परमात्मा रूपमें देखते है, वह भी श्रीकृष्णके सम्बन्धमे आंशिक दर्शन है—वह श्रीकृष्णके वैभवका दर्शनमात्र है।

श्रीकृष्णकी स्वाभाविकी शक्ति अनन्त है, परन्तु उस शक्तिका त्रिविध परिज्ञान मुख्य रूपसे प्रसिद्ध है। प्रथम—उनकी बहिरंगा या अचित्-शक्ति, दूसरी—उनकी अन्तरंगा या चित्-शक्ति, एवं तीसरी—उनकी चित्-अचित्—इन दो शक्तियोके सन्धिस्थलरूप तटपर अवस्थित जीव-शक्ति। अचित् मायाशक्तिसे यह दृश्यमान जड जगत् प्रकट हुआ है, अन्तरंगा शक्तिसे भगवान्के निज धाम और उनके सेवकगण प्रकट हुए है, और तटस्था शक्तिसे जीव-समूह प्रकट हुआ है। भगवान्के साथ जीवका जो सम्बन्ध है, उस ज्ञानका नाम **'सम्बन्ध-ज्ञान'**

है। श्रीभगवान्—'सम्बन्धी' तत्व है। महत्की कृपासे नित्यसिद्ध-भावको हृदयमे प्रकट करना ही 'साधन' है, वही **'अभिधेय'** है। उस साधनका जो चरम उद्देश्य या फल है, वही जीवका **'प्रयोजन'** या प्राप्य-वस्तु है। श्रीकृष्णके साथ जीवका नित्य प्रभु-सेवक-सम्बन्ध है, श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान ही जीवका सबसे प्रधान अभिधेय है, और श्रीकृष्णको सुखी देखकर स्वय सुखानुभव करना ही साधनका फल है, यही **प्रयोजन** या **श्रीकृष्ण-प्रेम** है।

'साधन भक्ति' दो प्रकारकी होती है—'वैधी भक्ति' और 'रागानुगा भक्ति'। जो लोग शास्त्रके शासन या कर्तव्यबुद्धि द्वारा शासित होकर भगवान्की सेवा करनेके लिये साधन करते है, उनके इस साधनको ही **'वैधी भक्ति'** कहते हैं। श्रीव्रज-गोपिकाएँ, श्रीनन्द-यशोदा, श्रीदाम-सुदाम, श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रक प्रभृति व्रजके नित्यसिद्ध सेवकगण अपने स्वाभाविक अनुरागके साथ माधुर्य-विग्रह श्रीकृष्णकी जो सेवा करते है उसे **'रागात्मिका साध्य-भक्ति'** कहते है। उस 'रागात्मिका भक्ति' मे जिनका स्वाभाविक अनुराग या लोभ होता है, वे उन सब व्रज-वासियोके अनुगत होकर श्रीकृष्णकी जो सेवा करते है उसे **'रागानुगा भक्ति'** कहते है।

अन्त करण में आदौ (सर्वप्रथम) 'श्रद्धा'का उदय होनेपर जीव 'साधुसग' किया करता है। साधुसगमें हरिकथा 'श्रवण, कीर्तन' करते करते श्रद्धालु व्यक्तिके हृदयकी नाना प्रकारकी कामना-वासना, दुर्बलता, अपराध, अपने स्वरूपकी भ्रान्ति आदि अनर्थसमूह दूर होते है। इस अवस्थाका नाम है 'अनर्थ-निवृत्ति'। इसके बाद 'निष्ठा'का उदय होता है अर्थात् भगवान्की सेवामें निरन्तर लगे रहनेकी इच्छा होती है। पश्चात् उस सेवामें स्वाभाविक 'रुचि' और तत्पश्चात् 'आसक्ति' उत्पन्न होती है, यहाँ तक **'साधन-भक्ति'** है। इसके बाद श्रीकृष्णमें प्रीतिका अकुर या **'भाव'** का उदय होता है। यही भाव क्रमश परिपक्व होकर **'प्रेम'** रूपमें प्रकट हुआ करता है। भगवत्प्रेमकी प्राप्तिका यही क्रम है।

श्रीसनातनकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीमन्महाप्रभुने काशीमें "आत्माराम" श्लोककी* इकसठ प्रकारकी व्याख्या की थी। श्रीगौरसुन्दरने श्रीसनातनको वैष्णव-स्मृति-शास्त्र 'श्रीहरिभक्तिविलास' की रचना करनेके लिये आदेश देकर उसके विषयोका सूत्ररूपमें निर्देश कर दिया था।
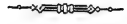
चौहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीप्रकाशानन्द-उद्धार

एक दिन श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपन मिश्रने अत्यन्त दुःखके साथ श्रीमन्महाप्रभुसे कहा कि,—"काशीके मायावादी सन्यासीगण निरन्तर आपकी निन्दा करके महान् अपराधके भागी हो रहे हैं", इसी समय एक ब्राह्मण आया और श्रीमन्महाप्रभुको निमन्त्रित करके कहा,—"आज मैंने अपने घर काशीके सभी सन्यासियोको निमन्त्रित किया है, यदि आप कृपा करके मेरे घर एक बार चरण-धूलि दें तो मेरा अनुष्ठान पूर्ण और सफल हो जाय। आप काशीके सन्यासियोसे नही मिलते-जुलते, इसे मै जानता हूं। तथापि आज मुझपर एक बार कृपा कीजिये।"

ब्राह्मणके निमन्त्रणको स्वीकार कर श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मणके घर सन्यासियोकी सभामें यथासमय उपस्थित हुए, सबको नमस्कार कर उन्होने बाहर जाकर पैर धोये तथा उसी स्थानमें बैठकर कुछ

---

* आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थभूतगुणो हरि ॥
—भा० १।७।१०, चै०च० म०६।१८६

[जिनके अज्ञानकी ग्रन्थि टूट चुकी है, ऐसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान्‌की अहैतुकी भक्ति करते है, क्योकि भगवान्मे ऐसे ही गुण है।']

ऐश्वर्य प्रकाशित किया। सन्यासीलोग श्रीकृष्णचैतन्यदेवके महातेजोमय रूपको देखकर अपने-अपने आसनको छोडकर तुरन्त खडे हो गये। उनके गुरु श्रीप्रकाशानन्दने भी श्रीमन्महाप्रभुको वह स्थान छोडकर उत्तम स्थानमे आनेके लिये अनुरोध किया तथा उनको विशेष सम्मानके साथ सभाके बीचमें बैठाया।

सन्यासी श्रीप्रकाशानन्दने श्रीकृष्णचैतन्यके काशीके सन्यासियोके साथ न मिलनेके लिये उलाहना दिया।

सन्यासी हइया कर नर्त्तन-गायन।
भावुक सब सङ्गे लञा करह कीर्त्तन।।
वेदान्त-पठन, ध्यान—सन्यासीर धर्म।
ताहा छाड़ि' कर केने भावुकेर कर्म।।
प्रभावे देखि ये तोमा साक्षात् नारायण।
हीनाचार कर केने, इथे कि कारण।।

—चै० च० आ० ७।६८-७०

[सन्यासी होकर नाचते-गाते हो, सभी भावुकोको साथ लेकर कीर्त्तन करते हो। यह कैसा? सन्यासीका तो धर्म है वेदान्तका पाठ करना और ध्यान करना। तुम ये सब छोडकर भावुककी तरह क्यो कार्य करते हो? तुम्हारे प्रभावको देखकर लगता है जैसे तुम साक्षात् नारायण हो, किंतु तुम्हारा आचार हीनोकी तरह क्यो है? इसका क्या कारण है?]

श्रीमहाप्रभुने छलना करते हुए दीनताके साथ कहा,—"मेरे गुरुदेवने मुझे 'मूर्ख' और 'वेदान्तमें अनधिकारी' समझकर शासन किया और सर्वदा श्रीकृष्णका मन्त्र और श्रीकृष्णका नाम जपनेकी आज्ञा दी है।"

कृष्णमन्त्र हैते ह'बे संसार-मोचन।
कृष्णनाम हैते पा'बे कृष्णेर चरेण।।
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म।
सर्वमन्त्र-सार नाम—एइ शास्त्र-मर्म।।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

—चै० च० आ० ७।७३-७४ , ७६

[कृष्णमन्त्रसे ससारसे मुक्ति होगी। कृष्णनामसे कृष्णके चरणो की प्राप्ति होगी। कलिकालमें नामके अतिरिक्त और धर्म नही है। सारे मन्त्रोका सार श्रीकृष्णका नाम है। यही शास्त्रोका मर्म है। हरिका नाम, हरिका नाम, केवल हरिका नाम ही है। कलियुगमें अन्यथा गति ही नही, गति ही नही, गति ही नही।]

इसके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने चतुराईसे यह बतलाया कि, जो लोग अपनेको वेदान्तके अधिकारी होनेका अभिमान करके श्रीहरिनामको सामान्य वस्तु समझते है, वस्तुत वे ही वेदान्तके अनधिकारी है। सारे वेदमन्त्रोका सार और समस्त शास्त्रोका मर्म है—श्रीहरिनाम। इसी कारण वेदमन्त्रके आदिमें और अन्तमें प्रणव (ॐ)का व्यवहार होता दिखायी देता है। प्रत्येक 'वेदान्तसूत्र'के आदि और अन्तमें यही शब्द-ब्रह्म या प्रणव रहता है। वेदान्तके 'फलपाद'का प्रथम सूत्र—"उँ आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" और अन्तिम सूत्र—"उँ अनावृत्ति शब्दात्, " अनावृत्ति शब्दात्" ने शब्दब्रह्म श्रीनामकी निरन्तर आवृत्ति और उसीके द्वारा ससारमें अपुनरावृत्ति (आवागमनसे मुक्ति) का उपदेश दिया है। अर्थात् श्रीकृष्णमन्त्रके द्वारा जीवका ससार-मोचन, तथा श्रीनामके द्वारा कृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है। इस श्रीकृष्णप्रेमके सम्बन्धमें श्रीमन्महाप्रभु कहते है,—

कृष्णविषयक प्रेमा परम पुरुषार्थ ।
या'र आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ ।।
पंचम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृतसिन्धु ।
ब्रह्मादि-आनन्द या'र नहे एक विन्दु ।।

—चै० च० आ० ७।८४-८५

[श्रीकृष्ण-प्रेमभक्ति ही परम पुरुषार्थ है। इसके साम्हने चारो पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तृणके समान है। पचम पुरुषार्थ है—'प्रेमानन्दामृत-सिन्धु' ब्रह्मानन्द आदि इसका एक बिन्दु भी नही है।]

श्रीमहाप्रभु कहने लगे,—"वेदान्त-शास्त्रने 'ब्रह्म'-शब्दसे मुख्य अर्थमें सविशेष-स्वरूप भगवान्‌का ही निर्देश किया है। जीवतत्व—शक्ति है, कृष्णतत्व—शक्तिमान् है। जीवका स्वरूप चिनगारीके समान क्षुद्राति-क्षुद्र सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, परिकर, लीला और धामको 'प्राकृत' अथवा सगुण (व्यवहारिक) समझनेके समान कोई भी नास्तिकता नही है। वेदान्तमे 'शक्ति-परिणामवाद' ही स्वीकृत हुआ है। चिन्तामणिके रत्न-प्रसवकी भाँति भगवान्‌की अचिन्त्यशक्ति इस जड जगत्‌को प्रसव करके भी स्वय अविकृत रहती है। आचार्य श्रीशकरने वेदसे जिन 'महावाक्योका* चयन किया है, उनको 'महावाक्य' नही कहा जा सकता, क्योकि उनमे वेदका सार्वदेशिक विचार नही पाया जाता। वेदवृक्षका बीज प्रणव ही महावाक्य है और ईश्वरका स्वरूप है। भगवान्‌को केवल निर्विशेष कहकर उनकी स्वरूपानुबन्धिनी नित्या शक्तिको अस्वीकार करनेपर भगवान्‌के केवल आधे स्वरूपको मानना होता है और उसका परिणाम है भगवान्‌की पूर्णताको ही अस्वीकार करना।"

श्रीकृष्णचैतन्यके मुखसे वेदान्तके ठीक तात्पर्यकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर काशीके मायावादी सन्यासिगण श्रीचैतन्यदेवकी कृपासे

---

* वेदके मूल वाक्यको 'महावाक्य' कहा जाता है। कोई-कोई "तत्वमसि" (छा० ६।८।७,), "इद सर्व यदयमात्मा, ब्रह्मेद सर्वम्" (वृ० आ० २।५।१), "आत्मैवेद सर्वम्" (छा० ७।२५।२), "नेह नानास्ति किचन" (कठ० २।१।११, वृ० आ० ४।४।१९) इत्यादिको 'महावाक्य' कहते है। वस्तुत "तत्वमसि" आदि मन्त्रसे जो उद्दिष्ट है, वह वेदका केवल एकदेशीय उपदेश है। जो वेदमें सर्वदेश-व्यापी है वही 'महावाक्य' है। प्रणव ही (ॐकार ही) एकमात्र ब्रह्मवाचक 'महावाक्य' है।

मायावादके चगुलसे उद्धार हुए। काशीमें एक दिन श्रीमन्महाप्रभु भक्तोके साथ 'श्रीविन्दुमाधव'के मदिरमें सकीर्तन कर रहे थे, उसी समय श्रीप्रकाशानन्द अपने शिष्योके साथ वहाँ उपस्थित हुए और महाप्रभुके चरणोपर गिरकर अपने पूर्व कार्योंके लिये अपनेको धिक्कारते हुए वेदान्त-सगत भक्तितत्वके विषयमें जिज्ञासा की। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमद्-भागवतको ही 'वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य' बतलाया।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप और श्रीअनुपमके पास भेज दिया।

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीसुबुद्धि राय

हुसेनशाहके पूर्व 'सुबुद्धि राय' नामक एक व्यक्ति 'गौड'के भूम्यधि-कारी थे। उस समय हुसेन सुबुद्धि रायके अधीन एक कर्मचारी थे। कहा जाता है कि, सुबुद्धि रायकी आज्ञाके अनुसार तालाब खुद-वानेके काममें हुसेनशाह निरीक्षकके पदपर नियुक्त थे। उस कार्यमें ढिलाई करनेपर सुबुद्धि रायने हुसेनको कोडे लगवाये थे। उसकी पीठपर उन कोडोके निशान बहुत दिनोतक रहे। हुसेन जब गौडके बादशाह हुए तब उन्होने अपनी बेगमके अनुरोधसे सुबुद्धि रायको जाति-भ्रष्ट कर दिया। सुबुद्धि रायने जब काशीके पडितोसे प्रायश्चित्तकी व्यवस्था पूछी तो, उन्होंने सुबुद्धि रायको उबलता हुआ घृत पीकर शरीर त्याग करनेकी व्यवस्था दी। श्रीमहाप्रभु जब काशीमें आये, तब सुबुद्धि रायने महाप्रभुसे सारी बातें कहकर अपने कर्तव्यके विषयमें पूछा। श्रीमहाप्रभुने पडितोकी उस व्यवस्थामें कोई भी वास्तविक

कल्याणकी सम्भावना नहीं है, यह समझाकर उनको निरन्तर श्रीकृष्णनाम-सकीर्तनका उपदेश दिया,—

"एक 'नामाभासे' तोमार पाप-दोष या'बे ।
आर 'नाम' लइते कृष्ण-चरण पाइबे ।।
आर कृष्णनाम लँते कृष्णस्थाने स्थिति ।
महापातकेर हय एइ प्रायश्चित्ति ।।"

—चै० च० म० २५।१९२-१९३

[एक 'नामाभास'से तुम्हारे पाप-दोष मिट जायँगे। और नाम लेनेपर तुम श्रीकृष्णचरणोंको प्राप्त करोगे। और कृष्णनाम लेनेपर कृष्णके स्थानमें स्थिति होगी। महापापका यही प्रायश्चित्त है।]

श्रीसुबुद्धि राय श्रीवृन्दावनमें जाकर दत्त-चित्त हो श्रीहरि-भजनमय जीवन व्यतीत करने लगे और उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीप्रभुके साथ श्रीवृन्दावनके 'द्वादश-बनों'का भ्रमण किया।

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

पुनः श्रीनीलाचलमें

श्रीमन्महाप्रभु श्रीबलभद्र भट्टाचार्यके साथ 'पुरी' लौट आये। गौडीय भक्तवृन्दने श्रीमन्महाप्रभुके पुरी लौट आनेकी बात सुनकर पुरीकी ओर यात्रा की।

श्रीशिवानन्द सेनके साथ एक भगवद्भक्त कुत्ता भी पुरीकी ओर जा रहा था। एक दिन श्रीशिवानन्द सेनका नौकर कुत्तेको रात्रिमें आहार देना भूल गया, तब वह कुत्ता कहीं चला गया—कोई उसका

पता न लगा सका। अन्तमे जब भक्तगण पुरीमे श्रीमहाप्रभुके समीप उपस्थित हुए तो, उन्होने देखा कि वह कुत्ता श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोके सामने कुछ दूरी पर बैठा है। श्रीमहाप्रभु कुत्तेको नारियलकी गिरी-प्रसाद फेंक-फेंक कर दे रहे हैं और "राम, कृष्ण, हरि बोलो" कह रहे है। कुत्ता श्रीमहाप्रभुके दिये हुए प्रसादको पाकर बार-बार 'कृष्ण-कृष्ण' कहने लगा। यह देखकर सब लोग चकित हो गये। श्रीशिवानन्द सेनने भी दण्डवत्-प्रणाम करके कुत्तेसे अपने अपराधकी क्षमा-प्रार्थना की। इसके बाद उस कुत्तेको फिर किसीने नही देखा। कुत्ता सिद्धदेह पाकर वैकुण्ठको चला गया।

श्रीरूपगोस्वामिपाद श्रीवृन्दावन-धामसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आकर ठाकुर श्रीहरिदासके साथ रहने लगे। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे रथके सामने श्रीमहाप्रभुके नृत्यकालमें 'काव्यप्रकाश'का एक विरह-श्लोक* सुना था। उस श्लोकका गूढ तात्पर्य केवल श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपादको ही ज्ञात था। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे उस श्लोकको सुनकर उसीके अनुरूप एक श्लोककी रचना की और उसे एक तालपत्रपर लिखकर अपने बासेके छप्परमें खोसकर वे समुद्र-स्नान करने चले गये। उसी समय अचानक श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूपसे भेंट करनेके लिये उनके बासेपर गये और छप्परमें खोसे हुए तालपत्र पर एक श्लोक लिखा देखा। श्लोक पढते ही श्रीमहाप्रभु भावाविष्ट हो गये। इधर श्रीरूपपाद समुद्र-स्नान करके लौटे और श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें जैसे ही प्रणत हुए, श्रीमन्महाप्रभुने स्नेहाधिक्यवश श्रीरूपको चपत लगाकर गोदमे ले लिया। और कहा,—

---

* यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा—
स्ते चोन्मीलित-मालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी-तरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥
—काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

"मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने।
मोर मनेर कथा तुम्भि जानिलि केमने ?"

—चै० च० म० १।६९

[मेरे श्लोकका अभिप्राय कोई आदमी नही जानता, फिर तूने मेरे मनकी बात कैसे जान ली ?]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपपर बहुत तरहसे स्नेह-कृपा की तथा श्रीस्वरूप-गोस्वामीको श्रीरूपपादके रचे हुए इस श्लोकको* ले जाकर दिखलाया। श्रीस्वरूप बोले,—"आपके हृदयकी बात श्रीरूप जानते है, अतएव वे आपकी कृपाके पात्र है, अन्तरग निजजन है।" श्रीमहाप्रभुने कहा कि, "श्रीरूपके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मैने उनमें सर्वशक्तिका सचार कर दिया है। श्रीरूप ही अप्राकृत गूढरसके विचारमे योग्य पात्र है।" श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप गोस्वामीसे भी कह दिया कि,—"तुम भी उसको गूढ रसकी बातें कहना।"

फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीरायरामानन्द, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीस्वरूप गोस्वामी आदि भक्तोके साथ श्रीहरिदास ठाकुरके बासे पर जाकर श्रीरूपसे मिले, श्रीरूप-रचित "प्रिय सोऽय"और "तुण्डे ताण्डविनी"† दो श्लोकोकी प्रशसा अत्यन्त उल्लासके साथ करने

---

* प्रिय सोऽय कृष्ण सहचरि ! कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाह सा राधा तदिदमुभयो सगमसुखम्।
तथाप्यन्त -खेलन्मधुर-मुरलीपचमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥

—पद्यावली ३८३

[हे सहचरि, मेरे वे अतिप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्रमें मिले, मैं भी वही राधा हूँ और हम दोनोके मिलनका सुख भी निश्चय वही है, तथापि वनमें क्रीडाशील इन कृष्णकी मुरलीके पचम सुरमे आनन्द-प्लावित कालिन्दीपुलिनगत वनके लिये मेरा चित्त स्पृहा करता है।]

† तुण्डे ताण्डविनी रति वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्य स्पृहाम्।

लगे। प्रसगत श्रीरूपके 'श्रीललित-माधव' और 'श्रीविदग्ध-माधव' दोनो नाटकोके मुखबन्धादि श्लोकोको श्रवण किया। श्रीरामानन्द-रायने दोनो नाटकोके अनेक अग-उपागोपर विचार करके वतलाया कि दोनो ही नाटक सर्वोत्कृष्ट हुए है।

'श्रीभगवान् आचार्य' नामक एक सरल ब्राह्मण पुरीमें श्रीमहाप्रभुके पास रहते थे। उनके कनिष्ठ भ्राता गोपाल भट्टाचार्य काशीमे मायावादियोसे वेदान्त पढकर पुरीमें श्रीमहाप्रभुके समीप आये। श्री महाप्रभुने बाहरी शिष्टाचार दिखलाते हुए भी भीतरसे उनका आदर नही किया।
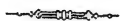
सतहत्तरवाँ परिच्छेद्
छोटे हरिदास

एक दिन श्रीभगवान् आचार्यने श्रीमन्महाप्रभुके कीर्तनिया (प्रभुको कीर्तन सुनानेवाले) छोटे हरिदासको श्रीशिखीमाहितीकी बहन श्रीमाधवी

चेत प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणा कृति
नो जाने जानिता कियद्भिरमृतै कृष्णेति वर्णद्वयी ॥
—वि० मा० ना० १।१५

[न जाने 'कृष्ण'—ये दो वर्ण कितने अमृतके साथ उत्पन्न हुए हैं, देखो, जब (नटीके समान) वे तुण्ड (मुख) में नृत्य करते हैं, तब बहुतसे तुण्ड(मुख) पानेके लिये रतिविस्तार (अर्थात् आसक्ति-वर्धन) करते हैं, जब कर्ण-कुहरमें प्रवेश करते है (अकुरित होते है), तब अरबों कानोके पानेकी स्पृहा उत्पन्न होती है और जब चित्तप्रागण मे (सगिनीरूपमे) उदित होते है, तब समस्त इन्द्रियोकी क्रियापर विजय प्राप्त करते हैं।]

देवीके पास जाकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये कुछ महीन चावल माँगकर लानेके लिये कहा। श्रीमाधवी देवी वृद्धा, तपस्विनी और परम वैष्णवी थी। श्रीमहाप्रभुके भक्तोंमें केवल साढे तीन व्यक्ति श्रीराधिकाके परिकर थे, एक—श्रीस्वरूप गोस्वामी, दूसरे—श्रीरायरामानन्द, तीसरे—श्रीशिखीमाहिती और आधी उनकी बहन श्रीमाधवी देवी।

मध्याह्नमें जब श्रीमहाप्रभु श्रीभगवान् आचार्यके घर भोजनके समय आये, तो पूछा कि "ऐसे बढिया महीन चावल कहाँसे लाये गये हैं ?" उत्तरमें ज्ञात हुआ कि छोटे हरिदास श्रीमाधवी देवीसे भिक्षा माँगकर ये चावल लाये हैं। तब श्रीमहाप्रभुने बासेमें लौटकर श्रीगोविन्द को आदेश दिया कि "अब छोटे हरिदासको यहाँ न आने देना। तुम आजसे मेरे इस आदेशका पालन करना।"

'घरमें आनेकी मनाही' हो गयी है, यह सुनकर श्रीहरिदासके मनमें दुःख हुआ और वे उपवास करने लगे। श्रीस्वरूप गोस्वामीपाद आदि भक्तोंने छोटे हरिदासके अपराधके विषयमे जब जानना चाहा तो महाप्रभु बोले,—

**** वैरागी करें प्रकृति-सम्भाषण।**
देखिते ना पारो आमि ताहार बदन॥
दुर्वार इन्द्रिय करे विषय ग्रहण।
दारुप्रकृति हरें मुनेरपि मन॥

—चै० च० अ० २।११७-११८

[जो वैरागी (साधु) स्त्रीसे बातचीत करता है, मै उसका मुख नही देख सकता। इन्द्रियाँ बडी दुर्दमनीया हैं, ये विषयोंका ग्रहण कर लेती हैं। काठकी बनी हुई स्त्री भी मुनिका मन हर लेती है।]

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो वसेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

—भा० ६।१९।१७, मनुसहिता २।२१५, चै० च० अ० २।११९

[माता, बहिन अथवा कन्याके साथ एकान्तमें एक आसन पर कभी न रहे, क्योंकि बलवती इन्द्रियाँ विद्वान पुरुषके भी मनको आकर्षित कर लेती हैं।]

दूसरे दिन श्रीपरमानन्दपुरीपादने श्रीमन्महाप्रभुको श्रीहरिदासके प्रति प्रसन्न होनेके लिये अनुरोध किया तो श्रीमहाप्रभुने असन्तुष्ट होकर
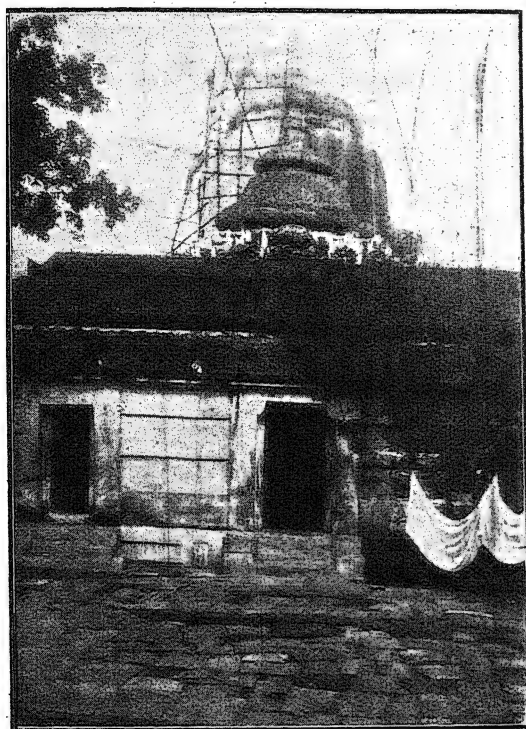
श्रीअलालनाथका श्रीमंदिर ; यहाँपर
श्रीमन्महाप्रभुका पदार्पण हुआ

'पुरी' छोडकर 'अलालनाथ'* चले जानेकी इच्छा प्रकट की। पूरा एक वर्ष बीत गया तथापि श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्न नही हुए—यह देखकर छोटे हरिदासने श्रीमहाप्रभुकी सेवा-प्राप्त करनेका सकल्प करके प्रयाग जाकर 'त्रिवेणी'के पवित्र जलमे देहत्याग कर दिया। श्रीश्रीवास पडित जब दूसरे चातुर्मास्यके समय पुरी आये और श्रीमहाप्रभुसे हरिदासके विषयमे पूछा तो, श्रीमहाप्रभुने 'स्वकर्मफलभुक् पुमान्' अर्थात् जीव अपने-अपने कर्मोके फलको भोगता है,—इतना ही उत्तर दिया। श्रीश्रीवास पडितने तब छोटे हरिदासके त्रिवेणीमें देहत्यागकी बात कही तो श्रीमहाप्रभु बोले,—

"प्रकृति दर्शन कैले एइ प्रायश्चित्त।"

—चै० च० अ० २।१६५

[स्त्री-दर्शन करनेका यही प्रायश्चित्त है।]

निजजन श्रीहरिदासके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी दण्ड-विधानरूप माया (कपट) रहित दया और श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रीहरिदासकी सेवाबुद्धि और गाढ अनुराग कितने अधिक परिमाणमें था, यह दिखलानेके लिये उसकी सामान्य त्रुटिको भी श्रीमहाप्रभु सहन करनेके लिये प्रस्तुत नही हुए। प्रभुके गाढ अनुरागका पात्र होनेकी इच्छा होनेपर प्रत्येक शुद्ध भजनेच्छु भक्तके लिये यही उचित है कि वह सब प्रकारकी ऐहिक इन्द्रिय-सुख-लालसाका सर्वतोभावेन परित्याग करे, अन्यथा श्रीगौरहरि सेवकके रूपमें उसको ग्रहण नही करते। श्रीमन्महाप्रभुने और भी शिक्षा दी कि, श्रीप्रयाग आदि विष्णु-तीर्थमें देहत्याग करनेपर

* अलवरनाथ शब्दका अपभ्रश है—'अलालनाथ'। विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायमें प्राचीन सिद्धपार्षद महापुरुष 'अलवर' शब्दसे अभिहित होते हैं। अलवरोके नाथ चतुर्भुज विष्णुमूर्ति श्रीजनार्दन यहाँ विराजमान हैं। १४३२ शकाब्दमें महाप्रभुने प्रथम बार यहाँ पदार्पण किया। १३३३ बगला सन्में यहाँ श्रीविश्ववैष्णवराज-सभाका एक शाखा-मठ स्थापित हुआ है।

लोग अपराधादिसे मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। लोक-शिक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुने अपने भक्त श्रीहरिदासको पहले नही ग्रहण किया, परन्तु पीछे उनके मुखकी श्रीकृष्णकीर्तनरूप सेवा स्वीकार करके उन्हें अपने भक्तके रूपमे ही स्वीकार कर लिया। अपने पार्षदभक्त श्रीहरि-दासकी दण्डलीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने गृह-त्यागी साधक वैरागियोके लिये आचारकी शिक्षा दी है। प्रचारक वैष्णवाचार्योका आसन और आचरणकारी भक्तोका आसन कैसा होना चाहिये, इसका उपदेश इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने सर्वसाधारणको दिया है। असत् चरित्र और छिपे-छिपे व्यभिचार-परायण वैष्णववेषधारी व्यक्तियोको देखकर जो उनको श्रीमहाप्रभुके अनुगत वैष्णव समझते है, उनकी भ्रान्त धारणाका सशोधन भी श्रीमहाप्रभुकी अपने पार्षद छोटे हरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा होना उचित ही है।

जहाँ पाप है, वहाँ कोई भी विष्णु-सम्बन्ध नही है, यदि दैवात् पाप हो जाता है तो उससे विष्णुभक्तका आदर नही होता। लौकिक-श्रद्धायुक्त व्यक्तिके भी मनमें पाप करते समय कोडेकी चोट जैसी लगती है,—भगवान् विष्णु इससे सुखी नही होते, इस विचारमे, वह फिर पाप नही करता, शीघ्रही पाप छोडकर श्रद्धावान् हो जाता है। अत-एव जिसके मनमे शास्त्रीय-श्रद्धाका उदय हो गया है, ऐसे भगवद्भक्तमें तो पाप रह ही नही सकते।

शास्त्रीय श्रद्धा*, जो शुद्धा भक्तिका कारण है—इस प्रकारकी श्रद्धासे युक्त भक्तके कोई भी पाप नही रह सकता। ज्ञानमिश्र साधक-भक्तका अधिकारानुसार दण्डदान और दण्डस्वीकार कल्याण-दायक होता है, ये दो महती शिक्षा अपने पार्षद भक्त छोटे हरिदासके प्रति दण्ड-लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने दी है। किन्तु मुमुक्षु-साधकके लिये जो शिक्षा

* शास्त्रने वहिर्मुख मानव-जातिके लिये जो नित्य शासनविधान किया है, उसके प्रति दृढ अविचलित विश्वास ही शास्त्रके अर्थावधारणसे उत्पन्न श्रद्धा अथवा 'शास्त्रीय श्रद्धा' है।

उचित है उसे जातभाव व्यक्तिके ऊपर आरोप करनेपर अपराधभाजन होकर चिरकालके लिये भक्तिपथसे भ्रष्ट होना पडेगा। श्रीरूप गोस्वामिपादने कहा है कि, जातभाव व्यक्तिमे यदि (वाह्य दुराचारता-रूप) वैगुण्यवत् कुछ दिखलायी भी दे तो उसमे असूया न करे, क्योकि वे उससे निर्लिप्त है, इसीलिये तो भावप्राप्तिमें वह सर्वतोभावसे कृतार्थ हुए है। पूर्णचन्द्र बाहरसे मृगचिह्नसे लाञ्छित होनेपर भी कभी अन्धकारसे पराभूत नही होते, इसी प्रकार श्रीभगवान् हरिमें अनन्य-चित्त मनुष्य भी बाहरसे अत्यन्त दुराचारशील दीख पडने पर भी अन्तर्विराजमान भक्तिके बलसे अन्यान्य लोगोको पराभव करके ही शोभा-विस्तार करते है।*

अठहत्तरवाँ परिच्छेद

श्रीनीलाचलमें विविध-शिक्षा-प्रचार

[१]

'पुरी' में किसी सुन्दरी विधवा ब्राह्मण-युवतीका एक अति सुन्दर पुत्र था। उसको प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुके पास आते तथा श्रीमहाप्रभुको उस बालकमे स्नेह करते देखकर श्रीदामोदर पडितने † श्रीमहाप्रभुसे कहा,--"इस बालकको स्नेह करनेपर लोग आपके चरित्रमें सन्देह करेगे।" यह बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने एक दिन श्रीदामोदरको नव-

---

* भ० र० सि० १।३।५९-६०

† श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीदामोदर पडित—दो पृथक् व्यक्ति है। ये दोनो ही श्रीमन्महाप्रभुके भक्त है।

द्वीपमें श्रीशचीमाताके देख-रेखके लिये भेज दिया। इसके द्वारा श्री-महाप्रभुने बतलाया कि, साधक जीवके लिये जो शासन (नियम) आवश्यक है, सिद्धपुरुष या भगवान्को उसी शासन (नियम) के अधीन करना केवल अपना भ्रम ही नही, बल्कि ऐसा करना उनके चरणोमें अपराध करना है।

अधिकारी वैंष्णवेर ना बुझि' व्यवहार।
ये-जन निन्दये, ता'र नाहिक निस्तार॥
अधम जनेर ये आचार, येन धर्म।
अधिकारी वैंष्णवेओ करे सेइ कर्म॥
कृष्ण-कृपाय से इहा जानिवारे पारे।
ए-सब संकटे केह मरे, केह तरे॥

—चैं० भा० अ० ६।३८७-३८६

[अधिकारी वैष्णवके व्यवहारको न समझकर जो मनुष्य उनकी निन्दा करता है, उसका निस्तार नही है। **अधम मनुष्यका जैसा आचार, धर्म** है, **लोक-चक्षुसे देखनेपर** ऐसा **लगता** है **अधिकारी वैष्णव भी वही कर्म कर रहा है।** किन्तु दोनोका पार्थक्य **कृष्णकृपाके द्वारा ही जाना जा सकता है। इन सब संकटोंसे कोई मरता है, कोई तरता है।**]

[२]

श्रीसनातन गोस्वामिपाद श्रीमथुरामण्डलसे 'झारखड' के वन-मार्गसे 'पुरी' आये। कृष्ण-विरहकी अतिशयताके कारण रथचक्रके नीचे गिरकर उन्होने शरीर-परित्याग करनेका सकल्प किया है, यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले,—"देहत्यागसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति नही होती, भजनसे ही वे मिलते हैं। श्रीकृष्ण-प्राप्तिका एक मात्र उपाय है—अहैतुकी भक्ति।"

श्रीमहाप्रभुने साधकजीवके लिये यह शिक्षा दी, तथापि प्रेमी भक्त श्रीसनातनके देहत्यागके तात्पर्यका उल्लेख करते हुए कहा,—

गाढ़ानुरागेर वियोग ना याय सहन ।
ता'ते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण ॥

—चै० च० अ० ४।६२

[प्रगाढ प्रेममें वियोग सहा नही जाता। इसलिये प्रेमी अपना मरण चाहता है ।]

श्रीमन्महाप्रभुने जीवके लिये इस प्रसगमें और भी अनेको उपदेश दिये है,—

नीच-जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य ।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य ॥
येइ भजे, सेइ बड़, अभक्त—हीन, छार ।
कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि-विचार ॥
दीनेरे अधिक दया करे भगवान् ।
कुलीन, पंडित, धनीर बड़ अभिमान ॥

—चै० च० अ० ४।६६-६८

[नीच जाति श्रीकृष्ण-भजनके लिये अयोग्य नही है। और अच्छे कुलमें जन्म या ब्राह्मण होना ही भजनकी योग्यता नही है। **जो भजता है वही बड़ा है। अभक्त हीन नगण्य है। कृष्ण-भजनमें जाति-कुलादिका विचार नहीं है। भगवान् दीनपर अधिक दया करते हैं। कुलीन, पडित और धनीको तो बड़ा अभिमान होता है।**]

श्रीगौरसुन्दरने बतलाया कि श्रीसनातनके द्वारा भक्ति-शास्त्रका प्रचार और श्रीवृन्दावनके गुप्त तीर्थोंका उद्धार आदि अनेको लोक-हितकर कार्य कराने है। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको उस वर्ष श्रीक्षेत्रमें (श्रीजगन्नाथ-धाममें) रहकर दूसरे वर्ष श्रीवृन्दावन जानेका आदेश दिया।

[३]

श्रीहट्टनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने श्रीगौरसुन्दरसे श्रीकृष्णकथा सुननेकी इच्छा प्रकट की। श्रीगौरसुन्दरने उनको श्रीरामानन्द रायके

पास भेज दिया। श्रीरामानन्दके घर जानेपर श्रीप्रद्युम्न मिश्रको पता लगा कि, श्रीरामानन्द प्रभु युवती देवदासियोको निर्जन उद्यानमें स्व-रचित 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक'के गीत और नृत्यकी शिक्षा दे रहे हैं। श्रीरामानन्द राय थे—श्रीव्रजलीलामें श्रीमतीके निज-जन। श्रीगौर-लीलामें उन्होने परम-मुक्त विजितेन्द्रिय-शिरोमणिका आदर्श प्रदर्शित किया है। वे साधारण साधक जीव नही थे। परन्तु श्रीप्रद्युम्न मिश्र इस बातको नही समझ सके और श्रीरामानन्दके इस प्रकारके व्यवहारकी बात सुनकर घर लौट आये। श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्दके परम महत्वको समझाकर श्रीप्रद्युम्न मिश्रके भ्रमको दूर किया। इसके बाद मिश्रने फिर श्रीरामानन्दके पास आकर अनेक तत्वोपदेश ग्रहण किये।

[४]

श्रीमहाप्रभु जिस किसी प्राकृत कवि या साहित्यिककी कविता या गीत-नाटकादि नही सुन सकते थे। जिस कवित्व और साहित्यमें तत्व-विरोध या रस-विपर्यय होता, वह श्रीमहाप्रभुके लिये बहुत ही अप्रीतिकर और असह्य हो जाता था। जो लोग यथार्थ भक्त हैं, वे ही इस बातके मर्मको भलीभाँति समझ सकते है। वे भी जिस किसी कविके तत्वविरोध और रसाभास-दुष्ट काव्य, गान और साहित्य कभी नही सुन सकते। यह उनके लिये असहनीय हो जाता है। पर यह बात साधारण लोगोकी समझमें नही आती।

पहले श्रीस्वरूप-दामोदरके परीक्षा कर चुकनेपर श्रीमहाप्रभु उसे श्रवण करते थे। बगदेशीय एक कविने श्रीमहाप्रभुकी लीलाके सम्बन्धमें एक नाटक रचकर श्रीमहाप्रभुको सुनाना चाहा, तब पहले श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभुने उसे श्रवण किया। सभाके सभी लोगोने उस नाटककी प्रशसा की ; परन्तु श्रीस्वरूप-दामोदर-प्रभुने उसमें मायावाद दोष दिखलाते हुए कहा,—"श्रीकृष्णलीला और श्रीगौरलीलाका वर्णन वे ही कर सकते है, जिन्होने श्रीगौरागपादपद्मको जीवनका एकमात्र

सबल बना लिया है। उसके वर्णन करनेकी योग्यता ग्राम्य कवि और साधारण साहित्यिकमें नही होती।"

आधुनिक कालमें बहुतोकी यह धारणा है कि, लौकिक साहित्य और काव्य-रचनामें पारदर्शी व्यक्ति मात्रमें ही श्रीकृष्णलीला और श्रीगौर-लीलाके वर्णन करनेकी योग्यता हो जाती है। परन्तु श्रीमहाप्रभुके द्वितीय स्वरूप श्रीस्वरूप-दामोदरने हम लोगोको बतलाया है कि, महत् (महाभागवत)का अनुगमन तथा अनन्य-भावसे श्रीचैतन्यके श्रीचरणोका आश्रय लिये बिना तथा सर्वदा प्रीति एव आवेशके साथ श्रीचैतन्य-भक्तोकी सगति किये बिना श्रीचैतन्य या श्रीकृष्णके सम्बन्धमें साहित्य और ग्रन्थादिकी रचना करनेकी चेष्टा करना केवल धृष्टता ही नही, बल्कि उसमें 'शिव'की रचना करने जाकर 'बदर'की रचना हो जाती है।*

श्रीस्वरूपदामोदरके इस उपदेशसे वह कवि अपने भ्रमको समझकर भगवद्भक्तोके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर तथा श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर पुरीमें रहने लगा।

[५]

श्रीगौरसुन्दरकी श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलता क्रमश तीव्रसे तीव्रतर-रूपमें प्रकट होने लगी। इस अवस्थामें श्रीरामानन्दकी श्रीकृष्णकथा और श्रीस्वरूपका कीर्तन ही श्रीमन्महाप्रभुके जीवनका एकमात्र अवलम्बन हो गया।

इधर श्रीमहाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार चलनेवाले श्रीरघुनाथदास घर लौटकर बाहरसे विषयी लोगोकी भाँति व्यवहार करने लगे, परन्तु मन-ही-मन कृष्णसेवाकी तीव्र आकाक्षासे व्याकुल हो उठे। 'सप्तग्राम'के किसी मुसलमान जमीदारने नवाबके वजीरकी सहायतासे हिरण्य और गोवर्द्धनदासको तरह-तरहके कष्ट पहुँचानेकी इच्छा की,

* चै० च० अ० ५।९१-१५८

इससे वे लोग भाग निकले। श्रीरघुनाथकी बुद्धिमानीसे उनका वह उत्पात शान्त हो गया। श्रीरघुनाथ नीलाचलमें श्रीमहाप्रभुके पास चले जानेके लिये बार-बार चेष्टा करने लगे। उन्होने 'पानिहाटी' जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुका साक्षात्कार किया और प्रभुकी आज्ञासे वहाँ एक 'दही-चिउडा-महोत्सव' किया। उस महोत्सवके दूसरे दिन श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीरघुनाथपर कृपा करके श्रीचैतन्यचरण-प्राप्तिके लिये आशीर्वाद दिया।

श्रीरघुनाथदास एक दिन रातको किसी कामके बहाने श्रीयदुनन्दन आचार्यके घर पहुँचे और उनके साथ कुछ दूर चलकर अकेले गुप्त मार्गसे बारह दिनमें पुरी पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोमें प्रणत हो गये। श्रीमहाप्रभुने उनको 'स्वरूपका रघु' नाम देकर श्रीस्वरूप-गोस्वामीके हाथोमें सौप दिया। श्रीरघुनाथने पाँच दिनोतक श्रीमहा-प्रभुका अवशेष-प्रसाद प्राप्त किया। उसके बाद श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर उन्होने अयाचक-वृत्तिका* अवलम्बन किया।

श्रीमन्महाप्रभु रघुनाथके इस वैराग्यकी बात सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बोले,—

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सकीर्तन।
शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण ।।
जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय।
शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय ।।

—चै० च० अ० ६।२२६-२२७

[वैरागीका उचित कार्य सदा नाम-सकीर्तन करना है। साग-पत्ता-फल-मूलसे वह पेट भर ले। जो जिह्वाकी लालसासे इधर-उधर दौडता है, वह शिश्नोदर-परायण मनुष्य कृष्णको नही पाता।]

* अपने माँगनेके बदले दूसरा कोई इच्छा हो तो कुछ दे, इस आशासे बैठे रहकर भिक्षा करनेको 'अयाचक-वृत्ति' कहते हैं।

श्रीमहाप्रभुका यह उपदेश प्रत्येक हरिभजनकारी (हरिभजनीक) के लिये विशेष रूपसे पालनीय है। श्रीरघुनाथने श्रीमन्महाप्रभुसे कुछ उपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की, तो श्रीमहाप्रभुने 'रागानुग'* भक्तके लिये पालनीय आचारोका सक्षेपमें निर्देश कर दिया,—

ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे ।।
अमानी, मानद हञा कृष्णनाम सदा ल'बे।
व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे ।।

—चै० च० अ० ६।२३६-२३७

[जागतिक सुखभोगकी बात नही सुनना, जागतिक सुखभोगकी बात नही कहना, अच्छा न खाना और अच्छा न पहनना। स्वय मान पानेकी इच्छा न रखकर दूसरोको मान देना, सदा कृष्णनाम लेना और व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी मानस-सेवा करना।]

श्रीगोवर्द्धन दासने अपने पुत्र रघुनाथका समाचार पाकर पुरीमें श्रीरघुनाथके पास आदमी और रुपये-पैसे भेजे, परन्तु श्रीरघुनाथने उनमें से उतना ही अर्थ ग्रहण किया, जितनेसे प्रतिमास श्रीमहाप्रभुको दो बार निमन्त्रण करके प्रीति-पूर्वक भोजन करानेका खर्च चल सके। परन्तु विषयीका द्रव्य ग्रहण करनेपर श्रीमहाप्रभु प्रसन्न नही होते और निमन्त्रणकारीको केवल सम्मान लाभ मात्र फल मिलता है—ऐसा विचारकर अन्तमें गोवर्द्धनके अर्थके द्वारा श्रीमहाप्रभुकी निमन्त्रण-सेवाको भी छोड दिया।

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन।
मलिन मन हैले नहे कृष्णेर स्मरण ।।

—चै० च० अ० ६।२७८

---

* 'रागानुग'—जो लोग श्रीकृष्णके नित्य सिद्ध सेवक श्रीव्रजगोपी, श्रीश्रीनन्द-यशोदा, श्रीसुदाम-श्रीदाम या श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रककी

[विषयीका अन्न खानेसे मन मलिन होता है और मनके मलिन होनेपर श्रीकृष्णका स्मरण नही होता ।]

कुछ दिनो बाद श्रीरघुनाथने सिहद्वारपर अयाचक-वृत्ति भी परित्याग कर मधुकरी भिक्षा लेना प्रारम्भ किया। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा,—

"सिंहद्वारे भिक्षावृत्ति—वेश्यार आचार ।"

—चै० च० अ० ६।२८४

[सिहद्वारपर भिक्षा माँगना तो वेश्याके आचरणके समान है ।]

जिस प्रकार वेश्याको पर-पुरुषकी आशामें द्वारपर बाट देखनी पडती है, भिक्षा-प्राप्तिके लोभसे सिहद्वारपर खडे रहना भी उसी प्रकारकी बात है।

श्रीरघुनाथ मधुकरी भिक्षा करते है, यह सुनकर तथा श्रीराधाकृष्णकी रागमयी सेवामें उनकी रुचि देखकर श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको अपनी श्रीगुंजामाला और श्रीगोवर्द्धन-शिला प्रदान की। इसके बाद श्रीरघुनाथ रास्तेमें फेंके हुए और बासी श्रीमहाप्रसादको जलमें धोकर उसीको ही ग्रहण करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीस्वरूप-दामादरने इससे अधिक सन्तुष्ट होकर एक दिन श्रीरघुनाथसे उस महाप्रसादको बलपूर्वक छीनकर उसका आस्वादन किया।

श्रीकृष्णसेवाकी पद्धतिसे लुब्ध होकर उनके अनुगामी बनकर उन्हीके अनुसार श्रीकृष्णसेवा करनेमें अनुराग करते हैं।

उन्नासीवाँ परिच्छेद

पुरीमें श्रीवल्लभ भट्ट

श्रीवल्लभ भट्ट एक बार रथयात्राके पहले पुरीमें आकर श्रीगौर-सुन्दरके चरणोमें प्रणत हुए। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरसुन्दरसे कहा,—"कलिकालका धर्म है—श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन , कृष्णशक्ति स्वरूपशक्ति श्रीराधा और उनके परिकरोके अतिरिक्त कोई भी इसका प्रचार नही कर सकता। आप कृष्णशक्तिको धारण करते है; इसीसे आज आपकी कृपासे जगत्में श्रीकृष्ण-नाम प्रकाशित हो रहा है।" श्रीमन्महा-प्रभुने दीनताके साथ अपनी अयोग्यता प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत प्रभृति भक्तोंकी महिमाका बखान करते हुए श्रीवल्लभ भट्टके सामने अपनेको छिपाया।

फिर दूसरे एक दिन श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभुके पास आये और बोले कि उन्होने श्रीमद्भागवतकी एक टीका लिखी है और उसमें श्रीकृष्ण नामके अर्थकी बहुत प्रकारसे व्याख्या की है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभ भट्टके हृदयकी यशोलिप्सा समझ गये और बोले,—"मै श्रीकृष्णनामके बहुत अर्थोको नही मानता। श्रीकृष्ण—श्रीश्यामसुन्दर श्रीयशोदानन्दन है—केवल इतना ही जानता हूँ।" श्रीमद् अद्वैताचार्यने भी श्रीवल्लभ भट्टके नाना प्रकारके तत्वविरुद्ध सिद्धान्तोका खण्डन किया। एक दिन श्रीवल्लभ भट्टने श्रीमत् अद्वैताचार्यसे पूछा,—"जीव—प्रकृति है, और कृष्ण—पति है। अतएव पतिव्रता-स्वरूप जीव किस प्रकार दूसरेके सामने पतिस्वरूप श्रीकृष्णके नामका उच्च-स्वरसे कीर्तन कर सकता है?" श्रीअद्वैताचार्यने श्रीवल्लभ भट्टको साक्षात् 'धर्मविग्रह' श्रीमहाप्रभुसे यह प्रश्न पूछनेके लिये कहा। भट्टके प्रश्नके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले,—"स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ही पतिव्रताका धर्म है, पतिने जब निरन्तर अपना नाम उच्चारण करनेके लिये कह

दिया है, तब पतिव्रता अपने स्वामीके आदेशका उल्लघन नही कर सकती।"

फिर एक दिन वैष्णव-सभामे श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि उन्होने श्रीमद्भागवतकी श्रीश्रीधरस्वामीकी टीकाका खण्डन करके एक नयी व्याख्या लिखी है। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने व्यगके रूपमें श्रीवल्लभ भट्टके इस प्रकारके कार्यका प्रतिवाद करते हुए कहा,—

**** 'स्वामी' ना माने ये जन।**
वेश्यार 'भितरे ता'रे करिये गणन॥

—चै० च० अ० ७।११

[जो मनुष्य 'स्वामी'को नही मानता, उसकी गिनती वेश्यामें करनी चाहिए।]

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवल्लभ भट्टको बहुत तरहसे समझाते हुए कहा,—"जगद्गुरु श्रीश्रीधरस्वामिपादके प्रसादसे ही हमलोग श्रीमद्भागवतका तात्पर्य समझ पाते है। वे भक्तिके एकमात्र रक्षक है। गुरुके ऊपर गुरुगिरी करने जाना भीषण अपराध है। श्रीश्रीधरस्वामीका अनुसरण करते हुए श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करो, अभिमान छोडकर श्रीकृष्णका भजन करो, अपराध छोडकर श्रीकृष्ण-सकीर्तन करो, तभी श्रीकृष्णके चरणोकी प्राप्ति कर सकोगे।" कुछ दिनो बाद श्रीमहाप्रभुकी अनुमति लेकर श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगदाधर पडित-गोस्वामीसे 'किशोर-गोपाल-मन्त्र'की दीक्षा प्राप्त की।

श्रीवल्लभ भट्टके समान पडित, बुद्धिमान् और सर्व विषयोमें सुयोग्य व्यक्तिको भी श्रीश्रीधरस्वामीके 'मायावादी' होनेका भ्रम हो गया था। वस्तुत श्रीस्वामिपाद मायावादी नही है—वे 'भक्त्येकरक्षक जगद्गुरु', परम वैष्णव है।

अस्सीवाँ परिच्छेद्

रामचन्द्र पुरी

रामचन्द्र पुरी-नामक एक सन्यासी अपनेको श्रीमाधवेन्द्र पुरीका शिष्य बतलाकर परिचय देते थे, वस्तुत उनका शुद्धभक्ति-सम्बन्धी कोई विचार नही था। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद अन्तर्धानके समय श्रीकृष्ण विरहमें श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन करते हुए प्रेमसे रो रहे थे। यह देखकर रामचन्द्र पुरीने श्रीमाधवेन्द्र पुरीसे कहा,—"आप ब्रह्मविद् होकर क्यो शोक-मोह-ग्रस्तकी भाँति इस प्रकार रो रहे हैं?" श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद इससे विशेष असन्तुष्ट हुए और उन्होने रामचन्द्रका त्याग कर दिया।

रामचन्द्र पुरीने श्रीनीलाचल आकर भगवान् श्रीगौरसुन्दरकी निन्दा प्रारम्भ कर दी। "श्रीमहाप्रभु अच्छा-अच्छा भोजन करते है, खीर, मिठाई खाते है, अतएव वे सन्यास-विधिका पालन नही करते"—इस प्रकारकी निन्दा करने लगे। एक दिन प्रात काल रामचन्द्र पुरीने श्रीमन्महाप्रभुके वासस्थानमें आकर देखा कि, बहुत-सी चीटियाँ श्रेणीबद्ध होकर वहाँ विचरण कर रही है। यह देखकर मणिमय मन्दिरमें पिपीलिकाके छिद्रदर्शनके समान स्वाभाविक छिद्रान्वेषी रामचन्द्र पुरी श्रीमहाप्रभुसे कहने लगे,—"रातको निश्चय ही इस स्थानमें ईखका बना गुड था, इसी कारण यहाँ इतनी चीटियाँ चल रही है। अहो! विरक्त सन्यासियोमें भी इस प्रकारकी इन्द्रिय-लालसा है!" इतना कहकर ही रामचन्द्र पुरी वहाँसे चले गये। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने उस दिनसे अपने दैनिक आहारका परिमाण खूब कम कर दिया।

रामचन्द्र पुरी बडे ही कुटिल स्वभावके आदमी थे। लोगोको स्वय ही आग्रह करके अधिक भोजन कराते थे और फिर स्वय ही उसको 'अत्याहारी' (पेटू) कहकर निन्दा करते थे। महाभागवत गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादकी उपेक्षाके फलस्वरूप रामचन्द्र पुरीकी भगवच्चरणोमें अपराध करनेकी दुर्बुद्धि उत्पन्न हो गयी।

गुरु उपेक्षा कैले ऐछे फल हय।
क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराध ठेकय ॥

—चै० च० अ० ८।६७

[गुरु यदि उपेक्षा करे तो फल यह होता है कि धीरे-धीरे उपेक्षित-शिष्य ईश्वरके निकट भी अपराध करने लगता है।]

रामचन्द्र पुरी और अमोघके समान चित्तवृत्ति हममें से अनेकोकी ही है। हम भी बहुधा भगवान् और महाभागवत वैष्णवको भी क्षुद्र साधक-जीवके समान काम-क्रोध-लोभाधीन समझकर उनके आहार-विहारादिकी निन्दा करते हैं। श्रीगौरसुन्दरने इस लीलाके द्वारा हमारी इस दुर्बुद्धिको शासित किया है।

इक्कासीवाँ परिच्छेद
श्रीगोपीनाथ पट्टनायक

श्रीभवानन्द रायके * पुत्र और रामानन्द रायके भ्राता श्रीगोपीनाथ पट्टनायक उस समय उडीसाके राजा श्रीप्रतापरुद्रके अधीन मेदिनीपुरके (मालजाठ्या दण्डपाट'के) भू-सम्पति-रक्षक और राज्यकर वसूल करनेके कामपर नियुक्त थे। श्रीगोपीनाथने राजकोषका कुछ धन नष्ट कर दिया तथा कुछ दूसरे कारणोसे भी युवराजके अप्रीतिभाजन हो गये, इससे युवराजने गोपीनाथको प्राणदण्डका आदेश दे दिया। श्रीमहाप्रभुके प्रति गजपति श्रीप्रतापरुद्र विशेष श्रद्धाभक्ति करते थे और रामानन्द राय भी महाप्रभुके विशेष आदरके पात्र थे,—यह

* श्रीभवानन्द रायके पाँच पुत्र थे—(१) श्रीरामानन्द राय, (२) श्रीगोपीनाथ पट्टनायक, (३) श्रीकलानिधि, (४) श्रीसुधानिधि और (५) श्रीवाणीनाथ।

जानकर कुछ लोग श्रीगोपीनाथके प्राणरक्षार्थ राजासे अनुरोध करनेके लिये श्रीमहाप्रभुके पास आये। इसपर श्रीमहाप्रभुने इस प्रकारकी विषयी बातोसे अपना कोई प्रयोजन न बतलाकर श्रीगोपीनाथका तिरस्कार किया। पश्चात् कुछ और लोगोने भी आकर गोपीनाथके सपरिवार कैद कर लिये जानेकी बात श्रीमहाप्रभुसे कही, तब महाप्रभु बहुत क्रोधित हुए और बोले,—"तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मै राजाके पास जाकर गोपीनाथके वशके लिये आँचल पसारकर अर्थ भिक्षा माँगूँ ?"

कुछ ही क्षणोके बाद यह समाचार आया कि, गोपीनाथको प्राण-दण्डके लिये खगके ऊपर गिराया जा रहा है। महाप्रभुको यह बतलाने पर भी वे बोले—"मै भिखारी आदमी हूँ, मै क्या कर सकता हूँ ? तुम लोग यह बात श्रीजगन्नाथजीसे कहो।"

इधर श्रीहरिचन्दन महापात्रने महाराज श्रीप्रतापरुद्रके पास जाकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-भिक्षा माँगी। श्रीप्रतापरुद्रने कहा कि, इस विषयमें उन्होने कुछ भी नही सुना है। जिससे श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा हो, उसके लिये शीघ्र व्यवस्था करनी चाहिये। अतएव श्रीहरि-चन्दनने युवराजसे कहकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा करनेकी व्यवस्था कर दी।

तदनन्तर श्रीमहाप्रभुने इस राज-दण्ड सम्बन्धी समाचार लानेवालेसे श्रीगोपीनाथके उस समयकी अवस्थाके विषयमें पूछनेपर उसने कहा कि, जब युवराजके आदमी श्रीगोपीनाथको बाँधकर राजद्वार ले जा रहे थे, उस समय श्रीगोपीनाथ हाथोकी अगुलियोकी गाठोपर निर्भय होकर उच्चस्वरसे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' महामन्त्रका कीर्तन करते जा रहे थे। यह बात सुनकर श्रीमहाप्रभु मन-ही-मन सन्तुष्ट हुए।

श्रीकाशी मिश्र जब श्रीमहाप्रभुके पास पहुँचे तो महाप्रभुने कहा कि,—"मै श्रीआलालनाथ चला जाऊँगा। मै अब पुरीमें रहकर विषयी लोगोकी भली-बुरी बातें सुनना नही चाहता।"

यह सुनकर श्रीकाशी मिश्रने श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोको पकडकर कातर भावसे निवेदन किया कि, श्रीरामानन्दके छोटे भाई श्रीगोपीनाथने कभी श्रीमहाप्रभुसे अपनी प्राण-रक्षाके लिये श्रीप्रतापरुद्रको अनुरोध करनेकी कोई बात नही कही। श्रीमहाप्रभुके द्वारा अपनी किसी प्रकार की सेवा करा लेना श्रीगोपीनाथका उद्देश्य नही है, परन्तु उनके हितैषियोने श्रीगोपीनाथको श्रीमहाप्रभुका शरणागत भक्त जानकर और उनके प्राणापहरणकी चेष्टा होते देखकर श्रीगोपीनाथकी प्राणरक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुको सूचित किया था। श्रीगोपीनाथने श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे शुद्ध-भक्तोके स्वभावके विषयमें श्रवण किया है,—

सेइ 'शुद्ध भक्त, ये तोमा भजे तोमा लागि'।
आपनार सुख-दु.खे नहे भोग-भागी॥
तोमार अनुकम्पा चाहे, भजे अनुक्षण।
अचिरात् मिले ताँ'रे तोमार चरण॥

—चै० च० अ० ९।७५-७६

[वही शुद्ध भक्त है, जो तुम्हारे लिये ही तुम्हें भजता है। अपने सुख-दु खकी चिता नही करता। जो तुम्हारी कृपा चाहता हुआ प्रतिक्षण तुम्हें भजता है, उसे अविलम्ब तुम्हारे चरणोकी प्राप्ति होती है।]

श्रीकाशी मिश्रने श्रीमन्महाप्रभुसे निवेदन किया कि कोई भी उन्हें कभी भी किसी विषयीकी बातें नही सुनायगा। वे कृपा करके पुरीमें ही रहें।

इधर जब श्रीकाशी मिश्रकी श्रीप्रतापरुद्रसे भेंट हुई, तब उन्होने श्रीप्रतापरुद्रसे श्रीमन्महाप्रभुके पुरी छोडकर 'आलालनाथ' जानेके सकल्पकी बात सुनायी। यह सुनकर श्रीप्रतापरुद्रने बहुत ही व्यथित होकर मिश्रसे अनुरोध करके कहा कि श्रीमहाप्रभु जिससे किसी प्रकार पुरीका त्याग न करे, इसके लिये सर्वतोभावेन प्रयत्न करना होगा। श्रीमहाप्रभुके बिना इस राज्य-ऐश्वर्य किसीका भी मूल्य नही है।

महाराज श्रीप्रतापरुद्रने काशी मिश्रसे अनुरोध किया कि वे श्रीमन्महाप्रभुको श्रीभवानन्द रायकी गोष्ठीके प्रति उनकी (राजाकी) स्वाभाविक प्रीतिकी बात भी जना दें। इधर युवराजने श्रीगोपीनाथको बुलाकर उनको समस्त अभियोगोसे मुक्त कर दिया और उनके प्रति यथेष्ट अनुग्रह दिखलाया। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी दीनता और उदारताकी बात सुनकर विशेष आनन्दित हुए। श्रीभवानन्द राय अपने पाँचो पुत्रके साथ श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोमें प्रणत होकर बोले,—"जागतिक महान् विपत्तियोसे त्राण पाना ही श्रीगौरसुन्दरकी कृपाका मुख्य फल नही है, उनकी निश्छल कृपाका फल तो है उनके पादपद्मोमे प्रीति उत्पन्न होना। श्रीरामानन्द राय और श्रीवाणीनाथ श्रीमहाप्रभुकी ऐसी शुद्ध-कृपा प्राप्त करके धन्यातिधन्य हुए है। श्रीमन्महाप्रभुकी इस प्रकारकी कृपा मुझे कब प्राप्त होगी?"

किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ 'मुख्य फल'।
'फलाभास' एइ, या'ते' विषय' चचल॥
रामराये, वाणीनाथे कैला 'निर्विषय'।
सेइ कृपा आमाते नाहि, या'ते ऐछे हय॥
शुद्ध कृपा कर', गोसाञि, घुचाह 'विषय'।
निर्विघ्न हइनु, मोते 'विषय' ना हय॥

—चै० च० अ० ९।१३७-१३९

[परन्तु तुम्हारे स्मरणका यह 'मुख्य फल' नही है, यह फलाभास है क्योकि जगत्का विषय चचल है। रामानन्द राय और वाणीनाथको तुमने 'विषय मुक्त' कर दिया। वह कृपा मुझपर नही हुई, जिसमें ऐसा हो, स्वामिन्! **शुद्ध कृपा करो' 'विषय'का नाश करो।** विषयोसे मेरा मन हट गया है। मेरे द्वारा विषय-कार्य नही होगा।]

बयासीवाँ परिच्छेद
'श्रीराघवकी झालि'

गौडीय भक्तोने रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिये पुन पुरीकी यात्रा की। 'पानिहाटी'के श्रीराघव पडित अपनी बहन श्रीदमयन्तीके बनाये नाना प्रकारके प्रभु-प्रिय व्यजन पिटारी और टोकरीमें भरकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये पुरी ले आये। यही **'राघवकी झालि'** के नामसे प्रसिद्ध है।

वैष्णव-गृहिणी और महिलाएँ दूर-दूरसे इस प्रकार श्रीमहाप्रभुकी सेवा किया करती। वे प्रतिवर्ष रथयात्राके पहले पुरी आकर श्रीमन्-महाप्रभुकी वाणी सुनकर जाती थी तथा सालभर घर रहकर निरन्तर श्रीमहाप्रभुकी सुखानुसन्धान-स्मृतिसे विभावित रहकर श्रीमहाप्रभुके लिये प्रिय भोज्य-सामग्रियोको सग्रह तथा प्रस्तुत करती रहती। अतएव घर रहनेपर भी उनका घर गोलोककी स्मृतिसे उद्‌भासित रहता। उनका ससार तो श्रीकृष्णका ही ससार है। देह-सम्बन्धी पति, पुत्र अथवा परिजन परिवारके लिये सुख-स्वाच्छन्द्य-विधान, आहारकी व्यवस्था, उनके विलासके उपकरणोका सग्रह, वहिर्मुख सामाजिकता और लौकिकताका पालन करके जो मायाका ससार करते है उनके ससारसे वैष्णव-गृहस्थ और वैष्णव-सहधर्मियोके ससार किस प्रकार पूर्णत पृथक् होते है, यह हमें गौडीय भक्तोके आदर्शमें देखनेको मिलता है। वैष्णव-गृहस्थगण श्रीमहाप्रभुकी सेवाके लिये घरमें वास करते थे और चातककी भाँति उत्कण्ठित रहते थे कि कब नीलाचल जाकर साक्षात् रूपमें श्रीगौरसुन्दरको सुख देंगे और उनके उपदेशामृतको पान कर सकेंगे।

श्रीदमयन्ती देवी श्रीमहाप्रभुकी सेवामें किस प्रकार वात्सल्य-रसमें डूबकर विचित्रतापूर्ण झालि (टोकरी) सजाती थी, इसका विस्तृत विव-रण 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थकी अन्त्य-लीलाके दशम परिच्छेदमें

प्राप्त होता है। आम्रकाशन्दी (काशन्दी अर्थात् सरसो, हल्दी और नमक इत्यादिसे बनाया गया अचार विशेष। इसी काशन्दीमें कच्चे आमकी फालियाँ डालकर आम्रकाशन्दी बनाई जाती है।), अदरक-काशन्दी (काशन्दीमें अदरक डालकर अदरक-काशन्दी बनाई जाती है।), नीबू-अदरक, अमिया (खिच्चा आम), कच्चे आमकी सूखी हुई फालियाँ, अमोट, आमका अचार, सूखे हुए पाटके नए पत्तोकी बुकनी (यह आँव नाशक होती है), धनिया तथा सौफके तडुल द्वारा चीनीमें पाक किए हुए लड्डू, सूखा अदरक, मिश्री मिश्रित बेर, सूखे बेर, सूखे बेरका चूर्ण, इस प्रकार अनेको पदार्थ, सैकडो प्रकारके अचार, नारियल खण्ड, गगाजलकी नाई सफेद लड्डू, बहुत दिनो तक रहनेवाली मिश्रीकी मिठाइयाँ, खोआ, पनीरकी बनाई हुई मिठाई, विविध प्रकारके अमृत कर्पूर बासमती धानका आतप चिउडा, घीमें भुना हुआ खील और मुरमुरे बासमती चावलोको भुनकर यानी मुरमुरे बनाकर उसे बूक करके चीनी द्वारा बनाया गया लड्डू, आदि सैकडो प्रकारके भोज्य द्रव्य श्रीराघवके निर्देशानुसार श्रीदमयन्ती देवी अत्यन्त स्नेह-भक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया करती थी। गगाकी मिट्टीकी पर्पटी (गगाकी मिट्टीको कपडेमें छानकर उसमें सुगन्धित द्रव्यादि मिलाकर पापडके रूपमें) तथा दूसरे मिट्टीके हल्के पात्रमें चन्दनादि भरकर श्रीराघवने बहुत यत्नके साथ झालि सजायी और झालिका मुँह बन्द करके उसके ऊपर मोहर लगा दी। इस झालिके 'मुनसिब' अर्थात् परिदर्शक और परिचालक बने पानिहाटी-ग्रामनिवासी श्रीराघव पडितके अनुगामी श्रीगौरसेवागतप्राण—'श्रीमकरध्वज कर'। वे सावधानीसे झालिके रक्षक बनकर गौडीय वैष्णवोके साथ अत्यन्त आर्त्तभावसे नीलाचलकी ओर चल पडते।

तिरासीवाँ परिच्छेद

'श्रीनरेन्द्र-सरोवरमें श्रीचन्दन-यात्रा'

पूर्वकालमें 'श्रीइन्द्रद्युम्न' नामक एक महासद्गुणसम्पन्न वैष्णव राजा थे। 'मालव' देशके अन्तर्गत 'अवन्तीपुरी' उनकी राजधानी थी। वे श्रीजगन्नाथजीके परम भक्त और सेवक थे। महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नको श्रीजगन्नाथदेवने वैशाख मासके शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयाको सुगन्ध-चन्दनके द्वारा अपने श्रीअंग-लेपन करनेका आदेश दिया। सियार-कुत्तोंके भोज्य इस देहपर जगत्के लोग अपने भोगके लिये नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्यों और प्रसाधन-सामग्रियोंका व्यवहार करते हैं। इससे इस नश्वर देहपर आसक्ति और इस देहको आराम पहुँचानेकी चेष्टा बढ़ती है; अतएव भगवद्भक्तोंने इन सारे द्रव्योंको भगवान्की सेवामें लगाकर अनायास ही देहासक्तिको उच्छेद करने और श्रीभगवान्के श्रीचरणोंमें प्रीति प्राप्त करनेकी व्यवस्था की है।
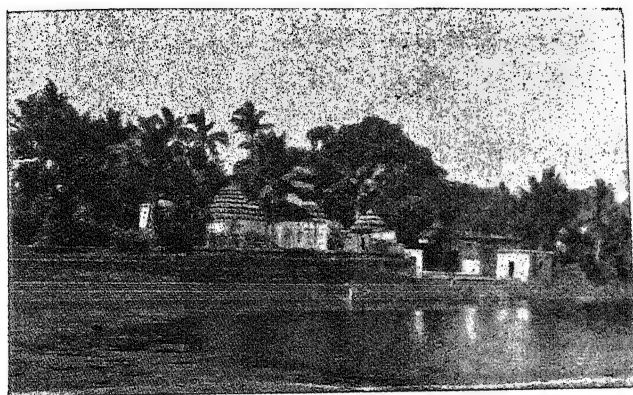
श्रीइन्द्रद्युम्न-सरोवर, पुरी; इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ जलकेलि किया करते थे।
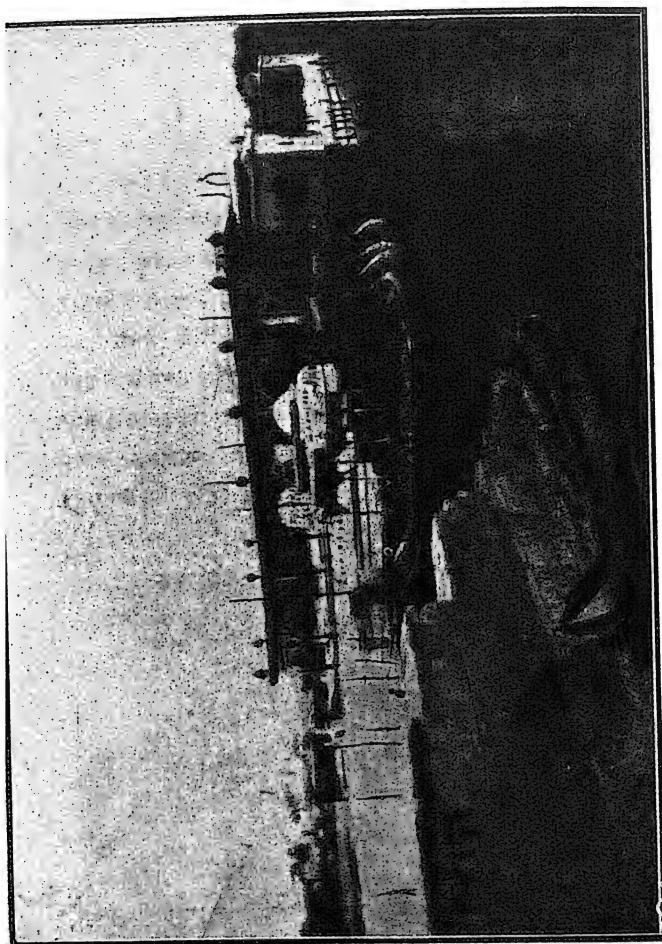
श्रीनरेन्द्र-सरोवर या चन्दन-तालाब ; चन्दन-यात्राके समय इस सरोवरमें श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हुआ करता है। सरोवरमें श्रीमन्महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ जलकेलि की थी।

महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नके प्रति श्रीजगन्नाथदेवकी इस आज्ञाका अनुसरण कर आज भी 'अक्षय-तृतीया' से आरम्भ करके ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला अष्टमी तक प्रति दिन श्रीजगन्नाथ देवके विजय-विग्रह-स्वरूप श्रीमदनमोहनको श्रीमन्दिरसे पालकीपर चढ़ाकर 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीर लाया जाता है। श्रीमदनमोहनदेव अपने मन्त्री श्रीलोकनाथ महादेव आदिको साथ लेकर सरोवरमें नौका-विलास करते हैं। श्रीमदनमोहन-देवकी 'श्रीचन्दन-यात्रा' अनुष्ठित होनेके कारण श्रीनरेन्द्र-सरोवरको 'चन्दनपुकुर' (चन्दन-तालाब) के नामसे भी पुकारते हैं।

गौडीय भक्तगण 'चन्दन-यात्रा'के दिन ही श्रीनीलाचलमें आ पहुँचे। श्रीगौरसुन्दरने पहले ही श्रीअद्वैत, श्रीनित्यानन्द आदि गौडीय भक्तोंके नीलाचलकी ओर आनेका समाचार सुनकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये 'कटक' तक श्रीमहाप्रसाद भेज दिया था और स्वय 'अठारहनाला' तक आगे जाकर उन गौडीय भक्तोकी अभ्यर्थना की। श्रीअद्वैत आदि गौडीय-गोष्ठी और श्रीगौरसुन्दर प्रमुख नीलाचल-गोष्ठीके परस्पर मिलनसे महान् आनन्दका सागर उमड पडा। नृत्यगीत और सकीर्तन के साथ गौडीय वैष्णवगण श्रीमहाप्रभुको आगे करके 'नरेन्द्र-सरोवर'के तीरपर जा उपस्थित हुए।

उस समय श्रीनरेन्द्रसरोवरमें श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हो रहा था। उसी समय श्रीमहाप्रभु भी सरोवरमें भक्तोंके साथ जलकेलि करने लगे। चारो ओर नाना प्रकारकी वाद्यध्वनि और सकीर्तनका महाकोलाहल होने लगा।

गौडदेशीय और उत्कलवासी भक्तगण एक साथ सकीर्तन करने लग गये। जलक्रीडाके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु भक्तोको साथ लेकर श्री-जगन्नाथके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करने गये। गौडीय भक्तगण श्रीमन्महाप्रभुके पास रहकर निरन्तर उनका कथामृत पान करने लगे।

चौरासीवाँ परिच्छेद

संकीर्तन-रास-नृत्य

श्रीमन्महाप्रभुको सकीर्तनका 'पिता' या 'प्रवर्तक' कहा जाता है। बहुतसे लोग मिलकर जो श्रीकृष्ण-कीर्तन करते है, उसे ही 'सकीर्तन' कहते है। बहुत लोगोमें श्रीभगवान्‌की महिमाके प्रचारका और श्री-भगवद्‌भजनका इस प्रकारका सहज मार्ग दूसरा कोई भी आविष्कृत नही हुआ। इस सकीर्तनमें 'बेडा सकीर्तन' (गोलाकार रूपमें घूम-घूमकर कीर्तन) ने वैष्णव-सम्प्रदायमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। इसको 'सकीर्तन-रास-नृत्य'के नामसे पुकारा जा सकता है। श्रीमन्दिर या किसी स्थानको घेरकर किये जानेवाले नृत्य-सकीर्तनको ही 'बेडा सकीर्तन' कहते हैं।

श्रीगौरहरिने नीलाचलमें सात-सकीर्तन दलोकी रचना करके एक दिन 'बेडा-सकीर्तन'-नृत्य आरम्भ किया। एक-एक दलमें एक-एक आदमी नर्तक निर्द्धारित किया गया। श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, पण्डित श्रीवक्रेश्वर, श्रीअच्युतानन्द, पडित श्रीश्रीवास, कुलीन ग्रामके श्रीसत्यराज खा और श्रीखण्डके श्रीनरहरि सरकार ठाकुर—इन सात पुरुषोने सात विभिन्न दलोमे नृत्य किया। श्रीमहाप्रभु इन सातो दलोके बीच घूमने लगे। परन्तु कैसा आश्चर्य है कि, प्रत्येक दलने ही समझा कि श्रीमहाप्रभु केवल उन्हीकी गोष्ठीमें उपस्थित है। सारे उत्कलवासी इस प्रकारके अद्भुत सकीर्तन-रास-नृत्यको देखकर विस्मित हो उठे। स्वय महाराज श्रीप्रतापरुद्र सपरिजन इस सकीर्तन-नृत्यके दर्शन करने लगे। सकीर्तन करते-करते प्रभुके आठो सात्विक विकार प्रकट होते रहे। क्षण-क्षणमें श्रीमहाप्रभुका प्रेमानन्द-सागर बढने लगा। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमहाप्रभुको क्रमश वाह्य दशामें लानेके लिये मन्द स्वरसे कीर्तन आरम्भ किया। श्रीमहाप्रभुको धीरे-धीरे वाह्य-

दशा प्राप्त हुई और वे भक्तोके साथ समुद्रमें स्नान करने गये। उसके बाद भक्तोको साथ लेकर उन्होने सम्मानपूर्वक महाप्रसाद ग्रहण किया।

पचासीवाँ परिच्छेद्
सेवा ही नियम है

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद-सेवनके बाद 'गम्भीरा'के* द्वारपर जाकर सो रहे। सेवक श्रीगोविन्दका एक दैनिक नियम यह था कि जब श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद पाकर विश्राम करते थे, श्रीगोविन्द उसी समय प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करते थे और जब श्रीमहाप्रभुको नीद आ जाती तब गोविन्द श्रीमहाप्रभुका अवशेष† ग्रहण करने चले जाते। उस दिन श्रीमहाप्रभु अत्यन्त थके होनेके कारण गम्भीराका पूरा द्वार रोक कर सो गए। अतएव श्रीगोविन्द भीतर प्रवेश करके प्रभुकी चरणसेवा नही कर सके इसलिये उन्होने प्रभुसे किंचित करवट बदल करके जानेके लिये रास्ता देनेकी प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभु बोले,—"मै सरक नही सकूंगा। तुम्हारी जो इच्छा हो करो।" तब अन्तमें श्रीगोविन्दने अपनी चादरके द्वारा श्रीमहाप्रभुका श्रीअग ढक करके महाप्रभुको उल्लघन करके ही भीतर प्रवेश किया और प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करने लगे। निद्रा-भग होनेपर श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको घरके भीतर देखकर उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और इतने समयतक बिना भोजन किये वहाँ बैठे रहनेका कारण पूछा। श्रीगोविन्दने कहा,—"आप

* चौबारे या बरामदेके बाद दालान होता है, उसके भीतरकी छोटी कोठरीको 'गभीरा' कहते है।

† श्रीमहाप्रभुके भोजनके बाद बचा हुआ प्रसाद।

द्वारपर शयन किये हुए हैं, मैं कैसे बाहर जाता ?" श्रीमहाप्रभु बोले,—"तुम जैसे भीतर आये थे वैसे ही बाहर क्यों नहीं चले गये ?" श्रीगोविन्द निरुत्तर होकर मन-ही-मन सोचने लगे —

* * आमार सेवा से नियम ।
अपराध हउक, किवा नरके गमन ।।
सेवा लागि' कोटि 'अपराध' नाहि गणि ।
स्व-निमित्त 'अपराधाभासे' भय मानि ।।

—चै० च० अ० १०।९५-९६

"सेवा ही मेरा मूल लक्ष्य है, सेवा करते हुए यदि मुझे नरक जाना पड़े तो उसमें भी कोई आपत्ति नहीं। परन्तु अपने निजी सुखके हेतु
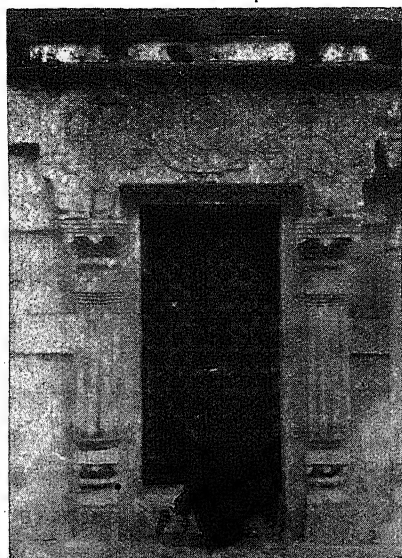
पुरीमें श्रीकाशी मिश्रके घरके नामसे परिचित
'गंभीरा' गृहका द्वार

भोजन करनेके लिये मैं अपराधके आभासमात्रसे भी भय करता हूँ। श्रीमहाप्रभुकी सेवाके प्रयोजनसे ही मैंने श्रीमहाप्रभुको लाँघकर भीतर प्रवेश किया था, अब अपने प्रयोजनके लिये मैं फिर वैसा किसी प्रकार भी नही कर सकता।"

पाठको, श्रीगोविन्दकी इस सेवाके आदर्शमें शुद्धभक्तिका रहस्य-विज्ञान परिस्फुटित हुआ है। भगवद्भक्त कभी भी अपने सुख, शान्ति और तृप्तिके लिये सेवाका बहाना नही करते। **जिसमें किसी प्रकार भी आत्मेन्द्रिय-सुख कामना, भुक्ति-मुक्ति कामना छिपी रहती है, उसका बाहरी रूप सेवाके समान दिखायी देनेपर भी, वह सेवा नहीं है, वह सेवाके नाम पर 'भोग' है, अथवा भक्तिके नामपर 'भुक्ति' है।**

छियासीवाँ परिच्छेद

श्रीचैतन्यदासका निमन्त्रण

श्रीशिवानन्द सेन अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथ लेकर एक दिन श्रीमहाप्रभुके दर्शन करने गये। श्रीकृष्णचैतन्यने जब श्रीशिवानन्दके पुत्रका नाम पूछा तो शिवानन्दने बतलाया—बालकका नाम 'श्रीचैतन्यदास' है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपना दास्य-सूचक नाम सुनकर अपनेको छिपानेके बहाने श्रीशिवानन्दसे कहा,—"तुमने यह क्या नाम रक्खा है? यह तो कुछ भी समझमें नही आता।"

श्रीशिवानन्दने कहा,—"श्रीकृष्णने मेरे चित्तमें जैसी स्फूर्ति करायी, मैंने वही नाम रक्खा है।" इसके बाद श्रीशिवानन्दने श्रीमन्महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया और श्रीजगन्नाथजीका बहुमूल्य प्रसाद

मँगवाकर भक्तगणके साथ श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीशिवानन्दके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण श्रीमन्महाप्रभुने प्रसादका सम्मान तो अवश्य किया, परन्तु इस प्रकारके अत्यन्त गरिष्ठ पदार्थोंके भोजनसे श्रीमहाप्रभुका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ।

श्रीमन्महाप्रभुका अभिप्राय समझकर एक दिन फिर श्रीचैतन्यदासने श्रीमहाप्रभुकी अग्निमान्द्य दूर करनेवाला दही, निम्बू, अदरक प्रभृति द्रव्योंके द्वारा सेवा की। इन पदार्थोंको देखकर श्रीमहाप्रभु विशेष आनन्दित हुए और बोले,—"यह बालक मेरे अभिप्रायको जानता है। मैं इसके निमन्त्रणसे सन्तुष्ट हुआ हूँ।" यह कहकर श्रीमहाप्रभुने दही-चावल भोजन किया, और श्रीचैतन्यदासको अपना उच्छिष्ट प्रदान किया। आगे चलकर 'श्रीचैतन्यदास' एक अप्राकृत 'कवि'के रूपमें प्रसिद्ध हुए।

सतासीवाँ परिच्छेद

ठाकुर श्रीहरिदासका तिरोधान

श्रीनामाचार्य श्रीठाकुर हरिदास श्रीगौरसुन्दरके वासस्थानके समीप एक निर्जन पुष्पोद्यानमें* रहते हुए निरन्तर सख्या रखकर हरिनाम लिया करते थे। एक दिन श्रीगोविन्द श्रीहरिदास ठाकुरके निकट श्रीमहाप्रसाद लेकर गये, देखते क्या हैं कि ठाकुर सोये हुए है और बहुत धीरे-धीरे सख्या नाम सकीर्तन कर रहे हैं। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रसादका एक कणमात्र लेकर उसका सम्मान किया। फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभुने स्वय आकर श्रीहरिदाससे कुशल पूछी। श्रीहरिदास बोले,—

* यह स्थान 'सिद्धवकुल'के नामसे प्रसिद्ध हो गया है।

"शरीर सुस्थ हय मोर, असुस्थ बुद्धि - मन।"

—चै० च० अ० ११।२२

[मेरा शरीर स्वस्थ है पर बुद्धि और मन अस्वस्थ हैं।]

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—"हरिदास तुम्हें क्या बीमारी है?" हरिदास ने उत्तर दिया—"मेरा संख्या-नाम-कीर्तन पूरा नहीं हो रहा है, यही मेरी बीमारी है।" श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—"तुम्हारी सिद्ध देह है, अतएव इस प्रकारके साधनाभिनयमें आग्रहकी क्या आवश्यक्ता है?"

श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुके सामने अत्यन्त दीनता प्रकट की और उनसे एक विशेष प्रार्थना करके कहा कि उनके हृदयकी एकमात्र अभिलाषा यही है कि वे श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोंको हृदयमें धारण करके तथा उनके चन्द्रवदनको दोनों नयनोंसे देखते हुए मुखसे 'श्रीकृष्ण-

श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-स्थली 'सिद्ध-वकुल' (पुरी)
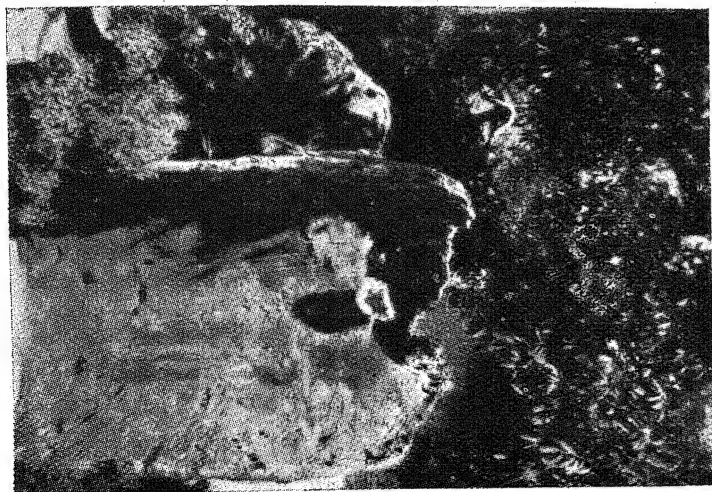
चैतन्य' नामोच्चारण करते-करते इहलीला सवरण करें। क्योकि वे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके बाद इस पृथ्वीपर नही रह सकेंगे।

श्रीमन्महाप्रभु उस दिन चले गये और दूसरे दिन प्रात काल श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करनेके बाद भक्तोको साथ लेकर पुन श्रीहरिदासके यहाँ पहुँचे। श्रीहरिदासकी कुटीके सामने महासकीर्तन प्रारम्भ हुआ—सभी श्रीहरिदासको घेरकर श्रीनाम-सकीर्तन करने लगे। श्रीमहाप्रभु तब सब वैष्णवोके सामने श्रीहरिदासका गुण वर्णन करने लगे। समवेत वैष्णवोने श्रीहरिदासके श्रीचरणोमे प्रणाम किया। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुको सामने बैठाया और वे प्रभुके श्रीमुखचन्द्रके दर्शन करने लगे। श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोको लेकर श्रीहरिदासने अपने हृदयपर स्थापन किया, सब भक्तोकी चरणधूलि लेकर अपने सिरपर धारण की और वे बारम्बार मुखसे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु' नाम उच्चारण करने लगे। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामोच्चारणके साथ-साथ भीष्मकी इच्छा-मृत्युके समान ठाकुर श्रीहरिदासका भी 'महाप्रयाण' हो गया। सभी 'हरि', 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए महासकीर्तन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु प्रेमानन्दसे अत्यन्त विह्वल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुरको सुशोभित पलंगपर चढाकर भक्तोके साथ नृत्य करते-करते समुद्रके किनारे ले गये। श्रीहरिदासके चिदानन्दशरीरको समुद्रजलमें स्नान कराकर श्रीमहाप्रभु बोले,—"आजसे समुद्र महातीर्थ हो गया।" महाप्रभुके भक्तोने श्रीहरिदासका चरणधौत-जल पान किया, श्रीहरिदासके अगपर प्रसादी चन्दन लेपन किया और वस्त्रादिके द्वारा ढककर उस शरीरको बालुकाके गर्तमें शयन करा दिया। महाप्रभुने स्वय 'हरि बोलो' 'हरि बोलो' कहते हुए अपने हाथो श्रीहरिदास ठाकुरको समाधिस्थ किया और उनपर बालू देकर समाधिपीठ बनवा दिया। निरन्तर भक्तोका सकीर्तन और नृत्य होने लगा। श्रीमन्महाप्रभुने 'ठाकुर श्रीहरिदासकी समाधिपीठ'की प्रदक्षिणा की और वे श्रीहरि-कीर्तन करते-करते सिहद्वारपर आये। "हरिदास ठाकुरके महोत्सवके लिये
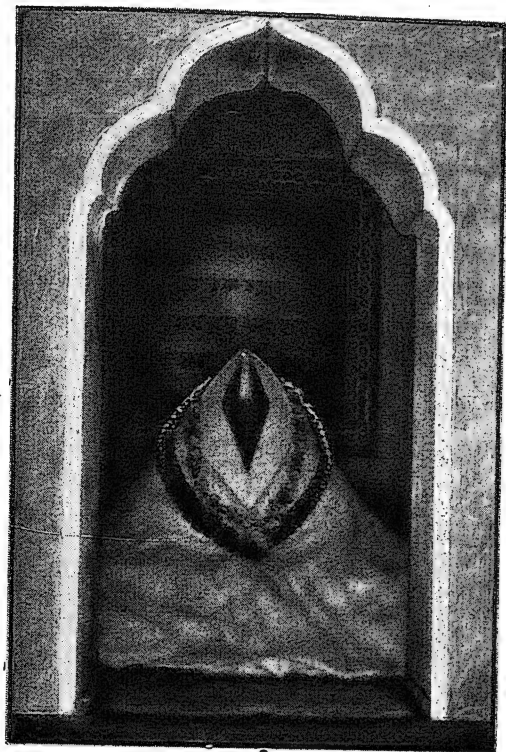
श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधि (पुरी)

मुझको महाप्रसाद भिक्षा दो"—यह कहकर श्रीमहाप्रभुने पसारियोके (प्रसाद-विक्रेताओके) सामने स्वय आँचल पसारकर श्रीमहाप्रसादकी भिक्षा ली।

प्रचुर महाप्रसाद सगृहीत हो गया, ठाकुर हरिदासके विरहोत्सवमें स्वय श्रीमहाप्रभुने अपने हाथसे सबको प्रचुर परिमाणमें प्रसाद परोसा। पश्चात् पुरी, भारती आदि सन्यासियोके साथ स्वय प्रसादका सम्मान किया। भक्तगण कण्ठ तक भरकर प्रसाद-भोजनकर हरिकीर्तन करने लगे। श्रीमहाप्रभु ठाकुर श्रीहरिदासके विरहमें पुन-पुन विलाप करते हुए कहने लगे,—

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिला संग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,—कैला संग-भंग॥

—चै० च० अ० ११।९४

[कृपा करके श्रीकृष्णने मुझे हरिदासका सग दिया था। कृष्णकी इच्छा स्वतन्त्र है। उसने उस सगको तोड दिया।]

अठासीवाँ परिच्छेद्

श्रीपुरीदास और परमेश्वर मोदक

प्रति वर्षके समान इस वर्ष भी गौडीय भक्तगण पुरीधाम पधारे। श्रीशिवानन्द सेनके तीन पुत्र भी उनके साथ आये। श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीशिवानन्दने अपने कनिष्ठ पुत्रका नाम 'श्रीपरमानन्द-पुरीदास' रक्खा था। जब श्रीशिवानन्दने बालक परमानन्दको श्रीमहा-प्रभुके समीप उपस्थित किया, तब श्रीमन्महाप्रभुने बालकके मुखमें अपने

पैरका अँगूठा दे दिया। बालक उस अगूठेको चूसने लगा। वे परमानन्द-दास ही 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक' और 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका'के प्रसिद्ध रचयिता 'श्रीकविकर्णपूर गोस्वामी' है। उनके रचे हुए श्रीआनन्द-वृन्दावनचम्पू' और 'अलकारकौस्तुभ' आदि ग्रथ भी गौडीय-वैष्णव-साहित्य-भाण्डारके महामणि-स्वरूप है।

श्रीधाम-नवद्वीपमें बाल्यलीलाके समय श्रीगौरसुन्दर श्रीमायापुरके 'परमेश्वर मोदक' नामक एक मोदक (हलवाई)के घर दुग्ध-खण्डादि मिष्टान्नके लिये प्राय ही जाया करते थे। उसी भाग्यवान् मोदकने अपनी पत्नीके साथ पुरी आकर श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोके दर्शन किये। मोदकने श्रीमहाप्रभुकी बाल्यलीलाका स्मरण करके श्रीमहाप्रभुसे कहा,—"मेरे साथ मुकुन्दकी माता भी (मेरी पत्नी भी) आयी है।" सन्यासीके आदर्शका प्रदर्शन करनेवाले लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभु मुकुन्दकी माताका नाम सुनकर कुछ सकुचित हुए। परन्तु सरल ग्राम्यस्वभाव मोदकको कुछ नही कहा, बल्कि वे भीतर ही भीतर सुखी हुए।

नवासीवाँ परिच्छेद

पंडित श्रीजगदानन्द

पडित श्रीजगदानन्दने श्रीशिवानन्द सेनके घरसे एक घडा सुगन्धित चन्दनादि तेल बहुत यत्नसे लाकर श्रीमहाप्रभुके व्यवहारके लिये श्रीगोविन्दके हाथमें प्रदान किया। लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभुने सन्यासीके आचरणकी शिक्षा देनेके लिये श्रीगोविन्दसे कहा,—"प्रथम तो सन्यासीको किसी भी तेलका अधिकार नही है और उसमे भी फिर यह सुगन्धित तेल! यह तेल श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें ले जाकर दे आओ, उससे उनका दीपक जलेगा—तुमलोगोका परिश्रम सफल हो जायगा।"

दस दिनके बाद पुन श्रीगोविन्दने श्रीमहाप्रभुसे श्रीजगदानन्दका अनुरोध कह सुनाया, तब श्रीमहाप्रभु क्रोध प्रकट करते हुए बोले,—"जब जगदानन्दने तेल दिया है तब मालिश करनेवाला एक आदमी भी होना चाहिए। इसी सुखके लिये तो मैंने सन्यास लिया है। इसमें मेरा सर्वनाश है और तुम लोगोका परिहास है। रास्ता चलते समय जब लोगोको तेलकी सुगन्धि मिलेगी तो मुझको लोग 'दारी-सन्यासी' ही समझेंगे।"

पडित श्रीजगदानन्दने श्रीगोविन्दके मुखसे श्रीमहाप्रभुकी इन सारी बातोको सुनकर प्यारभरे गुस्सेमें आकर श्रीमहाप्रभुके सामने ही तेलके बर्तनको फोड दिया और अपने घरका द्वार बन्द करके वे अनशन करके सो रहे। भक्त-प्रेमवश श्रीमहाप्रभु भक्तका मान-भग करनेके लिये तीसरे दिन श्रीजगदानन्दके घर गये और उन्होने स्वय उपयाचक बनकर पंडितके द्वारा भोजन बनवाकर भिक्षा ग्रहण की और पडितको भी प्रसाद सेवन कराया।

इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने यह बतलाया कि सर्वोत्कृष्ट उपकरणके द्वारा एकमात्र परमेश्वरकी ही स्वारसिकी-सेवा* करनी चाहिये। साधक अपने इन्द्रिय-सुखका त्यागकर आदर्श जीवन बिताते हुए हरिसेवा करे। वे कभी भी भोगका अथवा महाभागवतकी चेष्टाका अनुकरण न करे।

कृष्ण-विरहानलमें श्रीमहाप्रभुकी देह सदा तप्त रहती थी, अतएव वे केलेके वृक्षके ऊपरी वस्तुपर शयन करते थे। श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारके वैराग्यका आचरण करते हुए देखकर भक्तोके हृदयमें अत्यन्त व्यथा होती थी। पडित श्रीजगदानन्दने श्रीमहाप्रभुके लिये गेरुए रगकी

---

* स्वारसिकी-सेवा—स्व=निज, रसके अनुकूल सेवा, अर्थात् अपनी रुचि जिस-जिस वस्तुके उपभोगकी होती है, उस-उस वस्तुको भोग न करके भगवान्के भोगमें लगाना।

खोली देकर गद्दा-तकिया तैयार कराया। परन्तु महाप्रभुने उसे स्वीकार नहीं किया। अन्तमें श्रीस्वरूप-गोस्वामीप्रभुने सूखे केलेके पत्तोको नखसे चीर-चीर करके उसे चादरमें भरकर गद्दा-तकिया तैयार करा दिया। बहुत चेष्टा करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुने उसे व्यवहार करना स्वीकार किया। इस लीलाके द्वारा भी श्रीमहाप्रभुने साधक-सन्यासियोको श्रीकृष्णप्रीतिके लिये भोग-त्यागके आदर्शकी शिक्षा दी है।

नब्बेवाँ परिच्छेद

देवदासीका 'श्रीगीतगोविन्द'-गान

एक दिन श्रीमहाप्रभुको दूरसे श्रीजयदेवके 'गीतगोविन्द'का एक पद-गान सुनाई दिया। स्त्री है या पुरुष—कंठ-स्वर किसका है, इस ओर ध्यान न देकर महाप्रभु प्रेमावेशमें अपने-आपको भूल गये और अर्द्धवाह्यदशाको प्राप्त हो कण्टकमय वनके मार्गसे गायिका देवदासीकी ओर दौड पडे। सेवक श्रीगोविन्दने श्रीमन्महाप्रभुको रोककर बताया कि वह किसी स्त्रीका सगीत है। 'स्त्री' नाम सुनते ही श्रीमहाप्रभुको वाह्यदशा प्राप्त हो गयी और वे बोले,—

*** * गोविन्द, आज राखिला जीवन।**
स्त्री-परश हैले आमार हइत मरण॥
ए-ऋण शोधिते आमि नारिमु तोमार।

—चै० च० अ० १३।८५-८६

[गोविन्द, आज तुमने मेरा जीवन बचाया। स्त्री-स्पर्श होनेपर मेरी मृत्यु हो जाती। मैं तुम्हारा यह ऋण नही चुका सकूँगा।]

श्रीमहाप्रभुने इस लीलाके द्वारा श्रीकृष्ण-कीर्तन-श्रवणके बहाने रमणीके मधुर कण्ठ और रूपका उपभोग करनेकी प्रच्छन्न पिपासा—जो भविष्यमें सहजिया-सम्प्रदायमें सक्रामक रोगके समान फैल जायगी—उसका सर्वतोभावेन निषेध किया। श्रीकृष्ण-गान-श्रवणका बहाना करके मुमुक्षु, सन्यासी या साधक-जीवके लिये स्त्रियोका गान सुनना उचित नही है। साधक-जीवको इस विषयमें निरन्तर सावधान रहना चाहिये।

इकानबेवाँ परिच्छेद

श्रीरघुनाथ भट्ट

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीकाशीसे श्रीपुरुषोत्तमधाम आते समय अपने साथ 'रामदास विश्वास' नामक एक रामानन्दी-सम्प्रदायके पडितको लेते आये थे। रामदासके हृदयमें मुक्तिकी पिपासा और पाडित्यका अहकार था, अतएव श्रीमन्महाप्रभुने रामदासकी बाहरी दीनता और वैष्णव-सेवाका अभिनय देखकर भी उनके प्रति उदासीनता प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथको विवाह करनेसे मना कर दिया और परम वैष्णव पिता श्रीतपन मिश्र तथा परमाभक्तिमती माताकी सेवाके लिये पुन काशी भेज दिया। श्रीरघुनाथदास गोस्वामि-प्रभुके वृद्ध माता-पिताने पुत्रके परमार्थमें बाधा प्रदान की थी, इसीलिये श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथको उनके सगसे छुडाकर दूसरी जगह बुलाया था, परन्तु श्रीरघुनाथ भट्टके वृद्ध माता-पिता भगवान्‌के एकान्त सेवक-सेविका थे। इसी कारण श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको, वृद्ध माता-पिताका अन्तर्धान होनेके बाद नीलाचल चले आनेका आदेश देकर,

उन लोगोकी सेवाके लिये घर भेजा। श्रीरघुनाथ भट्ट माता-पिताकी कृष्ण-प्राप्तिके बाद श्रीमहाप्रभुके पास नीलाचल चले आये। श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको अपने पास आठ मास रखनेके बाद श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप-सनातनके पास भेज दिया और निरन्तर श्रीमद्भागवत पाठ और श्रीकृष्णनाम लेनेका आदेश दिया।

श्रीमन्महाप्रभुकी इस लीलामें एक महती शिक्षा है। जो व्यक्ति ससारमें प्रविष्ट नही हुए है और जिनके हृदयमें निष्कपट हरि-भजन करनेकी प्रवृत्ति है, उनको वहिर्मुख ससारी बननेकी प्रेरणा देना उनके प्रति हिसा करना ही होता है। फिर श्रीमहाप्रभुने वैष्णव माता-पिताकी सेवाके सुयोगके बहाने नये ढगसे ससार बनाने या भोगमय ससारमें प्रवेश करनेकी जो प्रच्छन्न भोगवृत्ति मनुष्यके हृदयमें होती है, उसका भी श्रीरघुनाथ भट्टको विवाह न करनेकी आज्ञा देकर निवारण कर दिया है।

बानबेवाँ परिच्छेद

उत्कलवासिनी भक्तमहिला

श्रीमहाप्रभु स्वय श्रीकृष्ण होनेपर भी जगत्के जीवोको कृष्ण-भक्तके आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका श्रीराधारानीके भाव और कान्तिको लेकर अवतीर्ण हुए थे। श्रीकविराज गोस्वामिपाद कहते है—

कृष्णवांछा-पूर्त्तिरूप करे' आराधने।
अतएव 'राधिका' नाम पुराणे बाखाने॥

—चै० च० आ० ४।८७

[कृष्णकी वाञ्छापूर्त्तिरूप आराधन करती हैं, इसलिये पुराणोंमें उनका 'राधिका' नाम बतलाया गया है ।]

स्वेच्छामय लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अभिलाषा सर्वेन्द्रियसे और सर्वतोभावसे निरन्तर पूर्ण करनेके लिये ही जिन्होने श्रीविग्रह धारण किया है, वे ही है—'श्रीराधिका'। श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका होनेके कारण ही उनका नाम 'श्रीराधा' है। जो सर्वश्रेष्ठ सेवक है, वे कभी भी सेव्यतत्वके द्वारा अपना भोग-साधन प्राप्त करनेकी चेष्टा नही करते। वे निरन्तर समस्त इन्द्रियोके द्वारा सर्वतोभावसे किस प्रकार श्रीकृष्णको सन्तोष प्राप्त हो, इसीके अनुसन्धानके आवेशमें ही आविष्ट और उन्मत्त रहते हैं। इस आवेशकी और उन्मत्तताकी पराकाष्ठाको ही भक्तिशास्त्रकी परिभाषामे 'दिव्योन्माद' कहा गया है।

श्रीमन्महाप्रभु अपनेको श्रीराधारानीकी एक दासी समझते थे। इनमें भी उनकी एक शिक्षा है। पीछे अपनेमें 'राधा' होनेका अभिमान करनेपर लोग 'मै राधा हूँ'—ऐसी कल्पना करके 'अहग्रहोपासना*' को प्रश्रय दे देंगे, इसी कारण श्रीमहाप्रभु अपने लिये श्रीराधारानीकी दासी होनेका अभिमान करते थे।

एक दिन श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्नमें देखा कि मुरलीवदन श्रीश्याम-सुन्दर श्रीराधारानीके साथ गोपागनाओकी मण्डलीमें नृत्य कर रहे है। इधर श्रीमहाप्रभुके उठनेमें देर होती देखकर गोविन्दने श्रीमहा-प्रभुको जगानेकी चेष्टा की। श्रीमहाप्रभु जगकर अत्यन्त ही कृष्ण-विरह-विधुर हो उठे। अभ्यासवश नित्यकृत्य सम्पादन करके वे श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिए श्रीमन्दिर चले गये।

श्रीजगन्नाथदेवके नाटच-मन्दिरमे एक 'गरुडस्तम्भ' है। वह गर्भमन्दिरसे बहुत दूर अवस्थित है। श्रीमहाप्रभु उस गरुडस्तम्भके

---

* 'अहग्रहोपासना'—दो प्रकारकी है—(१) जीवका अपनेको 'विषय-विग्रह' समझनेका अभिमान और (२) अपनेको 'मूल-आश्रय-विग्रह' माननेका अभिमान। दूसरी 'अहग्रहोपासना' अधिकतर अपराधमयी है।

पीछेसे ही श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करते थे। इसके द्वारा श्रीमहाप्रभु यह शिक्षा देते थे कि, गरुड श्रीनारायणक नित्य पार्षद भक्त है, उनके पीछे रहकर ही अर्थात् श्रीभगवान्के शुद्ध भक्तका अनुगामी होकर ही श्रीभगवान्के दर्शनके लिये जब मनुष्य आर्त्त हो जाता है, तब श्रीभगवान् कृपा करके दर्शन देते है।

श्रीमन्महाप्रभु गरुडस्तम्भसे भावावेशमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर रहे थे, उनके सामनेसे भी लाखो-लाखो लोग श्रीजगन्नाथदेवजीके दर्शन कर रहे थे, उसी समय एक उत्कलवासिनी नारी उस भारी भीडमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन न पाकर श्रीमहाप्रभुके कन्धेपर पैर रखकर गरुडस्तम्भपर चढकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर रही थी। यह देखकर गोविन्दने अतिशय व्यग्र होकर उन स्त्रीको नीचे उतार दिया। श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको मना करते हुए कहा,—"वे श्रीजगन्नाथ जीकी सेवा कर रही हे, अतएव उनकी सेवामें बाधा डालना उचित नही हे। वे इच्छानुसार श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करे।" उन स्त्रीको जब यह पता लगा कि उन्होने श्रीमन्महाप्रभुके कन्धेपर पैर रक्खा था तो वह शीघ्र ही नीचे उतरकर श्रीमहाप्रभुको प्रणाम करके पुन-पुन क्षमा-प्रार्थना करने लगी। श्रीमहाप्रभु उन स्त्रीके आर्त्तभावको देखकर कहने लगे,—"अहो! श्रीजगन्नाथकी सेवाके लिये मुझे तो इस प्रकारके आर्त्तभावकी प्राप्ति नही हुई! इनके देह-मन-प्राण सभी जगन्नाथजीके पादपद्मोमें आविष्ट है, इसी कारण इनको इतना भी वाह्यज्ञान नही है कि इन्होने दूसरेके कन्धेपर पेर रक्खा है। ये महिला अत्यन्त भाग्यवती है, मै इनकी कृपाके लिये प्रार्थना करता हूँ। इनकी कृपासे सभव है किसी दिन मुझमें भी इसी प्रकारकी आर्त्ति उदय हो जाय।"

श्रीमन्महाप्रभुने इस लीलाके द्वारा शिक्षा दी कि ऐकान्तिक कृष्णसेवाके उपकरणको इन्द्रियजन्य ज्ञानसे स्त्री-पुरुषादिको वाह्य रूपमे देखना उचित नही। जब तक हमको प्रकृतिजात स्त्री और पुरुषका अभिमान रहता है, तब तक श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन नही होते, उनकी

सेवाके लिये यथार्थ आर्त्तभावका भी उदय नही होता। जिनका चित्त सर्वदा श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानमे आविष्ट रहता है, वे सर्वत्र सर्वदा कृष्णसेवाके उपकरणोको ही देखते है।

तिरानबेवाँ परिच्छेद्

दिव्योन्माद्

श्रीगौरसुन्दरका विप्रलम्भ (श्रीकृष्ण-विरह) क्रमश बढने लगा। रातमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दके समीप विलाप करते-करते न जाने कितने प्रकारसे श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानके लिये अपनी व्याकुलता प्रकट करते थे। एक दिन रात्रिके समय श्रीमन्महाप्रभु अपने शयन-कक्षके तीनों द्वार बन्द करके शयन कर रहे थे। गभीर रात्रिमें प्रभुकी कोई भी आवाज न पाकर श्रीगोविन्द और श्रीस्वरूपको सन्देह हुआ। किसी प्रकार द्वार खोला तो उन्हें दिखायी दिया कि घरके सारे द्वार बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु घरमें नही है। श्रीस्वरूपादि भक्तोने अनुसन्धान करते-करते श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके सिहद्वारके उत्तर अचेतन अवस्थामें देखा। भक्तगण जब कृष्णनाम उच्चारण करने लगे तो श्रीमहाप्रभुको चेत हुआ। भक्तवृन्द प्रभुको घर ले गये।

एक दिन श्रीमहाप्रभु समुद्रकी ओर जा रहे थे, अकस्मात् 'चटक-पर्वत'* देखकर श्रीमहाप्रभुने उसको गोवर्द्धन समझा। श्रीमहाप्रभु

* श्रीगदाधर पडित गोस्वामीप्रभुके श्रीटोटा-गोपीनाथके श्रीमन्दिरके सामने जो बालूके पर्वतके समान ऊँचा स्तूप है, वह 'चटक-पर्वत'के नामसे प्रसिद्ध है। इसी स्थानमे श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामिपादने 'श्रीपुरुषोत्तम मठ'की स्थापना की है।

गोवर्द्धनके सम्बन्धका श्रीमद्भागवतका एक श्लोक पढते-पढते वायुवेगसे पर्वतकी ओर दौड पडे। उनके शरीरमे अद्‌भुत सात्विक विकार समूह प्रकट हो आये, वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडे। श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे श्रीराधाकी दासीके अभिमानमे अपनी भावदशाओका वर्णन करने लगे।

इसी प्रकार श्रीमहाप्रभु रात-दिन कृष्ण-विरहमें प्रेमावेशमे आविष्ट रहते थे। उनकी कभी अन्तर्दशा, कभी अर्धवाह्यदशा और कभी वाह्य-स्फूर्ति हो जाती थी। केवल स्वभाव और अभ्यासवश वे स्नान, दर्शन, भोजनादि करते थे। वे महाभावमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दका गला पकडकर श्रीकृष्णके लिये विलाप करते थे। अपनेको 'गोपीकी दासी' अभिमान करके और पुष्पोद्यानोको श्रीवृन्दावन रूपमें देखकर उनमें प्रवेश करते, तथा तरु-लता-गुल्म और मृगोके समूहसे श्रीकृष्णका पता पूछते।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण-विरहमे विह्वल होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते समय श्रीजगन्नाथजीको श्रीश्यामसुन्दर मुरली-मनोहर-रूपमे देखते थे और कभी महाभावके आवेशमे मन्दिरके द्वार-रक्षकका हाथ पकडकर कहते,—"मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्णको दिखला दो।"

एक दिन पण्डोने श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथका बाल्य-भोग महाप्रसाद ग्रहण करानेकी चेष्टा की। श्रीमहाप्रभुने उसमेसे जरा-सा स्वीकार किया, तत्काल ही उनका सर्वांग पुलकित हो उठा और नयनोसे अश्रुधार बह चली। इस प्रकार प्रसादमे श्रीकृष्णके अधरामृतका सचार हुआ है, इसी स्मृतिसे श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमे श्रीकृष्णके अधरोका बहुत तरहसे गुणगान करने लगे। श्रीकृष्णके अधरामृत-पानके लिये श्रीराधा और श्रीगोपिकाओकी जो सुतीव्र उत्कण्ठा है वह श्रीमहाप्रभुमें प्रकट हो उठी।

चौरानबेवाँ परिच्छेद

श्रीकालिदास और श्रीझड़ू ठाकुर

श्रीकालिदास-न।मक श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादके एक दूर-सम्पर्कमे चाचा थे। वैष्णवोका उच्छिष्ट भोजन करके वैष्णवोकी कृपा प्राप्त करना ही उनका आजीवन साधन और साध्य था। श्रीमहाप्रभुके दर्शनके लिये गौडदेशसे जितने वैष्णव पुरीमे आते थे, श्रीकालिदास उन सभीका उच्छिष्ट भोजन करते। वैष्णव देखते ही वे उनके पास उत्तम-उत्तम भोजनकी सामग्री 'भेट' ले जाते थे और उनके भोजनके बाद बचा हुआ माँग लेते थे। "वैष्णवमे किसी प्रकारकी जाति-बुद्धि नही रखनी चाहिये।"--इसका उज्ज्वल आदर्श श्रीकालिदास ने अपने जीवनमे आचरणके द्वारा दिखला दिया।

श्रीमन्महाप्रभुके भक्त श्रीझड़ू ठाकुर भुँईमाली-कुलमे आविर्भूत हुए थे। श्रीकालिदास एक दिन कुछ मीठे आम 'भेट' लेकर झड़ू ठाकुरके पास गए और झड़ू ठाकुर तथा उनकी सहधर्मिणीके चरणोमे दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीझड़ू ठाकुरने श्रीकालिदासकी अभ्यर्थना करके किसी ब्राह्मणके घरमे उनके आतिथ्यकी व्यवस्था करनेकी इच्छा प्रकट की। श्री-कालिदासने समझा कि श्रीझड़ू ठाकुर दैन्य दिखाकर उनको ठगनेकी चेष्टा कर रहे है। श्रीकालिदासने श्रीझड़ू ठाकुरकी चरणधूलिके लिये प्रार्थना की और उनका चरण अपने सिरपर धारण करनेकी इच्छा प्रकट की।

श्रीकालिदास जब झड़ू ठाकुरके घरसे जाने लगे, तब झड़ू ठाकुर कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए। झड ठाकुर जब घरकी ओर लौट गये तब कालिदासने मार्गमे जहाँ झड़ू ठाकुरके पदचिह्न पडे थे, वहाँकी धूलि लेकर अपने सर्वागमे लगा लिया तथा झड़ू ठाकुर इसको देख न सके, इस प्रकारसे वे एक जगह छिप गए।

इधर झड़ू ठाकुर मन-ही-मन भगवान्‌को आम निवेदन करके प्रसाद ग्रहण करने लगे। तत्पश्चात् उनकी सहधर्मिणीने झड़ू ठाकुरके भुक्तावशेषको ग्रहण करके आमके छिलके और चूसी हुई गुठलियोको बाहर घूरेपर फेक दिया।

श्रीकालिदास अब तक छिपे हुए थे, उन्होने उस उच्छिष्टके गड्ढेमे से आमके छिलके और गुठलियोको इकट्ठा कर लिया और उन्हे चूसते-चूसते वे प्रेममे विह्वल हो गए।

श्रीमहाप्रभु जब मन्दिरमे श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये जाते थे, तब सिहद्वारके समीपकी सीढीके नीचे एक गढेमे पैर धोकर मन्दिरमे प्रवेश करते थे। उन्होने श्रीगोविन्दको विशेष रूपसे कह दिया था कि जिसमे कोई उनके उस पैर धोये हुए जलको किसी प्रकार भी ग्रहण न करने पाये। दो एक अन्तरग भक्तोके सिवा कोई भी उस जलको ग्रहण नही कर सकता था। एक दिन श्रीमहाप्रभु पैर धो रहे थे, इसी समय श्रीकालिदासने तीन अजलि चरणोदक पान कर लिया। वे श्रीगोविन्दसे श्रीमहाप्रभुका उच्छिष्ट माँगकर उसका भोजन करते।

श्रीकृष्णके उच्छिष्टका नाम **'महाप्रसाद'** है, और कोई भी महा-भागवत जब महाप्रसादका आस्वादन करके जो शेष छोड देते है, तब उसे **'महामहाप्रसाद'** कहते है। **महाभागवतकी चरणधूलि, महाभागवतका चरणोदक और महाभागवतका भुक्तावशेष—ये तीन ही साधनके बल है।** इन तीन वस्तुओकी सेवासे श्रीकृष्णके चरणोमे प्रेमकी प्राप्ति होती है—इस सिद्धान्तमे दृढनिष्ठ श्रीकालिदासने इन तीन अलौकिक वस्तुओकी सेवाको ही साध्य और साधन रूपमे निश्चय किया था।

पंचानबेवाँ परिच्छेद

श्रीपुरीदासकी कवित्व-स्फूर्ति

एक वर्ष श्रीशिवानन्द सेन अपनी पत्नी और शिशु-पुत्र श्रीपुरीदास को साथ लेकर नीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुके चरणोमे उपस्थित हुए। श्रीशिवानन्दने जब पुरीदासको श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोमे प्रणत कराया, तब श्रीमहाप्रभु पुन -पुन बालकको 'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो', बोलकर श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण करनेके लिये प्रेरणा देने लगे। परन्तु बालकने किसी प्रकार भी कृष्ण-नाम उच्चारण नही किया। वह पूर्णरूपसे मौन लिये रहा। श्रीशिवानन्दने भी बालकसे कृष्ण-नाम बुलवानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु पिताकी भी सारी चेष्टा व्यर्थ हुई। तब श्रीमहाप्रभु अत्यन्त विस्मित होकर बोले,—"मैने स्थावरतकसे कृष्ण-नाम बुलवा दिया, परन्तु जगत्मे एकमात्र इस बालकसे ही श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण नही करा सका।" यह सुनकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभु बोले,—"मुझे अनुमान हो रहा है कि आपने श्रीपुरीदास को जो श्रीकृष्णनाम-मन्त्र उपदेश किया है उसे वह दूसरे लोगोके सामने प्रकट करना नही चाहता। इसी कारण वह मन्त्रका उच्चारण न करके मन-ही-मन उसका जप करता है।"

फिर एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीदासको कुछ पढनेके लिये कहा तो बालकने इस श्लोककी रचना करके उसे पढ दिया,—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णो रंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृंदावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ।।

—श्रीकविकर्णपूरकृत 'आर्याशतक'का प्रथम श्लोक

[जो श्रवण-युगलके लिये नीलकमल, नेत्रोके लिये अजन, वक्ष स्थलके लिये इन्द्रनीलमणिमय हार—श्रीवृन्दावनकी रमणियोके लिये अखिल भूषणरूप है ऐसे श्रीहरिका जय जयकार हो रहा है।]

सात वर्षका शिशु जिसने अध्ययन नहीं किया—वह किस प्रकार ऐसे श्लोककी रचना कर सकता है, इसके कारणका निर्णय न कर पानेसे सभी लोग विस्मित हो उठे और सबने विचार किया कि एकमात्र श्रीमहाप्रभुकी कृपासे ही यह सभव हुआ है। यही पुरीदास आगे चलकर श्रीकविकर्णपूर गोस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका रचा हुआ 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक'—श्रीगौर-लीलाका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ये १४४८ शकाब्दमे प्रकट हुए और १४६८ शकाब्द पर्यन्त इन्होने ग्रन्थ-रचना की।

छानबेवाँ परिच्छेद

अप्राकृत भावावेशमें कूर्माकृति

श्रीमन्महाप्रभु दिनरात श्रीकृष्णके विरहमे उन्मत्त होकर नाना प्रकारसे उन्मादकी चेष्टा और प्रलाप करने लगे। श्रीकृष्णके सन्तोष-साधनके लिये जब हृदयमे व्याकुलताकी पराकाष्ठा उदित हो जाती है, तब इसी प्रकारके अप्राकृत भावोका उदय होता है।

इस समय श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरायरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुके साथ-साथ निरन्तर रहते थे। वे लोग प्रभुके भावोपयोगी नाना पकार के सगीत प्रभुके प्रिय ग्रन्थोसे लेकर पढते और कीर्तन करते थे। बीच-बीचमे श्रीमहाप्रभु भी किसी-किसी श्लोकको पढकर विलाप करते-करते श्लोकके तात्पर्यकी व्याख्या करते थे। एक दिन इसी प्रकार प्राय आधी रात बीत गयी। श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुको शयन कराके अपने-अपने वासस्थानको चले गये; गम्भीराके द्वारपर श्रीगोविन्द सो रहे। अर्धरात्रिके बाद श्रीमहाप्रभु

उच्चस्वरसे सकीर्तन करने लगे। तीनो द्वारोके किवाड बन्द थे, परन्तु कैसा आश्चर्य है कि द्वारके बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु भावावेशमे तीनो दीवालोको लाँघकर बाहर निकल गये। सिहद्वारके दक्षिणमे जहाँ 'तैलगी * गाये रहती है, वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभु मूर्छित हो पड रहे। इधर श्रीगोविन्दने गम्भीरामे श्रीमहाप्रभुकी कोई आवाज न पाकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिपादको बुलवाया। श्रीस्वरूप-दामोदर दीपक जलाकर भक्तोके साथ प्रभुको खोजने लगे। अनेको स्थानोपर खोजते-खोजते जब सिहद्वारपर पहुँचे तो देखा कि, गायोके बीचमे श्रीमहाप्रभु कूर्माकृतिमे पडे हुए है। श्रीमहाप्रभुके मुँहमे फेन, श्रीअगमे पुलक, नयनोमे अश्रुधारा, बाहर जडत्व और भीतर आनन्द है। चारो ओर गाये प्रभुके श्रीअगोको सूँघ रही है, दूर हटानेपर भी वे प्रभुके अग-स्पर्शका त्याग नही कर रही है।

भक्तगण श्रीमहाप्रभुको घर ले आये, और कानमें बहुत देर तक उच्चस्वरसे नाम-सकीर्तन करनेके बाद श्रीमहाप्रभुको अर्द्ध-बाह्यदशा प्राप्त हुई। तब प्रभुके हाथ-पैर बाहर आये। श्रीमहाप्रभु स्वरूपके समीप फिर विरहका विलाप करने लगे।

---
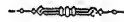
* द्रविडके पूर्वोत्तर अवस्थित देशको 'तैलग देश' कहते है। उस देशकी गायको 'तैलगी गाय' कहते है।

सत्तानबेवाँ परिच्छेद

समुद्र-वक्षमें

शरत्कालकी किसी ज्योत्स्नामयी रजनीमे श्रीमहाप्रभु अपने भक्तोंके साथ कृष्ण-विरहमें विभावित होकर श्रीमद्भागवतके श्लोक श्रवण-कीर्तन करते हुए विभिन्न उद्यानोमें भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते-करते 'आई-टोटा' नामक स्थानमे श्रीमहाप्रभुको अकस्मात् समुद्र दिखलायी दिया। नील सिन्धुकी उछलती हुई तरगोपर चन्द्रज्योत्स्नाके पडनेसे वह झिलमिला रहा था। यह देखकर महाप्रभुको यमुनाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी। श्रीमहाप्रभु यमुना समझकर अत्यन्त वेगसे समुद्रकी ओर दौडे और किसीके लक्ष्यमें न आकर समुद्रमें कूद पडे। समुद्रमे गिरते ही श्रीमहाप्रभु मूर्छित हो गये। समुद्रकी तरगें कभी श्रीमहाप्रभुको डुबा देती, कभी बहाती, कभी तरगके साथ-साथ नचाती और कभी बहाकर तीरकी ओर लाने लगी। इस प्रकार मूर्च्छावस्थामें तरगके द्वारा परिचालित होकर श्रीमहाप्रभु 'कोणार्क'की* ओर चले। श्रीमहाप्रभु गोपीकी दासीका अभिमान करके यमुनामें कृष्णकी जल-केलि-उत्सव देखनेके भावमे मग्न थे।

इधर श्रीस्वरूपदामोदर प्रभृति भक्तगण श्रीमहाप्रभुको न देख पाकर मन-ही-मन नाना प्रकारके वितर्क करने लगे। उन्होने अनेको स्थानोमें अन्वेषण किया, परन्तु कही भी श्रीमहाप्रभुका पता न लगा। इसी प्रकार अन्वेषण करते-करते जब रातका प्राय अवसान हो गया तो सभीने निश्चय किया कि श्रीमहाप्रभु अन्तर्हित हो गये है। प्रभुके

---

*पुरीसे १६ मील दूर उत्तरकी ओर समुद्रतटपर काले पत्थरोका सूर्य मन्दिर अवस्थित है। इस स्थानको इसीलिये 'कोणार्क' या 'अर्कतीर्थ' कहते हैं। 'अर्क'-शब्दका अर्थ है—सूर्य। बोलचालकी भाषामें इस स्थानको 'कणारक' भी कहते है।

विच्छेदसे किसीके भी शरीरमें प्राण नहीं-से रह गये। बन्धु-हृदयका यह स्वभाव ही होता है कि वह अनिष्टकी आशंका करता है। तथापि कोई भी श्रीमहाप्रभुके पुनः दर्शनकी आशाका परित्याग नहीं कर सके
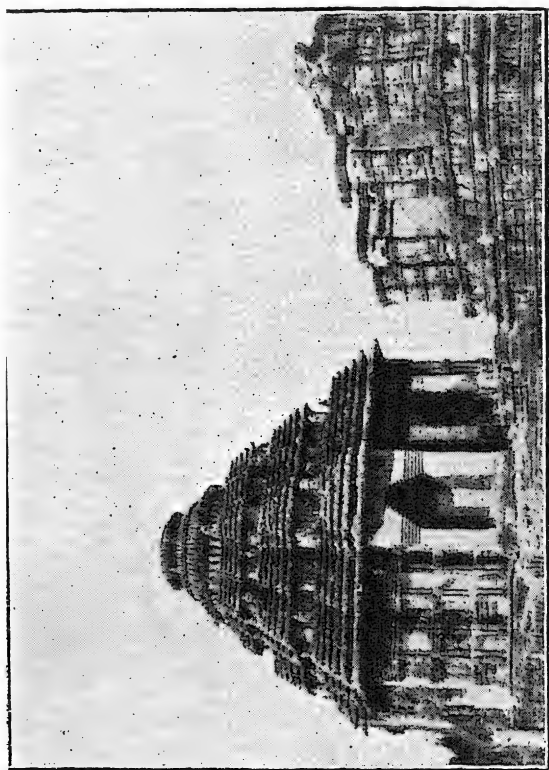
कोणार्क या कणारकमें भग्न सूर्य-मन्दिर

और फिर खोज करने लगे। इसी समय श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने देखा कि एक मछुआ अपने कन्धेपर मछली पकड़नेका जाल रक्खे अद्भुत भावावेशमें 'हरि हरि' बोलता हुआ आ रहा है। मछुएके

ऐसे भावावेशको देखकर श्रीस्वरूपगोस्वामीने उसके इस प्रकारके भावावेशका कारण पूछा। मछुएने कहा कि, उसके जालमें एक मृत मनुष्य आया है। उसने एक बडी मछली समझकर उस मृत व्यक्तिको यत्नपूर्वक निकाला था। जालसे उसको बाहर करनेके समय जब उसका शरीर-स्पर्श हुआ है, तब उसके हृदयमें एक भूत प्रवेश कर गया है और भयसे उसके शरीरमें पुलक, कम्प, अश्रु और गद्गद् वाणीका प्रकाश हो गया है। उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके शरीरमें मानों सारे भूत-व्यापार प्रविष्ट हो जाते हैं। यह भूत मृत मनुष्यका रूप धारण करके कभी 'गों-गो' शब्द करता है और कभी अचेतन होकर पडा रहता है।

मछुएने और भी कहा,—"यदि मै मर गया तो मेरे स्त्री-पुत्र कैसे जियेंगे? इसी डरसे मै भूत छुडवानेके लिये ओझाके पास जा रहा हूँ। मैं प्रतिदिन रातको अकेले निर्जनमें मछली पकडता घूमा करता हूँ। श्रीनृसिह भगवान्‌के नामस्मरणसे भूत-प्रेत मेरा कुछ भी नही कर पाते। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'नृसिह'का नाम लेते ही यह भूत मानो और भी दूनी शक्तिमे गर्दन दबा बैठता है! तुम लोग वहाँ मत जाना, वहाँ जाओगे तो तुमको भी भूत पकड लेगा।"

मछुएके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने यथार्थ विषयको समझ लिया और मछुएको आश्वासन देकर कहा,—"मै एक बडा ओझा हूँ, तीन चपतमें ही तुम्हारा भूत छुडा देता हूँ। तुम्हें कोई भय नही है। तुम जिनको भूत समझते हो, वे साक्षात् भगवान् हैं। प्रेमाविष्ट होकर वे समुद्रके जलमें कूद गये थे, तुमने अपने जालमें उनको निकाला है। उनके स्पर्शमात्रसे तुममे श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय हो गया है। तुमने उनको कहाँ निकालकर रक्खा है, मुझे तुरन्त दिखाओ।"

मछुएने भक्तगणको ले जाकर श्रीमहाप्रभुके दर्शन कराये। श्रीस्वरूप आदि भक्तोने श्रीमन्महाप्रभुको समुद्र-बालुकामें मूर्छितावस्थामें शिथिल

शरीर देखकर, गीले कौपीनको हटाया और सूखा वस्त्र पहनाया तथा सब मिलकर उच्चस्वरसे सकीर्तन करने और श्रीमहाप्रभुके कानमें कृष्ण-नाम बोलने लगे ।-

कुछ क्षणोके बाद श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे आये और भावावेशमें बोलने लगे,—"मै श्रीयमुनाके दर्शन करके श्रीवृन्दावन गया था । मैंने देखा—वहाँ श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीगोपीगणके साथ महा-जलक्रीडा कर रहे है। मै तीरपर खडा सखियोके साथ श्रीकृष्णकी उस विचित्र लीलाको देख रहा था ।"

जब श्रीमन्महाप्रभु वाह्यदशामे आ गये, तब उन्होंने श्रीस्वरूप गोस्वामिपादसे पूछा,—"तुम मुझे लेकर इस स्थानपर क्यो खडे हो ?" श्रीस्वरूपदामोदरने प्रभुसे आद्योपान्त सारी घटना सुनायी । श्रीमहाप्रभुने भी अपनी अवस्थाका अन्तरग भक्तोके प्रति वर्णन किया ।

अट्ठानबेवाँ परिच्छेद

लीला-संगोपनका संकेत

भगवान् श्रीगौरसुन्दर प्रतिवर्ष वात्सल्यरस-मूर्त्ति श्रीशचीमाताको आश्वासन देनेके लिये श्रीजगदानन्द पडितको श्रीमायापुर भेजा करते थे । उनके साथ श्रीपरमानन्द पुरीपादके अनुरोधसे श्रीमन्महाप्रभु श्रीशचीदेवीके लिये श्रीनवद्वीप वस्त्र और महाप्रसाद भेजते थे । वे पार्षद भक्तगणके लिये भी महाप्रसाद भेजते थे ।

एक बार श्रीजगदानन्द पडित जब नवद्वीप और शान्तिपुर होते हुए पुरी मे आये, तब श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीजगदानन्दके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुके पास पहेलीके बहाने इस प्रकार की कुछ बाते कहला भेजी,——

बाउलके कहिह,——लोक हइल बाउल* ।
बाउलके कहिह,——हाटे ना बिकाय चाउल ।।
बाउलके कहिह,——काये नाहिक आउल† ।
बाउलके कहिह,——इहा कहियाछे बाउल ।।

——चै० च० अ० १९।२०-२१

अर्थात् प्रेमोन्मत्त (श्रीकृष्ण-विरहिणी गोपीके भावमे विभावित श्रीमहाप्रभु) से कहना कि लोग प्रेममे उन्मत्त हो गये है। प्रेमकी हाटमे प्रेमरूपी चावलके विक्रयके लिये स्थान अब नही है। अर्थात् दूसरे बहुतेरे लोग इस गोपी-प्रेमके तात्पर्यको उपलब्ध नही कर सकेगे। उनसे कहना कि, आउल अर्थात् प्रेमातुर (अद्वैताचार्य) अब सासारिक कार्यमे नही है। प्रेम-पागलको कहना कि, प्रेम-पागल या प्रेमोन्मत्त श्रीअद्वैतने इस प्रकार कहा है। अर्थात् श्रीमहाप्रभुके आविर्भावका जो तात्पर्य था, वह पूरा हो गया है, अब प्रभुकी जो इच्छा हो, वही करे।

इस पहेलीको सुनकर श्रीमहाप्रभु कुछ हँसे, 'आचार्यकी जो आज्ञा'—— कहकर चुप हो गये। जब श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने इस पहेलीका अर्थ पूछा तो श्रीमहाप्रभुने सकेत मात्र करके कहा,——

*** * आचार्य हय पूजक प्रबल ।**
आगम-शास्त्रेर विधि-विधाने कुशल ।।
उपासना लागि' देवेर करेन आवाहन ।
पूजा लागि' कत काल करेन निरोधन ।।
पूजा-निर्वाहण हैले पाछे करेन विसर्जन ।

——चै० च० अ० १९।२५-२

---

* 'बाउल'——बातुल (पागल) शब्दका अपभ्रश है।
† 'आउल'——'आकुल' या 'आतुर' शब्दका अपभ्रश है।

[आचार्य प्रबल पूजक हैं, वे आगमशास्त्रके विधि-विधानमें कुशल हैं। उपासनाके लिये देवताका आवाहन करते हैं, पूजाके लिये उनको कुछ समयतक रखते हैं, जब पूजा समाप्त हो जाती है तब उनका विसर्जन कर देते हैं।]

श्रीमन्महाप्रभुने इशारेसे जताया कि, श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने ही श्री-मायापुरके गगातीर पर गगाजल और तुलसीके द्वारा पूजा करके श्री-महाप्रभुको गोलोकसे आवाहन कर भूलोकमें अवतीर्ण किया था। पूजाका निर्वाह करके जिस प्रकार पुजारी देवताका विसर्जन करता है, जान पडता है कि श्रीअद्वैताचार्य अब उसी प्रकारकी इच्छा प्रकट कर रहे है ।

आचार्यकी इस प्रहेलिकाको पढनेके बादसे श्रीमन्महाप्रभुकी कृष्ण-विरह-दशा और भी बढने लगी। विरहोन्मादमें श्रीमहाप्रभु रातमें गम्भीराकी दीवालसे मुँह रगडा करते थे। श्रीस्वरूप तथा श्रीरामराय समयोचित गानके द्वारा श्रीमहाप्रभुको सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते थे, परन्तु प्रभुका कृष्ण-विरह-सिन्धु नाना प्रकारसे उद्वेलित हो उठता था।

एक दिन वैशाखके महीनेमें पूर्णिमा-तिथिकी रातमें श्रीमहाप्रभुने 'श्रीजगन्नाथवल्लभ'* उद्यानमे महाभावावेशमे दस प्रकारकी चित्र-जल्पोक्ति† प्रकट की। दैन्य-उद्वेग और उत्कण्ठामें श्रीमहाप्रभु कभी-कभी श्रीस्वरूप-रामानन्दके साथ अपने स्वरचित 'शिक्षाष्टकके'‡ श्लोकोका आस्वादन करते-करते रात बिताते थे। अथवा कभी 'श्रीगीतगोविन्द' 'श्रीकृष्णकर्णामृत', 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक' (श्रीरामानन्द राय कृत), अथवा कभी श्रीचण्डीदास-विद्यापतिकी पदावली, और कभी श्रीमद्-

---

* गुण्डिचावाडी और मन्दिरके प्राय बीचो-बीच "जगन्नाथ वल्लभ' नामक एक उद्यान है।

† ग्रन्थके परिशिष्टमें श्रीचैतन्यदेवरचित 'शिक्षाष्टक' देखना चाहिये।

‡ तरह-तरहके भाववैचित्र्ययुक्तचमत्कारजनक वाक्य-विशेष। चित्रजल्प दस प्रकारके है,—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प, सुजल्प। श्रीरूपगोस्वामि-पादकृत श्रीउज्ज्वलनीलमणि-ग्रन्थमें विस्तृत विवरण देख सकते हैं।

भागवतके श्लोकोका आस्वादन करते-करते श्रीमहाप्रभुका कृष्ण-विरह रूपी महाभाव-सागर नवनवायमानरूपसे उच्छलित हो उठता था।

ये समस्त अप्राकृत महाभावके लक्षण एकमात्र श्रीकृष्णकी सर्व-श्रेष्ठा सेविका और प्रियतमा श्रीराधारानीमे ही पूर्णतया प्रकट होते है। जो लोग जगत्के अभिनिवेश अथवा शुष्क वैराग्यके सामान्य सबलको लेकर व्यवसाय करते है, वे इन ऊँचे भावोकी धारणा ही नही कर सकेगे। इतना ही नही, जिनका चित्त वैकुण्ठके ऐश्वर्यमे आकृष्ट है, वे भी श्रीराधाके प्रेमोन्मादकी बात किसी तरह भी नही समझ सकते। श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम सेवा-राज्यकी चरम सीमा है। उसी सेवाकी पराकाष्ठाको—प्रेमकी पराकाष्ठाको इस प्रपचमे मूर्तिमान् किया है श्रीचैतन्यदेवने।

पूर्णतमभावमे सर्वांगद्वारा सब समय श्रीकृष्णके सुखका अनुसन्धान (आवेशके साथ ध्यान) करते हुए भी 'कुछ भी सेवा नही कर पा रहा हूँ, किस प्रकारसे कृष्णकी इन्द्रियतृप्ति करूँगा ?' इसके लिये जो निरन्तर प्रबलोत्कण्ठा होती है, उसीको 'विप्रलम्भ' या 'कृष्ण-विरह' कहते है। श्रीमन्महाप्रभुने इसी अति उच्चतम भजनके विषयको जगत्मे वितरित किया है। इसका वितरण पहले किसी समय किसी स्थानमे नही हुआ है।

इस प्रकार श्रीमहाप्रभुने प्रथम चौबीस वर्ष गृहस्थलीलाका अभि-नय, द्वितीय चौबीस वर्षमे पहले छ वर्ष सन्यासी-शिरोमणि आचार्यकी लीलामे समस्त भारतमे शुद्ध-भक्तिका प्रचार, शेष अठारह वर्षोमे छ वर्ष भक्तोके सग वास और पुरीमे आचार्य-लीलाका अभिनय तथा सबके अन्तके बारह वर्ष अन्तरग भक्तोके साथ निरन्तर रसास्वादन-लीला प्रकट करके कुल अडतालीस वर्ष प्रकट-लीला की थी। इसके बाद भक्तगणको अधिकतर विरहमे और श्रीकृष्णभजनमे उन्मत्त करनेके लिये अपनी प्रकट-लीलाको सगोपन किया था। इसी कारण श्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद विरह-व्यथित होकर गाया है,—

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालीकलनया
मुहुर्वृन्दारण्य-स्मरणजनित-प्रेमविवशः ।
क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचलरसनो भक्तिरसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥

—'स्तवमाला', श्रीचैतन्यदेवका प्रथमाष्टक

[समुद्र-तीरके उपवन समूहको देखकर बारबार वृन्दावन-स्मृतिमे जो प्रेमविवश हो जाते थे अथवा कभी निरन्तर श्रीकृष्णनाम कीर्तनमे जिनकी रसना चचल हो उठती थी, वही भक्ति-रस-रसिक श्रीचैतन्यदेव क्या पुन हमारे नेत्रोके गोचरीभूत होगे ?]

निन्यानबेवाँ परिच्छेद

अप्रकट-लीला

बहुतेरे श्रीचैतन्यदेवकी अप्रकट-लीलाको साधारण मनुष्यके देह-त्यागकी सीमामे लाकर देखना चाहते है। साधारण योगियोके शरीर भी अलक्षितभावसे अदृश्य हो जाते है, इसके अनेको प्रत्यक्ष प्रमाण पाये जाते है। भक्तवर श्रीध्रुवके सशरीर नित्यधाममे जानेकी बात* श्रीमद्भागवतमे देखी जाती है। और श्रीचैतन्यदेव जो योगेश्वरोके परमेश्वर है, भक्तियोगियोके नित्य ध्यानकी वस्तु है, उनका सच्चिदानन्द-शरीर किस प्रकार अन्तर्हित हुआ था, यह तनिक सेवोन्मुख-प्रकृतिस्थ होकर विचार करनेसे ही उनकी कृपासे समझमे आ सकता है। श्रीमहाप्रभुने प्रकट-लीलाके समय भी अनेको बार अनेको स्थानोसे अन्तर्धान-लीला प्रदर्शन की थी, यह अचिन्त्यशक्ति भगवान्के लिये कुछ भी

* श्रीमद्भागवत ४।१२।३० श्लोक देखिये ।

असभव बात नही है। जिन्होने सप्त-सकीर्तन-सम्प्रदायोके प्रत्येक सम्प्रदायमे एक ही समय नृत्य-कीर्तन-लीला प्रकट की थी, जिन्होने श्रीश्रीवास पडितके मृत पुत्रके मुखसे तत्वकी बात कहलायी थी, जिन्होने विसूचिका-रोगसे मृतप्राय अमोघको स्पर्शमात्रसे रोगमुक्त और स्वस्थ करके उसी क्षण उसके द्वारा श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए नृत्य कराया था, जो प्रबल तरगोके द्वारा उछलते हुए समुद्रमे महाभावकी मूर्च्छामे सारी रात्रि रहे थे, जिन कृपालु भगवान्ने गलित-कुष्ठ रोगी वासुदेवको आलिगन करके तुरन्त सुपुरुष और कृष्णप्रेमी बना दिया था, उन अचिन्त्य अतर्क्य अनन्त ऐश्वर्य प्रकटकारी श्रीभगवान्के लिये सशरीर अन्तर्हित होना अथवा एक ही समयमे बहुतसे स्थानोमे प्रकट रहना कुछ भी अस्वाभाविक और असभव बात नही है। श्रीरामचन्द्रादि भगवदवतारोके भी सशरीर और सपार्षद वैकुण्ठ-विजयकी कथा भारतवर्षमे शास्त्र-प्रसिद्ध व्यापार है। स्वय भगवान् श्रीकृष्णके सशरीर अन्तर्धान-लीलामे प्रवेशकी कथा श्रीमद्भागवतमे मिलती है।

लोकाभिरामां स्वतनु धारणाध्यान-मङ्गलम् ।
योगधारणयाग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ।।

—भा० ११।३१।६

अर्थात् श्रीकृष्ण ध्यान-धारणाके विषयस्वरूप लोकाभिराम श्री-विग्रहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध किये बिना ही अपने धाममे प्रविष्ट हुए।

स्वेच्छामृत्यु योगीगण अपनी देहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध करके लोकान्तरमे प्रवेश करते है। परन्तु श्रीभगवान्का अन्तर्धान उस प्रकारका नही है, श्रीभगवान् अपने नित्य सच्चिदानन्द-शरीरको बिना दग्ध किये हुए उसी शरीरसे वैकुण्ठमे प्रवेश करते है। इसका कारण यही है कि, उनके श्रीअगमे समस्त लोक अवस्थित रहते है, अतएव सारे जगत्के आश्रयस्वरूप उनके शरीरके दग्ध होनेपर जगत्के दग्ध होनेका प्रसग उपस्थित हो जाता है।

अजातो जातवद् विष्णुरमृतो मृतवंत्तथा ।
मायया दर्शयेन्नित्यं अज्ञानां मोहनाय च ।।

—ब्रह्मपुराण

[भगवान् विष्णु अज्ञानी व्यक्तियोको मोहित करनेके लिये अजन्मा होते हुए भी मायाबलसे जन्म लेनेवाले जीवके समान और अमृत होते हुए भी मृत जीवकी भाँति अपनेको दिखलाते हैं ।]
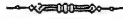
सौवाँ परिच्छेद

श्रीचैतन्यदेवके रचित ग्रन्थ

श्रीचैतन्यदेवने श्रीसनातन और श्रीरूपके द्वारा भक्तिशास्त्रकी रचना करवायी । जो जो भक्ति-ग्रन्थ लिखवाने थे, उनके सूत्रोको काशीमे अवस्थानके समय उन्होने श्रीसनातनको बतला दिया था । श्रीसनातनके द्वारा रचित 'श्रीवृहद् भागवतामृत', 'श्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी',' श्रीकृष्णलीलास्तव', 'श्रीहरिभक्तिविलास' महाप्रभुके ही सिद्धान्तो से पूर्ण ग्रन्थराज है । श्रीरूपके द्वारा रचित 'श्रीसक्षेप-भागवतामृत', 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु', 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ भी वैसे ही है । श्रीमहाप्रभुने प्रयागमे इन ग्रन्थोके सूत्र श्रीरूपको बतलाये थे । श्रीरूपके 'श्रीललितमाधव', 'श्रीविदग्धमाधव' प्रभृति नाटकोको और श्रीसनातनकी कतिपय रचनाओको श्रीमहाप्रभुने स्वय देखकर उनका पूर्णतया अनु-मोदन किया था । श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपाद, श्रीरघुनाथ दासगोस्वामि-पाद और आगे चलकर श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने जिन ग्रन्थोकी रचना

की थी, वे भी श्रीमहाप्रभुके बतलाये हुए सूत्रो और सिद्धान्तोका अवलम्बन करके ही रचे गये थे।

'कुमारहट्ट' अथवा 'हालीशहर'के निवासी श्रीशिवानन्द सेन प्रतिवर्ष बहुतसे गौडीय भक्तोको साथ लेकर श्रीनीलाचलमे श्रीचैतन्यदेवके श्रीचरणोमे पहुँचते थे। श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदास और कनिष्ठ पुत्र श्रीपरमानन्ददास (कविकर्णपूर) ने श्रीचैतन्यदेवके दर्शन और कृपा प्राप्त की थी, एव अपने नेत्रोसे श्रीगौरसुन्दरकी विभिन्न लीलाओको देखा था। कोई-कोई कहते है कि, 'श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य' श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र कविकर्णपूरके रचित बताये जानेपर भी* वस्तुत श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदासने ही उक्त ग्रन्थकी रचना की थी। इसमे भी श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत चरित-कथा प्राप्त होती है। श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र—जो श्रीपरमानन्ददास या श्रीपुरीदास अथवा 'श्रीकविकर्णपूर'के नामसे प्रसिद्ध है, उनके ही मुहमे श्रीचैतन्यदेवने अपना पदागुष्ठ प्रदान किया था। इन्होने ही 'श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय-नाटक' और 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका'मे श्रीचैतन्यदेव और उनके पार्षदोके चरित्रका वर्णन किया है। श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद श्रीगौरसुन्दरके प्रिय पार्षद थे, उनके श्रीमुखसे श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयने श्रीचैतन्यदेवके जिन सब उपदेशोको श्रवण किया था, उन्हे ही सर्वसाधारणके लिये बगलामे 'प्रार्थना' और 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' नामक ग्रन्थमे लिपिबद्ध किया है।

श्रीमुरारिगुप्त श्रीमन्महाप्रभुके नवद्वीप-लीलाके सगी थे और श्री-स्वरूप दामोदरने 'पुरी'मे निरन्तर श्रीमहाप्रभुके साथ रहकर उनकी अन्त्यलीलाको अपनी आँखोसे देखा था। उन दोनोने ही श्रीमन्महा-प्रभुकी लीला, चरित्र, शिक्षा, भजनादर्श, तत्व और सिद्धान्तको जो लिपिबद्ध कर रक्खा था, वही क्रमश 'श्रीमुरारिगुप्तके करचा'† और

---

* श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य २०।४६

† करचा—सूत्राकारमे लिखित घटनाएँ।

'श्रीस्वरूपदामोदरके करचा' के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीस्वरूपदामोदरके करचाका अवलम्बन करके श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपादने श्रीचैतन्य-देवके लीलात्मक कतिपय स्तव, तथा प्रभुके सिद्धान्तोसे पूर्ण ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीदासगोस्वामिपादके श्रीमुखसे सुनकर ही श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवके चरितकी अर्थात् 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीमन्महाप्रभुके अभिन्न आत्मा श्रीमन्नित्यानन्दके साक्षात् शिष्य तथा श्रीश्रीवास पडितके दौहित्र (भतीजीके पुत्र) थे—श्रीवृन्दावनदास ठाकुर। उन्होने श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीश्रीवास पडित और श्रीगौरभक्तगणके श्रीमुखसे श्रीमन्महाप्रभुकी लीलाकथा श्रवण कर "श्रीचैतन्यभागवत'-नामक ग्रन्थ लिखा है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाका अवलम्बन कर श्रीवृन्दा-वनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमे श्रीमन्महाप्रभुकी लीला और शिक्षा गुम्फित (विशेषरूपसे वर्णित) की है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाको मूल रूपमें ग्रहण करके श्रीनरहरि सरकार ठाकुरके शिष्य श्रीलोचनदास ठाकुरने भी 'श्रीचैतन्यमगल' नामक पाचाली ग्रन्थकी रचना की है।

श्रीचैतन्यदेवने स्वय 'शिक्षाष्टक'-नामसे प्रसिद्ध आठ सस्कृत श्लोकोकी रचना की है, उसमे उनकी शिक्षाका सार निहित है। इसके अतिरिक्त श्रीमहाप्रभुके रचे हुए और भी कई बिखरे श्लोक पाये जाते है। उनका श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीपद्यावली'मे सकलन किया है। श्रीमहाप्रभुने दाक्षिणात्यकी पयस्विनी नदीके तीरस्थ 'आदि-केशव' मन्दिरसे 'श्रीब्रह्मसहिता' और 'कृष्णवेण्वा'के तीरसे 'श्रीकृष्णकर्णामृत'-नामक दो ग्रन्थोको लाकर उनसे क्रमश अपने प्रचार्य तत्व-सिद्धान्त और रस-सिद्धान्तोके विचारोको जगत्मे प्रकट किया था।

श्रीगौरसुन्दरके प्रकट-कालीन पार्षदोमे और भी बहुतोने गौडीय (बग) भाषामे तथा सस्कृत भाषामे बहुतसी पदावली और सिद्धान्त ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीशिवानन्द सेन, श्रीवासु घोष, श्रीमाधव घोष, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरामानन्द राय, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर, श्रीमुरारि

गुप्त, श्रीरामानन्द बसु, श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुर, श्रीजगदानन्द पडित, श्रीवशीवदन, श्रीमाधवी-देवी आदि श्रीगौर-पार्षदोने पदावलीकी रचना करके श्रीगौरहरिकी विभिन्न लीलाओको गुम्फित किया है। श्रीरघुनाथ भागवताचार्यने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका पद्यानुवाद किया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थका नाम है—"श्रीकृष्णप्रेम-तरगिणी"। श्रीरूप-सनातनके मित्र श्रीराघवपडित गोस्वामीने जो दाक्षिणात्यविप्र थे और गोवर्द्धन-पुछरीके निकट गुफामे* श्रीयुगल-भजनमे रत थे 'श्रीभक्ति-रत्नप्रकाश'की रचना की, तथा श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद और श्रीश्रीनाथ पडितने 'श्रीमद्भागवतकी टीका', श्रीनरहरि सरकार ठाकुरने 'श्रीकृष्णभजनामृत', उत्कलनिवासी श्रीकानाई खुँटियाने 'महाभाव-प्रकाश', श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादने 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत' और 'श्रीवृन्दावन-शतक' इत्यादि ग्रन्थोकी रचना की।
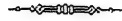
एकसौ एकवाँ परिच्छेद

श्रीचैतन्यदेवके प्रचार और सिद्धान्त

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने 'श्रीचैतन्य-शिक्षामृत' ग्रंथमें लिखा है,—

"श्रीमन्महाप्रभुने जिन चौबीस वर्ष गृहस्थ-लीलाका अभिनय किया था, उस समय श्रीश्रीवासके आँगनमें, गंगाके तीरपर, चतुष्पाठी (पाठशाला) में, रास्ते-रास्तेपर तथा गाँवके द्वार-द्वारपर आपामर सर्वसाधारणके निकट हरिनाम-माहात्म्य और हरिकीर्तनकी कर्तव्यताका प्रचार किया था; पश्चात् संन्यास ग्रहण करके श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य प्रभृतिको, विद्यानगरमें श्रीराय रामानन्दको, दक्षिण देशमें

* अभीतक यह गुफा 'राघवपडितकी गुफा'के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीवेंकट भट्ट आदिको, प्रयागमें श्रीरूपगोस्वामीको तथा चातुर्यसे श्रीरघुपति उपाध्याय और श्रीवल्लभभट्ट महोदयको , वाराणसीमें श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती आदिको जो उपदेश दिये थे, उनसे ही श्रीमहाप्रभुकी शिक्षा यथार्थरूपसे प्राप्त की जा सकती है।

जगज्जीवके प्रति अपार दया प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभुने समस्त भारतमे विशुद्ध वैष्णव-धर्मका प्रचार किया था। किसी देशमें स्वयं जाकर प्रचार कार्य किया तो किसी-किसी देशमें प्रचारक भेजकर यह कार्य सम्पन्न किया। प्रचारकोमें असीम शक्ति संचार करके उन्हें देश-देशमें भेजा था। श्रीमहाप्रभुके प्रचारकगण प्रेमसूत्रसे कार्य करते थे। वे लोग किसी वेतन या पुरस्कारकी आशा नहीं करते थे।"

श्रीचैतन्यदेवने श्रीभागवत-धर्मका प्रचार किया है। भागवत-धर्मके सिद्धान्तानुसार परतत्व—अद्वयज्ञान या अद्वितीय-तत्व है। उसकी त्रिविध प्रतीति होती है—(क) 'ब्रह्म', (ख) 'परमात्मा' और (ग) 'भगवान्'। परतत्व 'सनातन' अर्थात् नित्य, 'पूर्ण' अर्थात् अखण्ड और 'परमानन्द' अर्थात् सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है। परतत्त्वका आनन्द दो प्रकारका है—(१) उनके स्वरूपका आनन्द और (२) स्वरूपशक्त्यानन्द। स्वरूप-शक्तिके आनन्दमे अधिक विलास और विचित्रता है। जहाँ वैशिष्टच या धर्म प्रकाशित नही होता वही 'ब्रह्म' है। जहाँ गुण, धर्म या शक्तिसे वस्तुका परिचय नही मिलता, तथापि वह चेतन और सत्तामय है, ऐसा दुर्निर्णय तत्व ही 'ब्रह्म' है। उसके बाद ही है ईश्वर, पुरुष, अन्तर्यामी या परमात्मा। यही 'परमात्मा' सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता है। उनकी सत्तासे सबकी सत्ता है, उनकी असत्तामे अर्थात् महाप्रलयकी निष्क्रियावस्थामे सबकी असत्ता है। वे माया और जीवको प्रकट करके नियमन करते है। प्रत्येक जीवके हृदयरूपी पुरमे वे अन्तर्यामी नियामकरूपमे अवस्थान करते है। और 'श्रीभगवान्' एकमात्र स्वरूपशक्तिके साथ विलास करते है। ब्रह्म,

परमात्मा, श्रीनारायण या श्रीकृष्ण—एक ही तत्व है। इनमे केवल शक्तिके प्रकाश और आविर्भावका तारतम्य है। परतत्वका पूर्णतम आविर्भाव ही—श्रीकृष्ण है। परतत्वकी सारी विशिष्टताओमे श्रेष्ठ विशिष्टता यही है कि—वे प्रेम करते है, और प्रेम स्वीकार करते है। वह सर्वापेक्षा घनिष्ठ और प्रियतम है। उनको प्रेम क्यो किया जाता है, इसका कोई कारण नही है। क्योकि प्रेम करना और प्रेम स्वीकार करना उनके स्वरूपका ही नित्यसिद्ध स्वभाव है।

श्रीभगवत्तत्व एक और अद्वितीय होनेपर भी शक्तिके प्रकाश-भेदसे विभिन्न नित्य नाम, नित्य रूप, नित्य गुण, नित्य लीला और नित्य परिकरमे प्रकाशित होता है। श्रीमत्स्य, श्रीकूर्म, श्रीवराह—आदि भगवत्तत्वमे आंशिक शक्तिका आंशिक प्रकाश है। इनकी अपेक्षा श्रीनृसिंह और श्रीरामचन्द्रमे अधिक शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्णमे परिपूर्ण शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्ण-स्वरूपमे श्रीद्वारकेश 'पूर्ण', श्रीमथुरेश 'पूर्णतर' और श्रीगोकुलेश 'पूर्णतम' है। श्रीगोकुलेश श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन ही—युगलविहारी श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य भगवद्-विग्रहके भक्त अपने उपास्यको इतना प्रेम नही करते, अथवा अन्य भगवद्विग्रह भी अपने भक्तको इतना प्रेम नही करते। स्वयं भगवान्का भक्तवात्सल्य तथा तदीय भक्तकी भक्ति दोनो अद्वितीय एवं अतुलनीय है।

अंशी भगवत्तत्वकी जैसी सामर्थ्य, जैसा स्वरूप, जैसी स्थिति है, स्वांशकी भी वैसी ही है। स्वांश और अंशीमे जरा-सा भी भेद नही है, इनमे केवल शक्तिप्रकाशका तारतम्य और लीलाकी विचित्रता प्रकाशित है।

जीव भगवान्का 'विभिन्नांश' है—विशेषरूपसे भिन्न अंश अर्थात् जीव-शक्ति-विशिष्ट श्रीभगवान्का अंश है, परन्तु कृष्णके शुद्ध अंश या लीलावतारादि स्वांशके समान शक्तिमान् अंश या विष्णुतत्व नही है। शक्तिमान्की स्वरूपसिद्धा शक्तिका ही विविध विक्रम है—(१) 'चित्-

शक्ति' या स्वरूप शक्ति। ये शक्तिमान्के साथ रहती है; शक्तिमान्को सुख देती है—आनन्द देती है। जो भगवान्को आनन्द देती है वे ही भक्तको भी सुखी करती है। (२) 'अचित्-शक्ति' या विरूप-शक्ति, इसीको 'माया' कहते है। यह जीवको शक्तिमान्से ढककर रखती है, शक्तिमान्को देखने नही देती, प्रतारणा करती है। (३) इन दोनो शक्तियोके मध्यवर्ती स्थानमे अवस्थित रहनेवाली तटस्था 'जीवशक्ति' है, यह अणुचेतन, अनन्त और नित्य है। जीव—परमात्माका वैभव, और स्वरूपशक्ति—श्रीभगवान्का वैभव है।

मत्स्य, कूर्म, वराह प्रभृति स्वाश भगवत्-तत्वगण—परमेश्वर है। ये भगवदश कथित होनेपर भी विभिन्नाश जीवके समान नही है। जिस प्रकार तेजके अशी सूर्य, और तेजके अश खद्योत—दोनो ही अखण्ड तेजके अश है, तथापि सूर्य और जुगनू एक नही है। महाप्रभावशाली ऋषि, मनु, देवता, मनुपुत्र, प्रजापति—ये श्रीहरिकी विभूति है। महत्तम जीवमे श्रीभगवान्की अल्पशक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'विभूति' और अधिक शक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'आवेशावतार' कहलाता है। देवतागण—तेजोमय शरीर-विशिष्ट सत्वगुणयुक्त, स्वच्छन्दगति, मनुष्यके पूज्य, भक्तोको अभिलषित वर देनेवाले स्वर्गलोकके वासी है।

देवताओमे देवराज इन्द्र श्रेष्ठ है। स्वर्गलोकमे वामनरूपी श्रीउपेन्द्र (इन्द्रके कनिष्ठ भ्राता) पत्नी 'कीर्ति'के साथ सर्वदा इन्द्रकी विपद्से रक्षा करते है और उनकी पूजा ग्रहण करते है। इन इन्द्रसे ब्रह्मा श्रेष्ठ है। ब्रह्मलोकमे सहस्रशीर्षा यज्ञाधि-ठाता महापुरुष भगवान् श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ आविर्भूत होकर ब्रह्माके दिये हुए यज्ञभागको ग्रहण करते है। श्रीब्रह्मासे श्रीमहादेव श्रेष्ठ है। यह कैलास-पर्वतपर ईशानकोणके पालकके रूपमें परिवारवर्गसे घिरे हुए श्रीउमादेवीके साथ श्रीसकर्षण-विष्णुकी सेवा करते है। श्रीमहादेवसे श्रीप्रह्लाद श्रेष्ठ है। ये भगवद्भक्तोंके आदर्श है, ये सुतलमे ध्यानयोगके द्वारा श्रीश्रीनृसिंह देवकी सेवा करते है। श्रीप्रह्लादसे श्रीहनुमान श्रेष्ठ है। ये किंपुरुष-

वर्षमे श्रीरामचन्द्रका नित्य दासत्व करते है। श्रीहनुमानसे पाण्डवगण श्रेष्ठ है। ये बन्धु और स्वजनोके साथ श्रीकृष्णके प्रेमपात्र और कृपा-पात्र है। पाण्डवोके लिये श्रीकृष्णने अपनी प्रतिज्ञा भग की थी, उनके सारथीका कार्य, मन्त्रित्व, दौत्य, अनुगमन, स्तव और नति की थी। पाण्डवोकी अपेक्षा भी कुछ यादव (नित्य पार्षदगण) श्रेष्ठ है। श्री-द्वारकापुरीमे नित्यपार्षद यादवगण साधारण मनुष्यके समान देह-गेह-कर्ममे व्यस्त रहते हुए भी श्रीकृष्णके प्रेमवश अपने-अपने स्त्री-पुत्रादिको भी भूल जाते है। समस्त यादवोकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रेष्ठ है, द्वारकामे श्रीकृष्णकी निजमूर्तिकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रीकृष्णके अधिक प्रिय है। ब्रह्मादि श्रीकृष्णके पुत्रगण, सकर्षणादि भ्रातृगण, शिवादि सुहृद्गण, रमादि भार्यागण अथवा श्रीकृष्णकी निजमूर्ति भी श्रीकृष्णको श्रीउद्धवके समान प्रिय नही है*। श्रीउद्धवसे भी श्रीव्रजदेवियाँ श्रेष्ठ है। दुस्त्यज्य स्वजन और विधिमार्गका परित्याग करनेवाली श्रीकृष्ण-गतप्राणा श्रीव्रजसुन्दरियोके श्रीपादपद्मोकी सेवा करनेवाले श्रीवृन्दा-वनके गुल्म, लता और औषधियोमे जन्म लेनेकी प्रार्थना करके श्रीउद्धवजीने श्रीव्रजदेवियोकी महिमा प्रकट की है† । उन व्रजदेवियोमे फिर समस्त इन्द्रियो द्वारा, सर्वतोभावेन, सर्वदा, सर्वश्रेष्ठ आराधना करने-वाली श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठा है।

उपासकोमे उनके समान श्रेष्ठ और श्रीभगवान्के लिये प्रेष्ठ (प्रियतम) और कोई नही है। श्रीभगवान्के प्रति प्रीतिकी गाढताके तारतम्यसे ही भक्तोके इस प्रकारके तारतम्य स्वत ही प्रकाशित हुए है।

अनादिकालसे परतत्वकी उपासना भूलकर जीवने दूसरी ओर मुँह फेर रखा है। जिससे इस विमुखताके छिद्रको पाकर माया, जीवके बन्धनका कारण तथा जीवके समस्त दुःखोका जो मूल

---

* भा० ११।१४।१५, † भा० १०।४७।६१।

योगमार्गका प्रयोजन क्रममुक्ति अर्थात् परमात्मामे सायुज्यादिकी प्राप्ति है। यह ईश्वर-सायुज्य ब्रह्म-सायुज्यकी अपेक्षा भी घृणित है, क्योकि इसमे साधनकी प्राथमिक अवस्थामे भगवद्-विग्रहका स्वीकार तथा उनके आनुगत्य अर्थात् भक्तिका भाण होता है।

विमुख जीवके उन्मुख होनेका एकमात्र निदान है—साधुसग। शास्त्र-मूर्ति साधु अथवा महत् (महाभागवत) ही ह्लादिनीशक्तिके दूत है। सर्वश्रेष्ठ साधु या महत् ही है श्रीगुरुदेव। उन्होने परब्रह्ममे प्रचुर निष्ठा प्राप्त की है। नैष्ठिकी भक्तिके कारण वे श्रीभगवान्मे परमाविष्टताको प्राप्त है।

अजातरुचि व्यक्तिके लिये विचारप्रधान मार्ग और जातरुचि व्यक्तिके लिये रुचिप्रधान मार्ग है। विचारप्रधान मार्ग मनीषा या मस्तिष्कका मार्ग है। अपनी अयोग्यताकी तीव्र अनुभूतिसे रुचि उत्पन्न होती है। प्रीतिका आधार हृदय ही इस रुचिका आविर्भाव-स्थान है।

समस्त अभिधेय या साधनोमे भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ अभिधेय है, क्योकि, अन्यान्य साधनोके जो फल है, उन सभीको भक्ति निरपेक्ष-भावसे अनायास ही प्रदान कर सकती है। परन्तु भक्तिका जो फल है, उसका आभास भी अन्यान्य साधनोके द्वारा नही प्राप्त हो सकता। यदि भगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त भक्ति अनुष्ठित होती है, तो वह शीघ्र ही साध्यभक्ति अर्थात प्रीतिमे पर्यवसित हो जाती है। श्रीभगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त, निरवच्छिन्न अमृतधारावत् स्मृतिसे सयुक्त जो नवधा भक्तिके अग है, वे ही—'केवला, अकिंचना या स्वरूपसिद्धा भक्ति है। वर्णाश्रम धर्मके पालन-द्वारा जो विष्णुका तोषण होता है, वह भक्तिका आभास मात्र है। उसके द्वारा चित्तशुद्धि होती है, आत्माकी प्रसन्नता और मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु श्रीभगवान्की प्रीति प्राप्त नही होती। निरन्तर आवेशमयी अकिचना भक्तिके द्वारा ही प्रीति अर्थात् श्रीकृष्णके माधुर्यका अनुभव और लीलारसका आस्वादन होता है। वर्णाश्रम-धर्मका परित्याग कर शास्त्र

विधिके अनुसार भजन ही—'वैधी साधन भक्ति' है, इसे अनन्या भक्ति भी कहा जाता है। और अभिरुचिके साथ अभिमानयुक्त होकर भजन करना ही 'रागानुगा भक्ति' है, इसका दूसरा नाम—'अनन्या भाव-भक्ति' है। 'भावभक्ति' और 'प्रेमभक्ति' उत्तरोत्तर गाढावस्था है। 'प्रेमभक्ति' सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपने स्वरचित शिक्षाष्टकमे* निम्नलिखित उपदेश प्रदान किये है—

१। श्रीकृष्ण-सकीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ भजन है। श्रीकृष्ण-सकीर्तनसे चित्त-दर्पण सम्पूर्णरूपसे मार्जित होता है, भीषण ससार-दावानल अनायास ही सर्वतोभावसे निर्वासित हो जाता है तथा सर्वश्रेष्ठ आत्ममगल पूर्ण विकसित होता है। श्रीकृष्ण-कीर्तन—परविद्या या भक्तिका जीवन-स्वरूप है, श्रीकृष्ण-कीर्तन—प्रेमानन्दको सम्यक् रूपसे बढानेवाला है, श्रीकृष्णकीर्तन—पद-पदपर परिपूर्ण अमृतका आस्वादन कराता रहता है, और श्रीकृष्ण-कीर्तनके प्रभावसे ही जीवगण सुशीतल श्रीकृष्णपाद-पद्म-सेवाके समुद्रमे अवगाहन कर सकते है।

२। नाम और नामीमे कोई भेद नही है। नामी भगवान्ने अपने नाममे सर्वशक्ति अर्पण करके उसे जगत्मे अवतीर्ण कराया है, नाम-कीर्तनमे कालाकाल, स्थानास्थान या पात्रापात्रका विचार नही है। परन्तु दुर्दैव अर्थात् अपराध रहनेपर नाममे रुचि नही होती। वे अपराध दस प्रकारके† है। उनमे महत्‌की निन्दा ही प्रथम अपराध है।

---

* परिशिष्टमे 'शिक्षाष्टक' देखिये।

† दस अपराध—(१) साधुनिन्दा, (२) अन्यदेवमे स्वतन्त्र ईश्वर-बुद्धि, तथा कृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलामे श्रीकृष्णस्वरूपसे पृथक् बुद्धि, (३) नामतत्वविद् गुरुके प्रति अवज्ञा, (४) नाम-महिमावाचक शास्त्रकी निन्दा, (५) शास्त्रमे नामका जो माहात्म्य और फल लिखा है उसको अर्थवाद मानना, (६) श्रीहरिनामको मनकी कल्पना समझना; (७) नामके बलपर पापबुद्धि, (८) श्रद्धाहीन व्यक्तिको नामोपदेश

३। तृणसे भी सुनीच, वृक्षसे भी सहिष्णु, स्वय अमानी और दूसरेको मान देनेवाला होकर निरन्तर हरिनाम कीर्तन करते रहना।

'तृणादपि सुनीच'—वाक्यका अर्थ यह है कि जीव इस जड-जगत्के अन्तर्गत कोई वस्तु नही है, वस्तुत जीव—अप्राकृत अणुचैतन्य और श्रीहरि-गुरु-वैष्णवके पादपद्मकी नित्य रेणु है, अर्थात् उनका नित्य सेवकानुसेवक है।

४। श्रीहरिकीर्तन करनेवाले श्रीहरिनामसे धन, जन, सुन्दरी कामिनी, जागतिक कवित्व या विद्या अर्थात् कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाकी याचना न करे। अधिक क्या, पुनर्जन्मसे भी निष्कृति या मुक्ति, त्रिताप-ज्वाला की शान्ति भी न चाहे। प्रति जन्म श्रीकृष्ण-पादपद्ममे अहैतुकी भक्ति अर्थात् श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानके अतिरिक्त अन्य कामना करनेपर कभी भी श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नही होगी।

५। जीव अपने स्वरूपको श्रीकृष्णके पादपद्मकी धूलिके कणके समान समझकर सर्वदा उत्कण्ठाके साथ श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करे।

६। नाम-ग्रहण लेते-लेते सिद्धिके वाह्य लक्षणरूप आठ सात्विक भाव-विकार स्वत ही शरीरमे प्रकट होगे।

७। सिद्धिके अन्तर्लक्षणके श्रीकृष्णके सन्तोषकी चिन्ताके बिना निमेष भर भी युगके समान जान पडेगा। भीतरकी अकृत्रिम सेवा-व्याकुलताके कारण अश्रु वर्षाकालकी जलधाराके समान प्रवाहित होगे, श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलतामे समस्त जगत् शून्य जान पडेगा अर्थात् जगत्के भोगकी पिपासाके बदले सारी वस्तुओके द्वारा केवल श्रीकृष्णके सन्तोष-विधानके लिये आवेशमयी व्याकुलता होगी।

८। श्रीकृष्ण अपनी निरकुश इच्छावश यदि कृपापूर्वक दर्शन देते है तो बडी अच्छी बात है, और यदि दर्शन न देकर मर्माहत करते है

करना, (९) अन्य शुभ कर्मोके साथ हरिनामकी बराबरी करना, (१०) 'मै और मेरे' की आसक्तिसे नामके माहात्म्यको जानकर भी उसमे प्रीति न करना और नाम ग्रहणके सम्बन्धमे असावधानी होना।

होते भी उस स्वतन्त्र परम पुरुषकी अव्यभिचारिणी सेवाकी प्राप्तिकी आशामे ही पडे रहना होगा। एकमात्र श्रीकृष्ण ही यथा-सर्वस्व, नित्यप्रभु है।

श्रीचैतन्यदेवने दस सिद्धान्त जगत्‌मे प्रकट किये है। ये ही उनकी शिक्षाके मूल सूत्र है—

(१) 'शब्द' या वेद-वाक्य ही प्रधान प्रमाण है। श्रीमद्भागवत उस वेदकल्पतरुका परिपक्व फल है तथा ब्रह्मसूत्रोका अकृत्रिम भाष्य है। वेद-बीज प्रणव ही महावाक्य है।

(२) श्रीकृष्ण ही अद्वितीय परम तत्व है।

(३) वे सर्वशक्तिमान् है—स्वरूप-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्तिके आश्रय है।

(४) वह समस्त रसामृतके समुद्र है।

(५) सारे जीव जीव-शक्तिसे युक्त परमात्माके अणु-चिदश (विभिन्नाश) नित्य, अनेक और अनन्त है। नित्य-बद्ध या अनादि-बहिर्मुख तथा नित्यमुक्त या अनादि-उन्मुख भेदसे जीव दो प्रकारके है।

(६) वहिर्मुखता-छिद्र-दोषके कारण जीव माया-शक्तिके द्वारा ग्रसित और आवृत-ज्ञान है।

(७) परतत्वके प्रति ज्ञानाभावरूपी विमुखता अनादि होनेपर भी वह विनाशी है।

(८) श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति, तटस्था-शक्ति और माया-शक्ति तथा तत्तत्‌शक्ति-परिणत तत्वसमूह श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके कारण श्रीकृष्णसे एक साथ ही भेद और अभेद-युक्त है (अचिन्त्य-भेदाभेद)।

(९) वैमुख्य-विरोधिनी साक्षात्-भगवत्साम्मुख्य-श्रेष्ठा भक्ति ही प्रधान अभिधेय या साधन है।

(१०) परतत्वका अनुभव, विमुक्ति या विज्ञानरूप श्रीकृष्ण-प्रेम ही (श्रीकृष्ण-साक्षात्कार ही) जीवका सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन या साध्य है।

एकसौ-दोवाँ परिच्छेद

वेदान्तभाष्य और सम्प्रदाय

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने कहा है,—"श्रीव्याससूत्रोका अर्थ परम गभीर है; श्रीव्यास—भगवान् है। उनके सूत्रोका अर्थ जीवके लिये अगोचर है; अतएव उन्होने स्वय ही अपने सूत्रोकी व्याख्या की है। सूत्रकर्त्ता यदि स्वय अपने सूत्रोकी व्याख्या करे, तो उनके सूत्रोके यथार्थ अर्थके विषयमे लोगोको ज्ञान होता है। प्रणवका अर्थ गायत्रीमे प्रकाशित है। चतुःश्लोकी श्रीभागवतने उसी अर्थको विस्तार किया है। सृष्टिके आदिमे श्रीनारायणने श्रीब्रह्माको जिन चार श्लोकोका उपदेश किया, श्रीब्रह्माने उसे श्रीनारदसे कहा, और श्रीनारदजीने फिर उसे श्रीव्यासजीको बतलाया। श्रीव्यासजीने उसे सुनकर और विचार करके देखा कि उन्होने जो सूत्ररचना की है, चतुःश्लोकी उन्ही सब सूत्रोका सक्षिप्त भाष्यरूप है। तब चतुःश्लोकीको विस्तृत करके उन्होने सूत्रोके भाष्य-स्वरूप श्रीमद्भागवतकी रचना करनेका सकल्प किया तथा चारो वेदो और उपनिषदोका सार समुद्धृत किया। सूत्रोकी खनिस्वरूप श्रुतिमन्त्रसमूह ही श्लोकाकारमे श्रीमद्भागवतमे निबद्ध हो गये। अतएव श्रीमद्भागवत ही 'श्रीव्याससूत्रो'का अकृत्रिम भाष्य है। श्रीमद्भागवतके श्लोक और उपनिषद्ने एक ही सिद्धान्त स्थापित किया है।"

श्रीगरुडपुराणमे भी कहा है,—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ-परिबृंहितः॥

[यह श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोका विस्तृत अर्थ है। महाभारतके सिद्धान्तका निर्णय है, गायत्री मन्त्रका भाष्य रूप है तथा वेदार्थका विस्तार करनेवाला है।']

इस श्लोककी व्याख्याके प्रसगमे श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने तत्वसदर्भमें* लिखा है कि,—**श्रीभागवत ही ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्यरूप है,** अतएव इस स्वत सिद्ध भाष्यभूत श्रीमद्भागवतके सामने अन्यान्य अर्वाचीन या आधुनिक भाष्यसमूह केवल अपनी-अपनी कपोल-कल्पना मात्र है ; किन्तु श्रीमद्भागवतका अनुगत भाष्य मात्र ही आदरणीय है।

इसी कारण श्रीचैतन्यदेवके पार्षदोमे किसीने पृथक् 'वेदान्तसूत्रो'का भाष्य लिखनेका प्रयास नही किया। श्रीचैतन्यदेवने श्रीकाशीधाममें श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके सामने और श्रीनीलाचलमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके सामने वेदान्तके अकृत्रिम भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तका अवलम्बन करके ही ब्रह्मसूत्रके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'को प्रकटित किया है। उसी सिद्धान्तका अवलम्बनकर श्रीसनातन गोस्वामि-पादने 'श्रीबृहद्भागवतामृत'मे, श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीसक्षेप-भागवतामृत' मे तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने 'क्रमसन्दर्भ', 'षट्सन्दर्भ'में तथा विशेषरूपसे 'सर्वसवादिनी'मे अचिन्त्यभेदाभेदवादको स्थापित किया है।

"अपरे तु 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्र० सू० २।१।११) **भेदेऽप्यभेदेऽपि निर्मर्यादिदोषसन्तति-दर्शनेन भिन्नतया चिन्तयितुमशक्यत्वादभेद साधयन्त-स्तद्वदभिन्नतयाऽपि चिन्तयितुमशक्यत्वाद् भेदमपि साधयन्तोऽचिन्त्यभेदा-भेदवादं स्वीकुर्वन्ति।"**

—परमात्म-सन्दर्भीया 'सर्वसवादिनी' (बगीय-साहित्यपरिषद् सं० १४६ पृष्ठ)

एक सम्प्रदायके वेदान्ती कहते है कि, श्रुतिके प्रमाणके अनुसार तर्कके द्वारा परम सत्यका निर्णय नही हो सकता, इसलिये भेदमे भी और अभेदमे भी निखिल दोषोको देखकर जीव और ब्रह्मको पूर्णतः भिन्न समझना असभव है, अतएव जैसे 'भेद'-साधन करना दुष्कर है,

* 'ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिमभाष्यभूत इत्यर्थः।* * तस्मात्त-द्भाष्यभूते वत सिद्धे तस्मिन् सत्यर्वाचीनमन्यदन्येषा स्वस्वकपोलकल्पितं, तदनुगतमेवादरणीयमिति गम्यते।" —त० स० ११ अनु०

वैसे ही अभिन्न भावका विचार करनेपर 'अभेद' साधन करना भी दुष्कर है। इस प्रकार 'भेदाभेद' दोनोको सिद्ध करते समय ये अप्राकृत तत्वके भेदाभेद साधनमे समझकी असमर्थता देखकर अचिन्त्यभेदाभेद-वादको ही स्वीकार करते हैं। परमतत्व 'अचिन्त्य-शक्ति' है, इस कारण गौडीयमतमे 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ही सिद्धान्त माना गया है।

कहा जाता है कि, 'जयपुर'मे 'गल्ता'की गद्दीमे रामानन्दी सम्प्रदायके लोगोने जयपुरके श्रीश्रीगोविन्दजीकी तत्कालीन सेवा करनेवाले गौडीय लोगोसे प्रश्न किया कि चार स्वीकृत सम्प्रदायो अर्थात् 'श्रीरामानुज', 'श्रीविष्णुस्वामी', 'श्रीनिम्बार्क' और 'श्रीमध्व'मे—इस सम्प्रदाय-चतुष्टयमे आप लोग 'किस सप्रदायके अनुगत हैं'? श्रीबलदेव विद्या-भूषणने विचारके द्वारा प्रतिपक्षियोको पराजित किया। प्रतिपक्षियोने साम्प्रदायिक वेदान्तभाष्य देखना चाहा, तब उन्होने श्रीगोविन्दजीके स्वप्नादेशसे 'श्रीगोविन्द-भाष्य' नामक वेदान्त-भाष्यका निर्माण किया। श्रीबलदेव गौडीयमतमे प्रवेश करनेके पहले तत्ववादी पडित* थे। उन्होने तात्कालिक प्रयोजनानुसार तथा अपने पूर्वसिद्धान्तके साथ कुछ समन्वय करनेके लिये गौडीय लोगोको माध्व-मतके अन्तर्गत प्रदर्शित किया है। वस्तुत गौडीय लोगोके शास्त्र, मन्त्र, ऋषि, उपास्य, साधन, धाम और प्रयोजनके विचारसे उनका सम्प्रदाय सभी सम्प्रदायोके आकर या अशी है। **गौड़ीय लोगोका शास्त्र है—श्रीमद्भागवत**; वह सब वेदान्तका सार, समस्त शास्त्रोका मूल है। अन्य समस्त शास्त्र श्रीमद्भागवतके अश, या स्थलविशेषमे सोपान अथवा विकृत प्रतिफलनस्वरूप हैं। अथवा उसके साथ अभिन्न होते हुए भी अल्प-

* श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर-सम्पादित 'सज्जनतोषनी' पत्रिका १३०४ बगाब्द, नवम खण्ड, दशम सख्या, पचम पृष्ठ देखिये। उन्होने लिखा है,—"वे (श्रीबलदेव) तत्ववादी मठमे विराजमान थे। पहले शाकरभाष्यादि पढकर फिर श्रीमाध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया। वे तत्ववादियोके शिष्य होकर माध्वसम्प्रदायमे सम्मिलित हो गये।"

शक्तिकी आकर-वस्तुको प्रकाशित करते है। गौडीय लोगोके 'श्रीगोपाल मन्त्र'मे सारे मन्त्र निहित हैं। उपास्य-विग्रह श्रीकृष्णमे ब्रह्म-परमात्मा आदिका आविर्भाव है। ऋषि श्रीगान्धर्वा (श्रीराधा) मे सारे उपासक वर्तमान है, साधन भक्तिमे समस्त साधन तथा प्रयोजन श्रीकृष्णप्रेममे समस्त प्रयोजन अन्तर्भूक्त है।

जहाँ प्राकृत भेद होता है वही मतवाद उपस्थित होता है। जीव—मायावश होने योग्य है और परतत्व मायाधीश है। अतएव जीव और परतत्वमे भेद है। पुन, परतत्व—शक्तिमान् है और जीव—शक्तिमान्की ही शक्ति है। अग्निसे जैसे दाहिकाशक्ति अभिन्न है, वैसे ही शक्तिमान् परमेश्वरसे जीव-शक्तिकी अभिन्नता है। ये अभिन्न होनेपर भी इनमे परिमाणगत भेद है। परमेश्वर और जीव दोनो ही सच्चिदानन्द है। परन्तु परमेश्वर पूर्ण सत्, पूर्ण चित् और पूर्ण आनन्द है। जीवकी सत्ता, चेतनता और आनन्दमयता सभी परतत्वके अधीन और अणुपरिमाण है। यह 'अचिन्त्यभेदाभेद' सिद्धान्त कोई वाद नही है, बल्कि यही सम्पूर्ण निर्दोष सिद्धान्त है।

भक्तिको ज्ञानसे पृथक् करनेकी चेष्टाके कारण ही निर्विशेष ज्ञानको 'मतवाद' कहा जाता है। केवलाद्वैतवादी लोग मुक्तिको प्रेमभक्तिसे पृथक् करनेकी चेष्टा करते हैं, इसी कारण मुक्तिको 'कैतव' कहकर तिरस्कार किया जाता है। **आनुकूल्यमयी गाढ़तृष्णाका नाम 'भक्ति' है।** उसके द्वारा परतत्वकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण जब ब्रह्म-परमात्मा के आश्रय हैं, तब श्रीकृष्ण-भक्ति भी ज्ञान और कर्मयोगका आश्रय है। यथार्थ योगित्व और ब्राह्मणत्व भक्तमें ही है। पूर्णतम अशीवस्तुमे ही सारे अश है। श्रीकृष्ण है—पूर्णतम अशी परात्पर-तत्व। श्रीचैतन्यदेव स्वय कृष्ण—पूर्णतम तत्व है। अतएव उनके उपासक गौडीयगण—पूर्ण सम्प्रदाय है। उनके अन्तर्गत अन्य सब आशिक सम्प्रदाय है। श्रीकृष्ण या श्रीकृष्णचैतन्य यदि अन्यतम अवतारविशेष है तो गौडीय लोग भी एक सम्प्रदाय-विशेष है; और यदि श्रीकृष्ण आशिक अवतार-

विशेष न होकर अंशी है, तो गौडीय लोगोंको भी 'पूर्ण-सम्प्रदाय' कहना पडेगा। अद्वयज्ञान पूर्ण-वस्तुको अद्वयज्ञानमय अंश कहनेपर तत्वविचारमें दोष न होनेपर भी रसविचारमें दोष होता है। अतएव गौडीय लोगोंको 'माध्व' कहना ठीक नहीं। माध्वमतसे 'श्रीमहाभारत' सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है, श्रीकृष्ण परशुरामके समान ही पूज्य हैं। इस मतमें साधन है—विष्णुकी आज्ञाका पालन करते हुए विष्णुमें कर्मोंको अर्पण करना; प्रयोजन है—वायु या ब्रह्माके द्वारा मुक्तिकी प्राप्ति। वायु या ब्रह्मा अभिन्न हैं, उनके ऊपर लक्ष्मी हैं, वे विष्णुके अधीन हैं, उनके ऊपर पुरुषोत्तम हैं। माध्वमतमें लक्ष्मीके वशीभूत पुरुषोत्तमका विचार नहीं है। 'रसिकशेखर श्रीकृष्ण—परम कारुणिक' हैं, यह बात भी वे नहीं कहते। श्रीचैतन्यदेव और श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तसे देवतागण अधम अर्थात् सबसे निम्न कोटिके उपासक हैं और गोपीगण चरम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ उपासक हैं। परन्तु माध्वसिद्धान्त इसके विपरीत है। श्रीमध्वप्रणीत 'भागवततात्पर्य'में गोपियोंके चरम माहात्म्यको सूचित करनेवाले "आसामहो"* श्लोकका तात्पर्य नहीं है। अतएव षड्-गोस्वामिगणमें कोई भी श्रीमन्मध्वाचार्यको अपने सम्प्रदायके गुरु रूपमें स्वीकार नहीं करते।

श्रीसनातन गोस्वामिपादने 'श्रीवृहद्वैष्णवतोषणी'में और श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने 'श्रीसंक्षेप-वैष्णवतोषणी'में, 'षट्-सन्दर्भ'में और 'श्रीसर्वसंवादिनी'में, तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने (दशम स्कन्धकी) 'सारार्थदर्शिनी'में श्रीमाध्वमतका खण्डन किया है†।

अपने सहस्रों सम्प्रदायोंके अधिदेवता श्रीकृष्णचैतन्यदेवने जिनको आत्मसात् किया है, वे ही 'गौडीय' हैं। श्रीश्रीराधामदनमोहन, श्रीगोविन्द और श्रीगोपीनाथका उपासक गौडीय-सम्प्रदाय किसी भी

---

* भा० १०।४७।६१।

† इस विषयकी विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' नामक ग्रन्थमें—जो कि बंगलामें है, देख सकते हैं।

अश-शक्ति-प्रवर्तित सम्प्रदायके अन्तर्गत नही है। श्रीश्रीरूपगोस्वामिपाद ने 'श्रीविदग्धमाधव-नाटक'के प्रारम्भमे गौडीयगणको 'रसिक-सम्प्रदाय'के नामसे अभिहित किया है। गौडीय लोगोके मूलमहाजन—श्रीश्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपाद है, उनके अभिन्न-हृदय श्रीश्रीरूप-सनातन गोस्वामिपाद तथा उनके अनुगत चार गोस्वामी है।

एकसौ-तीनवाँ परिच्छेद

'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'

अचिन्त्यानन्त-शक्तिशाली ('अतर्क्यसहस्रशक्ति.' भा० ३।३३।३) परतत्वके शक्तिसमूह तथा शक्ति-परिणत वस्तुसमूहके साथ परतत्वका जो 'अचिन्त्य' (अपौरुषेय-शब्द-गम्य, परन्तु पुरुषकी अर्थात् जीवकी क्षुद्र चिन्तन-शक्ति या युक्ति-तर्क-गम्य नही), युगपत् भेद और अभेदयुक्त सम्बन्ध है, वही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' है। भेद और अभेदकी सह-स्थिति है तथा दोनो ही समान रूपसे सत्य और नित्य है—यह मानवयुक्ति या धारणामें 'अबोध्य' या 'अचिन्त्य' प्रतीयमान होनेपर भी 'शास्त्रोपदिष्ट' होनेके कारण अवश्य स्वीकार्य है। अप्राकृत विषयोमे शास्त्र ही एकमात्र अभ्रान्त प्रमाण है। उपनिषदमे, ब्रह्मसूत्रमे उसके अकृत्रिम भाष्यरूप श्रीमद्भागवतमे, श्रीगीता और श्रीविष्णुपुराणादि शब्द-प्रमाणमे यह 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'-रूप 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' *

* "सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थं सर्वतन्त्र-सिद्धान्त ।" ('न्याय-दर्शन' १।१।२८)—अर्थात् जो सर्वशास्त्रोसे अविरुद्ध तथा शास्त्रमे कथित है वही 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है। (तन्त्र शब्दका अर्थ है—शास्त्र।)

ग्रथित है। वही श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित तथा गौडीय-गोस्वामियों द्वारा प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त है। श्रीचैतन्यदेवने श्रीनीलाचलमे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे शाकर-भाष्यकी श्रवण-लीलाके समय, श्रीकाशी-धाममे केवलाद्वैतवादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके मतवादके खडनके समय तथा श्रीसनातन गोस्वामि-प्रभुपादको लक्ष्य करके लोक-शिक्षा प्रदान करते समय इस 'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'को ही प्रकट किया था। श्रीसनातनपादने 'श्रीवृहद्भागवतामृत'मे तथा 'श्रीवैष्णवतोषणी'मे उनके शिष्य श्रीरूपपादने 'श्रीसक्षेप-भागवतामृत'मे, और श्रीसनातन-रूपपादके शिष्यवर्य श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने विस्तृत भावसे 'षट्सन्दर्भ'मे तथा 'श्री सर्वसवादिनी'मे इसी अचिन्त्य-भेदाभेदवादको प्रकटित किया है। श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद 'श्रीभगवत्सन्दर्भ'मे * श्रीमद्भागवतका श्लोक (४।१७।३३) उद्धृत करते हुए कहते है,—'उस समुन्नद्ध-(गर्वित) विरुद्ध शक्तिशाली, निग्रह-अनुग्रहके विधाता—परम-पुरुषको मै प्रणाम करता हूँ।' परमेश्वरके विरुद्ध शक्तिसमूहके अचिन्त्यत्वका प्रदर्शन करते हुए कहते है कि,—'आप जीवसमूहके ईश्वर है, आपकी शक्तियाँ तर्कातीत है अर्थात् अचिन्त्य और अनन्त है।' परतत्वका एक साथ ही शक्तिमत्व और शक्तिका अचिन्त्यत्व ब्रह्मसूत्रके 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' (२।१।२७) तथा 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' (२।१।२८) सूत्रोमे बतलाया गया है।

किसी प्रमाणसिद्ध कार्यकी अन्य किसी भी प्रकारसे उपपत्ति (समाधान, सिद्धि) नही होती। अतएव अगत्या जो ज्ञान होता है, उस प्रकारके ज्ञानके विषयको ही 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहा जाता है;

---

* "तस्मै समुन्नद्धविरुद्धशक्तये, नम परस्मै पुरुषाय वेधसे।' (भा० ४।१७।३३), तासामचिन्त्यत्वमाह—'आत्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्र-शक्ति' (भा० ३।३३।३) * * * उक्तचाचिन्त्यत्वम्—'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' इत्यादौ, 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' इत्यादौ (ब्र० सू० २।१।२७-२८)"। —भग० स०, १४-१५ अनु०

प्रत्येक भाववस्तुमें जो शक्ति है, वही अचिन्त्यज्ञान-गोचर होती है ; क्योंकि शक्तिमात्रका इस प्रकारका स्वभाव लोकसिद्ध है। अतएव ब्रह्ममें जो शक्तियाँ हैं, वे सभी अचिन्त्यज्ञान-गोचर है।

समस्त भाव-वस्तुओंकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञान-गोचर हैं, 'जल', 'अग्नि' आदि भाव वस्तुएँ हैं, परन्तु जलमें अग्निको बुझानेकी शक्ति क्यो है ? अग्निमें जला डालनेकी शक्ति क्यो है ? इसे आधुनिक विज्ञान भी नही बतला सकता। एक भाग 'अम्लजान' और दो भाग 'उद्‌जान' मिलनेसे जल बनता है, विज्ञान यह कह सकता है किन्तु क्यों बनता है ? विज्ञान उसको नही बतला सकता। **जो ज्ञान किसी युक्ति-तर्कके द्वारा प्रतिष्ठित नही हो सकता, तथापि प्रत्यक्ष सत्यके रूपमें जिसको स्वीकार किये बिना भी नहीं रहा जा सकता, वही 'अचिन्त्यज्ञान' या 'अर्थापत्ति-ज्ञान' है।** 'देवदत्त' दिनमें भोजन नही करता, तथापि उसका शरीर खूब स्वस्थ, सबल और स्थूल है। अतएव कल्पना कर लेनी पडती है कि वह निश्चय ही रातमें भोजन करता है। यहाँ देवदत्तका जो दिनमें 'अभोजन' और 'स्थूलत्व' है वह प्रत्यक्ष लौकिक प्रमाणके द्वारा सिद्ध हैं, इसे 'दृष्टार्थापत्ति' कहते हैं, और जो प्रकृतिसे अतीत प्रमाण या स्वत प्रमाण 'वेद'के द्वारा सिद्ध होता है, उसे 'श्रुतार्थापत्ति' कहते हैं। 'देवदत्त' नामक कोई व्यक्ति जीवित है, यह जिसे निश्चय है, वह यदि किसी आप्त (विश्वस्त) पुरुषसे सुनले कि 'देवदत्त' घरमें नही है,—तो वह देवदत्तकी वहि सत्ताकी (बाहर रहनेकी) कल्पना कर लेगा, क्योकि जीवित व्यक्तिकी अपने घरमें असत्ता (अस्तित्व-हीनता—न रहना), उसकी वहि सत्ता (बाहर रहने)के बिना सिद्ध (उपपन्न) नही होती। श्रुतिके प्रमाणसे यह सिद्ध हो गया है कि, 'ब्रह्म और जीवमें, शक्तिमान् और शक्तिमें अभेद हैं'। फिर, श्रुतिका उपदेश (आप्तोपदेश) सुनकर ही ज्ञात हुआ है कि 'ब्रह्म और जीवमें भेद है, शक्तिमान् और शक्तिमें भेद है।' अतएव अव्यभिचारी प्रमाण की आपातविरुद्ध दो उक्तियोंका, यानी 'देवदत्त है और नही है', तथा

शक्तिमान् और शक्तिमें युगपत् भेद और अभेद है—इन दो सत्योकी सगति कैसे हो सकेगी, उसे अव्यभिचारी प्रमाणमूलक श्रुतिके अर्थकी (तात्पर्यकी) आपत्ति (कल्पना)के द्वारा निर्धारण करना पडेगा। यह कल्पना शब्दमूलक, शब्द-प्रमाणके समान ही 'वास्तव सत्य' है। और शब्द-प्रमाण (ब्रह्मसूत्र २।१।२७, शाकरभाष्य सहित, श्रीमहाभारत, श्रीविष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत इत्यादि) जहाँ स्पष्ट भाषामें श्रुतिके इस प्रकारके समकालीन भेद और अभेदको (शक्ति और शक्तिमान्में) 'श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर' अथवा 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहकर व्यक्त करते हैं, वहाँ फिर जीवकी क्षुद्र चिन्ता अथवा किसी ऋषि या महा-मानवकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवकाश ही नही रह गया है। महामनीषी आचार्य श्रीशकर 'अभेदपरक' श्रुतिको 'पारमार्थिक सत्य' और भेद परक श्रुतिको 'व्यावहारिक या मिथ्या' कहकर अपनी कपोल-कल्पना व्यक्त करते है, वे मायाको अनिर्वचनीया कहते हैं। श्रुतिमें स्वाभाविकी नित्यसिद्धा पराशक्ति और उसका बहुत्व,-चेतनका बहुत्व, जीवका नित्यत्व और बहुत्व आदि सिद्धान्त स्पष्ट भाषामें व्यक्त होने पर भी इन सारी श्रुतियोंको उन्होने 'व्यावहारिक' बताकर कल्पना की है। 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण 'शब्दमूलक' होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवसर नही है। 'दृष्टार्थापत्ति'-प्रमाण में कभी-कभी व्यभिचार सभव हो सकता है, परन्तु 'श्रुतार्थापत्ति'में ऐसा कभी सभव नही है, क्योकि वह पूर्णत शब्दमूलक या 'शब्दप्रमाण' की ही परिष्कृति, विवृति और सगति है। इसी कारण गौडीय-वैष्णव दार्शनिकोने 'अतीन्द्रिय वस्तु'के सम्बन्धमें 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाणके बलसे ही सिद्धान्त स्थापित किया है। यही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'की सुदृढ सुदार्शनिक भित्ति है। इसी कारण 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' वेदान्तका 'सर्वतन्त्रसिद्धान्त' है। श्रुतिमें स्पष्ट भाषामें परब्रह्मकी शक्ति मायाका तत्वनिरूपण होनेपर भी आचार्य श्रीशकरने मायाको 'अनिर्वचनीया' कहा है। गौडीय-वैष्णव-दार्शनिकोका 'अचिन्त्य' शब्द. और शकरका

'अनिवर्चनीय' शब्द एक नही है। मायाको स्पष्ट भाषामें 'ब्रह्मशक्ति' मान लेनेपर 'अद्वैतसिद्धि' नही होती, फिर, मायाको न माननेपर भी कार्य नही चलता, इसी कारण अनिर्वाचनीय' शब्दका जो प्रयोग है वह 'अचिन्त्य' शब्दके साथ समानजातीय नही है। 'अचिन्त्य'-शब्दका अर्थ 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' (२।१।२७) इस ब्रह्मसूत्रके द्वारा समर्थित है। इसको आचार्य शकरने भी इस सूत्रके अपने भाष्यमें स्वीकार किया है, 'अचिन्त्य' शब्दका अर्थ है 'शब्दमूलक, श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर', इस बातको श्रुति, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गीता, विष्णुपुराण, आचार्य शकर, श्रीधरस्वामिपाद एव सर्वोपरि स्वय भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवने एक स्वरसे कीर्तन किया है। श्रीगौडीय-वैष्णव-सिद्धान्तमें श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने इस प्रकार 'श्रुतार्थापत्ति'की ही अवतारणा की है।

परतत्वकी 'स्वरूपशक्ति', तटस्था 'जीवशक्ति' और वहिरगा 'मायाशक्ति' तथा क्रमश इन सारी शक्तियोकी परिणति 'भगवत्परिकर', 'भगवद्धाम', अनन्त 'मुक्त' और 'बद्ध' जीव और अनन्त 'ब्रह्माण्ड'—इन सारी शक्तियो तथा शक्तिपरिणत वस्तुओके साथ परतत्वका जो 'सम्बन्ध' है, उसे लेकर ही दार्शनिक मतवादोकी उत्पत्ति हुई है। कोई कहते है,—"शक्ति और शक्तिमान्में आत्यन्तिक भेद है।" इस मत-वादने **श्रीमन्मध्वाचार्यके 'केवल भेदवाद'**की प्रतिष्ठा की। और कोई कहते है, 'भेदाश' 'व्यावहारिक' या 'प्रातीतिक' मात्र है, परमार्थत ब्रह्मकी कोई शक्ति ही नही है। ब्रह्मकी शक्ति मान लेनेपर ब्रह्मातिरिक्त दूसरा तत्व तथा शक्ति क्रियासे उत्पन्न 'भेद'को स्वीकार करना पडता है, फिर ब्रह्म 'अद्वितीय' नही रहता। प्रत्यक्षदृष्ट भेदसमूह 'व्यावहारिक' मात्र है। परमार्थत इनका भेद स्वीकार नही किया जाता। यही **श्रीशंकराचार्यका 'केवलाद्वैतवाद' है।** पुन कोई शक्ति और शक्तिमान्के 'भेद'को स्वीकार कर 'शक्ति'को स्वरूपके ही अन्तर्गत प्रतिपादन करते है। इससे **श्रीरामानुजाचार्यका 'विशिष्टा-द्वैतवाद'** प्रकाशित है। 'भेद' और 'अभेद' दोनो समान रूपसे सत्य

है, नित्य है, स्वाभाविक और अविरुद्ध है, इस प्रकार ख्यापन करते हुए **श्रीनिम्बार्काचार्य स्वाभाविक 'भेदाभेदवाद'की** स्थापना करते है। और कोई-कोई तर्कके द्वारा 'भेद'-वाद या 'अभेद'-वादकी स्थापना करके, अथवा शक्ति और शक्तिमान्में 'भेद' और 'अभेद' दोनो ही स्वाभाविक है, ऐसी भी कल्पना न करके 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण या शब्द-मूलक-प्रमाणके बलसे शक्ति और शक्तिमान्का 'अचिन्त्यभेदाभेद' स्थापित करते हुए श्रुतिमन्त्रो और वेदान्तसूत्रोका समन्वय करते है। यही **गौड़ीय-वैष्णवोंका 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'** है। गौडीय-वैष्णव-दार्शनिकोने कस्तूरी और उसकी गन्ध, अग्नि और दाहिकाशक्ति आदि दृष्टान्तोके द्वारा शक्तिमान् और शक्तिके सम्बन्धको समझाया है। कस्तूरीकी गन्धरूपी शक्तिको और अग्निकी दाहिका-शक्तिको कस्तूरी या अग्निसे पृथक् या विच्छिन्न अर्थात् भिन्न नही किया जा सकता। इस दृष्टान्तसे ज्ञात होता है कि—शक्ति शक्तिमान्से 'अभिन्न' है। फिर बहुधा कस्तूरी और अग्नि लोगोकी दृष्टिसे वहिर्भूत होनेपर भी गन्ध और उत्ताप प्रकट करती है। 'मृगनाभि'के बाहर भी जब गन्धका अनुभव होता है,' अदृश्य अग्निसे भी कभी-कभी जब उत्तापका अनुभव होता है, तब प्रत्यक्ष वस्तुके साथ वस्तुशक्ति पूर्णत 'अभिन्न' है, यह भी नही कहा जा सकता। और कस्तूरी और उसकी गन्धमें, अथवा अग्नि और उसकी दाहिका-शक्तिमें पूर्णत 'भेद' है, ऐसी कल्पना करने पर भी दोनोको दो वस्तुओके रूपमें स्थापन करना पडता है। जलके 'अम्लजान्' और 'उदजान्'के समान कस्तूरी और गन्धको दो पृथक् उपा-दान माननेपर गन्धके बाहर चले जानेपर कस्तूरीका वजन कम हो जाता। अतएव शक्ति और शक्तिमान्में 'केवलभेदवाद' स्थापन करते समय भी अनेक दोष उत्पन्न होते है। निर्दोषभावसे 'केवलभेदवाद' स्थापन करना जैसे दुष्कर है, 'केवल अभेदवाद' स्थापन करना भी उसी प्रकार दुष्कर है। इसी कारण कोई-कोई वेदान्ती 'केवलभेद' या 'केवलाभेद' साधन में मानवचिन्तनकी असमर्थता पाकर शब्दप्रमाणमूलक 'अचिन्त्य-भेदा-

भेदवाद'को स्वीकार करते है। स्वरूपसे अभिन्नरूपमे चिन्तन नही किया जाता, इसी कारण शक्तिकी भेदप्रतीति होती है, साथ ही भिन्नरूपसे चिन्तन नही किया जाता, इससे अभेदप्रतीति होती है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्मे 'भेद' और 'अभेद' है, तथा यह 'भेदाभेद' 'अचिन्त्य' है अर्थात् 'प्रकृतिके अतीत या तर्कके लिये अगम्य व्यापार है',—यह 'सिद्धात' स्वीकार करना पडता है। 'भेद' और 'अभेद' एक ही साथ किस प्रकार सत्य है, 'हाँ' और 'ना', उष्ण और शीतल एक साथ ही कैसे सभव है, यह किसी युक्ति या तर्कके द्वारा निर्णय नही किया जा सकता। परन्तु प्रकृतिके अतीत राज्यमें एक ही साथ विरुद्ध व्यापारोका अपूर्व समन्वय होता है, इस बातको श्रुति, स्मृति, पुराण, पञ्चरात्र एक स्वरसे प्रतिपादन करते है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का युगपद्विरुद्ध सम्बन्ध श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर—शब्द प्रमाणगम्य है, यह किसी जीव की युक्ति-तर्कके द्वारा निर्णीत नही किया जाता। यही है 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' का सक्षिप्त मर्म।

एक सौ-चारवाँ परिच्छेद

'गौड़ीय-दर्शन' की मौलिकता और सार्वभौमिकता

श्रीकृष्णचैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'गौडीय-दर्शन' अथवा श्रीभागवत-दर्शनमें 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्व स्वीकृत हुआ है। तत्व एकके अतिरिक्त दूसरा नही। इस अद्वय परतत्वमें स्वाभाविकी त्रिविधा शक्ति है—(१) स्वरूपशक्ति या चिच्छक्ति, (२) तटस्था शक्ति या जीवशक्ति, और (३) बहिरंगा शक्ति या मायाशक्ति। श्रीकृष्ण चैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' अद्वय-तत्वके स्वरूपानु-

बन्धि-शक्तिवैचित्र्यके ऊपर ही प्रतिष्ठित है। यह पूर्णतया मौलिक और सार्वभौम 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है, अर्थात् किसी पूर्ववर्ती आचार्य का अनुकरण करनेवाला मतवाद नहीं है, बल्कि यह वेदान्तके सार्वदेशिक सिद्धान्त तथा विभिन्न भाष्यकार आचार्योंके सिद्धान्तोकी सपूर्णता तथा उनमें सुसमन्वयका विधान करनेवाला है।

'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'मे स्वाभाविक भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क आचार्यकी भाँति 'स्वतन्त्र' और 'अस्वतन्त्र' दो तत्व नही माने गये है। श्रीनिम्बार्कके मतसे ईश्वर—स्वतन्त्र तत्व, जीव और प्रकृति अस्वतन्त्र तत्व है, परन्तु अस्वतन्त्र तत्वकी सत्ता स्वतन्त्र तत्वके ऊपर निर्भर करती है। श्रीनिम्बार्कके मतसे श्रीपुरुषोत्तमकी सत्ता जीव और प्रकृतिकी सत्तासे अतिरिक्त है। श्रीमध्वाचार्य भी जीव और ब्रह्मको दो पृथक् तत्व कहते हैं। श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने कहा है कि,—"जीव और प्रकृतिको पृथक् तत्व कहने पर 'अद्वयताकी हानि होती है। परन्तु उनको शक्तिरूपमें विचारने पर अद्वयतत्वकी सम्यक् स्फूर्ति और प्रतिष्ठा होती है। शक्ति और शक्तिमान्की अविच्छेद्यताके ऊपर ही 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' प्रतिष्ठित हैं। शक्तिमान्से शक्तिको पृथक् नही कर सकते, इसी कारण शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही एक अद्वितीय वस्तु या तत्व है। वस्तु—'विशेष्य' है, और वस्तुशक्ति—'विशेषण' है। 'विशेषण' युक्त विशेष्य ही वस्तु है।" प्रश्न हो सकता है कि, 'विशेष्य' और 'विशेषण' मिलकर ही यदि वस्तु होती है और विशेषणको विशेष्यसे, तथा शक्तिको शक्तिमान्से यदि पृथक् ही नही कर सकते, तो पृथक् भावसे शक्तिको स्वीकार करनेकी आवश्यकता ही क्या है?" श्रीकृष्ण-चैतन्यके अनुचर श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद कहते है कि,—"यह वेदान्तियोका मत नहीं है, क्योकि, वस्तुके रहते हुए भी मन्त्र-महौषधि आदिके प्रभावसे शक्तिको केवल स्तम्भित होते देखा जाता है। हाथ न जलने पर भी आग दिखलायी देती है। अतएव अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिको पृथक् नामसे अभिहित करना ही युक्तिसगत है, यद्यपि वैसी दशामें भी

वस्तु और तत्व दो नही है। स्वाभाविकी शक्तिकी विचित्रताके द्वारा शक्तिमान्के अद्वयत्वका व्याघात नही होता। इसलिये स्वरूपसे अभिन्नरूपमे शक्तिका चिन्तन नही किया जा सकता, इस कारण उसका 'भेद' और भिन्नरूपसे चिन्तन नही किया जा सकता, इस कारण 'अभेद' है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का 'भेदाभेद' स्वीकृत है, तथा वह 'अचिन्त्य' अर्थात् तर्कयुक्तिके लिये अगम्य होते हुए भी शास्त्रगम्य है। 'अचिन्त्यभेदाभेद' दर्शनमे ब्रह्मके किसी प्रकारका भी भेद स्वीकार्य नही है। 'विशिष्टाद्वैतवादी' श्रीरामानुज चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मको अद्वय-तत्व कहते है। उनके मतसे ईश्वरके साथ जीव और प्रकृतिका भेद नही है, बल्कि तत्व विशेषण-विशिष्ट है, चित् (जीव) और अचित् (जडवर्ग) ब्रह्मके विशेषण है, अर्थात् श्रीरामानुजके मतमें केवल जीव और जगत् ब्रह्मके विशेषण है, परन्तु गौडीय-दर्शनमें ब्रह्मकी समस्त शक्ति ही ब्रह्मका विशेषण है। श्रीरामानुजाचार्य शक्ति और शक्तिमान्में भेद स्वीकार करते है, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने शक्ति और शक्ति-मान्का 'केवल-भेद' स्वीकार नही किया। श्रीरामानुजाचार्यके मतसे चित् और अचित् ब्रह्मके 'स्वगत-भेद' है, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद ब्रह्मका किसी प्रकारका 'भेद' स्वीकार नही करते। अतएव क्या विशिष्टाद्वैतवादी श्रीरामानुज, क्या केवल-भेदवादी श्रीमध्व, क्या स्वाभाविक-भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क—सभी वैष्णवाचार्य के मतसे गौडीय-दर्शनके ब्रह्मका अद्वयत्व स्थापन और उस प्रसगमें शक्ति-विचारका असाधारण वैशिष्टय और मौलिकतत्व है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवके चरणानुचर श्रीश्रीजीवपाद श्रीमध्वके समान जीव और ईश्वरको दो 'नित्य सिद्ध पृथक् तत्व' नही कहते। अतएव श्रीमध्वने जिस प्रकार ईश्वरसे जीवका तत्वत 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार किया है, श्रीश्रीजीवपाद उस प्रकार 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार नही करते। ब्रह्मकी स्वाभाविकी स्वरूप-शक्ति और माया-शक्तिके समान जीवशक्ति भी शक्तिरूपमें ही परमात्माका अश है, जैसे अग्नि और स्फुलिंग। अग्नित्वमें दोनोका ही अभेद है,

परन्तु परिमाणादिमें दोनोका भेद हैं। तथापि शक्ति और शक्तिमान्में अभेद है।

श्रीमध्वाचार्यने अपने 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय'में (११।७।५१) जो ब्रह्मतर्कके वाक्य उद्धृत किये है, उसके द्वारा अचिन्त्य-भेदाभेदवादका सकेत मिलने पर भी श्रीमध्वाचार्यको 'अचिन्त्य भेदाभेदवादी' नही कहा जा सकता, क्योकि श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्वके समान अभेदके नित्यत्वको स्वीकार नही करते। भास्कराचार्य अभेदके नित्यत्व और भेदके सामयिक सत्यत्वको स्वीकार करते है। पक्षान्तरमें श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्व और अभेदके एकाशमे सत्यत्व को स्वीकार करते है। और श्रीनिम्बार्क भेद और अभेद दोनोके ही समसत्यत्व, समनित्यत्व अर्थात् सर्वकालमे सर्वावस्थामें समभावसे भेदाभेदके नित्यत्वको स्वीकार करते हैं। गौडीय-वैष्णव-दर्शनमें परब्रह्मको स्वरूपाख्य-जीवाख्य-मायाख्य शक्तिका आश्रय एक 'अद्वितीय तत्व'के नामसे स्थापन करनेके कारण वहा एकाधिक तत्वका कोई प्रसग ही उपस्थित नही होता। इसलिये एकाधिक तत्वके साथ अत्यन्त भेद (जो श्रीमध्वका सिद्धान्त है) अथवा किसी व्यावहारिक या प्रातिभासिक एकाधिक तत्वके साथ पारमार्थिक अत्यन्त अभेद या व्यावहारिक भेदाभेद (जो श्रीशकराचार्यका सिद्धान्त है), अथवा कारणरूपी या कार्यरूपी ब्रह्मके द्विरूप या एकाधिक तत्वके साथ सामयिक भेद या नित्य अभेद (जो श्रीभास्कराचार्यका सिद्धान्त है) अथवा स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र तत्वके साथ समभावसे स्वाभाविक भेद और स्वाभाविक अभेद (जो श्रीनिम्बार्काचार्यका सिद्धान्त है) अथवा कारण और कार्यरूप शुद्ध ब्रह्ममें जो अभेद (जो श्रीबल्लभाचार्यका मत है)—इनमें किसीका भी अनुकरण अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तमें नही है। भास्कराचार्यको वास्तवमें 'भेदवादी' नही कह सकते। उनको 'अभेदवादी' कहना ही सगत है। इसी प्रकार श्रीमध्वाचार्यको ब्रह्मतर्कमें उद्धृत वाक्यके प्रमाणसे 'भेदाभेदवादी' नही कह सकते। उनको 'केवल-भेदवादी'

कहना ही ठीक होगा। श्रीनिम्बार्काचार्यके भेदाभेदवादमें भेदवाद और अभेदवाद दोनो ही स्वाभाविक होने पर जीवगत दोष ब्रह्मके लिए स्वाभाविक हो जाते है, और ब्रह्मके सृष्टिकर्तृत्वादिगुणसमूह जीवके लिये स्वाभाविक हो जाते है। श्रीवल्लभाचार्यने केवलाद्वैत-मतवादोक्त कार्य (जीव-जगत्)के मिथ्यात्वके आश्रयसे कार्यकारण (जीव-जगत् और ब्रह्म)के अभेदवादका खण्डन करते हुए कार्य-कारणरूप शुद्ध (माया-सस्पर्शहीन) ब्रह्मके अभेदत्व या अद्वयत्वको स्थापित कर 'शुद्धाद्वैतवाद' को प्रकटित किया है। उनके मतसे जीव—अनेक होनेके इच्छुक सच्चिदानन्द ब्रह्मके तिरोभूत आनन्दाश चिदश है। ब्रह्म ही जगत्-कार्यरूपमें अविकृत परिणामको प्राप्त है। गौडीय-दर्शनके शक्ति-सिद्धान्तकी सूक्ष्मता और शक्ति-परिणामवादकी स्वीकृति इस मतवादमें न होनेके कारण इसमें असम्पूर्णता दीख पडती है। जीवशक्ति-युक्त अद्वयज्ञान-तत्वका शक्त्यश जीव, शक्तिमान् स्वाशतत्वसे जीवशक्तिका वैशिष्ट्य दिखलाता है। बहिरगा मायाशक्ति और उससे परिणत जगत्, अन्तरगा स्वरूपशक्ति और उससे परिणत भगवद्धामादि, तथा स्वरूप-शक्तिकी सन्धिनी, सवित् और ह्लादिनी-वृत्तिके प्रभावका विश्लेषण—गौडीय-दर्शनमें शक्ति-तत्वका अपूर्व वैज्ञानिक सुसूक्ष्म विचार है। साथ ही उस समस्त शक्ति-वैचित्र्य अद्वयज्ञान-तत्वकी अद्वयतामें बाधा न देकर उसका परिपोषक भी है। श्रीश्रीधरस्वामिपादद्वारा कथित वस्तुका अश जीव, वस्तुकी शक्ति माया, वस्तुका कार्य जगत्—सभी वस्तु ही है। इस 'अद्वयवस्तुवाद' या 'अद्वयतत्ववाद'में भी निरशवस्तुका अश, अविकृत वस्तुका कार्य-(विकार या परिणाम) आदि बातें वस्तुतत्व-विज्ञानमें असम्पूर्णता लाती है, परन्तु स्वरूपानुबन्धिनी अर्थात् स्वाभाविकी शक्ति-वैचित्री वस्तु या तत्वकी अखण्डता या अद्वय-तत्वको परिस्फुट करके शक्तिके कार्यसमूहको सुसम्पन्न करती है। अद्वयतत्वकी शक्ति स्वीकार करने पर (श्रुतिप्रमाणके अनुसार) पर-तत्वके अद्वयत्वकी किसी प्रकार हानि नही होती तथा जीव और ब्रह्ममें

नित्य भेद और अभेदका स्वाभाविकत्व स्वीकार करनेमें जो सब दोष-प्रसग उपस्थित होते हैं, अथवा अत्यन्त भेद स्वीकार करनेमे श्रुति, वेदान्त, और उसके अकृत्रिम भाष्यरूपी श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तके साथ जो विरोध उपस्थित होता है, अथवा जीवको 'शक्ति' न कहकर केवल 'चिदश' या 'वस्त्वश' कहनेसे जो निरश अद्वयतत्वकी अश-कल्पना करनी पडती है, उसे भी मानना नही पडता और समस्त शब्द-प्रमाण की सुसगति और मर्यादाकी रक्षा होती है। गौडीय दार्शनिकोके 'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'मे एक साथ ही श्रुति, वेदान्त और सूत्रोके यथार्थ भाष्यके सिद्धान्तोंका समन्वय तथा समस्त आचार्योंके श्रौत-सिद्धान्तोकी सम्पूर्णता सिद्ध होती है। केवलाद्वैत-मतके प्रवर्तक श्रीमत् शकराचार्यके मतवादमें भी जो कुछ श्रुति-सम्मत है, उसका श्रीसनातनगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाका अनुसरणकर 'श्री-वृहद्भागवतामृत'में तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने 'सन्दर्भ' मे आदर किया है , भक्त्येकरक्षक (केवल भक्तिकी मर्यादाकी ही रक्षा करनेवाले) श्रीश्रीधरस्वामिपादके तथा श्रीविष्णुस्वामिपादके शुद्धाद्वैतपरक सिद्धान्त-की, तथा विशिष्टाद्वैतवादाचार्य श्रीरामानुजके और तत्ववादगुरु श्री-मध्वके सिद्धान्तकी सगति, समन्वय और सम्पूर्णता अचिन्त्यभेदाभेदके सिद्धान्तमें दिखलायी गयी है। अतएव, 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'ही सर्व-शास्त्र-समन्वयकारी मौलिक सार्वभौम सर्वतन्त्र-सिद्धान्त-सम्राट् है।

एकसौ-पाँचवाँ परिच्छेद

परमपुरुषार्थ या प्रयोजन-तत्त्व

श्रीचैतन्यदेव कहते हैं,—"अपनी इन्द्रियोकी प्रीतिकी इच्छाका नाम ही 'काम' है और श्रीकृष्णकी इन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही—अप्राकृत 'प्रेम' है।" जीवकी आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष की कामनाके रूपमें चार पुरुषार्थ (पुरुष = जीव + अर्थ = प्रयोजन या काम्य) है। स्वर्गादि सुखकी कामनाको 'धर्म-कामना' कहते हैं। अर्थलाभके उद्देश्यसे भगवान्‌की आराधनाकी छलना, अथवा जिस किसी कामना की सिद्धिके उद्देश्यसे कामना पूर्ण करनेवाले देवताकी पूजा अथवा ससार की यन्त्रणासे शान्ति-लाभकी इच्छा आदि समस्त ही 'काम' है। साधारणत लोग ससारमें धर्म या पुण्य-कामनाकी सिद्धिके लिये सूर्यदेवताकी पूजा और अर्थ-कामनाकी पूर्तिके लिये सिद्धिदाता देवता गणेशकी पूजा तथा पुत्र, राज्य, अभ्युदय आदिकी कामना करके शक्तिकी पूजा, और मोक्ष-कामना करके रुद्रकी पूजा किया करते हैं। फिर कोई कोई विष्णुको कर्माधीन और कर्मफल-दाता समझकर विष्णुकी पूजा करते हैं, कोई उनको दडमुड-विधाता परम ऐश्वर्यशाली समझकर पूजा करते हैं, इसमें भी उपास्य वस्तुमें प्रेमका अभाव लक्षित होता है।

श्रुतिने परम तत्वको "रसो वै स", "अयमात्मा सर्वेषा भूताना मधु" प्रभृति मन्त्रोमें निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि परतत्व नपुसक ब्रह्म मात्र नही हैं। अथवा वे पुरुष-भोग्या प्रकृति या शक्तितत्व नही हैं, वे माया और जीवशक्तिके ईश्वर परमात्म-मात्र नही हैं, वे परिपूर्ण-सर्वशक्ति-विशिष्ट, स्वरूप-शक्तिके साथ लीलामय, रसमय, मधुमय, लीलापुरुषोत्तम हैं। वे परिपूर्णतम स्वरूपमें चिद्‌विलासी, सच्चिदानन्द-तनु, अप्राकृत कामदेव, स्वराट् और अद्वितीय भोक्ता हैं।

वे प्रेम करते हैं, प्रेम चाहते हैं तथा प्रेमके वशीभूत होते हैं। वे सर्वापेक्षा घनिष्ठतम और प्रियतम हैं। ऐसा नही कि, वे केवल ही सुदूरवर्ती हैं, अथवा ऐसा भी नही कि, जब उपासक निकट आये हुए होते हैं तब वे भी खूब बडे आदमियोकी तरह ऐश्वर्यसे पूर्ण होकर भय और सम्भ्रमके पात्रकी भाँति रहते हो। सूर्यको आलोकसे पृथक् नही किया जा सकता है, क्योकि वह उसके स्वरूपका ही धर्म है, इसी प्रकार रसमय परतत्वकी प्रेम-वृत्तिको उनसे पृथक् नही किया जा सकता। क्यो उनको प्रेम किया जाता है, इसका कोई कारण नही है, क्योकि यह प्रियत्व-धर्म उनका स्वरूपानुबन्धी गुण है। वे केवल प्रीति ही स्वीकार करते हो, सो नही है, वे प्रीतिके वशीभूत हो जाते हैं। यही उनका अद्वितीय वैशिष्ट्य है। इस जड इन्द्रियके द्वारा उनको (कृष्णको) प्रेम नही किया जाता। अथवा इस जड इन्द्रियको भी वे प्रेम नही करते। **यह प्रेम बद्ध या तटस्थ दशामें अवस्थित अणुचित् जीवके लिये संभव नही, तथापि उनकी ही आनन्ददायिनी स्वरूपशक्ति ह्लादिनीकी कृपाशक्ति जिस इन्द्रियमें अवतरित हुई है, उसी इन्द्रियके द्वारा परतत्व वस्तुका साक्षात्कार प्राप्त होता है।** जिस शक्तिके द्वारा परतत्वसे प्रेम किया जाता है तथा उनके द्वारा आकृष्ट हुआ जाता है, जो शक्ति परतत्व और जीव दोनोको सुखी करती है, **उस शक्तिका प्रधान और प्रथम धर्म है 'करुणा'।** जीवकी कोई भी क्षमता नही है कि वह परतत्वको पकड या छू सके। तथापि **उस ह्लादिनी-शक्तिका प्रकाश साधु या महत्के आकारमें अवतीर्ण होकर जीवको परतत्वके साथ योगयुक्त करते हैं। ह्लादिनी-शक्तिकी कृपासे ह्लादिनीके साथ तादात्म्यको प्राप्त इन्द्रिय परतत्वको सुखी कर सकती है।**

ह्लादिनी-शक्तिकी जो सेवा है,—परतत्व श्रीभगवान्को 'सुखी' देखना, वह तब उस इन्द्रियमें उतर आती है। सभी स्थानोमें, सभी कालोमें, सभी पात्रोमें और सभी अवस्थाओमें वे ही प्रेमकी वस्तु है।

कर्म-ज्ञान-योगादि साधन 'उपाय'-मात्र है, 'उपेय' नही है, अर्थात् वही जीवका चरम प्रयोजन नही है। परन्तु 'प्रेमभक्ति' उपाय और उपेय है, अर्थात् वही 'प्रयोजन' है। प्रेमभक्तिके द्वारा जो प्राप्त होगा, वह भी 'भक्ति' ही है, उसीका दूसरा नाम परतत्वमें 'प्रीति' है। कर्म-ज्ञान-योगादिका मार्ग सार्वजनिक नही अर्थात् उनमें सबका अधिकार नही। विकलेन्द्रिय या अर्थहीन व्यक्ति यज्ञादि-कर्म नही कर सकते। मूर्ख, नीच, पापी, भोगी और रोगी व्यक्ति ज्ञान-योग आदि का अनुष्ठान नही कर सकते, परन्तु भक्तिका अनुष्ठान सभी कर सकते है।

भक्तिके आभासमें ही अर्थात् तुच्छ फलरूपमें ही कर्म-ज्ञानादिके चरम प्राप्य सभी प्रयोजन अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। **भक्ति स्वतः ही सुखरूपा है, अतएव अहैतुकी है;** कर्म-ज्ञानादि फलरूपमें सुखकी आकाक्षा करते है, इसलिये उनके अनुष्ठानमें 'हेतु' रहता है। जहाँ स्वय 'सुख' ही साधन और साध्य है, वहाँ फिर आत्मसुखानुसन्धानचेष्टा-रूपी हेतु नही रह सकता। **भक्ति करनेके समान वैसा सुख किसी भी वस्तुमें नहीं है और भक्ति न करनेके समान वैसा दुःख भी किसी वस्तुमें नहीं है।** इसलिए भक्ति **'अप्रतिहता'** है, अर्थात् उसमें किसी प्रकार भी कोई बाधा नही प्राप्त होती, बल्कि बाधा प्राप्त होनेपर इसका बेग और भी अनेकगुना बढ जाता है।

भक्ति—परमधर्म है, क्योकि, यह 'परतत्व'के एकमात्र सन्तोषके लिये की जाती है। निवृत्तिमात्र-लक्षणसे युक्त धर्ममें भी विमुखता रहती है, अर्थात् परतत्वके सन्तोषकी चिन्ता नही रहती, अपने स्वार्थकी चिन्ता ही अधिक परिमाणमें रहती है।

भक्तिका अनुष्ठान सर्वत्र ही होता है। सर्वशास्त्र, सर्वकर्ता, सर्वदेश, सर्वकरण, सर्वद्रव्य, सर्वकार्य और सर्वकालमें भक्तिका अनुष्ठान होता है। सर्वदा भक्तिका अनुशीलन होता है, सृष्टिमें, चतुर्विध प्रलयमें, चारो युगोंमें, सर्वावस्थामें—(मातृगर्भ, बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था मृत्यु, स्वर्ग और नरकमें) भक्तिका अधिष्ठान है।

भक्ति—सर्वकामप्रदा, अशुभहारिणी, सर्वविघ्नविनाशिनी, सर्वताप-क्लेश-नाशिनी, अप्रारब्धहारिणी, पापवासनाहारिणी, अविद्याविनाशिनी, सर्वतोषणी, सर्वगुणदायिनी, सर्वसुखप्रदायिनी, अभक्तिविघातिनी, स्वत ही निर्गुणा, निर्गुणताविधायिनी, स्वप्रकाश-स्वरूपा, परमसुख-स्वरूपा, रतिप्रदा, प्रेमैक-सर्वस्वा, भगवद्वशकारिणी और प्रयोजन-पराकाष्ठा-प्रदायिनी है।

केवल दु खनिवृत्ति पुरुषार्थ नही है, परमानन्दकी प्राप्ति ही यथार्थमें असली पुरुषार्थ या मुक्ति है। 'मुक्ति'-शब्दसे यहाँ वास्तवमें परमानन्दकी प्राप्ति ही लक्षित होती है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—तीनों आविर्भाव ही आनन्दस्वरूप हैं, इनकी प्राप्ति मुक्ति है। यह मक्ति या आनन्दप्राप्ति सभी पूर्ण है, क्योकि परतत्वके सारे आविर्भाव ही पूर्ण हैं। ब्रह्ममें निजी शक्ति-या धर्मका प्रकाश न होनेके कारण ब्रह्म निर्विशेष है। परमात्मामें शक्तिका या धर्मका आंशिक प्रकाश है। परमात्मासे भी भगवान्‌में प्रियत्वधर्म-गुण सर्वतोभावेन अधिक होनेके कारण श्रीभगवान् गुणविचारसे सर्वश्रेष्ठ तत्व है। श्रीभगवान्‌के सविशेषत्वमें चमत्कारिता या आनन्दवैचित्र्य है। श्रीभगवान् सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी निरपेक्ष नही है, वे उपासककी प्रीति चाहते हैं और स्वय भी प्रीति करते है। श्रीभगवान्‌को सुखी करना ही मूल प्रयोजन है, यह सही है, परन्तु इसमें भी विशेषता यह है कि भगवान् जिस प्रकारसे सुखी होना चाहते हैं, उस प्रकारसे उनको सुखी करनेकी चेष्टा करना ही 'प्रीति' है। जिस किसी भी प्रकारसे उनको पाने—उनकी सेवा करने—प्रेम करनेपर वे सुखी होते है, (उनकी इच्छाके विरुद्ध या अपनी सुख-कामनाको लेकर करनेसे नही), उसी प्रकार उनको पानेकी इच्छा ही प्रीतिको बढाती है, इसे 'स्वार्थशून्य-प्रेम' कहते हैं। इसमें अपनी इन्द्रियोकी तृप्तिकी कामना विलुप्त हो जाती है। सुख—माया-शक्तिके सत्वगुणकी वृत्ति है, और भगवत्प्रीति—स्वरूपशक्तिकी वृत्ति है। प्रीति नित्यसिद्ध भगवत्परिकरगणमें स्वत सिद्ध-

रूपमें नित्य वर्तमान हैं। उनकी कृपा-परम्परासे योग्य निर्मल जीवात्मामें प्रीतिका आविर्भाव होता है। यह प्रीति ही सर्वोत्तम परमानन्दकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय और उपेय है।

प्रेमके सम्बन्धमें पृथ्वीमें विकृत धारणाका प्रचार हो रहा है। इसीलिए श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने गाया है,—

"कि आर बलिब तोरे मन !
मुखे बल' 'प्रेम', 'प्रेम', वस्तुतः त्यजिया हेम,
शून्यग्रन्थि अंचले बन्धन ॥
अभ्यासिया अश्रुपात, लम्फझम्प अकस्मात्,
मूर्च्छाप्राय थाकह पड़िया ।
ए लोक बंचिते रंग, प्रचारिया असत्-संग,
कामिनी-काञ्चन लभ' गिया ॥
प्रेमेर साधन—'भक्ति', ता'ते नैल अनुरक्ति,
शुद्धप्रेम केमने मिलिबे ?
दश-अपराध त्यजि', निरन्तर नाम भजि'
कृपा ह'ले सुप्रेम पाइबे ॥
ना मानिले सुभजन, साधुसङ्गे संकीर्तन,
ना करिले निर्जने स्मरण ।
ना उठिया वृक्षोपरि, टानाटानि फल धरि',
दुष्टफल करिले अर्जन ॥
अकैतव कृष्णप्रेम, येन सुविमल हेम,
एइ फल नृलोके दुर्लभ ।
कैतवे वंचना-मात्र, हओ आगे योग्य पात्र,
तबे प्रेम हइबे सुलभ ॥
कामे प्रेमे देख भाइ, लक्षणेते भेद नाइ,
तबु 'काम' 'प्रेम' नाहि हय ।
तुमि त' बरिले काम, मिथ्या ताहे 'प्रेम' नाम,

आरोपिले, किसे शुभ हय ?

*　　*　　*

श्रद्धा हैते साधुसंगे, भजनेर क्रिया-रंगे,
निष्ठा-रुचि-आसक्ति-उदय ।
आसक्ति हइते भाव, ताहे प्रेम-प्रादुर्भाव,
एइ क्रमे प्रेम उपजय ।।"

—'कल्याण-कल्पतरु'

[रे मन, तुमसे मैं क्या कहूँ ? मुखसे तुम 'प्रेम-प्रेम' करते हो, और वस्तुत काचनको छोडकर पल्लेमें खाली गाँठ बाँधते हो। आँसू बहानेका अभ्यास करके अकस्मात् कूद-फाँद मचाकर मूछित होनेका स्वाँग रचकर पड रहते हो। इस प्रकार लोगोको ठगकर असत्सगका प्रचार कर कामिनी-काचनको प्राप्त करते हो। अरे ! प्रेमका साधन 'भक्ति' है, उसमें यदि अनुराग नही हुआ तो शुद्ध प्रेम कैसे मिलेगा ? दस प्रकारके अपराधोका त्याग करके, निरन्तर भगवान्के नामका भजन करो, उनकी कृपासे सुप्रेमकी प्राप्ति होगी। साधुसगमें सकीर्तन रूप जो सुभजन है, उसे तुमने स्वीकार नही किया और निर्जनमे भगवान्का स्मरण भी नही किया। वृक्षके ऊपर चढे बिना नीचेसे फल पकडनेके लिये डालोको खीचा-ताना, जिससे अच्छा फल तो प्राप्त नही हुआ, खराब फल ही हाथ लगे। अरे ! कपटरहित-कृष्णप्रेम मानो निर्मल सोना है, यह फल नर-लोकमें दुर्लभ है। कपटमें तो वञ्चनामात्र है, पहले योग्य पात्र बनो, तभी वह प्रेम सुलभ होगा। देखो भाई, काम और प्रेममें देखनेमें भेद नही है, फिर भी 'काम' 'प्रेम' नही होता। तुमने 'काम'को वरण किया है, उसपर मिथ्या 'प्रेम' नाम आरोपित करना कैसे शुभ होगा ? श्रद्धासे साधुसग, साधुसगसे भजन-क्रिया, भजन-क्रियासे निष्ठा, निष्ठासे रुचि, रुचिसे आसक्ति, आसक्तिसे भाव तथा भावसे प्रेमका आविर्भाव होता है। प्रेमके उत्पन्न होनेका यही क्रम है।]

"विश्वप्रेम अथवा मनुष्यका मनुष्यके प्रति प्रेम केवल 'आत्म-प्रेम'का विकार मात्र है। एक आत्माका अन्य आत्माके साथ जो प्रेम है, वही एकमात्र आत्मप्रेमका आदर्श है। प्रीतिके स्वरूपको न समझकर जिन्होने 'मनोविज्ञान' और 'प्रीतिविज्ञान' आदि लिखा है, वे चाहे जितनी ही युक्तियाँ क्यों न उपस्थित करें, उन्होंने भस्ममें घीकी आहुति देनेके समान व्यर्थ ही श्रम किया है। उन्होंने दम्भमें मत्त होकर केवल अपनी प्रतिष्ठाका संग्रहमात्र किया है—उनसे जगत्का कोई उपकार तो दूर रहे, उन्होने अधिकतर अमंगलकी ही सृष्टि की है। एक विस्फुलिंग अर्थात् छोटी-सी चिनगारी जिस प्रकार दाह्य-विषय प्राप्त करके क्रमशः महान् अग्निका रूप धारणकर जगत्को जलानेमें समर्थ होती है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके प्रकृत विषय जो श्रीकृष्णचंद्र हैं, उनको प्राप्तकर प्रेमकी महान् बाढ़ उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है।"

"परमेश्वरके विशुद्ध-गुणोका कीर्तन और उनके प्रेममें सबके साथ भ्रातृत्वकी स्थापना ही 'विशुद्ध-धर्म' है। क्रमशः संस्थापित विभिन्न-धर्मोंके हेय-अंशोंके दूर होनेपर सम्प्रदाय-विशेषके भजन-भेद और पारस्परिक विवाद नहीं रह सकते। तब सारे वर्ण, सभी जाति, सभी देशोके मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर भ्रातृत्वके साथ परमाराध्य परमेश्वरका नाम-कीर्तन सहज ही कर सकेंगे। तब कोई किसीको चाण्डाल कहकर घृणा नहीं करेंगे, तथा अपने जात्याभिमानमें मुग्ध होकर अन्य जीवोके साथ अपने साधारण भ्रातृत्वको भूल नही सकेंगे; तब श्रीहरिदास प्रेम-रसका घड़ा लेकर श्रीश्रीवासके मुखमे ढालते रहेंगे, तथा श्रीश्रीवास श्रीहरिदासकी चरण-रेणुको सर्वागंमें मलकर 'हा चैतन्य! हा नित्यानन्द।' कहकर सहज ही नृत्य करेंगे।"

एकसौ-छठॉ परिच्छेद्

श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म

परम-विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षासे अनुप्राणित होनेके बाद उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा है,—

"वैराग्य-विद्या-निजभक्ति-योग, शिक्षार्थमेकः पुरुष पुराणः ।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ।।"

[जो एक करुणासागर सनातनपुरुष वैराग्य (विप्रलम्भ), विद्या (परविद्या-भक्ति) और निजभक्तियोग (उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी प्रेमभक्ति)की शिक्षा प्रदान करनेके लिए 'श्रीकृष्णचैतन्यविग्रह'के रूपमें अवतीर्ण हुए, मै उनके शरणापन्न होता हूँ ।]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी 'आदि', 'मध्य' और 'अन्त्य'—इस त्रिविध प्रकटलीलाका प्रत्येक आचरण साधक और सिद्ध की—बद्ध-मुमुक्षु और मुक्तकुलकी आदर्श-शिक्षाकी प्रदर्शनी स्वरूप है । श्रीचैतन्यचरितमे एक ओर जिस प्रकार शक्त्यावेशावतारसे लेकर सर्वावतारी स्वय भगवत्तत्वकी लीला-पराकाष्ठा तक प्रकटित हुई है, दूसरी ओर उसी प्रकार जीवके गौण साम्मुख्य या साम्मुख्यके द्वार (कर्मार्पण) से लेकर साक्षात् साम्मुख्य-पराकाष्ठाके (प्रेमभक्तिके) तथा नित्यमुक्तोके लिए साध्य-शिरोमणिके (प्रेमविलासविवर्तके) भावसम्पत् पर्यन्त मूर्त्त होकर प्रकट हुए हैं ।

जन्मयात्रा-कालमें चन्द्रग्रहणके बहाने श्रीनवद्वीपके आबाल-वृद्ध-वनिताके जिह्वा-मरु-प्रागणमें श्रीहरिनामकी अवतारणा, तथा आनुषगिक रूपसे अलक्ष्यगतिसे समकालीन पृथ्वीकी वहिर्मुख अवस्थाकी अभूतपूर्व युगान्तर-साधन-लीला श्रीकृष्णचैतन्य-रचित 'श्रीशिक्षाष्टक'की "पर विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम्" वाणीकी विजय-वैजयन्ती है । शैशवम

श्रीहरिनाम सुनकर रोना बन्द करनेकी लीलामें उनका श्रीकृष्णसकीर्तन-जनकत्व, तथा अन्नप्राशन-सस्कारके समय अपनी रुचि-परीक्षामें 'श्रीमद्भागवत'के आलिगनकी लीलामें 'विद्या भागवतावधि'—यह शिक्षासार प्रकटित हुआ है। पुन सर्प-धारणलीला आदिके द्वारा शेष-शयन-लीलादि भगवत्-लीला भी प्रकटित हुई है। बाल्यकालमें चोरी और दुरन्त लीला, तैर्थिक ब्राह्मणके नैवेद्यकी भक्षणलीला, एकादशीके दिन श्रीजगदीश हिरण्यपण्डितके विष्णु-नैवेद्यकी भक्षणलीला, वर्जित बर्तनके ऊपर बैठकर दत्तात्रेयका आवेश, तथा अन्य समय कपिलके भावमें श्रीशचीमाताको उपदेशदान-लीला, विष्णुके पलगपर आरोहण-लीला, महाप्रकाश-लीला, काजीदमन-लीला, षड्भुजप्रदर्शन-लीला आदिमें उनकी भगवत्ता परिस्फुटित हुई है। और दूसरी ओर ज्येष्ठभ्राता श्रीविश्वरूप, श्रीअद्वैत, श्रीश्रीवास आदि वैष्णवोके प्रति मर्यादा-दान-लीला, गगाके घाटपर वैष्णववृन्दकी विविध परिचर्यालीला, यथाविधि श्रीविष्णुपूजा, श्रीतुलसी-सेवा, विष्णुनैवेद्य-ग्रहण, श्रीशचीमाताको श्रीएकादशीके दिन अन्नग्रहण-निषेध, स्वय ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण और छात्रोको ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणादि सदाचार-शिक्षादान, अन्तर्यामी दृष्टिसे दीन-दरिद्रोकी सत्कार-लीला, सपरिवार अतिथि-सेवा, वैष्णव-सेवा, सहधर्मिणी श्रीलक्ष्मीदेवीके द्वारा श्रीविष्णु-वैष्णवकी सेवाका आदर्श प्रकट करना, परस्त्रीके साथ सभाषणादिमें सब प्रकारसे सतर्कता अवलम्बन करना, पूर्ववगमें विजयपूर्वक अध्यापन करना, अपनी शुक्लवृत्तिसे अर्थसग्रह-लीला, श्रीतपनमिश्र आदिको साध्य-साधन-तत्वका उपदेश, दिग्विजयी-जय-लीलाके द्वारा प्राकृत विद्या और प्रतिभाका व्यर्थत्व और अमानी होकर मान देनेकी शिक्षाका दान, श्रीलक्ष्मीदेवीकी वैकुठ-विजयवार्ता सुनकर शरणागत गृहस्थकी निज-कर्मानुरूप फल-स्वीकृति तथा भगवदनुकम्पा समझकर काय-मन-वचनसे भगवत्सेवामें नियोगकी शिक्षा देनेकी लीला, दूसरी बारकी विवाह-लीलामें बुद्धिमन्त खा और श्रीसनातन मिश्रके वैष्णवगृहस्थोचित

आचारके आदर्शका प्रकट करना, 'गयाधाम' गमनके समय विप्रपादोदक-पानलीला तथा श्रीविष्णुपादपद्ममें पितृश्राद्धलीला, और श्रीईश्वरपुरीपादके अर्थात् महत्‌के पादाश्रयलीलामे विष्णुतोषणके उद्देश्यमें कर्मार्पणकारी वैष्णव-गृहस्थका आदर्श, तथा महत्‌की कृपासे आरोपसिद्धा भक्तिसे लेकर स्वरूपसिद्धा भक्तिके उदयरूप भागवत-शिक्षाओको प्रकटकर श्रीगौरहरिने नरलीलाका समन्वय किया है।

दिग्विजयीके प्रति श्रीमन्महाप्रभुका उपदेश है—

'सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय।
'कृष्णपादपद्मे यदि चित्त-वित्त रय'।।'

—चै० भा० आ० १३।१७८

[निश्चयपूर्वक विद्या सुफल तभी समझो जब कि श्रीकृष्णके पादपद्ममें चित्त-वित्त लग जाय।] छात्रोके प्रति उनकी शिक्षा है —

"यावत् आछये प्राण, देहे आछे शक्ति।
तावत् करह कृष्णपादपद्मे भक्ति।।
कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण प्राण-धन।
चरणे धरिया बलि,—'कृष्णे देह मन'।।"

—चै० भा० म० १।३४२,३४३

[जबतक देहमें प्राण और शक्ति है, तबतक कृष्णपादपद्ममें भक्ति करो। कृष्ण ही माता है, कृष्ण ही पिता है, कृष्ण ही प्राणधन है। मै तुम्हारे पैर पकड़कर कहता हूँ, तुम कृष्णमे अपना मन लगाओ।]

"ये पडिला, सेइ भाल, आर कार्य नाइ।
सबे मेलि' 'कृष्ण' बलिवाङ एक ठाँइ।।"

—चै० भा० म० १।३९३

[जो पढ लिया सो पढ लिया, अब अधिक पढनेका प्रयोजन नही है। सब एक साथ एक जगह 'कृष्ण कृष्ण' बोलें।]

व्याकरणके प्रत्यक वर्ण, धातु, सूत्र सभी श्रीकृष्णनाम-परक है—यह चरमशिक्षा श्रीगौरहरिने अपनी अध्यापकवर्य-लीलाके उपसहारके समय जगत्के जीवोको प्रदान की है। यही सर्व-अध्यापकोके शिरोमणि जगद्गुरुकी छात्रोपम समस्त जीवजगत्के प्रति उनकी शिक्षाका सार है। श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने जगद्गुरुकी इसी शिक्षाका अवलम्बन करके ही श्रीहरिनामपरक श्रीहरिनामामृत-व्याकरणकी रचना की है।

श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदासके प्रति श्रीमहाप्रभुका श्रीनवद्वीपमें घर-घर जाकर "बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्णशिक्षा" (चै० भा० म० १३।६), अर्थात्—"कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो, कृष्णकी शिक्षा लो" की भीख मागने तथा प्रतिदिन सायकाल उसके फलाफलका अर्थात् वहिर्मुख जीवोकी कृष्णाभिमुखी-गतिका हिसाब-किताब करनेका आदेश सर्वशिक्षाके गुरु श्रीगौरसुन्दरकी अत्यन्त उदार एव महादानपूर्ण जीवशिक्षाका एक अभूतपूर्व आदर्श है। इसी कृपाके महाप्लावनके महान् आवर्तमे पडकर महापापी जगाइ-मधाइ भी 'महाभागवत' हो गये। श्रीगौरहरिने क्षमा और कृपाके द्वारा अपने निन्दकोसे बदला लेनेकी आदर्श-शिक्षा दी है। मायावादी सन्यासी, अमोघ, अभिशाप-प्रदानकारी ब्राह्मणादिके प्रति उनके व्यवहारमें यह शिक्षा प्रकटित हुई है। उन्होने वहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता और सहिष्णुता अपनानेकी शिक्षा दी है। परन्तु जब श्रीहरितोषणकारीके प्रति द्रोह उपस्थित हुआ है, तब 'चक्र, चक्र' पुकार कर 'श्रीसुदर्शन'-चक्रकी आह्वान-लीला, काजीदमन-लीला, भागवती देवानन्द दड-लीला, श्रीशचीमाताके अपराधकी (?) मुक्ति-लीला, 'कहाँ रे रावणा' कहकर क्रोध प्रकट-लीला (चै० च० म० १५।३४), 'खड-जाठिया बेटा' श्रीमुकुन्द दत्तके चिद्-जड-समन्वयवादमें असहिष्णुता-प्रकाश (चै० भा० म० १०।१८५) आदि कृष्णको तुष्टि प्रदान करनेवाली शुद्धभक्तिकी शिक्षाके प्रचारमें कभी वे पीछे नही हटे। श्रीगौरहरिने श्रीपुडरीक विद्यानिधि, श्रीरायरामानद और श्रीखंडके राजवैद्य श्रीमुकुद दासके आदर्शके (चै० च० म० १५।११६-१२७) द्वारा

यह शिक्षा दी है कि विषयीवत् रहते हुए अन्तर्निष्ठा और बाहर लोक-व्यवहारके साथ हरिभजन ही बहिर्मुख जगत्में भजनचातुर्य है। सपरिकर श्रीश्रीवास पण्डितके द्वारा उन्होने वैष्णव-गृहस्थकी आदर्श-शिक्षा प्रकट की है। फिर हरिभजनकी प्रतिकूलता मिटानेके लिये साधकोंके सामने नित्यसिद्ध निजजन श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरघुनाथकी साधनलीलाकी शिक्षाका उद्घाटन किया है। उन्होने अपनी दीनतामयी सन्यासलीलासे उन्मुख व्यक्तिके सामने श्रीकृष्णानुसन्धानकी शिक्षाका प्रचार किया है, तथा बहिर्मुख लोगोके सामने ऐश्वर्य दिखलाकर उनको मगल-मार्गकी ओर आकृष्ट किया है। सन्यासलीलाके पूर्व सबके लिये उनकी यही शिक्षा थी कि—

"यदि आमा' प्रति स्नेह थाके सबाकार।
तबे कृष्ण व्यतिरिक्त ना गाइबे आर॥"

—चै० भा० म० २८।२७

[यदि मेरे प्रति सबका स्नेह हो तो कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी न गाना।]

श्रीगौरहरि ही बगदेशमें पारमार्थिक रगमचके तथा नगर-सकीर्तन और हरि-सकीर्तनके आदि प्रवर्तक हैं। उनके श्रीचरणारविन्द-मकरन्दके लोलुप सेवकगण पारमार्थिक मौलिक गौडीय-साहित्य और वैष्णव-पदावली-कीर्तनके आदि सूत्रधार हैं। व्याकरण ('श्रीहरिनामामृत'), काव्य, नाटक, अलकार, छन्द, दर्शन, स्मृति, इतिहास, परमार्थनीति, पारमार्थिक विज्ञान ('श्रीहरिभक्तिविलास' देखिये)—सभी विषयों में वे आदर्श मौलिक शिक्षक हैं। श्रीगौरहरिने तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत और वाद्यको व्यसनात्मक जडविलाससे सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्णके तोषणात्मक चिद्विलासमें परिणत करनेकी आदर्श-शिक्षाका प्रचार किया है। दूसरी ओर बगदेशी विप्र कविके दृष्टान्तके द्वारा (चै० च० अ० ५।९१-१५८) सिद्धान्त-विरुद्ध, रसाभास-दोषयुक्त और जड

प्रतिष्ठावर्द्धक ग्राम्य कवित्व और श्रीकृष्णके तोषणात्मक अप्राकृत कवित्वकी पृथक्ताकी शिक्षा प्रदान की है।

श्रीकविराज गोस्वामिपादने श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १३ । २२-२३, २७-३६, ३९) में लिखा है,—

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवाकाले ।
हरिनाम लओयाइला प्रभु नाना-छले ।।
बाल्य-भावछले प्रभु करेन क्रन्दन ।
'कृष्ण', 'हरि' नाम शुनि' रहये रोदन ।।
विवाह करिले हैल नवीन यौवन ।
सर्वत्र लओयाइल प्रभु नाम-सकीर्तन ।।
पौगड-वयसे पड़ेन, पड़ान शिष्यगणे ।
सर्वत्र करेन कृष्ण-नामेर व्याख्याने ।।
सूत्र-वृत्ति-टीकाय कृष्णनामेर तात्पर्य ।
शिष्येर प्रतीत हय,—सबार आश्चर्य ।।
या'रे देखे ता'रे कहे—कह कृष्णनाम ।
कृष्णनामे भासाइला नवद्वीप ग्राम ।।
किशोर-वयसे आरम्भिला सकीर्तन ।
रात्रिदिने प्रेमे नृत्य, सगे भक्तगण ।।
नगरे नगरे भ्रमे कीर्तन करिया ।
भासाइला त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया ।।
चब्बिश वत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे ।
लओयाइला सर्वलोके कृष्णप्रेम-नामे ।।
चब्बिश वत्सर छिला करिया संन्यास ।
भक्तगण लआ कैला नीलाचले वास ।।
ता'र मध्ये नीलाचले छय वत्सर ।
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर ।।
सेतुबन्ध, आर गौड़व्यापि वृन्दावन ।

प्रेम-नाम प्रचारिया करिला भ्रमण ।।
द्वादश-वत्सर-शेष रहिला नीलाचले ।
प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-छले ।।

[जन्म, बाल्य, पौगड, किशोर और युवाकालमें महाप्रभुने अनेको बहाने हरिनाम कराया। शिशुभावके बहाने प्रभु रुदन करते है और 'कृष्ण हरि' नाम सुनकर रोना बन्द कर देते है। विवाह करनेपर नवीन यौवन हुआ तब प्रभुने सर्वत्र नाम-सकीर्तन कराया। पौगण्डावस्था में पढते है और शिष्योको पढाते है और सर्वत्र कृष्णनामकी व्याख्या करते है। सूत्र-वृत्ति-टीकामे सर्वत्र कृष्ण-नामके तात्पर्यको प्रकट करते है। सब शिष्योको आश्चर्य प्रतीत होता है। जिसको देखते है, उसीको 'कृष्णनाम' लेनेके लिये कहते है। कृष्णनामसे नवद्वीप ग्रामको बहा दिया। किशोरावस्थामे सकीर्तनका प्रारभ किया और रात-दिन भक्तगणके साथ प्रेममें नृत्य किया। नगर-नगर सकीर्तन करते हुए घूमते रहे। प्रेमभक्तिसे त्रिभुवनको प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार चौबीस वर्ष तक नवद्वीप ग्राममें सबको कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण-नाम ग्रहण कराया। और चौबीस वर्ष सन्यास लेकर भक्तोके साथ नीलाचलमें वास किया। उसमें छ वर्षतक नीलाचलमें नृत्य, गीत प्रेमभक्तिका निरतर दान करते रहे। सेतुबन्ध और गौडदेश तथा वृन्दावन तक प्रेम-नामका प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहे। अतिम बारह वर्ष नीलाचलमें रहकर आस्वादनके बहाने प्रेमावस्थाकी शिक्षा दी।]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने, श्रीकृष्ण-तोषणमें लगे हुए बडे परिवार और परिजनके पोषण करनेवाले* श्रीश्रीवास पडितके निरन्तर सपरिकर श्रीकृष्णतोषणके आदर्शके द्वारा यह शिक्षा दी कि, श्रीकृष्ण-ससारके गृहस्थको किसी वस्तुका अभाव नही रह सकता।

---

* चै० भा० अ० ५।४१

श्रीचैतन्य-भागवतमें श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है,—
"प्रभु बले,—

'कि बलिलि पडित श्रीवास !
तोर कि अन्नेर हइबे उपास !
यदि कदाचित् वा लक्ष्मीओ भिक्षा करे'।
तथापिह दारिद्र्य नहिब तोर घरे ।।
आपने ये गीता-शास्त्रे बलियाछों मुञि ।
ताहो कि श्रीवास, एवे पासरिलि तुञि ।।
ये-ये जन चिन्ते मोरे अनन्य हइया ।
ता'रे भिक्षा देड मुञि माथाय बहिया ।।
येइ मोरे चिन्ते, नाहि याय कारो द्वारे ।
आपने आसिया सर्वसिद्धि मिले ता'रे ।।
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—आपने आइसे ।
तथापिह ना चाय, ना लय मोर दासे ।।
मोर सुदर्शन-चक्रे राखे मोर दास ।
महाप्रलयेओ या'र नाहिक विनाश ।।
ये मोहार दासेरेओ करये स्मरण ।
ताहारेओ करो मुञि पोषण पालन ।।
सेवकेर दास से मोहार प्रिय बड़ ।
अनायासे सेइ से मोहारे पाय दढ़ ।।
कोन् चिन्ता मोर सेवकेर भक्ष्य करि'।
मुञि या'र पोष्टा आछों सबार उपरि ।।"

—चै० भा० अ० ५।५३-६३

अर्थात् प्रभु कहते है—'हे पडित श्रीवास ! तुम क्या बोलते हो ? तुमको क्या कभी अन्नका उपवास हो सकता है ? लक्ष्मी भीख माँग सकती है, पर तुम्हारे घरमें दारिद्र्य नही आ सकता। मैंने जो गीताशास्त्रमें कहा है, क्या तुम श्रीवास ! उसको भूल गये ? जो-जो

जन अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करते हैं, उनके लिये मैं सिरपर वहन करके भिक्षा पहुँचाता हूँ। जो मेरा चिन्तन करते हैं, किसीके द्वारपर नही जाते हैं, सारी सिद्धियाँ अपने-आप आकर उनको मिल जाती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अपने-आप आते हैं। तथापि मेरा सेवक न उनको चाहता है, न लेता है। मेरा सुदर्शन चक्र मेरे सेवककी रक्षा करता है, महाप्रलयमे भी उसका विनाश नही होता। जो मेरे दासका भी स्मरण करता है, मैं उसका भी पालन-पोषण करता हूँ। मेरे सेवकका दास मुझे बडा प्रिय है, वह अनायास ही मुझे निश्चय प्राप्त करता है। मेरे सेवकको आहारकी कौन-सी चिन्ता है, जबकि सर्वोपरि मैं उसका पोषण करनेवाला हूँ।"

श्रीकृष्णचैतन्यका चरित और शिक्षा 'श्रीमद्भागवत' एवं 'भागवतधर्म' का मूर्तिमान् रूप है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने समस्त शास्त्रोमें, समस्त कर्तामें, समस्त क्रियामें, सभी करणमें, सारे स्थान-काल-पात्रमें, सारे भुवनमें, समस्त कार्य और कारणमें, सारे साधन और फलमें भक्तिके अधिष्ठान और शिक्षाका प्रचार किया है। भक्ति सार्वत्रिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक और सार्वभौम धर्म है—यह शिक्षा श्रीचैतन्यदेवके चरित्रमें देदीप्यमान है। **मातृगर्भमे** अवस्थानके समय श्रीशिवानन्द सेनके पुत्र 'श्रीपुरीदास'को श्रीगौरहरिकी कृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० १२।४५-५०) तथा **बाल्यमें** उस सप्तवर्षीय शिशुमें अद्भुत श्रीकृष्णतोषणात्मिका भक्ति और कवित्वका विकास (चै० च० अ० १६।७३-७५), श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीअच्युतानन्द, श्रीरघुनन्दन आदि की बाल्यकालमें श्रीगौरसेवा, श्रीश्रीवासकी भतीजी चार वर्षकी बालिका श्रीनारायणीका श्रीगौरकृपासे कृष्णनामसे क्रन्दन और प्रेम-विकार (चै० भा० म० २।३२४), **यौवनमें** श्रीरघुनाथ दास आदिका इन्द्रके समान ऐश्वर्य, अप्सराके समान भार्या और सुखमय गृहका त्याग करके श्रीगौरसेवामे आत्माहुति प्रदान करना, **प्रौढ़ावस्था में** श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरामराय और श्रीसुबुद्धिरायकी विषय-वैभव-त्यागलीला तथा श्रीगौरहरिका भृत्यत्व प्राप्त

करना , **वार्द्धक्यमें** श्रीभवानन्द राय, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य, श्रीकाशीमिश्र आदिका श्रीगौरकृपा प्राप्त करना , **निर्याणकालमें** श्रीहरिदास ठाकुरका 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नाम लेकर प्राण-उत्क्रमण, और **मुमूर्षु अवस्थामें** विसूचिका-रोगग्रस्त 'अमोघ'की श्रीकृष्णचैतन्यका उपदेश शिक्षा और कृपा प्राप्तकर देह-रोग और भव-रोगसे निष्कृति , **गलित कुष्ठी** वासुदेवकी श्रीगौरकृपा और शिक्षासे कुष्ठरोग नाश होकर रूप-पुष्ट तथा भक्तितुष्ट हो आचार्यत्वकी प्राप्ति (चै० च० म० ७। १४८) , **मृत्युके बाद** श्रीश्रीवासके मृत-शिशु-पुत्रकी श्रीगौरोपदेश-श्रवणके फल-स्वरूप दिव्यज्ञानकी प्राप्ति और सपरिवार श्रीश्रीवासका शोकशमन , **कारागृहमें** श्रीसनातन और श्रीहरिदासकी श्रीनाम-भजन-लीला , श्रीभवानन्द-पुत्रका प्राणघाती **राजदडभोगके समय** सख्यायुक्त श्रीनामग्रहण और श्रीगौरकृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० ९।५६) , पय पानकारी **सदाचारी ब्रह्मचारीका** तथा दूसरी ओर जगाइ-मधाइके समान अति **दुराचारी महापातकीका,** 'ललितपुर'के दारिसन्यासीका और दुराचारी दानीका (चै० भा० अ० २।१८१), मद्यपी यवन राजाका (चै० च० म० १६।१७८-१९९) शुद्धभक्ति प्राप्त करना , श्रीश्रीधरके समान केलेके खभे, पत्ते, और मूली बेचनेवाले **दरिद्र व्यक्तिका** अथवा श्रीशुक्लाम्बर 'ब्रह्मचारीकी नाईं' भिक्षुकका, घाट-केवटका (चै० च० म० १६।२०२), दूसरी ओर गजपति श्रीप्रतापरुद्रके समान **चक्रवर्ती महाराजका** प्रेमधन प्राप्त करना , श्रीश्रीवास पडितके घरकी दासी 'दु खी'का सेवानिष्ठाके फलसे 'सुखी' नाम प्राप्त करना , श्रीश्रीवासके घरकी **दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली** पर्यन्तको (चै० भा० म० ८।२१) भक्तिकी प्राप्ति, श्रीशिवानन्द सेनके कुत्तेका श्रीचैतन्यप्रदत्त ब्रह्मादिदुर्लभ भगवत्प्रसाद-सेवन, नाम-श्रवण-कीर्तन और सिद्धदेहसे वैकुण्ठ-प्राप्ति (चै० च० अ० १।३२) , तथा 'कुलीनग्राम'के भक्तोके सम्पर्कमें रहनेवाले कुत्तो आदिकी तथा उस स्थानपर **शूकर-चरानेवाले डोम** तककी श्रीकृष्णगानमें रति (चै० च० अ० १०।८३) , झारखडके बाघ, भालू,

जंगली हाथी आदि हिंसक **पशुओंका** श्रीचैतन्यके श्रीमुखसे हरिनाम श्रवणकर हिंसा भूलकर मृगादि पशुओंके साथ प्रभुका अनुगमन करना (चै० च० म० १७।३७), कृष्णकीर्तन-नृत्य और परस्पर आलिंगन करना (चै० च० म० १७।४२), मयूरादि **पक्षियोंका** भी कृष्णनाम सुनकर नाचना, वृक्ष-लतादि समस्त **स्थावर जंगमकी** प्रेम-स्फूर्ति; श्रीश्रीवासका वस्त्र सीनेवाले **यवन दर्जीको** वैष्णवता-प्राप्ति और कृष्णप्रेम-विकार (चै० च० आ० १७।२३२), हुसेनशाहके समान प्रबल-प्रतापी विधर्मी **बादशाहका,** चाँदकाजीके समान पराक्रमी **सूबेदारका,** बिजली खाके समान **पठान शाहजादेका** (चै० च० म० १८।२०७-२१२), रामदासके (श्रीचैतन्यका दिया हुआ नाम) समान **पठान पीरका,** सशिष्य **बौद्धाचार्यका** (चै० च० म० ९।४७-६२) और समस्त मत-वादियोंकी श्रीचैतन्यदेवके प्रति भगवत्‌बुद्धि, यहाँ तक कि, किसी-किसीको भागवत-धर्ममें प्रवेश और महाभागवतत्वकी प्राप्ति हुई थी। श्रीअभिराम ठाकुर और श्रीकाशीश्वरके समान बलवान्, राजपूत श्रीकृष्णदासके समान असीम साहसी **योद्धाने** कृष्णकी तुष्टिके लिये बल और वीर्य लगाकर श्रुति-प्रतिपाद्य (मुण्डक ३।२।४) प्रकृत बलका परिचय दिया था। फिर श्रीगौरगोपालके अलंकार चुरानेवाले **चोर** (चै० भा० आ० ४।१३२), श्रीनित्यानन्दके अलंकार लूटनेवाले **डकैतोंका सरदार** और डकैतोंका दल भी प्रेमधनका अधिकारी बना (चै० भा० अ० ५।५२६) था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समान श्रेष्ठ **वेदान्ती** और **स्मार्त-पंडित,** श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके समान केवलाद्वैती **सन्यासी गुरु,** श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्यके समान **संगीताचार्य,** श्रीवल्लभ भट्टके समान कनकाभिषिक्त दिग्विजयी आचार्य, केशव-काश्मीरी या केशव भट्टके समान **दिग्विजयी पंडित,** श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीरायरामानन्द-श्रीसुबुद्धिरायके समान **राजमन्त्रीगण** तथा श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद, श्रीरामराय, श्रीमुरारिगुप्त, श्रीस्वरूप-दामोदर, श्रीश्रीसनातन-रूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीसत्यराज खा, श्रीनरहरि सरकार-

ठाकुर, श्रीमाधव, श्रीवासुदेव, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरघुनाथ भागवताचार्य, श्रीकविकर्णपूर आदि सैकडो **कविकुल-शिरोमणियोने** अमर-मुखर भाषामे श्रीचैतन्यदेवकी कृपा और शिक्षा-वैशिष्ट्यका प्रचार किया है। श्रीसार्व-भौम भट्टाचार्य, श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्य, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीगदाधर पडित प्रभृतिके समान श्रेष्ठ **कुलीन ब्राह्मणगण** श्रीमहाप्रभुकी शिक्षासे अनुप्राणित होकर 'तृणादपि सुनीच' धर्मके मूर्तिमन्त प्रतीक बन गये थे, दूसरी ओर **भूँइमाली-कुलमें** (नीच कुलमे) उत्पन्न श्रीझडू ठाकुर, यवन-कुलमे उत्पन्न श्रीहरिदास ठाकुर, करण-कुलमे आविर्भूत श्रीरामानन्द राय, वणिक्-कुलमे उत्पन्न श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर, 'बगबाटी श्रीचैतन्यदास' (चै० च० आ० १२।८५) श्रीगौर-निताइकी कृपा प्राप्त करके नित्यसिद्ध पार्षदोमे गिने गये थे। श्रीनवद्वीपके जुलाहे, ग्वाले, शखवणिक्, गन्धी, माली, तम्बोली, ज्योतिषी, (चै० भा० आ० १२।१०८-१७७), मोदक, भिक्षु, कगाल, चोर, डाकू, अतिथि (चै० भा० आ० ४।५) आदि सभी श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त कर धन्य हो गये थे।

यवनकुलमें अवतीर्ण श्रीहरिदास ठाकुर और म्लेच्छ राजदरबारके भूतपूर्व मन्त्री श्रीश्रीरूप-सनातन दोनो प्रभुओंके द्वारा श्रीगौरसुन्दरने नाम-महिमाका विस्तार, श्रीमथुराप्रदेशमे भक्ति-सदाचारका प्रवर्तन, लुप्त तीर्थोंका उद्धार, भक्ति-ग्रन्थोकी रचना, तथा **शूद्र विषयी** गृहस्थकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीराम रायके यहाँ स्वय श्रीकृष्णलीला-प्रेमरस-तत्वका श्रवण करने और श्रीप्रद्युम्न मिश्र आदि ब्राह्मण-कुलजात वैष्णवको श्रवण करानेकी लीला प्रदर्शन करायी है। श्रीगौरहरि श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके द्वारा जीवदुःख-कातरता और उदारता, श्रीराघव पडितके द्वारा भगवत्सेवामे निष्ठा और प्रीति, श्रीहरिदास ठाकुरके द्वारा सहिष्णुता और श्रीनाम-भजनमे अनन्य-निष्ठा ; श्रीश्रीरूप-सनातनादिके द्वारा दैन्य और अकिञ्चनता , श्रीश्रीवास पडित, श्रीश्रीधर-आदिके द्वारा वहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता , श्रीप्रतापरुद्र, श्रीशिवानन्द सेन,

श्रीबुद्धिमन्त खा, श्रीकानाइ खुँटिया, श्रीजगन्नाथ माहाति आदिके द्वारा विष्णु-वैष्णवसेवामे धन लगानेकी आदर्श-शिक्षा, छोटे हरिदासकी दडलीलाके द्वारा मुमुक्षु साधक-वैरागीकी (चै० च० अ० ७।११७-११८ ; चै० च० ना० ८।२३) आचार-शिक्षा ; श्रीदामोदर पडित आदिके द्वारा निरपेक्षता, श्रीरामानन्द राय, श्रीपुडरीक विद्यानिधि, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीरघुनाथ पुरी आदिके द्वारा परमहस गुरु-वैष्णवके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आचारकी शिक्षा दी है। उन्होने श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीरामदास विश्वास आदि मुमुक्षुकी लीला करनेवाले व्यक्तियोंके द्वारा मुमुक्षुके लिये भी शुद्धभागवत-धर्मके आश्रयकी प्रयोजनीयता, तथा नित्यमुक्त भगवत्पार्षद श्रीपरमानन्द पुरी-आदि गुरुजनोके द्वारा भी भागवत-धर्मका सौन्दर्य प्रकट किया है। श्रीसुबुद्धि रायके चरितके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने कर्मजड-स्मार्त-मतवादके खडित-प्राकृत विचार और शुद्ध-भक्ति-सिद्धान्त की चमत्कारिता तथा सार्वभौमत्वको प्रमाणित किया है। श्रीवलभद्र भट्टाचार्य, कृष्णदास विप्र-आदिके द्वारा भी श्रीगौरहरिने व्यतिरेक भावसे जीवकी स्वतन्त्रताके कुफलकी शिक्षा दी है। रामचन्द्र पुरी, रामचन्द्र खा, अमोघ आदिके द्वारा श्रीहरिगुरु-वैष्णवमे मर्त्यबुद्धिके परिणामकी शिक्षा दी है। महाप्रभुकी छोटे हरिदासकी माधवी माताके यहाँ निजसेवार्थ चावल-भिक्षाके लिये दडदान-लीला ; दूसरी ओर श्रीमहाप्रभुको सुन्दरी युवती विधवाके पुत्रके प्रति आदर करते देखकर दामोदर पडितके श्रीमहाप्रभुको सतर्क करनेपर श्रीमहाप्रभुका दामोदर पडितको समझाना एव नवद्वीप स्थानान्तरित करना, श्रीरामानन्द रायके प्रति श्रीप्रद्युम्न मिश्रकी, तथा श्रीपुडरीक विद्यानिधिके प्रति श्रीगदाधर पडितकी सन्देह-लीलाके द्वारा साधक और सिद्धकी अणुचैतन्य और विभुचैतन्यकी शिक्षाके आदर्श-वैशिष्ट्यको प्रकट किया है।

श्रीअद्वैताचार्यकी गृहिणी श्रीसीतादेवी, श्रीनित्यानन्दकी जननी श्रीपद्मावती, श्रीशचीमाता, [illegible]की पत्नी श्रीमालिनी, श्रीराघव की बहिन श्रीदमयन्ती, श्रीस[illegible]की गृहिणी, आचार्यरत्न श्रीचन्द्र-

शेखरकी पत्नी, आचार्या श्रीजाह्नवा-वसुधा माता, श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीविष्णुप्रिया माता, श्रीशिवानन्द सेनकी पत्नी, श्रीनन्दिनी-जगली, श्रीशिखि माहातीकी बहिन विदुषी श्रीमाधवी माता-आदि अनेक वैष्णवी शक्तियोने, दूसरी ओर श्रीपरमेश्वर मोदककी पत्नी 'मुकुन्दाकी माता' (चै० च० अ० १२।५६), 'आदिवस्या' उडिया स्त्री (चै० च० अ० १४। २६) श्रीवासकी दासी 'दु खी' या 'सुखी' , यहातक कि रामचन्द्र खा की प्रेरिता वेश्या (जो बादमे ठाकुर हरिदासकी कृपा प्राप्त की हुई परम वैष्णवी महन्ती बनी), देवदासी-आदि शक्तियोने श्रीगौर तथा श्रीगौरजनकी कृपाकी आदर्श-शिक्षाकी विशिष्टता और विचित्रताका प्रचार किया है । श्रीश्रीवासकी सास (चै०भा०म० १६।१७) के दृष्टान्तमे श्रीगौरहरिकी निरपेक्षता तथा श्रीकृष्ण-सतुष्टिकी सापेक्षताकी आदर्श-शिक्षा प्रचारित हुई है ।

ये दैत्य-यवने मोरे कभु नाहि माने ।
ए-युगे ताहारा कान्दिबेक मोर नामे ।।
यतेक अस्पृष्ट दुष्ट यवन चण्डाल ।
स्त्री-शूद्र-आदि यत अधम राखाल ।।
हेन भक्ति-योग दिमु ए-युगे सबारे ।
सुर मुनि सिद्ध ये निमित्त काम्य करे ।।
—चै० भा० अ० ४।१२१-१२३

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।
येइ याँहा पाय, ताँहा करे' प्रेम दान ।।
लुटिया, खाइया, दिया, भांडार उजाडे ।
आश्चर्य भांडार प्रेम शतगुण बाडे ।।
उछलिल प्रेमवन्या चौदिके बेड़ाय ।
स्त्री-वृद्ध-बालक-युवा सकलइ डुबाय ।।

सज्जन-दुर्जन, पगु जड़ अन्धगण ।
प्रेमबन्याय डुबाइल जगतेर जन ।।
—चै० च० आ० ७।२३-२६

या'रे देख, ता'रे कह 'कृष्ण'-उपदेश ।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश ।।
—चै० च० म० ७।१२८

[जो दैत्य तथा यवन मुझे कभी नही मानते (दैत्यो और यवनोने भगवान्‌को किसी युगमे नही माना पर) इस युगमे (भगवान् श्रीचैतन्यदेव कहते है, वे मुझे मानेगे) मेरा नाम लेकर वे रुदन करेगे। जितने अधम, अस्पृश्य, दुष्ट, यवन, चाण्डाल, अहीर, स्त्री, शूद्र आदि है उन सबको इस युगमे मै ऐसा भक्ति-योग दूँगा, जिस भक्ति-योगकी कामना देवता, मुनि तथा सिद्धजन करते है।" (चै० भा० अ० ४।१२१-१२३)। "प्रेम-धन वितरण करते समय पात्रापात्रका विचार नही किया और न स्थानास्थानका ही। जिसे जहाँ देखा श्रीमहाप्रभुने पचतत्व (भक्त-रूपमे श्रीगौराग महाप्रभु, भक्तस्वरूपमे श्रीनित्यानन्द, भक्तावतार रूपमे श्रीअद्वैताचार्य, भक्त-शक्ति रूपमे श्रीगदाधर पडित तथा भक्त-रूपमे श्रीश्रीवास आदि) के रूपमे वही उसे प्रेम-दान किया। प्रेम का भडार ऐसा परिपूर्ण और आश्चर्यजनक है कि जितना भी लूटा, खाया, दिया और लुटाया जाय उतना ही सौ गुना और भी वह बढ जाता है। प्रेम-वन्या चारो ओर उद्वेलित हो उठी, श्रीमहाप्रभु पचतत्व-रूपमे चारो ओर विचरण कर आवाल, वृद्ध, वनिता सभीको प्रेम-वन्यामे आप्लावित करने लगे।" (चै० च० म० ७।२३-२६)। "जिसको देखो उसीको मेरी आज्ञासे गुरु बनकर कृष्णका उपदेश करो और इस देशको तार दो।" (चै०च० म० १।१२८) ।]—इत्यादि उक्तियाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु-प्रचारित प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताका अभूतपूर्व एव अश्रुतपूर्व साक्षीके रूपमे है ।

प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताके अतिरिक्त पचतत्त्वात्मक रूपमे श्रीगौरहरि द्वारा प्रचारित यह प्रेम-धर्म कितना सार्वत्रिक रहा इसका परिचय निम्नाकित उक्तियोसे स्पष्ट उपलब्ध किया जा सकता है।

एइ पंचतत्वरूपे श्रीकृष्णचैतन्य।
कृष्ण-नाम-प्रेम दिया विश्व कैला धन्य ॥
मथुराते पाठाइला रूप-सनातन।
दुइ सेनापति कैला भक्ति प्रचारण ॥
नित्यानन्द गोसाञे पाठाइला गौडदेशे।
तेंहो भक्ति प्रचारिला अशेष-विशेषे ॥
आपने दक्षिणदेशे करिला गमन।
ग्रामे-ग्रामे कैला कृष्णनाम प्रचारण ॥
सेतुबन्ध पर्यन्त कैला भक्तिर प्रचार।
कृष्णप्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥

—चै०च० आ० ७।१६३-६७

पृथिवी पर्यन्त यत आछे देश-ग्राम।
सर्वत्र सचार हइबेक मोर नाम ॥

—चै० भा० अ० ४।१२६

अर्थात् "इस प्रकार पचतत्व रूपमे प्रकट होकर श्रीकृष्णचैतन्यने कृष्ण-नाम-प्रेम प्रदान कर विश्वको धन्य-धन्य कर दिया। श्रीरूप-सनातनको मथुरा भेजा और उन दोनो सेनापतियोने भक्तिका वहा प्रचार किया। श्रीनित्यानन्द गोस्वामीको गौड देशमे भेजा, वहाँ उन्होने भक्तिका विशद-रूपमे प्रचार किया। स्वय दक्षिणदेशमे जाकर महाप्रभुने गाँव-गाँवमे कृष्णनामका प्रचार किया। सेतुबन्ध तक भक्तिका प्रचार करके कृष्णप्रेम प्रदानकर सबका उद्धार कर दिया।" स्वय श्रीमहाप्रभुने अपने मुँहसे चैतन्यभागवतमे कहा है कि, "ससार भरमे जितने देश तथा गाँव है, सर्वत्र मेरे नामका प्रसार होगा।'

श्रीचैतन्यदेवने प्रत्येक कार्यमे स्वय तथा अपने अनुचरोके द्वारा भक्तिके नित्य अधिष्ठानकी शिक्षा दी है। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके दूर-सम्पर्कके चाचा महाभागवत श्रीकालिदासके द्वारा कृष्णनामके सकेतके साथ समस्त व्यावहारिक कार्योका निर्वाह, यहातक कि कौतुकमे चौपड खेलनेमे (चै०च०अ० १६।५-७) श्रीभागवतधर्मके अधिष्ठानका प्रचार किया,—

कि शयने, कि भोजने, किबा जागरणे ।
अहर्निश चिन्त' कृष्ण, बलह वदने ।।"

—चै० भा० म० २८।२८

[क्या सोते, क्या जागते, क्या भोजन करते—दिन रात कृष्णचिन्तन करते हुए मुखसे कृष्ण-नाम लेते रहो।]—यह उक्ति श्रीगौरहरिद्वारा प्रचारित श्रीभागवतधर्मकी सार्वजनिकता सार्वत्रिकताके अतिरिक्त **सार्वकालिकताका** भी भलीभाँति प्रचार करती है।

एकसौ-सातवाँ परिच्छेद

कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्य

कोटि-कोटि महाभागवतोने वहि साक्षात्कार तथा अन्त साक्षात्कारके द्वारा जिनकी भगवत्ताको सुनिश्चित किया है, भगवत्ता ही जिनका निज-स्वरूप है, जिन स्वय श्रीभगवान्के श्रीचरण-कमलका आश्रय लेकर, अन्यत्र-दुर्लभ सहस्त्र-सहस्र प्रेम-पीयूषमयी भागीरथीकी धारा जिनके निजावतार प्रकटनमे प्रचारित हुई है, जो अपने सहस्त्र-सहस्त्र सम्प्र-दायोके अधिदेवता है, उन्ही 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नामक श्रीभगवान्को ही श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस कलियुगमे वैष्णवोका 'सदोपास्य' कहकर

निर्णीत किया है, तथा एक पद्यमे उनका स्तव-गान किया है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे कलियुगके उपास्य-प्रसगमे इस पद्य*की अवतारणा दीख पडती है।

कान्तिमे जो 'अकृष्ण' अर्थात् गौरवर्ण है, सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् लोग सकीर्तनबहुल यज्ञके द्वारा कलियुगमे उन श्रीगौरसुन्दरकी ही उपासना करते हैं। इस उपास्य-विग्रहके गौरत्वके सबधमे श्रीमद्-भागवतमे ही प्रमाण मिलता है। † श्रीगर्गाचार्यजी महाशय श्रीनन्दमहा-राजसे कहते है,—"तुम्हारे पुत्र युग-युगमे अवतीर्ण होते है, शुक्ल, रक्त और पीत—इन तीन वर्णोका शरीर गत तीन युगोमे प्रकटित हुआ है। अब (द्वापरमे) ये कृष्णरूपमे अवतरित हुए है।" सत्ययुगमे इनका शुक्ल वर्ण था, त्रेतामे रक्तवर्ण, द्वापरमे कृष्णवर्ण, अतएव परिशेष-प्रमाण-स्वरूप कलियुगमे ये उपास्यदेव पीतवर्ण धारण करते है, यह प्रतिपन्न हो गया, क्योकि 'इदानी' इस पदके द्वारा द्वापरमे श्रीकृष्णा-वतारकी बात ही कही गयी है। सत्ययुगके अवतारका शुक्लवर्ण, त्रेतायुगके अवतारका रक्तवर्ण होनेकी बात श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे वर्णित है। 'आसन्' क्रियापद अतीत कालका निर्देशक है। यहाँ अतीत कालकी क्रिया द्वारा जो पीतवर्ण सूचित हुआ है, उसमे अतीत कलिकालको ही लक्षित किया गया है। एकादश स्कन्धमे श्यामत्व, महाराजत्व एव वासुदेवादि चतुर्मूर्ति तथा उनके आकार-प्रकार और परिचयका कथन करते समय कहा गया है कि श्रीकृष्ण ही द्वापरमे उपास्य है।

परन्तु 'श्रीविष्णुधर्मोत्तर' नामक शास्त्रमे जो युगावतारोका वर्णन है, उससे जान पडता है कि द्वापर-युगके युगावतारका वर्ण शुकपक्ष (तोतेकी पाँखके समान) वर्ण तथा कलियुगावतारका वर्ण नीलघन है।

---

* "कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण सागोपागास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञै सकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस ।।" —भा० ११।५।३२

†"आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुग तनू ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानी कृष्णता गत ।।"—भा०१०।८।१३

यहाँ इस प्रमाण वाक्यके विषयमे यह समझना चाहिए कि यह उस द्वापरका सकेत करता है, जिसमे भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित नही होते और **जिस द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित होते है, उसके बाद ही आनेवाले कलियुगमें ही श्रीगौरसुन्दर अवतीर्ण हुआ करते है ।** इससे यही ज्ञात होता है कि **श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णाविर्भाव विशेष है ।** जिस द्वापरमे श्रीकृष्णावतार होता है, उसीके बादके कलियुगमे ही श्रीगौराग अवतार लेते है, इस नियमका व्यतिक्रम नही होता । 'श्रीविष्णुधर्मोत्तर'-ग्रन्थमे प्रतिकूल-सा जान पडनेवाला एक वाक्य मिलता है,—"सत्य, त्रेता, और द्वापर युगमे जिस प्रकार प्रत्यक्ष-रूपधारी युगावतार प्रकट होते है, कलिमे श्रीहरि उस प्रकारका कोई प्रत्यक्ष रूप धारण करके अवतीर्ण नही होते। इसीलिये वे 'त्रियुग' नामसे अभिहित होते है। कलिके अन्तमे श्रीवासुदेव, ब्रह्मवादी कल्किमे अनुप्रविष्ट होकर जगत्की रक्षा करते है।" यह प्रमाण भी अमान्य नही है। श्रीकृष्णके अनन्त और असीम ऐश्वर्यके प्रभावसे समय-समय पर उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणका अतिक्रम देखा जाता है। कलिकालमे भी श्रीभगवान् आत्मदेह प्रकट करके अवतीर्ण होते है। कलिके प्रारम्भमे भी श्रीकृष्णलीलाकी स्थिति शास्त्रमे देखी जाती है।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (५।३२) मे कलियुगमे श्रीगौर-सुन्दरके आविर्भावका उल्लेख एक श्लोकके वाक्य-विशेषके द्वारा प्रकट होता है—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञै: संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।।

इस श्लोकमे 'कृ-ष्ण' ये दो अक्षर है। इसका विशेष तात्पर्य यह है कि जिसके पूर्ण नाममे 'कृ-ष्ण' ये दो वर्ण (अक्षर) है, उनको ही 'कृष्ण-वर्ण' कहा गया है। तात्पर्य यह कि—"श्रीकृष्ण-चैतन्य' नाममे श्रीकृष्णत्व-अभिव्यजक 'कृ-ष्ण'—ये दो वर्ण प्रयुक्त हुए है।

'कृष्णवर्ण' पदका दूसरा अर्थ भी हो सकता है—जो श्रीकृष्णका वर्णन करते है, अर्थात् श्रीकृष्णके परमानन्द-विलास-स्मरण-जनित उल्लासके वश जो स्वय कृष्णके गुणोका कीर्तन करते है, तथा सब जीवोके प्रति परमकरुणावश सब लोगोको श्रीकृष्णके सम्बन्धमे उपदेश देते है, इस प्रकारके जो अवतारी है, वे ही 'कृष्णवर्ण' है।

अथवा स्वय 'अकृष्ण' अर्थात् गौरकान्ति धारणकर जो कृष्णके सम्बन्धमे उपदेश देते है तथा जिनके दर्शन करके सभीके हृदयमे श्री-कृष्ण-स्फूर्ति होती है, ऐसे जो विग्रह है, उनको ही उपर्युक्त पद्यमे 'कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण' कहा गया है। अथवा साधारण दृष्टिमे जो अकृष्ण है, अर्थात् गौररूपमे प्रतिभात होते है, भक्तविशेषकी दृष्टिमे उनकी ही प्रकाश-विशेषक कान्तिमे जो 'कृष्णवर्ण' अर्थात् 'श्यामसुन्दर' रूपमे प्रतीत होते है, वे ही 'कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण' पदमे अभिहित है। अतएव उनमे सभी प्रकारसे श्रीकृष्णरूपका प्रकाश होनेके कारण श्री-कृष्णचैतन्य श्रीकृष्णके ही साक्षात् आविर्भाव-विशेष है।

उपर्युक्त भागवतके पद्यमे उनकी भगवत्ता भी स्पष्टरूपसे सूचित हुई है। उसमे एक और पद है 'सागोपाङ्गास्त्रपार्षदम्'। अनेको महा-नुभावोने अनेको बार उनकी भगवत्ताकी सूचना देनेवाले अग-उपाग-अस्त्र-पार्षद आदिसे समन्वित रूपमे उनके दर्शन करके उनके स्वय भगवान् होनेका ही अनुभव किया है। गौड, वरेन्द्र, बग, सुह्म* उत्कल आदि देशोके निवासी महानुभावोमे उनकी यह भगवत्ता बहुत ही प्रसिद्ध है। परममनोहर होनेके कारण उनके अग तथा महाप्रभावशाली होनेके कारण उनके उपाग, अर्थात् भूषणसमूह ही उनके अस्त्र है, और उनके अग-उपाग सर्वदा नित्यरूपमे उनके साथ विद्यमान होनेके कारण वे ही उनके पार्षदरूपमे गिने जाते है।

---

*'सुह्म'—गौडके पश्चिम, वीरभूमके पूर्व और दामोदरका उत्तर-वर्ती भूभाग है, महाभारतके टीकाकार 'नीलकठ' के मतसे 'सुह्म' ही 'राढदेश' है।

श्रीमदद्वैताचार्य महानुभव आदि श्रीगौरहरिके अत्यन्त प्रेमास्पद होनेके कारण वे भी अगोपाग-तुल्य है। इसलिये वे ही पार्षद है। इनके साथ विद्यमान ऐसे जो श्रीकृष्णचैतन्य है, सर्वश्रेष्ठ बुद्धि-मान् लोग यज्ञ के द्वारा उनका यजन करते है। 'यज्ञ' शब्दका अर्थ है—पूजाका सभार। सकीर्तनप्रधान यज्ञ ही कलियुगमे श्रीभगवत्प्राप्तिका उपाय है। अनेक समान-चित्तवृत्तिवाले व्यक्ति एकत्र मिलकर जो श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यपरक श्रीकृष्णनाम-गुण-लीलाका गान करते है, वही सकीर्तन है। श्रीगौरचरणाश्रित लोगोमे सकीर्तन-प्रधान उपासना ही दिखलायी देती है।*

श्रीमद्भागवतमे श्रीप्रह्लादजीने श्रीभगवान्के अवतारतत्वकी आलोचनाके प्रसगमे श्रीनृसिह-भगवान्की स्तुति† करते हुए कहा है कि,—"आप नर, तिर्यक्, ऋषि, देवता, मत्स्य आदि अवतार समूहके द्वारा तीनो लोकोका पालन करते है तथा जगत्-द्रोही लोगोका विनाश किया करते है। हे महापुरुष! आप युगक्रमसे आये हुए धर्मकी रक्षा और पालन करते है। कलियुगमे प्रच्छन्न रूपसे अवतीर्ण होनेके कारण आप 'त्रियुग' नामसे प्रसिद्ध है।"

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका प्रसग उठाकर नीलाचलमे श्रीसार्व-भौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथ आचार्यसे कहा था कि,—"श्रीचैतन्यदेव—

---

* श्रीश्रीजीवगोस्वामीके 'सर्वसवादिनी'के सिद्धान्तके अनुसार लिखित।

† इत्थ नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान् विभावयसि हसि जगत्प्रतीपान्।
धर्म महापुरुष! पासि युगानुवृत्त छन्न कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥
—भा० ७।९।३८

[महापुरुष! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर उनके द्वारा लोकोका पालन तथा सपूर्ण जगत्से द्रोह करनेवाले असुरोका सहार करते है। इतना ही नही, उन अवतारोके द्वारा आप प्रत्येक युगमे उसके धर्मोकी रक्षा भी करते है। कलियुगमे आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते है, इसलिये आपको 'त्रियुग' कहा जाता है।]

महाभागवत है, पर भगवत्-अवतार नही है, क्योकि कलिकालमे विष्णु का अवतार नही होता। इसी कारण उनका एक नाम 'त्रियुग' है। चारो युगोमे से तीन युगोमे उनका आविर्भाव होनेके कारण वे 'त्रियुग' है। और शेष एक युगमे यानी कलियुगमे उनका अवतार नही होता।"

इसका उत्तर देते हुए श्रीगोपीनाथ आचार्यने श्रौतविचार प्रदर्शन करते हुए कहा,—"श्रीमद्भागवत और श्रीमन्महाभारत इन दो प्रधान शास्त्रोके प्रमाणसे ज्ञात होता है कि कलिमे स्वय रूपमे अवतारीका (अवतारके मूलपुरुषका) अवतार होता है। कलियुगमे नाम-प्रेम-प्रचारक पीतवर्ण द्विभुज स्वय भगवान् ही अवतीर्ण होते है। कलिमे लीलावतार न होनेके कारण भगवान् का नाम 'त्रियुग' हुआ है। इससे युगावतार या सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अवतारीके अवतारका निषेध नही होता।"*

श्रीमहाप्रभुने स्वय कहा है—

*** * "अन्यावतार शास्त्र-द्वारा जानि।**
कलिते अवतार तैछे शास्त्र-द्वारा मानि॥
सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र—'प्रमाण'।
आमा-सबा जीवेर हय शास्त्र-द्वारा ज्ञान॥
अवतार नाहि कहे,—'आमि अवतार'।
मुनि-सब जानि' करे' लक्षण विचार॥
यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसगतैः॥

—चै० च० म० २०।३५०-३५२ ; २०।३५३ ; भा० १०।१०।३४

[जैसे अन्य अवतारोको मै शास्त्रानुसार जानता हूँ, वैसे ही कलिके अवतारको शास्त्रानुसार मानता हूँ। सर्वत्र मुनियोके वाक्य शास्त्र-'प्रमाण' है, हम सब जीवोको शास्त्र-द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है। अवतार अपने मुँहसे नही कहते कि 'मै अवतार हूँ।' इसके विषयमे तो मुनिलोग लक्षण देखकर विचार करते है।

---

* चै० च० म० ६।९४।१००

भगवन्! आप प्राकृत शरीरसे रहित है, फिर भी शरीर धारण करके जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते है, जो साधारण देहधारियोके लिये सभव नही है, तथा जिनसे बढकर तो क्या, जिनके समान भी कोई नही कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोमे आपके अवतारो का पता चल जाता है।]

अप्राकृत-शरीरी परमेश्वरका अवतार-तत्व जीवके लिये जानना बहुत ही कठिन है। अतुल, अतिशय और अलौकिक वीर्य द्वारा आपके अवतारोका कुछ परिज्ञान होता है।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी कृपासे उद्भासित होकर परम विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जब प्रच्छन्नावतारी श्रीगौरहरिको 'स्वय भगवान् रूपमे अनुभव कर सके, तब उन्होने अपने हृदयकी उपलब्धि और साक्षात् दर्शनको निम्नलिखित दो श्लोकोके द्वारा व्यक्त किया,—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोग-,शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

[जो कृपासिन्धु और पुराणपुरुष है, जो वैराग्य, विद्या और निज-भक्तियोग अर्थात् उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्यविग्रहके रूपमे अवतीर्ण है; मै उनके शरणापन्न होता हूँ।]

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः, प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढ़ं गाढ लीयतां चित्तभृङ्गः॥

[कालक्रमसे निजभक्तियोगको विलुप्त देखकर जो 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामक महापुरुष उसका पुन प्रचार करनेके लिये जगत्मे आविर्भूत हुए है, उनके श्रीपादपद्मे मेरा चित्त-भ्रमर अतिशय गाढरूपमे आसक्त होवे।]

'स्वरूप' और 'तटस्थ'—इन दो लक्षणोके द्वारा वस्तुका विज्ञान प्राप्त होता है।* आकार और स्वभावगत लक्षण ही 'स्वरूप-लक्षण' है,

---

*'स्वरूप-लक्षण' आर 'तटस्थ-लक्षण'।
एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनिगण॥

तथा कार्यद्वारा जिस लक्षणका ज्ञान होता है वही 'तटस्थ'-लक्षण है—यही असाधारण लक्षण है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी आकृति सुवर्ण-वर्ण, हेमाग या अकृष्ण अर्थात् गौर है, वे सन्यास-चिह्नसे चिह्नित हैं तथा उनकी प्रकृतिमें या स्वभावमें वैराग्य-विशिष्टता, महाभाव-परायणता, महा-वदान्यता आदि गुण दिखलायी देते हैं। यह उनका स्वरूप-लक्षण है। प्रेमदान, सकीर्तनप्रचार आदि उनके कार्य हैं। ये ही उनके तटस्थ-लक्षण-रूप असाधारण लक्षण है। श्रीमहाभारतके 'सहस्रनाम'-में* उनके सुवर्णवर्ण, हेमाग, वराग (सर्वसुन्दर-गठन) और 'चन्दनागदी' (चन्दन-माला-शोभित) [उनकी गृहस्थलीलाकी आकृति] तथा 'सन्यास-कृत्' (सन्यासाश्रमके चिह्नसे चिह्नित) [सन्यासलीलाकी आकृति]

आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण।
कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण॥
अवतार काले हय जगतेर गोचर।
एइ दुइ लक्षणे केह जानेन ईश्वर॥
सनातन कहे,—"या'ते ईश्वर-लक्षण।
पीतवर्ण, कार्य—प्रेमदान-सकीर्तन॥
कलिकाले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय।
सुदृढ करिया कह, याउक सशय॥

—चै०च०म० २०।३५४-३५५, ३६१-३६३

['स्वरूप' लक्षण और 'तटस्थ' लक्षण है। इन दो लक्षणोसे मुनि-गण वस्तुको जानते हैं। आकृति, प्रकृति, स्वरूप—ये स्वरूप-लक्षण हैं और कार्य के द्वारा ज्ञान—यह तटस्थ लक्षण है। अवतार कालमे ये दो लक्षण जगत्गोचर होते है, इनसे कोई ईश्वर जानते हैं। सनातन कहते हैं—जिनमे ईश्वर-लक्षण है, पीत वर्ण है, प्रेमदान-सकीर्तन कार्य है, कलिकालमे वह निश्चय 'कृष्णावतार है।' यह सुदृढ भावसे कहो, जिससे सदेह चला जाय।]

*"सन्यासकृच्छम. शान्तो निष्ठाशान्तिपरायण."

—महाभारत दानधर्म १४९ अ०, श्रीविष्णुसहस्रनाम ७५

"सुवर्णवर्णो हेमागो वराङ्गश्चन्दनागदी" (श्री वि० स० ९२)

इत्यादि आकारकी बात कही गयी है। तथा शम, शान्त, निष्ठाशाति-परायण आदि पद उनकी प्रकृतिका निर्देश करते है, यह आकृति-प्रकृति-गत लक्षण ही उनका स्वरूप-लक्षण है।

और तटस्थ लक्षण या कार्यद्वारा लक्षण, जो एकमात्र श्रीगौरा-वतारमे ही असाधारण या अपूर्व है, वह अनर्पितचरी (पूर्वमे किसीको नही दी गयी, ऐसी) उन्नत-उज्ज्वल-रसमयी स्वभक्तिश्री आपामरमे वितरणरूपी कार्यके द्वारा भली-भाँति प्रकाशित हो रहा है।* अतएव स्वरूप और तटस्थ-लक्षण, इन दोनोके लक्षणोके द्वारा तथा शास्त्र-प्रमाण और सहस्र विद्वानोके अनुभवके द्वारा श्रीकृष्णचैतन्यदेव 'कलि-युगपावनावतारी' के रूपमे जाने जाते है।

बगदेशके लिये सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य और गौरवका विषय यह है कि, यहाँ प्रेमामर-कल्पतरु स्वय भगवान्‌ने बगालीके वेशमे अवतीर्ण होकर, बगभाषामे अप्राकृत प्रेमकी वाणीका आपामर समस्त जनतामे प्रचार किया है। परन्तु, बगदेशमे सर्वप्रथम आविर्भूत स्वय भगवान्‌के अव-तारका अवैध अनुकरण कर श्रीचैतन्यके तिरोधानके उपरात ही अनेको कल्पित अवतारोकी सृष्टि हो रही है। बगदेशमे इन नकली अवतारो की सख्या क्रमश बढती जा रही है। बगदेशके आदिकवि, श्रीनित्या-नन्दके शिष्य श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने पूर्वबग और राढ-बगके नकली अवतारोके प्रादुर्भावकी चर्चा करके बहुत ही दुख प्रकट किया था।†

---

*युगधर्मप्रवर्तन हय अश हैते। आमा बिना अन्ये नारे व्रजप्रेम दिते।
—चै० च० आ० ३।२६

[युगधर्मका प्रवर्त्तन भगवदशसे होता है और मेरे बिना दूसरा कोई व्रजप्रेम नही दे सकता।]

† सेइ भाग्ये अद्यापिह सर्व बगदेशे। श्रीचैतन्य-सकीर्तन करे स्त्री-पुरुषे।।
मध्ये मध्ये मात्र कत पापिगण गिया। लोक नष्ट करे आपनारे लओयाइया।।

श्रीमन्महाप्रभुके सन्यास-ग्रहणके पूर्व कथित, "शीघ्र ही मेरे और भी दो अवतार होगे"—इस उक्तिका सुयोग पाकर बगदेशमे अनेको नकली अवतारोकी रेलपेल देखनेमे आती है। वस्तुत—**"कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार"** (चै० च० आ० १७।२२)—कलियुगमे नाम-रूपसे ही कृष्णका अवतार है। **'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप'—तीन एक रूप। तिने 'भेद' नाहि,—तिन, 'चिदानन्द-रूप'।।"** (चै० च० म० १७।१३१)—नाम, विग्रह और स्वरूप—तीनोका एक ही रूप है, इनमे भेद नही है। तीनो चिदानन्द-स्वरूप है।

श्रीगौरसुन्दरके सन्यास-ग्रहणके ठीक बाद ही श्रीविष्णुप्रिया-माता और भक्तोने श्रीचैतन्यके विग्रहको प्रकट किया और उनके 'गौरहरि' नामकी आराधना आरम्भ कर दी थी। इसीसे अविलम्ब दो अवतारोके आविर्भावके सम्बन्धकी भविष्यवाणी सार्थक हो गई। वे ही (श्री-श्रीचैतन्यदेव ही) गौर-अर्चा और गौर-नामके रूपमे अवतीर्ण हुए हैं। सकीर्तनके द्वारा ही अर्चा-मूर्तिका अवतार होता है तथा श्रीनाम भी

उदर भरण लागि' पापिष्ठसकले। 'रघुनाथ' करि' आपनारे केह बले'।।
कोन पापिगण छाडि' कृष्ण-सकीर्तन। आपनारे गाओयाय बलिया 'नारायण'।।
देखितेछि दिने तिन अवस्था याहार। कोन् लाजे आपनारे गाओयाय से छार।।
राढे आर एक महा-ब्रह्मदैत्य आछे। अन्तरे राक्षस, विप्रकाच मात्र काचे।।
से पापिष्ठ आपनारे बोलाय 'गोपाल'। अतएव ता'रे सबे बलेन 'शियाल'।।
—चै० भा० आ० १४।८१-८७

[उसी भाग्यसे आज भी सारे बगदेशमे स्त्री-पुरुष श्रीचैतन्य-सकीर्तन करते है। बीच-बीचमे कुछ पापिष्ठ अपनेको प्रचार करके समाजको नष्ट कर रहे है, पेट भरनेके उद्देश्यसे पापिष्ठोमे कोई-कोई अपनेको 'रघुनाथ' कह रहे हैं। कुछ पापी लोग कृष्ण सकीर्तन छोडकर अपनेको 'नारायण' नामसे कहलवाते है। जिसकी दिनमे तीन अवस्था देखनेमे आती है, वह नीच किस लाजसे अपना गान करवाता है। राढदेशमे एक और महाब्रह्मदैत्य है जो भीतरसे राक्षस है, बाहरसे ब्राह्मणका साज सजता है। वह पापी अपनेको 'गोपाल' कहलाता है। अतएव उसे सब 'रगासियार' (गीदड) कहते है।]

सकीर्तनमे ही भलीभाँति अवतीर्ण होते हैं। इस सिद्धान्तको न समझकर श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद ही न जाने और भी कितने नकली अवतारोकी सृष्टि हुई थी, जिनका उल्लेख तत्कालीन वैष्णव-साहित्यमे देखनेमे आता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुरके नामसे आरोपित 'गौरगण-चन्द्रिका' नामक पुस्तकसे जाना जाता है कि एक द्विज वासुदेव अपनेको 'गोपालदेव' नामसे प्रचार करते थे। अत भागवतके शृगाल वासुदेवकी भाँति उनको 'शृगाल' नाम प्राप्त हुआ था। पूर्वी बगालमे 'विष्णुदास कवीन्द्र' नामक एक व्यक्ति अपनेको रघुनाथका अवतार बताकर प्रचार करते थे। माधव नामका एक देवल ब्राह्मण चुटिया धारण करके अवतार सज बैठा था। *

---

* चैतन्यदेवे जगदीशबुद्धीन्, केचिज्जनान् वीक्ष्य च राढबंगे।
स्वस्येश्वरत्व परिबोधयन्तो, धृत्वेशवेश व्यचरन् विमूढा ॥
तेषातु कश्चिद्द्विजवासुदेवो, गोपालदेव पशुपागजोऽहम्।
एव हि विख्यापयितु प्रलापी, शृगालसज्ञा समवाप राढे ॥
श्रीविष्णुदासो रघुनन्दनोऽह, वैकुण्ठधाम्न समित कवीन्द्रा।
भक्ता ममेतिच्छलनापराधात्त्यक्त कपीन्द्रेति समाख्ययायै ॥
उद्धारार्थ क्षितिनिवसता श्रील-नारायणोऽह।
सप्राप्तोऽस्मि व्रजवनभुवो मूर्ध्नि चूडा निधाय ॥
मन्द हृष्यन्निति च कथयन् ब्राह्मणो माधवाख्य-
श्चूडाधारी त्विति जनगणै कीर्त्यते बङ्गदेशे ॥
कृष्णलीला प्रकुर्वाण कामुक शूद्रयाजक।
देवलोऽसौ परित्यक्तश्चैतन्येनेति विश्रुत ॥
अतिभव्यादयोऽप्यन्ये परित्यक्तास्तु वैष्णवै।
तेषा सगो न कर्तव्य सगाद्धर्मो विनश्यति ॥
आलापाद्गात्रसस्पर्शान्नि श्वासात् सहभोजनात्।
स चरन्तीह पापानि तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥
—श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्तीकृता 'गौरगण-चन्द्रिका'

[श्रीचैतन्यदेवके प्रति जगदीश्वर-बुद्धि रखनेवाले भक्तजनोको देखकर बगदेशके राढ-प्रान्तमें कुछ मूढ मानव अपनेको भी ईश्वरका अवतार बताते हुए भगवान्‌का-सा वेश धारण करके विचरने लगे थे।

श्रीभक्तिरत्नाकरके लेखक श्रीनरहरि चक्रवर्तीठाकुरने भी (१४ वें तरगमें) कुछ नकली अवतारोका उल्लेख किया है ।*

उनमेसे कोई वासुदेव नामक ब्राह्मण था, जो लोगोमे यह प्रचार करनेके लिये कि मै 'नन्दनन्दन गोप लदेव हूँ' अनेक प्रकारके प्रलाप (व्यर्थकी बाते) किया करता था । किन्तु राढ-प्रान्त (बगालके पश्चिम भाग) में उसे मिथ्या वासुदेवकी भाँति 'शृगाल' सज्ञा प्राप्त हुई—लोग उसे सियार कहने लगे । एक व्यक्तिका नाम था श्रीविष्णुदास कवीन्द्र । वे कहा करते थे "मै रघुनन्दन श्रीराम हूँ, श्रीवैकुठधामसे इस वसुधापर अवतीर्ण हुआ हू ।' कपिश्रेष्ठ सुग्रीव आदि मेरे भक्त थे ।' इस प्रकार जनताको छलनेके अपराधसे, श्रेष्ठ पुरुषोने उसे 'कपीन्द्र'की उपाधि देकर त्याग दिया—समाजमें वह आदरणीय न हो सका । माधव नामक एक ब्राह्मण था, जो शिरपर चूडा धारण किया करता था, वह कुछ प्रसन्नता के साथ यो कहता था—'मै लक्ष्मीपति नारायण हू और भूतलनिवासियोके उद्धार के लिये व्रजकी वनभूमि (वृन्दावन-धामसे) मस्तकपर चूडा धारण करके यहा आया हू ।" बगदेशमें आज भी उस वचक ब्राह्मणको लोग 'चूडाधारी' कहते है । "वह चूडाधारी माधव किसी देवालयका पुजारी था । वह शूद्रोसे यज्ञ कराता और दक्षिणा लेता था । कामके वशीभूत होकर श्रीकृष्णकी रासलीला आदिका अनुकरण करता था । श्रीचैतन्य-महाप्रभुने उसे त्याग दिया था, यह बात प्रसिद्ध है । अतिभव्य आदि अन्य वचक जनोको भी वैष्णवोने त्याग दिया है । उनका सग नही करना चाहिये । उनके सगसे धर्मका नाश होता है । जैसे तेलकी बूद पानीके एक भागमें पडनेपर भी सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार मनुष्यके पाप परस्पर वार्तालापसे, एक दूसरेके शरीरके स्पर्शसे, सास लेनेसे तथा एक साथ बैठकर भोजन करनेसे सब लोगोमें सचार करते हैं—एकके पाप दूसरेमें भी प्रवेश कर जाते है ।]

* केह कहे,—"अहे भाइ ! वहिर्मुखगण ।
हइया स्वतन्त्र, धर्म करये लघन ।।
वहिर्मुखगणमध्ये ये प्रधान ता'रे ।
'रघुनाथ' साजाइया भाँडाय लोकेरे ।।
स्वमत रचिया ये पापिष्ठ दुराचार ।
कहये कवीन्द्र बगदेशेते प्रचार ।।"

एकसौ-आठवाँ परिच्छेद

श्रीचैतन्यदेवके पार्षदवृन्द

कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी लीलामें सहायक अगणित पार्षदवृन्दमें कतिपय पार्षदोका अति सक्षिप्त तथा असपूर्ण परिचय नीचे दिया जाता है ।

श्रीनित्यानन्दप्रभु

राढ देशमें 'एकचाका' ग्राममें मैथिल-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न श्रीहाडाई पण्डित या श्रीहाडो ओझा और उनकी सहधर्मिणी श्रीपद्मावती देवीके घर माघ शुक्ल त्रयोदशी तिथिको श्रीनित्यानन्द अवतीर्ण

केह कहे—"देखिलाम महापापिगण ।
आपनाके गाओयाय छाडि' श्रीकृष्णकीर्तन ।।
केह कहे—'राढदेशे एक विप्राधम ।
'मल्लिक' खेयाति, दुष्ट नाहि ता'र सम ।।
से पापिष्ठ आपनारे 'गोपाल' कहाय ।
प्रकाशि राक्षसमाया लोकोरे भाँडाय ।।

—भ० र० १४ तरग

[कोई कहता है—"अरे भाई ! वहिर्मुखगण (भगवद्विमुख व्यक्तिगण) स्वेच्छाचारी बन, धर्मका विरुद्धाचरण कर रहे हैं । उनमे जो प्रधान है उसे 'रघुनाथ' सजाकर लोगोको धोखा दिया जा रहा है । कोई पापिष्ठ दुराचारी अपना ही मत रचकर बगदेशमे अपनेको कविश्रेष्ठ कहलाकर प्रचार कर रहा है ।" कोई कहता है—"देखा, महापापीगण श्रीकृष्णकीर्तन छोडकर अपनेको ही प्रचार करा रहे है ।" कोई कहता है—"राढदेशमे एक नीच ब्राह्मण जो 'मल्लिक'के नामसे परिचित है, जिसके समान दूसरा दुष्ट नही, वह पापिष्ठ अपनेको 'गोपाल' कहलाता है । वह राक्षसी-माया फैलाकर लोगोको ठग रहा है ।]

हुए। श्रीनित्यानन्द जब बारह वर्षके थे, तब एक परिव्राजक वैष्णव-सन्यासी अतिथिरूपमें आये और श्रीनित्यानन्दको उनके माता-पिताके पाससे भिक्षाके रूपमें ले गये। उस सन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्दने भारतके बहुत-से तीर्थोंका पर्यटन किया। पश्चिम भारतमें भ्रमण करते समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके साथ श्रीनित्यानन्दका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार अपनी बीस वर्षकी उम्रतक तीर्थभ्रमण करते-करते, जब श्रीगौरसुन्दरने श्रीनवद्वीपमें आत्मप्रकाश किया तो, वह वहाँ जाकर उनसे मिले। श्रीनित्यानन्दने श्रीश्रीवासके घर श्री-गौरसुन्दरकी श्रीव्यासके रूपमें पूजा की, तथा श्रीगौरहरिके षड्भुज-रूपमें दर्शन किये। श्रीगौरागकी आज्ञासे श्रीनित्यानन्द और श्री-हरिदास ठाकुर जिस समय नवद्वीपमें घर-घर श्रीकृष्णभजनके सम्बन्धमें प्रचार कर रहे थे, उसी समय मद्यपी 'मधाइ'ने श्रीनित्यानन्दके सिरपर प्रहार किया। श्रीनित्यानन्दने मधाइके सारे पाप और अपराध दूरकर 'जगाइ-मधाइ' दोनो भाइयोको श्रीगौरसुन्दरकी कृपासे अभिषिक्त किया। जब श्रीमन्महाप्रभु सन्यासग्रहण करके नीलाचलकी ओर जाने लगे, उस समय श्रीनित्यानन्दने श्रीचैतन्यके दण्डके तीन टुकडे करके उसे नदीके जलमें बहा दिया था, क्योकि, साधक जीवके समान स्वय भगवान्को सन्यास या दण्ड-ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नही है। श्रीगौरसुन्दरके आदेशसे श्रीनित्यानन्दप्रभुने गौडदेशमें प्रेमभक्तिका प्रचार किया।

'बेनापोल'का रामचन्द्र खा नामक एक वैष्णवविद्वेषी पाखडी जमी-दार श्रीनित्यानन्दके चरणोमें अपराध करके सपरिवार विनष्ट हो गया। 'पानीहाटी' गाँवमें श्रीनित्यानन्दने श्रीरघुनाथ दासके द्वारा 'दही-चूडा-दण्ड-महोत्सव' कराया था। श्रीनित्यानन्दकी कृपासे उनके श्रीअगके बहुमूल्य अलकारोको लूटनेकी इच्छा करनेवाले डाकू सरदारको भी चित्तशुद्धि और प्रेमभक्तिकी प्राप्ति हुई थी।

श्रीनित्यानन्दने 'अवधूत' अर्थात् आश्रमातीत परमहसकी लीला की है। व्रजलीलामें जो श्रीबलराम है, श्रीगौरावतारमें वे ही श्रीनित्यानन्द

है। श्रीजाह्नवा और श्रीवसुधा--ये दो श्रीनित्यानन्दकी शक्तियाँ है। श्रीनित्यानन्दके पुत्ररूपमे श्रीवसुधाके गर्भसिन्धुसे श्रीवीरभद्र गोस्वामी प्रभु अवतीर्ण हुए। ये श्रीजाह्नवा माताके शिष्य हुए। प्रभु श्रीवीरभद्रने 'झामटपुर' ग्रामके निवासी श्रीयदुनाथ आचार्यकी औरस-जात कन्या श्रीमती और पालिता कन्या श्रीनारायणीसे विवाह किया। उनको कोई सन्तान नही हुई। श्रीवीरभद्र प्रभुके द्वारा पालित तीन पुत्रोमे छोटे श्रीरामचन्द्रने 'खड़दा'मे, बडे पुत्र श्रीगोपीजन वल्लभने बर्दवान जिलेके 'लता' गावमे और मझले श्रीरायकृष्णने मालदाके पास 'गयेशपुर' गॉवमे वास किया। श्रीनित्यानन्दके पार्षदगण व्रजके सखा 'द्वादश गोपाल'के नामसे विख्यात है। श्रीनित्यानन्दके गण असख्य है। श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता ठाकुर श्रीवृन्दावनने अपनेको श्रीनित्यानन्द प्रभुका 'सर्वशेष भृत्य' कहकर परिचय दिया है।

श्रीअद्वैताचार्य

श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व श्रीअद्वैताचार्य श्रीहट्टसे 'शान्तिपुर'मे आकर रहने लगे थे तथा उन्होने श्रीनवद्वीप-मायापुरमे श्रीवासके आँगनसे थोडी दूरपर एक वैष्णव-सभा स्थापित की थी। उनका पहला नाम 'श्रीकमलाक्ष' था (चै०च० आ० ६।३०)। वे स्वय विष्णुतत्त्व है। ईश्वरके साथ अभिन्न होनेके कारण उनका नाम 'अद्वैत' है।

"महाविष्णुर अंश—अद्वैत गुणधाम।
ईश्वरे अभेद, तेञि 'अद्वैत' पूर्णनाम ॥
भक्ति-उपदेश बिनु ताँर नाहि कार्य।
अतएव नाम हैल 'अद्वैत-आचार्य' ॥
वैष्णवेर गुरु तेंहो जगतेर आर्य।
दुइ नाम मिलने हैल अद्वैत-आचार्य ॥

—चै० च० आ० ६।२५, २८-२९

'अर्थात् श्रीअद्वैत सर्वगुणसम्पन्न है।. वे महाविष्णुके अश है। ईश्वरसे अभिन्न होनेके कारण उनका 'अद्वैत' नाम पूर्ण है। भक्तिके उपदेश देनेके सिवा वे और कोई कार्य नही करते, अतएव उनका 'अद्वैताचार्य' नाम पडा। वे वैष्णवोके गुरु, तथा जगत्वासीके लिए पूजनीय है। इस प्रकार दोनो नामोके मिलनेसे अद्वैताचार्य नाम हुआ।'

श्रीअद्वैताचार्य माघ शुक्ल सप्तमीको आविर्भूत हुए थे। श्रीअद्वैत आचार्यने श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामिपादके शिष्यकी लीला की थी। उस समयके वहिर्मुख जीवोकी कुमति और दुर्दशा देखकर वे नवद्वीप-माया-पुरमे जल-तुलसीके द्वारा कलियुगपावनावतारी श्रीभगवान् गौरसुन्दरके अवतारके लिये आराधना करते थे। श्रीहरिदास ठाकुर शान्तिपुरके समीप 'फुलिया'ग्राममे श्रीअद्वैताचार्यके सग और कृपाको प्राप्तकर धन्य हो गये थे। श्रीअद्वैताचार्यने श्रीहरिदासको अपने पितृपुरुषका श्राद्धपात्र भोजन कराया था। श्रीगौरहरिने अवतीर्ण होकर और आत्मप्रकाश करके श्रीअद्वैताचार्यके साथ नानाप्रकारका लीला-विलास तथा जगत्के जीवोके प्रति कृपा-वितरण किया था। श्रीनवद्वीप-मायापुरमे 'श्रीचन्द्र-शेखर-भवन'मे श्रीगौरहरिने श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीश्रीवास, श्रीहरिदास आदि भक्तवृन्दके साथ व्रजलीलाका नाट्याभिनय किया था। उसमे श्रीअद्वैताचार्यने महाविदूषकका स्वाग या वेश ग्रहण किया था। सन्यासलीलाके ठीक पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुने शान्तिपुरमे श्रीअद्वैत-मन्दिरमे श्रीशचीमाताके श्रीहस्तके द्वारा तैयार किये हुए नैवेद्यका भोजन और कीर्तन-नर्तन-विलास किया था। श्रीअद्वैतके पुत्र श्रीअच्युतानन्द जब पाँच वर्षके थे तभी उनकी श्रीचैतन्यदेवमे स्वाभाविकी भगवद्बुद्धि और भगवद्भक्तिकी बात सुनी जाती है। श्रीअद्वैताचार्यके दो स्त्रियाँ और छ पुत्र थे। श्रीअच्युतानन्द, श्रीकृष्ण मिश्र, और श्रीगोपालदास श्रीसीतादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए, ये श्रीगौरभक्त थे। श्रीअद्वैताचार्यके अन्य तीन पुत्रोके नाम है—बलराम, स्वरूप और जगदीश। श्रीअद्वैताचार्य प्रतिवर्ष गौडीय-भक्तोके साथ श्रीक्षेत्रमे (पुरीमे) जाकर श्रीगौरसुन्दरके

साथ रथयात्रामे नृत्य और कीर्तन करते थे। श्रीश्रीवास पडितके श्रीअद्वैताचार्यको श्रीशुकदेव या श्रीप्रह्लादके समान वैष्णव बतलाने पर श्रीगौरसुन्दर श्रीअद्वैतकी महिमा प्रकट करते हुए कहते,—

"शुक-आदि करि' सब बालक उँहार।
नाड़ार (श्रीअद्वैतेर) पाछे से जन्म जानिह सबार॥
अद्वैतेर लागि' मोर एइ अवतार।
मोर कर्णे बाजे आसि' नाडार हुंकार॥
शयने आछिनु मुञि क्षीरोद-सागरे।
जगाइ' आनिल मोरे नाडार हुंकारे॥

—चै० भा० अ० ६।२६६-२६८

अर्थात् शुक आदिसे लेकर सब अद्वैतके सामने बालक है, इन सबका जन्म अद्वैतके पीछे हुआ है, ऐसा जानो। अद्वैतके लिये ही मेरा यह अवतार है। अद्वैतका हुकार मेरे कानोमे आ-आकर ध्वनित होता रहता है। क्षीर-सागरमे मैं शयन कर रहा था, पर श्रीअद्वैतका हुकार मुझे यहाँ जगा ले आया।

श्रीगदाधर पडित

पचतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिके शक्ति-अवतार श्रीगदाधर पडित गोस्वामी है। श्रीगदाधर पडितके पिताका नाम है श्रीमाधव मिश्र और माताका नाम श्रीरत्नावती। शैशवकालसे ही श्रीगदाधर विषयोसे विरक्त और श्रीकृष्णमे रति-सम्पन्न थे। श्रीईश्वरपुरीपादने नवद्वीपमे श्रीगदाधरको 'श्रीकृष्णलीलामृत' ग्रन्थ पढाया था। नवद्वीपमे श्रीनिमाइ पडितके साथ न्यायके विभिन्न विषयोको लेकर श्रीगदाधर पडितका प्राय ही वाद-विवाद हुआ करता था। आजन्म ससार-विरक्त गदाधरने चट्टगाँव-निवासी महाभागवत श्रीपुडरीक विद्यानिधिको 'भोगीके समान' देखकर पहले उनकी वैष्णवताके सम्बन्धमे कुछ सशय-लीला प्रकट की थी, परन्तु, पीछे विद्यानिधिके अपूर्व विप्रलम्भ प्रेमविकारको देखकर

जीवोकी शिक्षाके लिये अपने अपराध-मार्जनके अभिप्रायसे श्रीपुडरीकसे दीक्षा-मन्त्र ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुकी सन्यासलीलाके बाद श्री गदाधर नीलाचलमे 'यमेश्वर-टोटा' मे जाकर स्थायीभावसे रहने लगे और वहाँ उन्होने 'श्रीगोपीनाथकी सेवा' प्रकट की। 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीरपर श्रीगदाधर पडित सपार्षद श्रीगौरसुन्दरके पास प्रति-दिन श्रीमद्-भागवतकी व्याख्या करते थे। श्रीवल्लभ भट्ट (आगे, 'श्रीवल्लभाचार्य' के नामसे प्रसिद्ध) पहले बाल-गोपाल-मन्त्रसे कृष्ण-सेवा करते थे। पश्चात् वे श्रीगदाधर पडितसे मन्त्र-ग्रहणकर श्रीकिशोर-गोपालकी उपासनामे प्रवृत्त हुए। श्रीअद्वैताचार्यके ज्येष्ठ पुत्र श्रीअच्युतानन्द श्रीगदाधर पडितके प्रधान शिष्य थे। 'वराहनगर'के श्रीरघुनाथ भागवताचार्य भी श्रीगदाधर पडितके अन्यतम शिष्य रहे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीभूगर्भ गोस्वामी आदि श्रीगदाधर पडितके शिष्य है।

श्रीहरिदास ठाकुर

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले श्रीहरिदास ठाकुर यशोहर जिलेके अन्तर्गत 'बूढन' ग्राममे मुसलमान-कुलमे आविर्भूत हुए थे। वे यवनकुलकी सामाजिक रीति-नीतिका त्यागकर श्रीहरिनाम-ग्रहणके व्रती बने और युवावस्थामे ही 'बूढन' ग्राम त्यागकर 'बेनापोल'के समीप एक निर्जन वनमे कुटिया बनाकर तुलसीकी सेवा और दिन-रातमे तीन लाख श्रीनाम-सकीर्तन करते हुए ब्राह्मणके घरकी भिक्षासे निर्वाह करने लगे। उस देशके जमीदार पर श्रीकातर वैष्णव-द्रोही 'श्रीरामचन्द्र खाँ'ने श्रीहरिदासके चरित्रमे कलक लगानेके लिए उनके पास एक सुन्दरी युवती वेश्याको भेजा। वह वेश्या महाभागवत श्रीहरिदासके ऐकान्तिक भजनको देखकर और उनके मुँहसे निरन्तर श्रीहरिनाम-कीर्तन श्रवण कर ठाकुरकी कृपासे निर्वेद-ग्रस्त (वैराग्यवती) हो गयी और सदाके लिये पापवृत्तिका

त्याग करके वैष्णवधर्ममे दीक्षित हो गयी। रामचन्द्र खाँके महा-भागवतके चरणोमे अपराधके फलसे, धन-जन-प्राण सबका नाश हो गया। श्रीहरिदास ठाकुर 'बेनापोल' त्यागकर शान्तिपुर आये और श्रीअद्वैत आचार्यका सग प्राप्त कर फुलिया नामक ग्राममे श्रीनाम-भजन करते रहे। काजी 'अम्बुया'ने सूबेदारके पास जाकर श्रीहरिदासके विरुद्ध अभियोग किया। सूबेदारने श्रीहरिदास ठाकुरको कैदखानेमे बद करनेका आदेश दिया। ठाकुर श्रीहरिदासके दर्शन, वन्दन और कृपासे दूसरे अपराधी कैदियोका भी मगलोदय हो गया।

श्रीहरिदास जब सूबेदारके सामने लाये गये तो उसने उनको 'कलमा' पढने और हिन्दूधर्मके आचारको त्यागनेका उपदेश दिया। श्रीहरिदास बोले,—

"खण्ड-खण्ड हइ' देह याय यदि प्राण।
तबु आमि बदने ना छाड़ि हरिनाम॥"

—चै०भा०आ० १६।६४

अर्थात् 'मेरे शरीरके टुकडे-टुकडे होकर चाहे प्राण चले जायँ, तब भी मै मुखसे हरिनाम नही छोडूँगा।' इस पर सूबेदार बहुत बिगडा और काजीके परामर्शके अनुसार उसने श्रीहरिदासको बाईस-बाजारमे ले जाकर निर्दयरूपसे प्रहार करनेका आदेश दिया। तदनुसार यवनोने उनके ऊपर अकथनीय अत्याचार किया। परन्तु श्रीहरिदास अपने द्रोही सत्यविरोधी पापियोकी कल्याण-कामना ही करते रहे। बाईस-बाजारमे भीषण प्रहार करने पर भी श्रीहरिदासके शरीरको अक्षत देखकर यवन लोग उनको 'पीर' समझने लगे। और श्रीहरिदाससे बोले कि 'यदि उनके प्राण शरीरसे अलग नही हो जायँगे तो सूबेदार द्वारा हमलोगोको दडित होना पडेगा।' इसपर श्रीहरिदास यवनोके उपकारार्थ समाधिस्थ होकर मृतवत् पड गये और उनलोगोने उनको उठाकर गगाके जलमे बहा दिया। श्रीहरिदास बहते-बहते फुलिया नगरमे जा पहुँचे और पूर्ववत् श्रीकृष्णनाम-भजनमे तल्लीन हो गये।

फुलियामे श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-गुफामे एक भीषण विषधर सर्प रहता था ; परन्तु उसने मत्सरहीन श्रीहरिदासके प्रति कोई हिसा नही की। एक परश्रीकातर 'ढोगी ब्राह्मण'ने श्रीहरिदासके इस अप्राकृत भावका अनुकरण करना चाहा तो उसे विशेषरूपसे कष्ट भोगना पडा। भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्यने शान्तिपुरमें "तुमि खाइले हय कोटि ब्राह्मण भोजन" अर्थात् 'तुम्हारे खा लेनेसे कोटि-ब्राह्मण भोजन कराना हो जाता है'—यह कहकर श्रीहरिदास ठाकुरको पिताका श्राद्धपात्र प्रदान किया। श्रीहरिदासके फुलियामे रहते समय स्वय मायादेवी एक ज्योत्स्नामयी रात्रिमे श्रीहरिदासको मोहित करने आयी और स्वय ही श्रीकृष्णनाम-प्रेममे दीक्षिता हो गयी। श्रीहरिदास ठाकुर जब हिरण्य और गोवर्द्धन मजुमदारके पुरोहित श्रीबलराम आचार्यके घर रहते थे, उस समय कुछ स्मार्त पडितोने उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तनके विरुद्ध आवाज उठायी। गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्तिको श्रीहरिदासके चरणोमे अपराध करनेके कारण गलितकुष्ठ रोग हो गया। श्रीगौरहरि जब बाल्यलीला करते थे, उसी समय श्रीहरिदास श्रीनवद्वीपमे श्रीअद्वैतप्रभुकी सभामे तथा श्रीवास आदि भक्तवृन्दके साथ श्रीहरिकथाकी चर्चा किया करते थे। गयासे लौटकर श्रीगौरहरिने श्रीनित्यानन्द और ठाकुर श्रीहरिदासको श्रीधाम-नवद्वीपमें घर-घर श्रीहरि-कीर्तन करनेका आदेश प्रदान किया। श्रीहरिदासने बगदेशमे अनेको स्थानोमे श्रीहरिनामका प्रचार किया। बर्दवान जिलेके अन्तर्गत 'कुलीन-ग्राममे 'श्रीरामानन्द वसु आदिके घर एक समय रहकर श्रीहरिदासने श्रीनाम-भजन किया था और कुलीन-ग्रामवासियो पर बडी कृपा की थी। कुलीन-ग्राममे अब भी श्रीहरिदासका भजन-स्थान देखनेमे आता है। श्रीहरिदास श्रीगौरहरिके प्रत्येक अनुष्ठानमे ही सहायक स्वरूप हुए थे। 'महाप्रकाश'के दिन श्रीचन्द्रशेखरके घर नाटचाभिनयके समय, तथा काजी-उद्धारके लिये नगर-सकीर्तनके समय श्रीहरिदास श्रीमन्महाप्रभुके प्रधान सेवक थे। श्रीगौरहरिके सन्यास-ग्रहण करके श्रीनीलाचल चले जानेपर श्रीहरिदास

भी श्रीमन्महाप्रभुके सगके लोभसे श्रीकाशीमिश्रके घरके समीप अवस्थान कर एक निर्जन कुटीमे अपतितरूपसे श्रीनाम-भजन करने लगे। आजकल वह भजन-स्थान 'सिद्ध-बकुल'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीश्रीरूप-सनातन श्रीहरिदासठाकुरके साथ श्रीनीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुका सुखानुसन्धान करते थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीहरिदासके द्वारा विश्वमे श्रीनाम-माहात्म्यका प्रचार कराया है। ठाकुर श्रीहरिदासने अपनी देहत्याग-लीलाके अन्तिम दिन भी सख्यापूर्वक नाम-ग्रहणकी मर्यादा प्रदर्शित की थी। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोको हृदयमे धारणकर, आँखोके द्वारा उनके दिव्य रूपके दर्शन और जिह्वासे 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामका उच्चारण करते-करते सपार्षद श्रीचैतन्यदेवके सामने श्रीपुरुषोत्तम-धाममे श्रीहरि-दास ठाकुरने महाप्रयाण-लीला प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास को गोदमे लेकर नृत्य करने लगे और विमानपर चढाकर कीर्तन करते-करते समुद्र तीरपर ले जाकर उन्होने स्वय अपने हाथो श्रीहरिदासको समाधि दी। श्रीमन्महाप्रभुने स्वय श्रीमहाप्रसाद भिक्षा करके श्रीहरि-दासके अन्तर्धान-उत्सवको भक्तगणके साथ सम्पन्न किया।

श्रीश्रीवास पडित

पचतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिके शुद्धभक्त-तत्वके मुख्य पात्र हैं श्रीश्रीवास पडित। श्रीश्रीवास, श्रीश्रीराम, श्रीश्रीपति, तथा श्रीश्रीनिधि—ये चारो भाई तथा इनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासी—सभी श्रीमन्महा-प्रभुके एकान्त सेवक और सेविकाएँ हैं। श्रीश्रीवास पडितकी सह-धर्मिणीका नाम है 'श्रीमालिनीदेवी'। ये स्नेहमे श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी 'जननी' तथा सेवामे उनकी 'दासी' होनेका अभिमान रखनेवाली है। श्रीश्रीवासके ही किसी भाईकी कन्या श्रीनारायणी देवी श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी जननी हैं। श्रीश्रीवास पडित श्रीहट्ट मे आविर्भूत हुए। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके पहले ही गगावास करनेके लिए श्रीनवद्वीपमे श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरसे थोडी दूरपर उन्होने

अपना निवासस्थान बनाया । श्रीगौरसुन्दरकी नवद्वीप-लीलातक श्रीवासने वही निवास किया था। उनकी सन्यास-लीलाके बाद 'कुमारहट्ट'मे जाकर वास करने लगे। उस समयके वहिर्मुख पाखडी लोगोके अजस्र वाक्यबाण तथा पाखडी हिन्दुओके नाना प्रकारके अत्याचारोको प्रसन्नतापूर्वक सहन करके उन्होने श्रीगौरहरिकी सेवानिष्ठाके आदर्शका प्रदर्शन किया था। श्रीश्रीवास पडितके घर प्रतिरात्रि सपार्षद श्रीगौरहरिका सकीर्तन-विलास हुआ था। उन्हीके घर श्रीनित्यानन्दने श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान किया था। श्रीश्रीवासकी चार-वर्षकी भतीजी श्रीनारायणीदेवीने श्रीगौरहरिके भोजनावशेषको पाकर कृष्णप्रेममे क्रन्दन किया था। श्रीश्रीवासकी दासी 'दु खी'की एकनिष्ठ सेवापरायणता को देखकर श्रीगौरहरिने उसका नाम 'सुखी' रख दिया था । श्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभुने महामहाप्रकाश-लीला प्रकट की थी । श्रीवासका वस्त्र सीनेवाला यवन दर्जीतक भी श्रीगौरहरिकी कृपा प्राप्त कर प्रेमी महाभागवत हो गया था। श्रीश्रीवास वैष्णव-गृहस्थके आदर्श-स्वरूप है, श्रीवासके घरके दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली तकमे भी भक्ति थी, पर श्रीवासकी सासके हृदयमे सरलताका अभाव होनेके कारण वे श्रीगौरहरिकी प्रीतिको प्राप्त न कर सकी। श्रीश्रीवास श्रीगौरहरिकी सन्तुष्टि के लिये इतनी दूरतक अभिनिविष्ट थे कि पुत्रशोक भी उनको स्पर्श नही कर सका । श्रीगौरहरिकी कृपासे श्रीश्रीवासका मृत बालकपुत्र तत्वज्ञान प्राप्त कर धन्य हो गया था तथा तत्वोपदेशके द्वारा परिवारके लोगोका शोक दूर कर सका था ।

भगवानेर भक्त यत श्रीवास प्रधान ।
ताँहार चरणपद्मे सहस्र प्रणाम ।।

—चै० च० आ० १।३८

[भगवान्‌के जितने भक्त है, उनमे श्रीवास प्रधान है, उनके चरण-कमलोमे सहस्र प्रणाम है ।]

श्रीदामोदर-स्वरूप

श्रीगौरसुन्दरके अत्यन्त मर्मी तथा उनके द्वितीय स्वरूप श्रीदामोदर स्वरूप या 'श्रीस्वरूप-दामोदर' गोस्वामिपाद है। गृहावस्थानके समय इनका नाम था 'श्रीपुरुषोत्तम आचार्य'। वे श्रीगौरहरिकी नवद्वीप-लीलाके समय उनके ही श्रीचरणोके समीप रहते थे। श्रीगौरहरिकी सन्यास-लीलाके बाद श्रीपुरुषोत्तम विरहोन्मत्त हो गये, और श्रीकाशी-धाममे 'श्रीचैतन्यानन्द' नामक सन्यासी-गुरुसे केवल शिखासूत्र-त्यागरूप सन्यास-ग्रहण किया, पर योगपट्ट, सन्यास-नाम या दण्डादि ग्रहण नही किया। अतएव उनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-सूचक 'स्वरूप' नाम बना ही रहा। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूपकी सगीत-विद्यामे अद्भुत दक्षता देख-कर पहले ही उनका 'दामोदर' नाम रक्खा था। दोनो नाम मिलकर उनका 'दामोदर-स्वरूप' नाम हो गया। सुना जाता है कि इन्होने 'सगीत-दामोदर' नामक सगीत-शास्त्रके एक मौलिक ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीस्वरूप-दामोदर गौडीयलोगोके अधिनायकके रूपमे है। श्रीमन्महाप्रभु की सेवाके लिये श्रीस्वरूप-दामोदरने श्रीनीलाचलमे जाकर वास किया। श्रीमन्महाप्रभु गीत, श्लोक, ग्रन्थ, काव्य आदि जो कुछ सुनते थे, उसकी पहले श्रीस्वरूप-दामोदर परीक्षा कर देते थे। सिद्धान्तविरुद्ध या रसाभास-दोषयुक्त कोई भी गीत या काव्य महाप्रभु नही सुन सकते थे। श्री स्वरूप-दामोदरके करचामे श्रीमन्महाप्रभुकी गूढ अन्त्यलीला तथा पचतत्वात्मक श्रीगौरहरिका तत्व सक्षेपमे गुम्फित था। उसे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादने कठस्थ कर रक्खा था। श्रीरघुनाथके कठसे उसे सुनकर श्रीकविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'मे विवृत किया है। श्रीमन्महाप्रभु अपनी अन्त्यलीलामे श्रीस्वरूप-दामोदर और श्री-रायरामानन्दके साथ श्रीचडीदास और श्रीविद्यापतिकी 'पदावली', श्रीबिल्वमगलका 'श्रीकृष्णकर्णामृत', श्रीजयदेवका 'श्रीगीतगोविन्द' और श्रीरामानन्द रायका 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक' आदि अप्राकृत श्रीकृष्ण-

तोषणपरक काव्योका नित्य आस्वादन करते थे। कहना नही होगा कि श्रीगौरहरिके द्वारा आविष्कृत उन्नत-उज्ज्वल भक्तिरस-सिद्धान्त, जो गौडीय-सम्प्रदायमे प्रचारित हुआ, उसके मूल पुरुष श्रीस्वरूप-दामोदर ही है। श्रीकविराज गोस्वामिप्रभुने लिखा है,—

अत्यन्त निगूढ़ एइ रसेर सिद्धांत।
स्वरूप-गोसाञि-मात्र जानेन एकान्त॥
येवा केह अन्य जाने, सेहो ताँहा हैते।
चैतन्य गोसाञिर तेँह अत्यन्त मर्म याते॥

—चै० च० आ० ४।१६०-१६१

[इस रसका सिद्धान्त अत्यन्त गूढ है। इसे पूरा पूरा केवल श्रीस्वरूप गोस्वामी ही जानते है। और **दूसरा जो कोई जानता है, तो उसे भी उनके ही द्वारा प्राप्त हुआ है**, क्योकि श्रीचैतन्य महाप्रभुके अत्यन्त अतरगी रहे।]

श्रीरामानन्द राय

'पुरी'से प्राय छ कोस पश्चिम आलालनाथ'से थोडी दूर पर 'बेण्टपुर' ग्राममे श्रीभवानन्द रायके ज्येष्ठपुत्र श्रीरामानन्द राय आविर्भूत हुए। श्रीभवानन्दके पाँच पुत्र थे—श्रीरामानन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीकलानिधि, श्रीसुधानिधि और श्रीवाणीनाथ। श्रीरामानन्द उडीसाके स्वाधीन राजा गजपति श्रीप्रतापरुद्रके अधीन पूर्व और पश्चिम गोदावरीके शासन-कर्त्ताके पदपर अधिष्ठित थे। वे एक ही साथ श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, पडित, कवि और महाभागवतोत्तम थे। श्रीनवद्वीपके श्रीमहेश्वर विशारदके पुत्र वेदान्ती पडित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीनवद्वीपवासी श्रीपुरुषोत्तम आचार्यके साथ श्रीरामानन्दका विशेष सौहार्द्य था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी प्रार्थनासे श्रीचैतन्यदेवने गोदावरी तीरपर 'गोष्पदतीर्थ' मे (वर्तमान 'कभुर'मे) श्रीराय रामानन्दके साथ प्रथम मिलकर साध्य-साधन-तत्वके विषयमे चर्चा की थी। श्रीरामानन्दने श्रीनीलाचलमे

श्रीमन्महाप्रभुके साथ नित्य रहने और श्रीकृष्ण-कथालाप तथा रसास्वादन मे कालक्षेप करनेके उद्देश्यसे राजकार्यका परित्याग कर दिया था। उनका विषयीवत् व्यवहार देखकर तथा उनकी अतुलनीय अप्राकृत-भजनलीलाका मर्म न समझ सकनेके कारण श्रीहट्टनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने कुछ सन्देह प्रकट किया, इसपर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमिश्रको श्रीरायरामानन्दका महत्व बतलाकर उन्हीके द्वारा ही श्रीहरिकथा सुननेका आदेश दिया। श्रीमिश्र श्रीरायके मुखसे श्रीकृष्णकथा सुनकर समझ सके कि, "मनुष्य नहे राय, कृष्णभक्तिरसमय।" (चै०च० अ० ५।७१) अर्थात् राय मनुष्य नही है, वे कृष्णभक्ति-रसमय है। श्रीमन्महाप्रभु प्रतिरात्रिको श्रीराय-रामानन्द और श्रीस्वरूप-दामोदरके साथ कृष्णप्रेमरसका आस्वादन करते थे।

"रामानन्देर कृष्णकथा, स्वरूपेर गान।
विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण॥"

—चै०च० अ० ६।६

[रामानन्दकी कृष्णकथा और स्वरूपके गानने ही विरह-वेदनामे प्रभुके प्राणोको बचा रक्खा था।]

श्रीपुरुषोत्तममे श्रीगुण्डिचामदिर और जगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरके प्राय बीचमे 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ' नामक एक उद्यानमे श्रीरायरामानन्द रहा करते थे। वही श्रीरायरामानन्द कृत 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक' अभिनीत होता था। गभीरामे जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीविल्वमगलके 'श्रीकृष्ण-कर्णामृत' तथा श्रीविद्यापति और चडीदासकी 'पदावली'का नित्य आस्वादन करते थे, उसी प्रकार श्रीरामानन्द रायके 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक'का भी प्रतिदिन आस्वादन करते थे। श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक या श्रीरामानन्द-सगीत-नाटकके अतिरिक्त श्रीरामानन्दका 'क्षुद्रगीत-प्रबन्ध', श्रीरूपगोस्वामिपादके द्वारा सगृहीत 'श्रीपद्यावली'मे उद्धृत कुछ श्लोक तथा 'श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य' और

'श्रीचैतन्यचरितामृत'मे उद्धृत व्रजभाषामे रचित एक गान देखनेमे आता है।

श्रीसनातन गोस्वामिपाद

श्रीचैतन्यदेवके मनोवाञ्छा-परिपूरक षड्गोस्वामियोमे सबसे ज्येष्ठ श्रीसनातन गोस्वामिप्रभुपाद कर्णाटक-नरेश 'सर्वज्ञ' नामक भरद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मणके वशमे श्रीकुमारदेवके पुत्ररूपमे आविर्भूत हुए थे। श्रीसनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूप गौड-नरेश हुसेनशाहकी सभामे क्रमश 'साकर-मल्लिक' और 'दबीर-खास' उपाधि प्राप्त कर मन्त्रित्वके पद तथा उच्च राज्यकार्यपर अधिष्ठित थे। गौडके 'राम-केलि' ग्राममे श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर श्रीश्रीरूप-सनातन विषयोका परित्याग करनेके लिये उत्कठित हो उठे। रामकेलिमे ही श्रीमन्महाप्रभुने उन दोनो भाइयोके 'साकर-मल्लिक' और 'दबीर-खास' नाम छुडाकर 'श्रीसनातन' और 'श्रीरूप' नाम रक्खे। श्रीसनातन अस्वस्थताका बहाना करके रामकेलिमे नित्य अपने घर पडितोके साथ श्रीमद्भागवतकी चर्चा करते थे। इसी समय अकस्मात् एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और उनको इस अवस्थामे देखा तथा यह जानकर कि श्रीसनातनकी अब राजकार्य करनेकी इच्छा नही है, उनको कैदखानेमे डाल दिया। श्रीरूप पहले ही रामकेलिसे चले गये थे। उन्होने गुप्तचरके द्वारा एक पत्र श्रीसनातनको दिया। उक्त पत्रमे उन्होने बताया कि,—"श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन जा रहे है। आप जिस किसी उपायसे हो राज-बन्धनसे मुक्त होकर श्रीवृन्दावन पहुँचे।" राजबन्दी श्रीसनातनने कैदखानेके उच्च कर्मचारीको सात हजार रुपये रिश्वत दी और भेष बदलकर वे वृन्दावन जाते हुए 'काशी'मे श्रीमहाप्रभुसे मिले। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनके दरवेश-वेशका त्याग कराकर उनको वैष्णवोचित वेश धारण कराया तथा उनमे शक्ति-सचार करके 'दशाश्वमेध-घाट' पर 'साध्य-साधन-तत्त्व'की शिक्षा दी। श्रीमन्महाप्रभुने

श्रीसनातनके ऊपर चार प्रकारकी सेवाओंका भार प्रदान किया—(१) शुद्धभक्ति-सिद्धान्तकी स्थापना, (२) श्रीमथुरामण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार और लीलास्थान-निरूपण, (३) श्रीवृन्दावनमें श्रीविग्रह-प्रकटन और (४) वैष्णवस्मृति-सकलन तथा वैष्णव-सदाचारका प्रवर्तन। श्रीमन्महाप्रभुके आदेशसे श्रीसनातनने श्रीवृन्दावन जाकर अत्यन्त दैन्य, आर्ति और कृष्ण-विरहमय वैराग्यके साथ श्रीकृष्ण-भजन तथा श्रीमन्महाप्रभुकी मनोवाञ्छाका प्रचार किया। श्रीसनातन श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचलमें आकर श्रीहरिदास ठाकुरके साथ एक स्थानमें रहने लगे तथा प्रभुकी आज्ञासे पुनः श्रीवृन्दावनमें जाकर उन्होंने श्रीरूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट आदि निज-जनोंके साथ ऐकान्तिक श्रीहरिभजन-लीलाका आदर्श प्रकट किया। श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुनाके तीर 'आदित्य-टीला' नामक स्थानमें श्रीमदनगोपालदेवकी सेवा प्रकाशित की। श्रीसनातनके रचे हुए ग्रन्थोंमें (१) 'श्रीवृहद्भागवतामृत' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (२) 'श्रीहरिभक्तिविलास' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (३) 'श्रीकृष्णलीलास्तव' या 'श्रीदशमचरित' तथा (४) श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी टीका 'श्रीवृहद्वैष्णवतोषणी' विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीरूपगोस्वामिपाद

गौडके 'रामकेलि' ग्राममें 'दबीर-खास' (श्रीरूप) श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर विषयत्यागके लिये उपाय ढूँढ रहे थे। वे 'रामकेलि'से 'फतेहाबाद'में अपने घर नावमें भरकर बहुत-सा धन लाये और उस धनका आधा भाग ब्राह्मणोंकी सेवामें, एक चतुर्थांश कुटुम्बके भरण-पोषणार्थ और अवशिष्ट चतुर्थांश भावी विपत्तिसे बचनेके लिये उन्होंने विश्वस्त व्यक्तियोंके पास धरोहर रख दिया। छोटे भाई श्रीअनुपमके साथ श्रीरूप 'प्रयाग'में श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें उपस्थित हुए। वहाँ उनका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय हुआ। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपको

प्रयागके 'दशाश्वमेध-घाट'पर शक्ति-सचार करके दस दिनोतक कृष्ण-तत्त्व, कृष्णभक्तितत्त्व और रसतत्त्वकी शिक्षा दी। श्रीमन्महाप्रभुकी इन्ही सारी शिक्षाओको श्रीरूपपादने स्वरचित विभिन्न ग्रन्थोमे गुम्फित किया और श्रीवृन्दावन जाकर भजन-लीला प्रकट की। श्रीअनुपमकी गगाप्राप्तिके बाद श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचल गये। श्रीमन्महाप्रभुके उच्चारित "य कौमारहर"श्लोकमे प्रभुके हृदगत् भावको समझकर श्रीरूपने तदनुरूप एक श्लोक—"प्रिय सोऽय कृष्ण" इत्यादि की रचना की। श्रीरूपकी भजनकुटीके छप्परमे खोसे हुए तालपत्रपर लिखित इस श्लोकको देखकर और यह जानकर कि श्रीरूपकी चित्तवृत्ति उनके साथ एक-सी मिलती है श्रीमन्महाप्रभु बहुत ही उल्लसित हुए। श्रीनीलाचलमे श्रीरूपके 'श्रीविदग्धमाधव'-नाटक'की रचनाके समय श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके मोतियोकी पक्तिके समान हस्ताक्षर तथा "तुण्डे ताण्डविनी रतिम्" श्लोकको देख और सुनकर शतमुखसे उनकी प्रशसा की। 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक'के रचयिता श्रीरायरामानन्दको लेकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके 'श्रीविदग्ध-माधवनाटक' और 'श्रीललितमाधव-नाटक'के विभिन्न अग-प्रत्यगका विचार और रसास्वादन किया था। श्रीरूपने श्रीवृन्दावनमे श्रीकेशीतीर्थके समीप 'श्रीगोविन्ददेव'के श्रीविग्रहको प्रकट किया। श्रीरूपके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रचलित है —(१) 'श्रीहसदूत', (२) 'श्रीउद्धवसन्देश', (३) 'श्रीकृष्णजन्मतिथि-विधि', (४-५) 'श्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका' (वृहत् और लघु), (६) 'श्रीस्तवमाला', (७) 'श्रीविदग्ध-माधव-नाटक', (८) 'श्रीललितमाधव-नाटक', (९) 'श्रीदानकेलि-कौमुदी' (भाणिका), (१०) 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु', (११) 'श्रीउज्ज्वल-नीलमणि', (१२) 'प्रयुक्ताख्यात-चन्द्रिका,' (१३) 'श्रीमथुरा-माहात्म्य', (१४) 'श्रीपद्यावली', (१५) 'श्रीनाटक-चन्द्रिका', (१६) 'श्रीसक्षेप (लघु) भागवतामृत', (१७) 'सामान्य-विरुदावली लक्षण', (१८) 'श्रीउपदेशामृत'।

श्रीरघुनाथ दासगोस्वामिपाद

हुगली जिलेके 'सप्तग्राम'के अन्तर्गत 'कृष्णपुर' ग्राममे कायस्थ कुलोत्पन्न सम्भ्रान्त और धनाढ्य जमींदार 'मजुमदार' उपाधिधारी हिरण्य और गोवर्द्धन दास नामक दो भाई रहते थे। श्रीगोवर्द्धन दासके ही पुत्र थे—श्रीरघुनाथ दास। हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुरके कृपापात्र थे। श्रीहरिदास ठाकुर जिस समय श्री-बलराम आचार्यके घर रहते थे, उन्ही दिनो बालक श्रीरघुनाथ श्रीबल-रामके घर अध्ययनार्थ आते थे और प्रतिदिन उनको श्रीहरिदास ठाकुरके सग और कृपाको प्राप्त करनेका सुयोग मिला था। हिरण्य-गोवर्द्धन के गुरु-पुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके अन्तरग शिष्य और 'काञ्चनपल्ली'के निवासी श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुरके प्रियपात्र थे। श्रीयदुनन्दन आचार्यके दीक्षित शिष्य ही श्रीरघुनाथ दास थे। श्रीरघु-नाथने यौवनकालमे ही इन्द्रके समान ऐश्वर्य और अप्सराके समान रूपवती भार्याके परित्यागकी लीला प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्दप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त हो 'पुरी'मे जाकर श्रीमन्महाप्रभुके द्वितीयस्वरूप श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपा प्राप्तकर 'स्वरूपके रघु' नामसे परिचित हुए तथा श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपासे ही श्रीगौरसुन्दरकी अन्तरग-सेवाका अधिकार प्राप्त किया। श्रीगौरसुन्दरने रघुनाथको श्रीगोवर्द्धनशिला-रूपी श्रीगिरिधारी और गुजामाला-रूपिणी श्रीवार्षभानवी (श्रीराधाजी) की सेवाका अधिकार प्रदान किया। वे श्रीगौर-विरहमे व्याकुल होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वतके शिखरसे गिरकर देह त्याग करनेका सकल्प करके वृन्दावन गये, तथा वहाँ उन्होने श्रीश्रीरूप-सनातनके कृपामृतसे अभि-षिक्त होकर उनके तृतीय भ्राताके समान अतिमर्त्य सुतीव्र, विप्रलम्भ-वैराग्यके साथ 'श्रीराधाकुड'पर श्रीश्रीराधा-गोविन्दके भजनमे दत्तचित्त हो गए। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपादने श्रीरघुनाथके व्रजवास-कालीन दैनिक कृत्यका इस प्रकार वर्णन किया है,—

अन्न-जल त्याग कैल, अन्य कथन ।
पल दुइ तिन माठा करेन भक्षण ।।

सहस्र दण्डवत् करें', लय लक्षनाम ।
दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम ।।

रात्रि-दिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन ।
प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन ।।

तिन-सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान ।
व्रजवासी वैष्णवेरे आलिंगन दान ।।

सार्द्धसप्त-प्रहर करें' भक्तिर साधने ।
चारिदड निद्रा, सेह नहे कोन दिने ।।

—चै० च० आ० १०।९८-१०२

[श्रीरघुनाथदासने अन्न-जलका त्याग कर दिया और दूसरी बाते छोड दी , प्रतिदिन तीन-चार छटाक मट्ठा पीते थे । सहस्रवार भगवान्को दडवत् प्रणाम करते थे और एक लक्ष नाम लेते थ । दो सहस्र वैष्णवोके उद्देश्य से नित्य प्रणाम करते थे। रात-दिन श्रीराधाकृष्णकी मानसिक-सेवा करते और एक प्रहर महाप्रभुका चरित्र-कथन करते थे। श्रीराधाकुड मे नित्य प्रतिदिन त्रिकाल स्नान करते थे तथा व्रजवासी वैष्णवोको आलिगन करते थे। साढे सात पहर भक्तिकी साधना करते थे और केवल चार दण्ड (आधा पहर) नीद लेत थे, वह भी किसी-किसी दिन नही ।]

श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध है—(१) 'श्रीस्तवावली', (२) 'श्रीदानचरित' (दानकेलि-चिन्तामणि), (३) 'श्रीमुक्ताचरित' । इनके सिवा श्रीदासगोस्वामी प्रभुके नामसे आरोपित कितने ही बगला पद श्रीवैष्णवदास-सकलित 'पदकल्प-तरु' नामक पदसग्रह-ग्रन्थमे देखे जाते है ।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामिपाद

श्रीमन्महाप्रभुने दाक्षिणात्य-भ्रमण करते समय 'श्रीरंगक्षेत्र' मे श्रीवेंकट-भट्ट नामक एक श्रीवैष्णवके घर चातुर्मास-व्रतके चार महीने अवस्थान किया। श्रीनरहरि चक्रवर्ती-ठाकुर-कृत 'श्रीभक्तिरत्नाकर'के मतानुसार इन वेंकट-भट्टके ही पुत्र श्रीगोपाल भट्ट थे। बालक श्रीगोपाल भट्ट उसी समय श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाका सौभाग्य प्राप्तकर कृतार्थ हुए थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरंगक्षेत्र त्याग करनेके पूर्व श्रीवेंकट भट्टसे कहा था कि,—"तुम इसको सुपंडित बनाना तथा विवाह-बन्धन मे मत बाँधना।" श्रीगोपाल भट्ट कुछ काल-तक माता-पिताकी सेवा करके श्रीमहाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीवृन्दावन जाकर श्रीरूप-सनातनके साथ रहने लगे। श्रीगोपाल भट्टने 'गण्डकी' नदीसे द्वादश शालग्राम संग्रह करके अपने भजनकी कुटियामे स्थापित किया था। मथुराके कुछ धनी सेठोने बिना माँगे ही बहुमूल्य वस्त्राभूषण अलंकार आदि श्रीगोपाल भट्टको प्रदान किया। श्रीकृष्णके श्रीअंगोके लिये उपयोगी उन सारे वस्त्राभूषणोको किस प्रकार श्रीशालग्रामको पहनाया जाय, इसी चिन्तामे श्रीगोपाल भट्टकी सारी रात बीत गयी। ऊषाकालमे वे देखते क्या हैं कि, द्वादश शालग्राममे से एक शालग्राम त्रिभंगी-द्विभुज, मुरलीधर मधुर व्रजकिशोर श्याम-रूपमे प्रकट होकर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीगोपाल भट्टने श्रीरूप-सनातन आदिके साथ १५४२ ई० की वैशाखी पूर्णिमाको उस 'श्रीराधारमण' विग्रहका अभिषेक-महामहोत्सव सम्पन्न किया। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं,—(१) 'श्रीहरिभक्ति-विलास' (श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिद्वारा समाहृत तथा श्रीसनातन गोस्वामिपादके द्वारा गुम्फित और 'दिग्दर्शिनी' टीका सहित विरचित), (२) षट्-सन्दर्भकी कारिका (श्रीजीव गोस्वामिपादने अपने षट्सन्दर्भके प्रारम्भमे इसका उल्लेख किया है)। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रीकृष्णकर्णामृत'की 'श्रीकृष्णवल्लभा'टीका भी श्रीगोपाल-

भट्ट गोस्वामिपादकी रची हुई है। वस्तुत श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद अपनी 'सारग-रगदा' नामक 'श्रीकृष्णकर्णामृत'की टीकामे उपर्युक्त टीकाका कोई उल्लेख नही करते है तथा उस टीकामे श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवका नमस्कार-सूचक कोई श्लोक न रहनेके कारण इस विषयमे सन्देहके लिये अवकाश रह जाता है। 'सत्क्रियासारदीपिका' तथा 'सस्कारदीपिका' ग्रन्थ भी षड्गोस्वामीमे अन्यतम श्रीगोपालभट्टगोस्वामि-पादके द्वारा रचे हुए नही है। ये किसी अन्य गोपाल भट्टके रचित है।*

श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामिपाद

काशीवासी श्रीतपन मिश्रके घर जब श्रीमन्महाप्रभुने कृपापूर्वक काशीमे दो महीनेके लिये भिक्षा लेना स्वीकार किया था, तब श्रीतपन मिश्रके पुत्र बालक श्रीरघुनाथको श्रीमन्महाप्रभुके उच्छिष्ट-मार्जन और उनकी पाद-सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बडे होनेपर श्रीरघुनाथने नीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुके समीप जाकर आठ मास अवस्थान किया था। वहाँ अपने हाथसे भोजन बनाकर श्रीमन्महा-प्रभुको बीच-बीचमे वे भिक्षा कराते थे। श्रीरघुनाथ भट्ट भोजन बनानेकी सेवामे विशेष निपुण थे। श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको जब तक बृद्ध माता-पिता जीवित रहे तब तक उनकी सेवा करने और विवाह-बन्धनमे न पडनेका उपदेश देकर काशी भेज दिया। माता-पिताकी काशी-प्राप्तिके बाद श्रीरघुनाथ पुन श्रीनीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्मोमे उपस्थित हुए और इस बार भी आठ महीने पुरीमे रहनेके बाद प्रभुकी आज्ञासे श्रीरघुनाथ श्रीवृन्दावनमे श्रीरूप-सनातनके पास जाकर रहे और श्रीमद्भागवत पाठ तथा श्रीकृष्णनामका भजन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुने कृपा करके श्रीरघुनाथको श्रीजगन्नाथ की 'चौदह हाथ तुलसीकी माला' और 'छुट्टा पान-बीडा' प्रदान किया था।

---

* विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'षड्गोस्वामी' नामक बृहद बगला ग्रन्थमे देखे।

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीवृन्दावनमे श्रीरूप-सनातनके आश्रयमे रहकर अपने स्वभावसिद्ध सुकठसे विभिन्न राग-रागिनियोमे श्रीमद्भागवतके श्लोकोको श्रीरूपगोस्वामिपादकी सभामे कीर्तन करते थे। श्रीरघुनाथने अपने किसी धनाढ्य शिष्यके द्वारा श्रीगोविन्दके श्रीमन्दिर और श्रीविग्रह के भूषणादिका निर्माण कराया था। श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके रचित किसी ग्रन्थका नाम नही मिलता।

श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद

श्रीसनातन और श्रीरूपके कनिष्ठ भ्राता श्रीअनुपम (नामान्तर श्रीवल्लभ) के एकलौते पुत्र श्रीजीवगोस्वामिपाद 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'मे आविर्भूत हुए। बाल्यकालसे ही श्रीजीवका श्रीमद्भागवतमे विशेष अनुराग था। बहुत थोडे ही समयमे उन्होने सारे शास्त्रोमे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया श्रीश्रीरूप सनातनकी व्रज-वासलीला और श्रीगौरहरिकी अन्तर्धान लीलाके बाद श्रीजीवका हृदय श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके लिए अत्यन्त आर्त हो उठा। स्वप्नमे श्रीमहाप्रभुके दर्शन पाकर श्रीजीव 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'से 'फतेहाबाद' होते हुए 'श्रीनवद्वीप'मे पहुँचे और श्रीनित्यानन्दका अनुगमन करते हुए उन्होने श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा की। इसके बाद श्रीजीवने काशीमे श्रीसार्वभौम-भट्टाचार्यके शिष्य श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके पास अनेको शास्त्रोका अध्ययन किया। श्रीजीव श्रीकाशीधामसे श्रीवृन्दावन गये और वहाँ श्रीश्रीरूप-सनातनके पास श्रीमद्भागवत और भक्तिशास्त्रका अध्ययन किया। तथा श्रीव्रजमडलमे ही भजन करते रहे। श्रीश्रीसनातनने भक्तिसिद्धान्तमे श्रीजीवकी विशेष पारदर्शिता देखकर स्वरचित 'श्रीवृहत् वैष्णवतोषणी'के सशोधनका भार उनको दिया। श्रीश्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीश्रीराधादामोदर श्रीविग्रहको प्रकटकर उनकी सेवा श्रीजीवको प्रदान की। श्रीश्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामिपादगणकी अन्तर्धान-लीलाके बाद श्रीजीवपाद गौड, व्रज और क्षेत्रमडलके गौडीय-वैष्णव-

सम्प्रदायके सार्वभौम आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित हुए । श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ-माला वैष्णव-समाजमे सुप्रसिद्ध हैं —(१) 'श्रीहरिनामामृत-व्याकरण', (२) 'श्रीगोपाल-विरुदावली', (३) 'श्रीभक्तिरसामृतशेष', (४) 'श्रीमाधव-महोत्सव', (५) 'श्रीब्रह्मसहिता-पचमाध्याय-टीका', (६) 'श्रीदुर्गमसगमनी', (७) 'श्रीलोचन रोचनी' (श्रीउज्ज्वलनीलमणि-टीका) (८) 'श्रीगोपालचम्पू' (पूर्व चम्पू और उत्तर चम्पू) (९) 'श्रीसकल्पकल्पद्रुम', भावार्थसूचक चम्पू (?), (१०-१५) 'श्रीभागवत-सन्दर्भ' नामान्तर 'षट्सन्दर्भ',—'श्रीतत्व-सन्दर्भ', 'श्रीभगवत्सन्दर्भ', 'श्रीपरमात्म-सन्दर्भ', 'श्रीकृष्ण-सन्दर्भ', 'श्रीभक्ति-सन्दर्भ', और 'श्रीप्रीति-सन्दर्भ', (१६) 'श्रीक्रम-सन्दर्भ' (समस्त श्रीभागवतकी टीका), (१७) 'सर्वसवादिनी' (षट्-सन्दर्भकी अनुव्याख्या), (१८) 'श्रीसुबोधिनी' (श्रीगोपालतापनी-टीका), (१९) पद्मपुराणस्थ 'श्रीयोगसारस्त्रोत्र-टीका', (२०) 'अग्निपुराणस्थ-'गायत्री-व्याख्याविवृति', (२१) 'श्रीराधाकृष्णार्चन-दीपिका', (२२) 'धातुसग्रह' (२३) 'सूत्र-मालिका' इत्यादि ।

परिशिष्ट

श्रीशिक्षाष्टकम्

[श्रीकृष्णचैतन्यदेवका स्व-रचित और श्रीमुखारविन्दसे निकला हुआ श्रीशिक्षाष्टक]

१। चेतोदर्पणमार्जन भवमहादावाग्निनिर्वापण
श्रेय कैरव-चन्द्रिकावितरण विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धन प्रतिपद पूर्णामितास्त्रादनम्
सर्वात्मस्नपन पर विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम् ।।

—श्रीपद्यावली, २२

चेतोदर्पणमार्जन (चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला), भव-महादावाग्निनिर्वापण (ससाररूपी महादावानलको बुझा देनेवाला), श्रेय कैरवचन्द्रिकावितरण (परम-मगलरूप कुमुदको विकसित करनेवाली ज्योत्स्नाको फैलानेवाला), विद्यावधूजीवन (पराविद्यारूप बधूका प्राण-स्वरूप), आनन्दाम्बुधिवर्धन (आनन्दसमुद्रको बढानेवाला), प्रतिपद (पद-पदपर), पूर्णामृतास्वादन (पूर्णामृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला) सर्वात्मस्नपन (निखिल जीवात्माकी निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन करनेवाला), पर (अद्वितीय), श्रीकृष्णसकीर्तन (श्रीकृष्ण-सकीर्तन), विजयते (विशेषरूपसे विजयी हो) ।

चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला, संसाररूपी महादावानलको बुझा देनेवाला, परम मंगलरूप कुमुद-विकाशक ज्योत्स्नाको फैलानेवाला, पराविद्यारूपी बधूके प्राणस्वरूप, आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाला पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला, निखिल जीवात्माकी निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन करनेवाला अद्वितीय श्रीकृष्ण-संकीर्तन विशेष रूपसे विजयको प्राप्त हो ।

२ । नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमित स्मरणे न काल ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुराग ।।

—श्रीपद्यावली, ३१

भगवन् (हे भगवन्!), [भवता–आपके द्वारा] नाम्ना (नामसमूह के), बहुधा (अनेक प्रकार), अकारि (प्रकट हुए हैं), तत्र (उस श्रीहरि-नाममे), निजसर्वशक्ति (आपकी समस्त शक्तियाँ), अर्पिता (अर्पित हुई हैं), स्मरणे (श्रीनामस्मरणमे), काल (कोई कालविशेष), न नियमित (निरूपित नही किया गया है)। तब (आपकी), एतादृशी (इस प्रकारकी), कृपा (दया है), मम अपि (मेरा भी) ईदृश (ऐसा), दुर्दैवम् (अपराध है कि), इह (इस प्रकारके हरिनाममे), अनुराग (प्रीति), न अजनि (नही उत्पन्न हुई) ।

हे भगवान्! आपके नाम-समूह (गोविन्द, गोपाल, वनमाली इत्यादि) अनेक रूपमें प्रकट हुए है। उस हरिनाममें आपकी समस्त शक्ति अर्पित हुई है, श्रीनामस्मरणमें कोई कालाकाल विचार नही है। आपकी तो इस प्रकारकी कृपा है, तथापि मेरा भी इस प्रकारका अपराध है कि ऐसे श्रीहरि नाममें अनुराग नही हुआ।

३ । तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ।।

—श्रीपद्यावली, ३२

तृणात् अपि (तृणकी अपेक्षा भी), सुनीचेन (अतिशय नीच होकर), तरो. अपि (वृक्षकी अपेक्षा भी), सहिष्णुना (सहनशील होकर), अमानिना (स्वय सम्मानकी आकाक्षा न करके), मानदेन (दूसरोको मान देते हुए), सदा (निरन्तर), हरि (श्रीहरि), कीर्तनीय (हरि-नामका कीर्तन करना कर्तव्य है।)

तृणकी अपेक्षा भी अतिशय नीच होकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर, स्वयं अमानी होकर और दूसरेको मान प्रदान करके निरन्तर श्रीहरिनाम या श्रीहरि-कीर्तन करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है।

४। न धन न जन न सुन्दरी
कविता वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

—श्रीपद्यावली, ९४

जगदीश! (हे जगन्नाथ!) [अह—मैं] धन (धन) न कामये (नही चाहता), जन न [कामये], (जन नही चाहता), सुन्दरी (कामिनी) वा कविता (अथवा काव्य और पाडित्य) न [कामये] (नही चाहता), ईश्वरे त्वयि (तुम परमेश्वरमे), जन्मनि-जन्मनि (जन्म-जन्ममे), मम (मेरी), अहैतुकी (अकिचना), भक्ति (भक्ति) भवतात् (होवे)।

हे जगन्नाथ! मै धन, जन, कामिनी अथवा काव्य और पाण्डित्य की कामना नहीं करता। परमेश्वर-स्वरूप तुममें जन्म-जन्मान्तरमें मेरी अकिंचना भक्ति हो।

५। अयि नन्दतनुज! किड्कर
पतित मा विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपकज-
स्थितधूलीसदृश विचिन्तय ॥

—श्रीपद्यावली, ७१

अयि नन्दतनुज! (हे नन्दनन्दन!), विषमे (भयकर, दुष्पार), भवाम्बुधौ (ससार-समुद्रमे), पतित (पडे हुए), किंकर मा (मुझ किकरको), कृपया (कृपापूर्वक), तव (अपने), पादपकजस्थित-धूलीसदृश (चरण-कमलमे स्थित धूलीके समान), विचिन्तय (समझे)।

हे नन्दनन्दन! मैं इस घोर दुष्पार संसार-सागरमें पड़ा हुआ किंकर हूँ। मुझको कृपा पूर्वक अपने पाद-पद्मोकी धूलके समान समझिये।

६। नयन गलदश्रुधारया
वदन गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचित वपु कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति ।।

—श्रीपद्यावली, ९३

[हे गोपीजनवल्लभ!] कदा (कब), तव (आपके), नामग्रहणे (नाम-ग्रहण करते समय), नयन (मेरे दोनो नेत्र), गलदश्रुधारया [युक्त] (दर-दर बहनेवाली आसुओंकी धारासे युक्त), वदन (वदन), गद्गदरुद्धया (गद्गद्भावसे रुकी हुई), गिरा [युक्त] (वाणीसे युक्त), [एव] वपु (शरीर), पुलकै (पुलकोसे), निचित (व्याप्त), भविष्यति (होगा) ?

हे गोपीजनवल्लभ! कब आपके श्रीनामग्रहणके समय मेरे दोनों नेत्र अश्रुधारासे प्रवाहित, मेरा वदन गद्गद रुद्धवाणीसे युक्त तथा मेरा शरीर पुलकायमान हो जायगा?

७। युगायित निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायित जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे।

—श्रीपद्यावली, ३२४

गोविन्दविरहेण (गोविन्दके विरहमे), मे (मेरा), निमेषेण युगायित (निमिषकाल भी युगके समान हो रहा है), चक्षुषा प्रावृषायित (आखे वर्षाधाराके समान आसू बहा रही है,), सर्वं जगत् (समस्त विश्व), शून्यायितम् (सूना लग रहा है।)

हे गोविन्द! आपके विरहमें मेरा एक निमेष युगके समान बीत रहा है, नेत्रोसे वर्षाकी धाराके समान अश्रुवर्षा हो रही है और सारा जगत् शून्य जान पड़ता है।

८ । आश्लिष्य वा पादरता पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महता करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो,
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।।

—श्रीपद्यावली, ३३७

पादरता (चरणसेवामे लगे हुए), मा (मुझको), आश्लिष्य (आलिगन करे), वा पिनष्टु (अथवा पेषण ही करे), अदर्शनात् (दर्शन न देकर), मर्महता वा (मर्माहत ही), करोतु (करे), लम्पट (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कृष्ण), यथा तथा वा विदधातु (जैसी इच्छा, वैसे ही करे), तु (तथापि), स एव (वे ही), मत्प्राणनाथ (मेरे प्राणनाथ है), अपर न (दूसरा कोई नही।)

चरणसेवामें रत मुझको आलिगन करे या पीस ही डालें, दर्शन न देकर मर्माहत ही करे, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीकृष्णकी जो इच्छा हो, वही करे, तथापि वही मेरे प्राणनाथ है, दूसरा कोई नहीं।

श्रीपद्यावली

[श्रीचैतन्यदेवके द्वारा रचे और गाए हुए श्लोक]

श्रुतमप्यौपनिषद दूरे हरिकथामृतात् ।
यन्न सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकादय ।।

—श्रीपद्यावली ३६, श्रीभक्तिसदर्भ—६६ अनुच्छेद

उपनिषद्-प्रतिपाद्य ब्रह्म श्रुतिसम्मत होनेपर भी, हरिकथामृतसे बहुत दूर स्थित है, इसीसे ब्रह्मस्वरूपकी बात लगातार सुनते रहनेपर भी चित्त द्रवित नहीं होता।

नाह विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाह वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।

किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तु पदकमलयोर्दासदासानुदास ।।

—श्रीपद्यावली, ७४

मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय राजा भी नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं। परन्तु मैं नित्य स्वतःप्रकाशमान निखिलपरमानन्दपूर्ण अमृत-समुद्र-स्वरूप श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके पदकमलोंका दास-दासानुदास हूँ।

दधिमथननिनादैस्त्यक्तनिद्र प्रभाते
निभृतपदमगार वल्लवीना प्रविष्ट ।
मुखकमलसमीरैराशु निर्वाप्य दीपान्
कवलितनवनीत पातु मा बालकृष्ण ।।

—श्रीपद्यावली, १४२

प्रातःकालमें माता यशोदाके दधि-मन्थनका शब्द सुनकर, निद्रात्याग करके व्रज-गोपियोंके घरोंमें पैरोंका शब्द न करते हुए चुपचाप प्रवेशकर तथा श्रीमुखकमलकी वायुके द्वारा शीघ्र ही दीपकोंको बुझाकर नवनीत भोजन करनेमें रत श्रीबालकृष्ण मेरी रक्षा करें।

सव्ये पाणौ नियमितरव किङ्किणीदाम धृत्वा
कुब्जीभूय प्रपदगतिभिर्मन्दमन्द विहस्य ।
अक्ष्णोर्भङ्ग्या विहसितमुखीर्वारयन् सम्मुखीना
मातुः पश्चादहरत हरिर्जातु हैयङ्गवीनम् ।।

—श्रीपद्यावली, १४३

एक बार किंकिणीध्वनिको बन्द करनेके लिये बायें हाथसे किंकिणी की डोरीको पकड़े, शरीरको कुबड़ाकर, पैरकी अंगुलियोंके बलपर चलते हुए, मृदु-मन्दहास्य-वदन श्रीकृष्णको देखकर सम्मुख खड़ी हुई गोपियाँ जब हँसने लगीं, तब श्रीहरिने अपनी नेत्र-भंगिमाके द्वारा उनके

हास्यको निवारणकर माताके पश्चात् स्थित सद्योजात नवनीतको हरण किया था।

प्रासादाग्रे निवसति पुर स्मेरवक्त्रारविन्दो
मामालोक्य स्मित सुवदनो बालगोपालमूर्त्ति ॥

—चै० भा० अ० २।४०६

जिनका वदनारविन्द विकसित है, वे बालगोपालमूर्त्ति श्रीकृष्ण मुझे देखकर मृदु मधुर हास्यसे श्रीमुखकी शोभाका समधिक विस्तार करते हुए प्रासादके ऊपरी भागमें मेरे सम्मुख आकर स्थित हो रहे हैं।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभर प्रकाशितुम् ।
वशीविलास्याननलोकन विना
विभर्मि यत् प्राणपतगकान् वृथा ।'

—चै० च० म० २।४५

श्रीकृष्णमें मेरी तनिक भी प्रेमगन्ध नहीं है, केवल अपने सौभाग्यातिशयको (मैं स्वयं जो अत्यन्त सौभाग्यशाली हूँ, इसे) प्रकट करनेके लिए ही क्रन्दन करता हूँ, क्योंकि (मुझमें जो प्रेमका लेशमात्र भी नही है, इसका प्रमाण यही है कि,) वशीविलासी श्रीकृष्णके मुखदर्शनके बिना भी मैंने व्यर्थ ही प्राणपतंगको धारण कर रक्खा है।

परिभाषा-परिचय

[वर्णानुक्रमसे कतिपय शब्दोंका अर्थ]

अद्वैतवादी—परब्रह्म स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्तिके आश्रय रूपमे एक अद्वितीय तत्त्व है। ये सारी शक्तियाँ परब्रह्मकी ही स्वाभाविकी अविच्छेद्य शक्तियाँ हैं। अतएव स्वाभाविकी शक्ति स्वीकारमे पृथक् तत्त्व स्वीकृत न होनेपर ब्रह्मके अद्वयत्वको क्षति नही पहुँचती। इस प्रकारके मतको माननेवाले 'अद्वैतवादी' है। वैष्णव आचार्योने इस अद्वैतवादको स्वीकार किया है; परतु श्रीशकराचार्यके केवलाद्वैतवाद या मायावादको अद्वैतवादके रूपमे नही माना।

इस पुस्तकके पृष्ठ २२ पर 'अद्वैतवादी' से तात्पर्य 'निर्विशेषवादी' से है। (देखिये—निर्विशेषवादी।)

अनुमिति—कार्य-दर्शनमे कारणकी तथा कारण-दर्शनमे कार्यकी अनुभूति।

अर्थवाद—प्रशसा-वाक्य मात्र।

उपाधि—न्यायकी परिभाषा विशेष।

कर्म-जड़-स्मार्त—जो लोग स्मृतिशास्त्रके कर्मकाडको सर्वप्रधान मानकर विष्णुको कर्मके अधीन मानते है, उन्हे कर्म-जड-स्मार्त कहते है।

केवलाद्वैतवाद—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद)।

कैतव—पुण्य-कामना, अर्थ-कामना, काम-कामना और मुक्ति-कामना इन चारोको श्रीमद्भागवतमे 'कैतव' या कपट कहा गया है।

चिद्विलास—चित् शक्ति प्रकटित चेतन-राज्यकी विचित्रता। इसका विकृत असम्पूर्ण प्रतिविम्ब जड-जगत्‌की विचित्रता अथवा कर्मफल भोग है।

जाति—न्यायकी परिभाषा विशेष ।

डाक-पुरुष—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक विशेष ।

तत्ववादी—श्रीमध्वाचार्यके अनुगत सम्प्रदाय ।

द्वैतवाद—ब्रह्म स्वतन्त्र तत्व एव जीव और जगत् अस्वतन्त्र अर्थात् अधीन तत्व है। इस प्रकार दोनो तत्वोको जिस मतमें स्वीकार किया गया है उसमे ब्रह्मके साथ जीव तथा जगत्का पचभेद स्वीकृत हुआ है। श्रीमध्वाचार्य इसके प्रचारक रहे ।

नवधा-भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वदन, पाद-सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन ये नौ प्रकारकी विष्णु-भक्ति ।

नामाभास—सम्बन्धज्ञान-रहित परन्तु अपराध-शून्य भावसे नामाक्षर उच्चारण ।

निर्विशेष-मुक्ति—श्रीशकराचार्यकी मतोक्त मुक्ति । इसमे सेवक-सेव्य-भाव नही रहता ।

निर्विशेषवादी—मायावादी या केवलाद्वैतवादी (देखिए—मायावाद)।

पंचमुक्ति—(१) सालोक्य—वैकुठादि लोकवास, (२) सारूप्य—श्रीविष्णुके चतुर्भुज आदि रूप-लाभ, (३) सार्ष्टि—श्रीविष्णुके न्याय कथचित् ऐश्वर्यलाभ, (४) सामीप्य—श्रीविष्णुके निकट वास करके भगवान्की सेवा, (५) सायुज्य—श्रीविष्णुके साथ एकीभूत अवस्था। (सायुज्य-मुक्ति शुद्ध भक्तगण नही चाहते, क्योकि इसमे सेवक-सेव्य भाव नही रहता।)

पंचोपासक—जो लोग विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश इन पाँच देवताओके स्वरूपको औपाधिक अर्थात् अपने-अपने कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे सामयिक रूपमे कल्पना करके अपनी

अपनी कामनाके अनुकूल उपासना करते हैं वे लोग 'पचोपासक' कहलाते हैं। ये लोग शुद्ध-भक्त नहीं हैं।

प्रछन्नावतारी—स्वय भगवान्‌के अपना रूप गोपन करके भक्तका रूप धारणकर आनेके कारण श्रीगौरहरि अर्थात् श्रीचैतन्य-महाप्रभुको प्रच्छन्नावतारी कहा गया है।

फल्गुवैराग्य—हरि-सम्बन्धी वस्तु (महाप्रसाद आदि) को जड-वस्तु-ज्ञानसे मुक्ति कामियोके द्वारा परित्यागको 'फल्गु-वैराग्य' कहा जाता है।

बद्ध-मुमुक्षु—त्रितापकी ज्वालासे जर्जरित होकर जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं।

भोगोपाल—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक भोगी-सम्प्रदाय-विशेष।

मधुमती सिद्धि-विद्या—योग शास्त्रोक्त मधुमती नामकी सिद्धि-लाभ करनेकी विद्या। [इसकी अधिष्ठात्री देवी 'मधुमती' योगिनी है। साधक तन्त्रानुयायी उनकी साधना करनेपर देवी साधकको दानव, गन्धर्व, विद्याधर यक्ष और राक्षसोकी कन्या (पचकन्या) तथा विविध उपभोग्य वस्तु दान करती हैं ऐसी धारणा है।]

मर्कट-वैराग्य—ऊपरसे सन्यासी और अतरसे भोग-कामी।

महीपाल—श्रीचैतन्यकेआविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक राजन्य-सम्प्रदाय-विशेष।

मायावाद—ब्रह्म ही एकमात्र सत्य एव अद्वितीय तत्व है। वे निर्विशेष निर्गुण तथा निष्क्रिय है। जीव और जगत् ब्रह्मका विवर्तमात्र (कारणमे मिथ्या कार्य प्रतीति) है। इस प्रकारके मतको 'मायावाद' कहा जाता है। इसके प्रचारक श्रीशकराचार्य हुए।

युक्त-वैराग्य—विषयसमूहमे अनासक्त होकर हरिसेवाके अनुकूल यथायोग्य स्वीकार ।

योगीपाल—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व वगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक योगी-सम्प्रदाय-विशेष ।

लिंगायत-सम्प्रदाय—जो शैवलोग अपने शरीरपर शिवलिग धारण करते है ।

विद्धाद्वैतवाद—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद) ।

विद्धा-भक्ति—जो शुद्ध-भक्त नही । ('शुद्ध-भक्ति' देखिये) ।

विशिष्टाद्वैतवाद—चित् और अचित् शक्ति-विशिष्ट स्वरूप ही ईश्वर है । ब्रह्म—अशी, जीव और जगत्—अश , ब्रह्म—आत्मा, जीव और जगत्—देह , ब्रह्म—आधार या आश्रय, जीव और जगत्—आधेय या आश्रित । जीव और जगत् ब्रह्मसे विशिष्ट अर्थात् धर्मत भिन्न होते हुए भी ब्रह्माश्रयी है और इस अर्थमे वह पृथक् सत्ताहीन होनेके कारण अभिन्न है । इस प्रकारके मतको 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहा जाता है । इसके प्रधान प्रचारक श्री रामानुजाचार्य हुए ।

व्याप्ति—अनुमितिका कारण । (देखिये—अनुमिति) ।

शीतला-मंगल—माता (चेचक) की अधिष्ठात्री देवीको शीतला (देवी) कहा जाता है । मगल अर्थ है—उनका गान ।

शुद्ध-भक्ति—ज्ञान, कर्म, योगादि चेष्टा रहित अनुकूल कृष्ण-सुखानु-सन्धानमयी अहैतुकी भक्ति ।

शुद्धाद्वैतवाद—इस मतमे ईश्वर एव उनके अग शुद्ध और नित्य है तथा उनके उपासकगण भी शुद्ध एव नित्य है । जीव, जगत् और माया ईश्वरको आश्रय करते है । ईश्वरको

हटाकर उनका कोई अस्तित्व नही है। इस प्रकार शुद्ध रूपमे ईश्वरका अद्वयत्व स्वीकार करना शुद्धाद्वैतवाद है। श्रीविष्णुस्वामी इस मतके प्रवर्तक हुए।

संधिनी—भगवान् अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपनी सत्ताको धारण करते हैं और दूसरोको भी धारण कराते है, उसी सर्वदेशकाल द्रव्यादिको व्याप्त करनेवाली शक्तिका नाम सधिनी है।

संवित्—भगवान् स्वय सवित् अर्थात् पूर्णज्ञान स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपने आपको जान सकते है और दूसरोको भी जता सकते है, उसी शक्तिका नाम सवित् है।

सर्वज्ञ-सूक्त—सर्वज्ञ या ज्ञानी-पुरुषकी श्रेष्ठ-उक्तियाँ। विशेष अर्थमे आचार्य श्रीविष्णुस्वामीकी सिद्धान्तवाणी।

स्मार्त-आचार—स्मृति-शास्त्र-कथित कर्मकाण्डको ही जो लोग श्रेष्ठ मानते है, उन लोगोका क्रिया-कलाप।

स्वराट्—सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान्।

ह्लादिनी—भगवान् स्वय आनन्द स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूप शक्तिके द्वारा वे स्वय आनन्दित होते है तथा दूसरोको आनन्दित करते है, उसी शक्तिका नाम ही ह्लादिनी है।
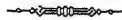
ग्रन्थ-तालिका

[इस पुस्तकके लिखते समय अन्वयभावसे ग्रन्थोपकरणके रूपमें गृहीत एव व्यतिरेकभावसे आलोचित ग्रन्थ और पुस्तकोकी एक अपूर्ण तालिका नीचे दी जाती है।]

१ अणुभाष्यम्–(श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पादित), २ अणुभाष्यम्—(श्रीवल्लभाचार्य-विरचित, काशी विद्या-विलास प्रेस, १६०७), ३ अद्वैतसिद्धि —(राजेन्द्रनाथ घोष सस्करण), ४ अष्टोत्तरशतोपनिषत्—(निर्णयसागर प्रेस), ५ आम्नायसूत्रम्—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद-कृत), ६ ईष्ट इडिया–(बेलेटिन-कृत, १७२६ ई०, Valentyn's "East India," 1726), ७ उपदेशामृतम्—(श्रीरूप-गोस्वामिपादकृत, श्रीगौडीयसम्प्रदायकर्तृक प्रकाशित), ८ एनलस् अव् भाडरकर, ओरियटल रिसर्च इस्टिटियूट ("Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute", 1933), ६ ए हिस्ट्री आफ इडियन फिलासफी, तृतीय और चतुर्थ खड, ("A History of Indian Philosophy," Vol III and IV) —डा० सुरेन्द्रनाथ दाशगुप्त-कृत, १०. कल्याण-कल्पतरु—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ११ कायस्थ-कौस्तुभ—(राजा राजेन्द्रनाथ मित्र, १२५२ बगाब्द), १२ श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), १३ श्रीकृष्णभजना-मृतम्—(श्रीनरहरि-सरकार-ठाकुर-कृत, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पा-दित), १४ श्रीश्रीकृष्णसन्दर्भ —(श्रीश्यामलाल गोस्वामी-सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी-सस्करण), १५ कलकत्ता रिव्यू, १८४६ ई० ("Calcutta Review", 1846), १६ श्रीगोविन्दभाष्यम्—(श्री-बलदेव विद्याभूषणकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), १७ गौडीय—(साप्ताहिक पत्र, प्रथम—२४ वर्ष, ग्रन्थकार-सम्पादित), १८ श्रीश्री-गौडीयवैष्णव-साहित्य—(श्रीमद्हरिदासदासकृत), १६ श्रीगौरकृष्णो-

दय —(श्रीमद्गोविन्ददेवकृत, श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीठाकुर-सम्पादित), २० श्रीश्रीगौरगणोद्देशदीपिका—(बहरमपुर-संस्करण), २१ श्रीचैतन्यदेव एड दि मध्वाचार्य सेक्ट, ("Sri Chaitanyadeva and the Madhvacharya Sect") प्रबन्ध–रायबहादुर अमरनाथ राय-लिखित, २२ चैतन्य एड श्रीमध्व ("Chaitanya and Sri Madhva") प्रबन्ध—by Rai Bahadur Amarnath Roy, B A in the 'Journal of the Assam Research Society,' April, 1935, २३ श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्—(श्रीगौडीयमठ संस्करण), २४ श्रीचैतन्य-चन्द्रोदय-नाटकम्—(निर्णयसागर प्रेस संस्करण), २५. श्रीश्रीचैतन्य-चरितामृत—(श्रीमत् ठाकुर भक्तिविनोद, श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिपाद, श्रीमाखनलाल दास भागवत-भूषण, सन् १३१५ और श्रीराधागोविन्द नाथ, तृतीय संस्करण, २६ श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतम्—श्रीमुरारिगुप्तका कडचा (टिप्पणी) अमृतबाजार संस्करण, २७. श्री-चैतन्यचरितेर उपादान—(कलकत्ता-विश्वविद्यालय), २८ श्रीचैतन्य-चरित-महाकाव्यम्—(बहरमपुर संस्करण), २९ श्रीश्रीचैतन्यभागवत—(श्रीगौडीयमठ संस्करण और अतुलकृष्ण गोस्वामी संस्करण), ३० श्रीचैतन्यमगल—(श्रीलोचनदास ठाकुर-कृत, बगवासी संस्करण और श्रीगौडीयमठ संस्करण), ३१ चैतन्य-मुवमेंट— ("Chaitanya Movement"—Kennedy, 1925), ३२ श्रीचैतन्यशिक्षामृत—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३३ श्रीश्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटकम्—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ३४ जैवधर्म—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३५ श्रीश्रीतत्वसन्दर्भ —(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ३६ तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध —(श्रीपुरुषोत्तमजीकी टीकाके साथ, श्रीवल्लभाचार्य-कृत, चौखम्भा, काशी), ३७. दशमूलशिक्षा—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३८. दि पोष्ट मध्व पिरियड, ("The Post Madhva Period") प्रबन्ध —Prof B N Krishnamurti Sharma in 'Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute', Vol XIX, Part

IV, 1939, ३९ नदिया गेजेटियर ("Nadia Gazetteer), ४०. श्रीश्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ४१ निम्बार्क-दर्शन—(डा० रमा चौधरी, कलकत्ता), ४२ श्रीनृसिंहपूर्वतापनी—(Asiatic Society of Bengal), ४३ न्याय-परिचय—(म० म० फणिभूषण तर्कवागीश), ४४ श्रीश्रीपद्यावली—(श्रीरूपगोस्वामिपाद-कृत, श्रीमत्पुरीदास-महाशय सस्करण), ४५ श्रीश्रीपरमात्म-सदर्भ—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ४६ पूर्णप्रज्ञदर्शनम्—(कुम्भघोणम् सस्करण), ४७ प्रमेयरत्नावली—(श्रीबलदेवकृत, श्रीगौडीयमठ सस्करण), ४८ प्रमेयरत्नार्णव—(श्रीबालकृष्ण-भट्ट-विरचित, चौखम्भा, काशी, जनवरी, १९०६), ४९ प्रार्थना और प्रेमभक्तिचन्द्रिका—(पोथी, राजसाही वरेन्द्र-अनुसन्धान-समिति), ५० श्रीश्रीप्रीति-सन्दर्भ.—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी सस्करण), ५१ ब्रह्मसहिता—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), ५२. श्रीभक्ति-रत्नाकर—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५३. श्रीभक्तिरत्नावली—(श्री-विष्णुपुरीकृत, बगवासी सस्करण), ५४ श्रीश्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु—(श्रीश्रीजीवपाद, श्रीमुकुन्ददास और श्रीचक्रवर्ती टीकाके साथ श्रीहरिदास दासकृत सस्करण), ५५ श्रीश्रीभक्ति-सदर्भ—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५६ श्रीश्रीभगवत्सन्दर्भ—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ५७. श्रीमद्भगवद्गीता—(श्रीश्रीधर, श्रीचक्रवर्ती, श्रीबलदेवकी टीकाके साथ, श्रीगौडीयमठ स०), ५८ श्रीमद्भागवतम्—(बगवासी सस्करण, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय-सम्पादित लघु सस्करण सूचीके साथ और बहरमपुर सस्करण), ५९ . श्रीभागवत-तात्पर्य-निर्णय—(श्रीमध्वाचार्यकृत कुम्भ-घोणम् सस्करण), ६० भावार्थ-दीपिका—(श्रीश्रीधरस्वामिकृत, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय सस्करण), ६१ भारतवर्ष—(मासिक पत्र, १३३२ बगाब्द, भाद्र और १३४७ बगाब्द, वैशाख), ६२ भाष्यप्रकाश—(श्री-पुरुषोत्तमजी विरचित, सटीक, चौखम्भा, काशी), ६३ भास्कर-भाष्यम्—(विद्या-विलास प्रेस, काशी), ६४ मध्व इन्फ्लुएस ऑन बेगाल वैष्णविज्म्,

("Madhva Influence on Bengal Vaishnavism" प्रबन्ध —by Prof B N Krishnamurti Sharma in 'Indian Culture' Vol IV No I), ६५ मध्वाचार्य एड हिज् मेसेज् टू दि वर्ल्ड —("Madhvacharya and His Message to the world" by M R Gopalachary), ६६ श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा—(ठाकुर श्री-भक्तिविनोद-विरचित), ६७ माधुर्य-कादम्बिनी—(श्रीविश्वनाथ-कृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ६८ मायावाद—(म० म० प्रमथ-नाथ तर्कभूषण-लिखित, विश्वभारती स०), ६६ यतीन्द्र-मत-दीपिका—(श्रीरामानुजीय श्रीनिवासाचार्यकृत, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई), ७० लाइफ एड टिचिंग्स् ऑफ श्रीमध्वाचार्य—("Life and Teachings of Sri Madhvacharya" by C M Padmanavachari), ७१ बगभाषा और साहित्य, षष्ठ सस्करण,—(दीनेशचन्द्र सेन), ७२ बगीय महाकोष—(अमूल्यचरण विद्याभूषण), ७३. बगीय शब्दकोष—(हरिचरण वन्द्यो-पाध्याय), ७४ श्रीवल्लभदिग्विजय —(श्रीयदुनाथजी कृत, निर्णयसागर प्रेस), ७५. बागलार इतिहास, द्वितीय भाग—(राखालदास वन्द्योपाध्याय), ७६ बागलार वैष्णवधर्म (कलकत्ता विश्वविद्यालय, अधर मुखर्जी वक्तृता, म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण), ७७ बागला साहित्येर इतिहास, द्वितीय स०—(डा० सुकुमार सेन), ७८. विशोत्तर-शतोप-निषत्—(निर्णयसागार प्रेस, बम्बई), ७६ श्रीश्रीविदग्धमाधव-नाटकम्—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय स०), ८० श्रीविष्णुपुराणम् (श्रीश्रीधर-स्वामिकृत 'आत्मप्रकाश' टीका-सहित, बगवासी स०), ८१ श्रीविष्णु-स्वामिन् एड वल्लभाचार्य, ("Vishnuswamin and Vallabha-charya", प्रबन्ध—by G H Bhatt, M A in the 'Proceed-ings and Transactions of the Seventh All India Oriental Conference' Baroda, 1933), ८२ वृहद् बग (डा० दीनेशचन्द्र सेन), ८३ श्रीश्रीवृहद्भागवतामृतम्—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०, श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), ८४ श्रीश्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी—(श्रीमत्पुरीदास-

महाशय-सम्पादित), ८५ वेदान्त-दर्शन—[अद्वैतवाद]—(डा० आशुतोष शास्त्री), ८६ वेदान्त-दर्शन [विश्वभारती सस्करण]—(डा० रमा चौधुरी),८७ वेदान्त-दर्शनेर इतिहास, १म-३य खड,–(प्रज्ञानद सरस्वती), ८८ वेदान्त-पारिजात-सौरभम्—(श्रीनिम्बार्क-भाष्य, श्रीताराकिशोर-चौधुरी स०), ८९ वेदान्तस्यमन्तक—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), ९० वैष्णव फेथ् एड मुवमेंट—("Vaishnav-faith and movement"—Dr. S. K De), ९१ वैष्णव-मजूषा-समाहृति (श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद-सम्पादित), ९२ श्रीव्यासयोगि-चरितम्— ("The life of Sri Vyasaraya" by poet Somarnath with a Historical Introduction in English by B Venkata Rao, B A),९३ शकराचार्यकी ग्रन्थमाला–(वसुमती स० और राजेन्द्रनाथ घोष स०), ९४ शब्दकल्पद्रुम —(राजा राधाकान्त देव), ९५ शारीरक-भाष्यम्—(श्रीशकराचार्यकृत, कालीवर वेदान्त-वागीश स०), ९६ शुद्धाद्वैत-मार्तंड —(गोस्वामि-श्रीगिरिधरजी-विरचित और श्रीरामकृष्णभट्ट-विरचित 'प्रकाश' नामक व्याख्या-समन्वित, चोखम्भा, काशी, जनवरी १९०६), ९७. श्रीक्षेत्र—(द्वितीय सस्करण), ग्रन्थकार-सम्पादित, ९८ श्रीभाष्यम्—(श्रीरामानुजाचार्यकृत, वगीय-साहित्य परिषत् स०), ९९ श्रीश्रीश्रुतिरत्नमाला—(श्रीनारायणदास भक्तिसुधाकर-कृत), १०० श्रीश्रीसक्षेप-भागवतामृतम्–(अतुलकृष्ण गोस्वामी स० और श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), १०१ श्रीश्रीसज्जनतोषणी [पत्रिका]—(श्री-मद्भक्तिविनोद ठाकुर), १०२ सटीक हिन्दी भक्तमाल—(नाभादासकृत, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९१३), १०३ सर्वदर्शन-सग्रह —(निर्णय-सागर प्रेस स०), १०४. सर्वमूलम्—(श्रीमध्वाचार्यकृत, कुम्भघोणम् स०), १०५ सर्वसम्वादिनी—(श्रीश्रीमज्जीवगोस्वामिपादकृत, वगीय-साहित्य परिषद् सस्करण), १०६ सरार्थदर्शिनी—(श्रीविश्वनाथकृत, श्रीगौडीय मठ स०), १०७ सिद्धान्तरत्नम्—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), १०८ श्रीश्रीस्तवामृत-लहरी—(श्रीश्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत